II

महाकवि श्रीबाणभट्टविरचिता

कादम्बरी

'चन्द्रकला'-'विद्योतिनी' व्याख्याद्वयोपेता

व्याख्याकारः—

पं० श्रीकृष्णमोहनशास्त्री

आदितः शुकनासोपदेशान्तः भाग रु० ३०-००

मूल्य पूर्वार्द्ध रु० ५०-००   उत्तरार्द्ध रु० २५-००

(१९८२)

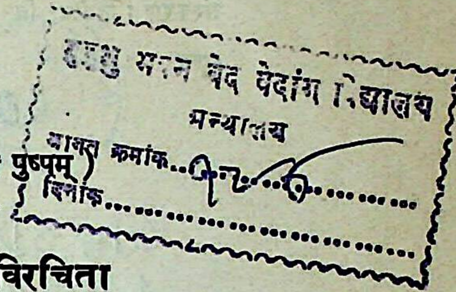


॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१५१





(काव्यविभागे (१५) पञ्चदशं पुष्पम्)

महाकविश्रीबाणभट्टतनयविरचिता

कादम्बरी

'चन्द्रकला' - 'विद्योतिनी' व्याख्याद्वयोपेता

(उत्तरभागः)

व्याख्याकारः

आचार्यः श्रीरामचन्द्रमिश्रः

(प्राध्यापक : राजकीय संस्कृत कालेज, पटना)



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९७३

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

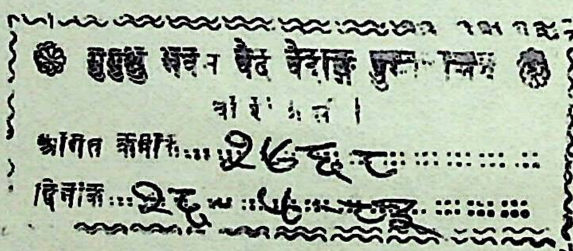
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : द्वितीय, वि० सं० २०३०

मूल्य :



गोपाल मन्दिर लेन,
पो० बा० ८, वाराणसी–१ (भारतवर्ष)
फोन : ६३१४५



प्रधान शाखा
चौखम्बा विद्याभवन
चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी–१
फोन : ६३०७६

THE
KASHI SANSKRIT SERIES
151
*****

(Kāvya Section No. 15)

KĀDAMBARĪ

(UTTARĀRDHA)

OF

SON OF BĀṆABHAṬṬA

Edited With The

Chandrakalā *and* Vidyotinī

Sanskrit Hindi Commentaries, Notes, Introduction, Etc.,

BY

ĀCHĀRYA RĀM CHANDRA MIŚRA

Professor, Government Sanskrit College, Patna,

(PART II)

THE
CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
VARANASI-1

Gopal Mandir Lane

P. O. Chowkhamba, Post Box 8

Varanasi-1 (India)

1973

Phone : 63145

Second Edition

1973

Price Rs. [redacted]

Also can be had of

THE CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

Publishers & Oriental Book-Sellers

Chowk, Post Box 69, Varanasi-1 (India)

Phone : 63076

अवतरणा

अथायमुपक्रम्यते प्रकाशयितुं प्रकाशपरिबृंहितः कादम्बर्या उत्तरार्धभागः । अस्य निर्मातुः परिचयादिकं साहित्यिकं गौरवं चाग्रे राष्ट्रभाषया लिखितमस्तीति तत एवावगन्तव्यम् ।

कादम्बर्या उत्तरार्धस्यात्र व्याख्याने मया महानायासः सरलतायां कृतः । प्रतिपदं प्रतिशब्दं प्रदायापि पिण्डार्थः पृथक् प्रतिपादितो येन च्छात्रा अन्ये वा साधारणपाठकाः कथाभागोपयुक्तमर्थभागं मनसि संस्थाप्याग्रेसरीभवेयुः ।

अत्र टीकायां लिख्यमानायां मया नितान्तनिरवलम्बताऽऽत्मनोऽनुभूता, यतः काप्युत्तरभागस्य कादम्बर्याष्टीका मया नावाप्ता । परीक्षास्वनिर्धारितग्रन्थत्वादन्यस्माद्वा कारणादस्य ग्रन्थस्य टीकाऽप्येकैवासीत्—सिद्धिचन्द्रभानुचन्द्रकृता, साऽपि ममाभाग्येन दुर्लभतां भजन्ती न दृक्पदं ममावतीर्णा । अतो मया स्वबुद्धिमात्रावलम्बेनात्र व्याख्या लिखिता । तदत्र सम्भाव्यते किमपि स्खलनमपि, परन्त्वनभ्युपायतया मया न पारितं तदपासयितुम् ।

परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य निजहृदि विकसतां सतां नित्यक्षमामयतया दोषैकदृशामसतां तु पुरः क्षमाप्रार्थनव्यापारस्यापि स्वप्रवञ्चनामात्रसारतया क्षमाप्रार्थनां न कुर्वे । शमिति ।

विदुषामाश्रवः
रामचन्द्रमिश्रः

विषय-सूची

भूमिका

१. संस्कृत गद्य का विकास

संस्कृत भाषा का गद्य-साहित्य भी संस्कृत पद्य-साहित्य की तरह अति समृद्ध कहा जा सकता है। पद्य की मात्रा से गद्य की मात्रा अवश्य बहुत कम है लेकिन समृद्धि की परीक्षा का मात्रा में न होकर कोटि में होना उचित है। संस्कृत-गद्य का सर्वप्रथम रूप वेद में देखा जाता है। संहिता ग्रन्थ गद्यबहुल हैं और अथर्ववेद तो अधिकांश में गद्य ही है।

पद्य के प्रति लेखकों का बड़ा आदर था यह बात अभ्रान्त सत्य है, इसका कारण क्या है, इस बात पर विचार करते हैं तो हमारी समझ में यही बात आती है कि पद्य में लिखे गये ग्रन्थों को पाठक आसानी से कण्ठ कर लिया करते थे, याद भी रखते थे, ताल-लयाश्रित होने से पद्यग्रन्थ गद्यगन्थ की अपेक्षा रोचक भी होता है, उसका प्रचार भी इसीलिये अधिक हो सकता है, इसी दृष्टि से लेखकों ने गद्य से अधिक पद्य को अपनाने का प्रयास किया है। संस्कृत-लेखकों में पद्य के प्रति आकर्षण का यदि आप अन्दाज लगाना चाहते हों तो इसी से लगा सकते हैं कि ज्योतिष, आयुर्वेद, स्थापत्य, इतिहास आदि विषय के ग्रन्थ भी पद्य ही में अधिक लिखे गये हैं। चरक आदि आयुर्वेद के ग्रंथों में गद्य है अवश्य, किन्तु उसकी मात्रा इतनी थोड़ी है कि उसे आप दाल में नमक के बराबर भी स्वीकार करने को नहीं प्रस्तुत होंगे। संस्कृत साहित्य के गद्य भाग का मात्रा-तारतम्य की दृष्टि से पद्य की अपेक्षा न्यूनत्व अवश्य माना जा सकता है परन्तु उसकी प्राचीनता सरसता आदि ऐसे गुण विद्यमान हैं जिनसे उसकी आदरणीयता पर आंच नहीं आने पाती है।

संस्कृत गद्य का विकास क्रमिक हुआ है। वैदिक गद्य का स्वरूप कुछ बोझिल सा था, उसके शब्द-विन्यास में कुछ चिन्तन के चिह्न नहीं उभरे दीख पड़ते हैं, देखिये—

"ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत, ततो रात्र्यजायत, ततः समुद्रोऽर्णवः, समुद्रादर्णवादधि, संवत्सरोऽजायत, अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी, सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्, दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथोस्वः।" (ऋग्वेद, दशम मण्डल)

संहिता-ग्रन्थों में गद्य का जो रूप था वही रूप ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी रहा, अन्तर इतना ही हुआ कि थोड़ी लोचदार भाषा को प्रश्रय मिला। जैसे—

"यदेतन्मण्डलं नयति तन्महदुक्थं ता ऋचः स ऋचां लोकोऽथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतं तानि सामानि स साम्नां लोकोऽथ य एष तस्मिन्मण्डले पुरुषः सोऽग्निस्तानि यजूंषि स यजुषां लोकः।"
(मण्डल ब्राह्मण)

इसके बाद उपनिषदों में गद्य का कथनोपकथन रूप में प्रयोग किया जाने लगा जिससे अगत्या स्फुटार्थता को आश्रय देना पड़ा। स्फुटार्थता के साथ-साथ अधिक मात्रा में भावाभिव्यक्ति की शक्ति भी कथोपकथन के द्वारा ही मिली। यथा—

"श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तं ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यम्। न वै सौम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवति। स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंशतिवर्षः सर्वान् वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी

स्तब्ध एयाय। तं ह पितोवाच, श्वेतकेतो यन्नु सोम्येदं महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यः।" (छान्दोग्योपनिषद् ६।१-२)

इन वैदिक उद्धरणों को देखकर यह साफ समझा जाता है कि गद्य का स्वरूप क्रमशः स्पष्ट होता गया है। संहिता की भाषा व्याकरण के बन्धनों से उन्मुक्त थी, तदपेक्षया ब्राह्मण-ग्रन्थों की भाषा ने व्याकरण के बन्धन में अपने को बँधवाया। उपनिषदों की भाषा पर तो व्याकरण की मुहर लगी हुई दीखती है, उसने तो अपने को व्याकरण के हाथों सौंप सा दिया।

इस प्रकार वैदिक गद्यों द्वारा मार्ग के प्रशस्त किये जाने पर लौकिक गद्य का अवतार हुआ। लौकिक गद्य का पहला निदर्शन निरुक्त में हुआ है—

"सर्वरसाः अनुप्राप्ताः पानीयमिति यथो एतदविस्पष्टार्था भवन्तीति नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यतीति। पुरुषापराधः स भवति। यथा जानपदीषु विद्यातः पुरुषविशेषो भवति, पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयोविद्यः प्रशस्यो भवति।" (नैघण्टुककाण्ड)

इस समय तक गद्य का प्रयोग केवल व्यवहार-भाषा के रूप में ही होता रहा, काव्य-भाषा के रूप में उसका प्रयोग नहीं होता था। इसी कारण से उसमें चमत्कार लाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया गया। इस प्रकार के गद्यों के उदाहरण भी देखिये—

"ये पुनः कार्या भावाः निर्वृत्तौ तेषां यत्नः क्रियते। तद्यथा घटेन कार्यं करिष्यन् कुम्भकारकुलं गत्वाह—कुरु घटं कार्यमनेन करिष्यामीति। न तद्वच्छब्दान्प्रयुयुक्षमाणो वैयाकरण कुलं गत्वाह कुरु शब्दान् प्रयोक्ष्ये।" (महाभाष्य—पस्पशाह्निक)

इस महाभाष्य के गद्य को पढ़ने से उस समय तक गद्य का जो विकास हो सका था उसका पता चल जाता है। इस गद्य को विकसित गद्य कहा जा सकता है। इसके बाद भी दार्शनिकों ने गद्य को प्रौढ़ रूप देने का प्रयास जारी रखा। देखिये—

"इच्छयाऽऽस्मानमुपलभामहे। कथमिति। उपलब्धपूर्वे ह्यभिप्रेते भवतीच्छा। यथा मेरुमुत्तरेण यान्यस्मज्जातीयैरनुपलब्धपूर्वाणि स्वादूनि वृक्षफलानि, न तानि प्रत्यस्माकमिच्छा भवति।"

(मीमांसादर्शनभाष्य)

यहां तक गद्य का जो विकास-क्रम प्रदर्शित किया गया है वह शास्त्रीय गद्य का अथवा लौकिक गद्य का विकास क्रम है। साहित्यिक गद्य का सर्वप्रथम रूप तो शिलालेखों में ही पाया जाता है। रुद्रदामन् के शिलालेख में जो गद्य-शैली पाई जाती है वह शैली नितान्त प्रौढ़ एवं ओज गुण से पूर्ण है।

यहां पर इतना कह देना अप्रासङ्गिक नहीं होगा कि गद्य-काव्य का प्रभात पद्य-काव्य के आंगन में हुआ, पद्य-काव्य के क्षेत्र में मँजी हुई प्रतिभा का वरदान लेकर गद्य, निर्माण की दिशा में बढ़ने वाले विद्वानों को अलङ्कार, रीति आदि के सारे सौष्ठव का पूरा परिचय था, अतः गद्य-काव्य का पहला निदर्शन भी अति प्रशस्त हुआ। सर्वप्रथम निर्मित रूप में मिलने वाले गद्य-काव्य का एक उदाहरण देखिए—

"सर्वपृथिवीजयजनितोदयव्याप्तनिखिलावनितलां कीर्तिमितस्त्रिदशपतिभवनगमनावाप्तललितसुखविचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः।" (हरिषेण—प्रयागप्रशस्ति-विजयस्तम्भवर्णन)

इस प्रकार हमने यहाँ वैदिक साहित्य से लेकर प्रयाग-प्रशस्ति लेख तक के गद्य-साहित्य की विकासशीलता

का दिग्दर्शन कराया है। विकसित होकर भी गद्य-साहित्य अपनी पराकाष्ठा पर बाण की रचना में ही पहुँच सका, इस बात पर मतभेद नहीं होना चाहिये। यद्यपि संस्कृत गद्य-लेखकों में कुछ ऐसे भी लेखक हैं जिनके गद्य को श्लेष का अधिक बल प्राप्त है, परन्तु केवल कठिन श्लेष की रचना मात्र से ही कोई गद्यकार अपने को अधिक उपलब्धिशाली नहीं सिद्ध कर सकता।

२. संस्कृत के गद्यकाव्य

(क) सुबन्धु की 'वासवदत्ता'

यह एक आख्यायिका ग्रन्थ है। इसी वासवदत्ता के सम्बन्ध में बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित नामक ग्रन्थ में लिखा है :—

'कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां नूनं वासवदत्तया॥'

वासवदत्ता में जिस तरह के गद्य का प्रयोग हुआ है वह नितान्त ओजस्वी है, ओजगुण समासाधिक्य से पैदा होता है और वह गद्य का जीवन माना जाता रहा है—

"ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवनम्।" (दण्डी)

उदाहरणार्थ सुबन्धु की वासवदत्ता से एक गद्य उद्धृत किया जाता है—

"अभूदभूतपूर्वः सर्वोर्वीपतिचक्रचूडामणिश्रेणीशाणकोणकषणनिर्मलीकृतचरणनखमणिर्नृसिंह इव दर्शितहिरण्यकशिपुचेत्रदानविस्मयः, कृष्ण इव कृतवसुदेवतर्पणः, नारायण इव सौकर्यसमासादितधरणिमण्डलः, कंसारातिरिव जनितयशोदानन्दसमृद्धिः।"

इस गद्य में शब्द-सज्जा के साथ श्लेष का चमत्कार बड़ा हृदयग्राही हुआ है। वासवदत्ता के निर्माण का समय षष्ठ शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है।

(ख) दण्डी का 'दशकुमारचरित'

दशकुमार एक आख्यान-प्रधान ग्रन्थ है। इसमें नाना तरह की रोमाञ्चकारिणी घटनाओं का वर्णन किया गया है। कहीं भयङ्कर वन में घूमते हुए हिंस्र प्राणियों के चीत्कार का वर्णन है, कहीं समुद्र में डूबते हुए बेड़े का वर्णन है, कहीं वेश्याओं की वञ्चना का चित्र प्रस्तुत किया गया है तो कहीं पर गृहिणी के गौरव का गान है। इस प्रकार मिथ्या या सत्य नाना तरह की घटनावली से पूर्ण होने के कारण यह ग्रन्थ बड़ा रोचक तथा सजीव बन सका है।

दण्डी कवि की दृष्टि तात्कालिक समाज को देखने में बड़ी पैनी थी, अतः उन्होंने तात्कालिक समाज का चित्रण बड़ा स्पष्ट किया है। समाज के रम्य तथा अरम्य भाग की समान भाव से आलोचना की गई है। दम्भी, तपस्वी, कपटी, ब्राह्मण, छलपरायण वेश्याजन, सभी का वर्णन किया गया है। अपहारवर्मा के चरित-प्रसङ्ग में काममञ्जरी नामक वेश्या द्वारा मरीचि नामक तपस्वी की वञ्चना के वर्णन में चातुर्य तथा साहसिकता का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। जहां एक ओर धूमिनी सरीखी क्रूरहृदया स्त्री का वर्णन है वहीं दूसरी ओर गोमिनी सदृश पतिव्रता का भी वर्णन प्रस्तुत है।

दशकुमार के निर्माण में दण्डी ने कथानक की रमणीयता को अधिक प्रश्रय दिया है वर्णन को कम। उनकी दृष्टि में कथासूत्र का वर्णन-प्रसङ्ग में खो जाना कथाग्रंथ में अच्छा नहीं लगता था। दशकुमार की कथाओं में अवान्तर-कथा-सङ्कीर्णता भी नहीं है, प्रत्येक कथा की अलग-अलग इकाइयां हैं।

दशकुमार की गद्यशैली सरल, सरस तथा प्रवाहशालिनी है। इसका गद्य न अधिक श्लेष से संकीर्ण है, न दीर्घ समास से विषम है।

वस्तुतः दण्डी गद्य में व्यन्जनाक्षम सरस सरल प्रवाह के प्रवर्त्तक थे, अर्थस्फुटता, मनोहर अभिव्यञ्जन-शैली, पदलालित्य यह दशकुमार के खास गुण हैं। दशकुमार का रचनाकाल सप्तम शतक का उत्तरार्ध माना जाता है।

(ग) अन्यान्य गद्यकार

बाणभट्ट के बाद के अन्यान्य कुछ लेखकों ने भी गद्यकाव्य लिखने की चेष्टा की थी, परन्तु उनमें सफलता कुछ को ही मिल सकी। कारण स्पष्ट है—गद्यकाव्य का निर्माण कठिन होता है। दण्डी को सुबन्धु के रहते-रहते जो यश मिल गया इसका प्रधान कारण यह है कि दण्डी ने चतुरता से शैली में परिवर्त्तन करके कीर्ति पा ली। बाण के बाद जिन कवियों ने गद्यकाव्य लिखने का प्रयास किया उनमें अधिकांश कवियों ने बाण का ही अनुकरण किया है। बाण की शैली में गद्य-प्रणयन करने वाले कवियों में तिलकमञ्जरी-प्रणेता 'धनपाल' तथा 'वादीभसिंह ओड्यदेव' प्रसिद्ध हैं।

'धनपाल' ने धाराधीश के आश्रम में रहकर तिलकमञ्जरी नामक गद्यकाव्य का प्रणयन किया। तिलकमञ्जरी में समरकेतु तथा तिलकमञ्जरी की प्रेमकथा वर्णित है। 'धनपाल का समय दशम शतक है।

'वादीभसिंह ओड्यदेव' की रचना का नाम गद्यचिन्तामणि है, इसमें जीवनधर का चरित वर्णित किया गया है।

अन्यान्य गद्य लेखकों में 'कृष्णचरित' प्रणेता 'अगस्त्य', 'चन्द्रप्रभाचरित' रचयिता 'शङ्करलाल', 'शिवराज-विजय' के लेखक 'अम्बिकादत्त व्यास' आदि आते हैं। परन्तु इनकी रचनायें उस कोटि की नहीं हैं जिस कोटि की वासवदत्ता, दशकुमार या तिलकमञ्जरी है।

एक बात यहां मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं गद्यकाव्य-लेखकों तथा चम्पूकाव्य-लेखकों का अलग-अलग वर्ग मानता हूँ। मेरी दृष्टि में चम्पूकाव्य-लेखक गद्यकाव्य-लेखक से भिन्न वर्ग का है। इसी दृष्टिकोण से मैंने यहां चम्पूलेखक अथवा कथालेखक रूप में गद्यलेखकों की चर्चा नहीं की है। उनका अपना अलग स्थान है।

(घ) बाणभट्ट की 'कादम्बरी'

बाणभट्ट की कादम्बरी कथाग्रन्थ है। स्वयं बाण ने कहा है :—धिया निबद्धेयमतिद्वयी कथा'। कादम्बरी में कही गई कथा गुणाढ्यकृत बृहत्कथा से ली गई है। यद्यपि इस समय गुणाढ्यरचित भूतभाषामयी अद्भुतार्था बृहत्कथा नहीं मिलती है तथापि ऐसा कहा जाता है कि बाणभट्ट के समय में वह मिलती रही होगी।

कादम्बरी-कथा जन्मत्रयवृत्तान्त में लिपटी होने के कारण कुछ जटिल हो गई है। एक कथा दूसरी कथा को पैदा करके उसकी समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगती है। इसी तरह दूसरी कथा तीसरी कथा को पैदा करके उसकी समाप्ति की प्रतीक्षा करती रहती है। इस प्रकार कुछ जटिल होकर भी कादम्बरी की कथा इतनी सरस तथा

अन्त में इतनी मनोरम बनी है कि उसकी तुलना में कोई कथा टिक नहीं सकती। संक्षेप में कादम्बरी का कथा-सूत्र इस प्रकार है।

(१) संक्षिप्त कथासूत्र : पूर्वार्ध

"विदिशा में शूद्रक नाम के एक राजा थे। एक समय एक चाण्डाल-कन्या पञ्जरवर्ती शुक लेकर उनके पास आई। वह अति स्पष्टभाषी तथा बहुज्ञ था। नृप के आग्रह पर उस शुक ने अपनी कथा इस प्रकार सुनाई—

'मेरे पैदा होते ही मेरी माँ मर गयी। मेरे पिता को भी शिकारियों ने मार दिया। मैं वृक्ष से गिर कर पृथ्वी पर रेंग रहा था कि दयालु जाबालि शिष्य मुझे अपने गुरु के आश्रम में ले गये। जाबालि ने अपने शिष्यों को मेरी कथा इस प्रकार सुनाई—उज्जयिनी में तारापीड़ नामक एक राजा थे, उनकी स्त्री का नाम विलासवती तथा मन्त्री का नाम शुकनास था। प्रौढ़ अवस्था में राजा को चन्द्रापीड नाम का एक बेटा हुआ। शुकनास को भी वैशम्पायन नाम का बेटा हुआ। उन दोनों को गुरुकुल में शिक्षा दी गई। शिक्षोपरान्त शुकनास ने उपदेश दिया। दिग्विजय यात्रा के प्रसङ्ग में राजकुमार चन्द्रापीड ने गन्धर्व-मिथुन का अनुसरण करते हुए एक अच्छोद नामक सरोवर पर तपस्यानिरत महाश्वेता को देखा। महाश्वेता ने चन्द्रापीड से अपनी कथा इस प्रकार कही—मैं पुण्डरीक नामक एक मुनिपुत्र से प्रेम करती थी। कामपीड़ा से उसकी मृत्यु हो गई। मैं उसका अनुगमन करना चाह रही थी कि इसी समय एक दिव्य पुरुष ने मुझसे कहा—तुम दोनों का मिलन फिर होगा। इस प्रकार कहकर वह दिव्य पुरुष पुण्डरीक के शरीर को उठा ले गया। महाश्वेता ने ही चन्द्रापीड से कादम्बरी की चर्चा की। कादम्बरी तथा चन्द्रापीड का जब साक्षात्कार हुआ तब उनमें परस्परानुराग पैदा हुआ। इसी समय चन्द्रापीड के पिता का दूत उसे बुला ले गया। चन्द्रापीड के वियोग में कादम्बरी शरीर-त्याग करने को तत्पर हुई, सखी ने उसे सान्त्वना दी और चन्द्रापीड के पास जाकर कादम्बरी की दशा उससे बताई।"

बाणभट्ट कृत पूर्वार्द्ध कादम्बरी यहीं समाप्त होती है। इसके बाद की कथा बाणभट्ट के सुपुत्र पुलिनभट्ट के द्वारा उत्तरार्ध कादम्बरी में लिखी गई है जो इस प्रकार है।

(२) संक्षिप्त कथासूत्र : उत्तरार्ध

"चन्द्रापीड़ राजधानी जाने के समय वैशम्पायन को छोड़कर गये थे। पत्रलेखा के साथ जब वह पुनः आश्रम के पास आये तब बहुत ढूँढने पर भी वैशम्पायन उन्हें नहीं मिला। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। पीछे चलकर महाश्वेता ने चन्द्रापीड से कहा कि आपका मित्र ब्राह्मणकुमार मुझे कामुक दृष्टि से देख रहा था, मैंने शाप देकर उसे शुक बना दिया। इस बात को सुनते ही चन्द्रापीड़ की छाती फट गई, प्राण उड़ गये। इसी समय कादम्बरी महाश्वेता से मिलने आई, चन्द्रापीड़ को मरा देख कादम्बरी को बड़ा कष्ट हुआ। इसी समय आकाशवाणी हुई—'शापवश चन्द्रापीड़ की मृत्यु हुई है। इसके शरीर को सुरक्षित रखो, कादम्बरी तथा महाश्वेता इन दोनों को ही फिर अपने प्रियतम मिलेंगे।' इन्द्रायुध को लेकर पत्रलेखा तत्काल अच्छोद सरोवर में कूद पड़ी। इन्द्रायुध के स्थान में पुण्डरीक का मित्र कपिञ्जल सरोवर से निकला। उसने कहा कि चन्द्रापीड़ चन्द्रमा के, वैशम्पायन पुण्डरीक के तथा इन्द्रायुध कपिञ्जल के अवतार थे।

इस प्रकार की कथा जाबालि के मुख से सुनकर शुक को पूर्वजन्म का स्मरण हो गया। वह पुनः महा-

श्वेता से मिलने चला। रास्ते में लक्ष्मीस्वरूपा चाण्डाल कन्या ने उसे पकड़वा कर शूद्रक के आगे उपस्थित किया।

इसी समय शापावसान समय उपस्थित हुआ। इधर शूद्रक का देह-त्याग हुआ, उधर चन्द्रापीड़ जी उठा। पुण्डरीक भी दिव्य लोक से आकर महाश्वेता से मिला। चन्द्रापीड़ का कादम्बरी के साथ और पुण्डरीक का महाश्वेता के साथ चिरप्रतीक्षित विवाह सम्पन्न हुआ, खुशियां मनायी जाने लगीं।"

३. कादम्बरी की विशिष्टता

कादम्बरी की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। कादम्बरी के पात्र इतनी सजीवता से चित्रित किये गये हैं कि वह प्रत्यक्ष दृष्ट की तरह लगते हैं। राजा शूद्रक, जाबालि, तारापीड़, महाश्वेता, कादम्बरी, चन्द्रापीड़, सभी पात्र इस तरह वर्णित हुए हैं कि वह सामने बैठे हुए मालूम पड़ते हैं। एक जगह आप शबर-सैन्य-प्रयाण का वर्णन पढ़कर विस्मयाभिभूत होते हैं तो जाबालि के आश्रम में पहुँच कर भावस्तिमित भी आप ही होते हैं। कादम्बरी तथा महाश्वेता का वर्णन पढ़कर जो पाठक लोकान्तर में उपस्थित सा हो उठता है वही पाठक अच्छोद सरोवर का वर्णन पढ़कर सुधासिक्त हो उठता है। शुकनासोपदेश पढ़कर जिसका हृदय निर्मल दर्पण सा हो जाता है, उसी का हृदय जाबालि के आश्रम में—"परिचितशाखामृगकराकृष्टि-निष्कास्यमानप्रवेद्यमान-जरदन्ध-तापसम्' देखकर प्राणिमैत्री के भाव में विभोर हो उठता है।

अलङ्कारों के प्रयोग से अर्थ का स्पष्टीकरण, अलङ्कार के माध्यम से नानाशास्त्रवृत्त का ज्ञान-प्रदर्शन आदि कुछ ऐसी बातें हैं जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन इस स्थान में अनुपयुक्त होगा, अतः यहां कुछ स्थूल बातें कहकर ही सन्तोष करना है।

भाषा-समृद्धि की दृष्टि से कादम्बरी अद्वितीय है। भाषा-समृद्धि को देखकर ही पाश्चात्त्य पण्डितों ने बाणभट्ट की कादम्बरी को अरण्यानी कहा है। उनका कहना है कि बाण का गद्य एक ऐसा जङ्गल है जिसमें झाड़ियों को साफ किये बिना आगे बढ़ना कठिन है और उसमें कुछ अप्रसिद्धार्थक पद-समूहरूप दुष्ट जन्तु प्रवेश करनेवालों की प्रतीक्षा में रहते हैं।

परन्तु बात ऐसी नहीं है। जो पाश्चात्त्य पण्डित संस्कृत के बारे में जानते हैं, संस्कृत नहीं जानते उनकी ही ऐसी धारणा हो सकती है।

वस्तुतः बाण की कादम्बरी एक सतमहला भवन है, जिसके किसी प्रकोष्ठ में सुन्दर वस्त्रावृता एवं अलंकृता सुन्दरी का चित्र है, किसी प्रकोष्ठ में शिकार करके लाये गये भालू, बाघ आदि जन्तुओं की खालें हैं, किसी में खरस्रोता नदी का चित्र है और कहीं लड़ाई के मैदान का पेंटिंग है। उस प्रासाद में पैठकर यदि कोई कायर बाघ-भालू की खालों को देखकर ही भय का अनुभव करता है और भाग खड़ा होता है तो यह उसकी दुर्बलता है, इसमें उस प्रासाद का क्या दोष।

४. उत्तरार्ध कादम्बरी

जितने गुण पूर्वार्ध कादम्बरी में हैं उतने ही गुण मात्रा में कुछ न्यून होकर भी उत्तरार्ध कादम्बरी में विद्यमान हैं। बाणभट्ट की कादम्बरी कथा चल ही रही थी, कवि ने चन्द्रापीड़ को कादम्बरी के समक्ष उपस्थित

भर किया था कि वह संसार से विदा हो गया। सरस कथा के बीच में ही टूट जाने पर लोगों को दुःख हुआ। बाणभट्ट के बेटे को यह बात बहुत खली। उसने साहस किया—

'याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एष हि मया न कवित्वदर्पात्॥

बाणभट्ट के पुत्र उत्तरार्ध-कादम्बरी-रचयिता—वक्ष्यमाण पुलिनभट्ट को यह मालूम था कि जिस मन्दगम्भीर प्रवाह से कादम्बरी की कथा को उसके पिता ने यहां तक पहुँचाया है, उसे वह उस रूप में नहीं ले चल सकेगा। परन्तु करता क्या, वह उस अधूरी कथा को उसी रूप में छोड़ भी तो नहीं सकता था, उसकी अन्तरात्मा में यह विश्वास था कि लोग कादम्बरी की कथा मात्र जानने के लिये भी निम्नकोटि की मेरी रचना को विना किसी नुक्ताचीनी के अवश्य पढ़ेंगे।

'कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।'

यह बात है कि उसे अपनी ज्ञानगरिमा का अन्दाज था, परन्तु इसी के साथ यह बात भी उसकी वाणी से स्पष्ट मालूम पड़ती है कि वह भरपूर कोशिश करके बाणरचित भाग से स्वरचित भाग को मिलाकर दोनों में एकाकारता लाने का प्रयास करेगा। उसका मङ्गलाचरण श्लोक इस कथन की ओर इशारा करता है—

'देहद्वयार्धघटनारचितं शरीरमेकं ययोरनुपलक्षितसन्धिभेदम्।
वन्दे सुदुर्घटकथा-परिशेषसिद्ध्यै स्रष्टेर्गुरू गिरिसुतापरमेश्वरौ तौ॥'

५. उत्तरार्ध कादम्बरी के प्रणेता का नाम

उत्तरार्ध कादम्बरी बाणभट्ट के पुत्र की रचना है यह बात उत्तरार्ध कादम्बरी के मङ्गलाचरण से प्रमाणित है। यहां इस बात पर विचार करना है कि बाणभट्ट के पुत्र कादम्बरी-पूरक कविवर का नाम क्या था। बाण ने उसका नाम नहीं लिखा है। स्वयं वह भी इस प्रसङ्ग में मौन हैं। धनपाल ने तिलकमञ्जरी नामक अपने ग्रन्थ में उनका नाम पुलिन्दभट्ट कहा है—

'केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्। किं पुनः क्लृप्तसन्धान-पुलिन्दकृतसन्निधिः॥'

'Dr. Stein's Catalogue of Sanskrit Mss at Jammu'. नामक अपने निबन्ध में डॉ० बुह्लर महोदय ने बाणभट्ट के पुत्र उत्तरार्ध कादम्बरी प्रणेता का नाम 'भूषणभट्ट' लिखा है।

प्रो० भाण्डारकर महोदय ने आधुनिक अनुसंधान के आधार पर बाणभट्ट के पुत्र का नाम 'पुलिनभट्ट' कहा है। इन तीनों में सबसे प्राचीन साक्ष्य धनपाल का ही है। अतः पुलिन्दभट्ट यही नाम होना चाहिये। जहाँ तक मेरी आत्मा का सम्बन्ध है मुझे पुलिनभट्ट यही नाम सबसे अधिक प्रिय है। यदि बाणभट्ट होते तो मैं उनसे भी यह पूछने का साहस कर बैठता कि आपने पुलिन न कहकर अपने बेटे को पुलिन्द क्यों कहा?

६. पुलिनभट्ट का समय

सौभाग्यवश पुलिनभट्ट बाणभट्ट के पुत्र थे, जिनका समय अतिनिर्णीत है। बाणभट्ट श्रीहर्षदेव के समकालिक थे। श्रीहर्षदेव का समय चीनी यात्री 'ह्वेनत्सांग' के प्रामाणिक प्रवासवृत्त से ही निश्चित है। उसके अनुसार श्रीहर्षदेव का समय ६०६ से ६४८ ई० सिद्ध है। उसी दृढ आधार पर बाणभट्ट का समय सप्तम शतक माना

जाता है। फलतः पुलिनभट्ट का समय भी यही होगा। बाणभट्ट के समय के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से जानने के लिए बाणभट्ट से सम्बद्ध संस्कृत-साहित्येतिहास का अंश देखना चाहिये।

७. संस्कृत गद्य-कवियों में पुलिनभट्ट का स्थान

संस्कृत गद्यकवियों में बाणभट्ट का स्थान सर्वोच्च है। बाणभट्ट ने पाञ्चाली रीति एवं ओजगुण के आश्रयण द्वारा अपने काव्य को काफी समुन्नत बनाया है। सरस सरल वाक्यों के प्रयोग से लोगों को आकृष्ट किया है। श्लेषबन्ध से तथा कथाविन्यास शिल्प से अपनी कृति को महत्ता दी है। बाणपुत्र पुलिन ने भी बड़ी सावधानता के साथ अपने पिता के पदचिह्नों पर चलने का प्रयास किया है। 'अपि चेदानीमानीतस्यापि कुमारस्य न ददाति तरलतालज्जिता लज्जेव दर्शनम्' इस वाक्य से अपने ग्रन्थ को प्रारम्भ करते हुए पुलिन भट्ट के हृदय में बैठी हुई सावधानता झांक रही है। इसी सावधानी के फलस्वरूप पुलिनभट्ट को बड़ी सफलता मिली है। यह बात सिद्ध है कि पुलिन भट्ट ने अपने अथक प्रयास से अपने को योग्य पिता का योग्य पुत्र प्रमाणित करके दिखला दिया है। वह कवि-गुणों में केवल अपने पिता से थोड़ा कम है। हिमालय के सामने मैनाक अवश्य बौना लगता रहा होगा, परन्तु किसी भी वृक्ष से वह ऊँचा ही दीखता रहा होगा।

८. पुलिनभट्ट की भाषाशैली

बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में गद्य-कवियों के लिए श्लोक कहा है—

"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः। विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम् ॥"

गद्य काव्य का यही मापदण्ड है। इसी तौल से जो जितना वजनी उतरेगा उतने गौरव का पात्र माना जायगा। पुलिन भट्ट की उत्तरार्ध कादम्बरी को भी इसी दृष्टि से परखना चाहिये। आपको मालूम है कि पुलिनभट्ट रस कादम्बरी की अधूरी कहानी को पूर्णता देने चला है जो संस्कृत गद्यकाव्य की सर्वोच्च रचना है। इस स्थिति में यदि वह चाहता तो पूर्वार्ध कादम्बरी के अनुकरण पर कुछ आश्रमों की कुछ मुनियों की, वर्णना का अवसर बनाकर अपनी रचना में पूर्वार्द्ध कादम्बरी से मिलते-जुलते वर्णनों की सृष्टि कर सकता था। इस प्रकार वह अपने ग्रन्थ में कुछ अन्यच्छायायोनि अर्थों को समाविष्ट करके अपने काव्य को अधिक आकर्षक बना सकता था, परन्तु ऐसा उसने नहीं किया, क्योंकि उसे अपने पिता की उपर्युक्त चेतावनी याद थी। उसने जहां तक बन सका 'नवोऽर्थः' वाली बात पर ध्यान दिया। 'अग्राम्या जातिः' का तो उसने अपने पिता की तरह ही सदा ख्याल रखा। 'श्लेषोऽक्लिष्टः' के लिए इतने उदाहरण ही पर्याप्त हैं—

"ये सकलङ्काः कृपाणा इव स्नेहेनैव पारुष्यं भजन्ते। गुणयुक्ताः सायका इव सपक्षाश्रयेण फलेनैव दूरं विक्षिप्यन्ते। सरागाः पल्लवा इव दिवसा-रूढयैवापरज्यन्ते। भूतिपरामृष्टा दर्पणा इवाभिमुख्येन सर्वं प्रतीपं गृह्णन्ति।"

'स्फुटो रसः' वाले अंश में तो पुलिन भट्ट ने बड़ी सफलता प्रकाशित की है। उसकी कथा जब प्रारम्भ होती है तब उसे करुणविप्रलम्भ रस की पुष्टि करने का अवसर मिलता है जिसे उसने बड़ी सफलता से निभाया है। आगे चलकर भी उसकी कवित्व शक्ति प्रसङ्गागत वर्णनों में रसधारा-प्रवाही बनी रही है, यह बात कादम्बरी उत्तरार्ध के पाठकों को स्पष्ट नजर आयेगी। विकटाक्षरबन्धता से मतलब है समासभूयस्त्व तथा रसानुकूलवर्णत्व

का। इन दोनों अंशों में पुलिनभट्ट को काफी साफल्य प्राप्त है यह बात भी कादम्बरी उत्तरार्ध के साक्ष्य से प्रमाणित होती है।

९. पुलिनभट्ट की आलङ्कारिकता

इस प्रसङ्ग में मैं उत्तरार्ध कादम्बरी से कुछ अंश उद्धृत करके आपके समक्ष विचारार्थ रख देता हूँ। आप स्वयं परीक्षा करके कोटि निर्धारण कर लें—

'प्रकटितरागं हृदयमिव कादम्बर्यास्त्रपया पलायमानमदृश्यत रविमण्डलम्।'

'पल्लवशयनमिव सन्ध्यारागमरचयद्यामिनी' 'परिचारक इव चन्द्रमणिशिलातलतल्पमकल्पयत्प्रदोषः।' (सन्ध्यावर्णन श्लेषोत्थापित उपमा)

'अपि च तस्याश्चन्दनपरिमल इव दक्षिणानिलेन सह समागच्छति मोहः। चक्राह्वशाप इव निशया सहापतति प्रजागरत्रासः। प्रतिरुदितानीव वलभीकपोतकूजितैः सहाविर्भवन्ति दुःखानि। मधुकर इवोपवनकुसुमामोदेन सहोपसर्पति मरणाभिलाषः।' (सन्ध्यावर्णन, सहोक्ति उपमासंकर)

'पदमिव जलदकालस्य, प्रतिपक्षमिव सर्वसन्तापानाम्, निजावासमिव त्रदिम्नः, निर्गममार्गमिव सुरभिमासस्य, आश्रयमिव मकरध्वजस्य।' (लतामण्डपवर्णन, मालोपमा)

इस तरह आप स्वयं कादम्बरी उत्तरार्ध से बहुत अधिक मात्रा में सुप्रयुक्त अलङ्कारों के उदाहरण खोज सकते हैं।

१०. पुलिनभट्ट का शास्त्रज्ञान

जहां तक शास्त्रज्ञान का सम्बन्ध है, पुलिन भट्ट में वह प्रचुर मात्रा में विद्यमान था। कवि होने के लिए पहले शास्त्रज्ञान का अर्जन ही आवश्यक होता है क्योंकि कविता समस्त शास्त्रज्ञान का रस मानी जाती है। 'सा हि सर्वासामेव विद्यानां निष्यन्दः' (राजशेखर)। काव्यकारणनिरूपण प्रसङ्ग में आलङ्कारिक शिरोमणि मम्मट भट्ट ने लिखा है—

'शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्। काव्यज्ञशिक्षयाऽभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।'

पुलिनभट्ट को कहां तक शास्त्रज्ञान था यह नहीं कहकर इतने शास्त्रों का ज्ञान था यही बताने का प्रयास किया जायगा जिससे अवशिष्ट शास्त्रों के ज्ञान की सूचना देनेवाले प्रसङ्गों के मिलने पर आप स्वयं पुलिनभट्ट के तत्तच्छास्त्रज्ञान का अनुमान कर लेंगे।

(क) दर्शनज्ञान

"त्रिगुणात्मकस्य प्रधानस्यापि परिणामात्परमाण्वादेर्ब्रह्माण्डपर्यन्तस्य०।"

"कर्मणां वा शुभाशुभानां विपाकस्वभावात्।"

"आगमप्रामाण्यादेवाभ्युपगतानि।" "उपरिष्टाद् गन्तुमुद्यतं मे सत्त्वाख्यं ज्योतिः।"

(ख) पुराणज्ञान

'महेन्द्रपदवर्त्तिनो नहुषस्य राजर्षेरगस्त्यशापादजगरता।'

"सौदासस्य च वसिष्ठसुतशापादजगरता।"

"असुरगुरुशापाच्च ययातेस्तारुण्य एव जरसा भङ्गः । त्रिशङ्कोश्च पितृशापाच्चाण्डालभावः ।"

(ग) द्रव्यगुणविज्ञान

'नानाविधद्रव्यसंयोगानां मरणमदनाद्युद्दीपनापहरणवशीकरण० ।'

(घ) धर्मशास्त्रज्ञान

'फलानि तु चाण्डालतोऽपि प्रतिगृह्यन्त एव । पानीयमपि चाण्डालभाण्डादपि भुवि पतितं पवित्रमेवेत्येवं जनः कथयति ।"

(ङ) अस्त्रविद्याज्ञान

"हस्तस्थितकाण्डकोदण्डैश्च, प्रासप्रचण्डपाणिभिश्च, सेलग्राहिभिश्च ।"

(च) ज्योतिषज्ञान

"यथा सर्व एव ग्रहाः स्थितास्तथाऽस्मन्मतेन देवस्य गमनमेव वर्त्तमानेन शस्यते ।"

"अपरमपि कर्मानुरोधाद्राजेच्छैव कालः ।"

"अन्यदात्ययिकेषु कार्येषु कार्यपराणां दिवसनिरूपणैव कीदृशी ।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुलिन भट्ट को शास्त्रज्ञान पर्याप्त था ।

इन सारी बातों पर विचार करने पर कादम्बरी उत्तरार्ध के निर्माता वाणपुत्र पुलिनभट्ट महापण्डित तथा महाकवि सिद्ध होते हैं । उनकी एकमात्र रचना उत्तरार्ध कादम्बरी अमर कृति है ।

रामचन्द्र मिश्र

॥ श्रीः ॥

कादम्बरी

संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेता

उत्तरभागः

मङ्गलाचरणम्

देहद्वयार्धघटनारचितं शरीरमेकं ययोरनुपलक्षितसंधिभेदम्।
वन्दे सुदुर्घटकथापरिशेषसिद्ध्यै सृष्टेर्गुरू गिरिसुतापरमेश्वरौ तौ ॥ १ ॥

कज्जलाविलगोपालबालानयनवासतः। इव श्यामः श्रियं दिश्यान्मम केशीनिषूदनः ॥ १ ॥
अहं वाग्वरिवस्यायां सदा निरतमानसः। सतामनुग्रहेणैव वर्द्धितोत्साहसाहसः ॥ २ ॥
कादम्बरीप्रबन्धस्य प्रथितस्य महीतले। उत्तरार्धं चिकीर्षामि प्रकाशपरिबृंहितम् ॥ ३ ॥
सदूषणापि स्वदते व्याख्या स्वीयतया यतः। तदत्र सन्तो जायन्तां स्वीये वस्तुनि सादराः ॥ ४ ॥

उत्तरार्धकादम्बरीं रचयितुमुपक्रममाणो बाणतनयश्चिकीर्षितस्य प्रबन्धस्य निर्विघ्नपरिसमाप्तिप्रचारादिकामनया शिष्टाचारपरिप्राप्तं मङ्गलं ग्रन्थादावुपनिबध्नाति—देहद्वयेति—ययोः देहद्वयार्धघटनारचितं शरीरम् अनुपलक्षितसन्धिभेदम् एकम्, सुदुर्घटकथापरिशेषसिद्ध्यै तौ सृष्टेर्गुरू गिरिसुतापरमेश्वरौ वन्दे इत्यन्वयः। ययोः पार्वतीशिवयोः देहद्वयं स्त्रीशरीरं पुरुषशरीरञ्च तयोरर्धे अर्धभागौ तयोर्घटनया योजनेन रचितं निर्मितं शरीरं देहः अर्धनारीपुरुषवपुः अनुपलक्षितसन्धिभेदम् अज्ञायमानमिलनकृतभिन्नभावम् अत एव च एकम्, सुदुर्घटायाः कर्त्तुमशक्यायाः असुकरायाः वा कथायाः कादम्बरीलक्षणस्य कथाग्रन्थस्य यः परिशेषः अवशिष्टभागस्तस्य सिद्ध्यै निष्पत्तये तौ सृष्टेर्गुरू प्रपञ्चमातापितरौ गिरिसुतापरमेश्वरौ वन्दे प्रणमामि। अर्धनारीश्वरात्मकस्य शिवस्य स्तुतिरत्रोपनिबद्धा। पृथग्वस्तुद्वययोजनायां सुघटितायामपि योजनचिह्नं तत्कृतो भेदश्च प्रतिभासते, अत्रार्धनारीश्वरवपुषि तु तदप्रतिभासोऽनादियुक्तत्वसामर्थ्यातिशयशालित्वप्रगाढप्रीतिमत्त्वानि गमयति। कथायाः सुदुर्घटायाः परिशेषस्य सिद्धये तादृशस्य शिवस्य नमनमुपनिबद्ध्यमानं पूर्वार्धकथया सहोत्तरार्धकथायाः सम्पादनीयां सुश्लिष्टतां व्यञ्जयति। गिरिसुतापरमेश्वरयोरन्यतरस्य प्रणत्यैवोपपत्तौ द्वयोर्नमनमुपनिबद्ध्यमानं वागर्थाविव नित्यसंश्लिष्टयोस्तयोराराधनेन वागर्थपरिस्फूर्तिद्वारा ग्रन्थप्रणयनक्षमत्वमाशंसति। यौ पार्वतीपरमेश्वरौ पृथग्भूतदेहद्वयघटनया निष्पाद्यमेकं शरीरं धारयन्तावपि योजनकृतसन्धिभेदं न बिभृतस्तौ जगज्जननप्रथितौ शिवौ कष्टसम्पाद्यकादम्बरीकथापूर्त्तये प्रणमामीति वाक्यार्थः। देहद्वयघटितस्यापि शरीरस्य सन्धिभेदानु-

---

दो देहों के आधे-आधे भागों को एक जगह करके बनाया गया होकर भी जिनके एक शरीर में जोड़ के चिह्न का कहीं पता नहीं चलता है, कठिन निर्वाह कथा के परिशेष की पूर्ति के लिये मैं सृष्टि के जननी एवं जनक उन पार्वती और परमेश्वर को प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

व्याधूतकेसरसटाविकरालवक्त्रं हस्ताग्रविस्फुरितशङ्खगदासिचक्रम् ।
आविष्कृतं सपदि येन नृसिंहरूपं नारायणं तमपि विश्वसृजं नमामि ॥ २ ॥

उपोद्घातः

आर्यं यमर्चति गृहे गृह एव लोकः पुण्यैः कृतश्च यत एव ममात्मलाभः ।
सृष्टैव येन च कथेयमनन्यशक्या वागीश्वरं पितरमेव तमानतोऽस्मि ॥ १ ॥
याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः ।
दुःखं सतां यदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात् ॥ २ ॥

पक्षध्या व्यतिरेकाभिव्यक्तिर्भवति । गिरिसुतापरमेश्वरविषयः । कविगतो भावश्च प्रधानभूतः । वसन्ततिलकं वृत्तम्, 'उक्तं वसन्ततिलकं तभजा जगौ गः' इति तल्लक्षणात् ॥ १ ॥

व्याधूतेति०—विघ्नप्राचुर्ये मङ्गलप्राचुर्यमावश्यकं तदिह विघ्नप्राचुर्यसंभावनाकृतं मङ्गलान्तरमुपनिबद्ध्यमानं बोध्यम् । येन विश्वसृजा जगन्निर्माणदक्षेण चतुर्भुजेन भगवता व्याधूताः कम्पिताः याः केसरसटाः स्कन्धस्थितबालराशयः ताभिः विकरालम् भयजनकं वक्त्रं मुखं यस्य तं तादृशम्, हस्ताग्रे कराग्रभागे विस्फुरितानि देदीप्यमानानि शङ्खगदासिचक्राणि पाञ्चजन्यकौमोदकीनन्दकसुदर्शननामप्रसिद्धानि तत्तदस्त्राणि यस्य तत् तथोक्तम्, नृसिंहरूपं नरसिंहमिलितं विलक्षणं रूपं स्वीयं वपुः सपदि तत्काल एव आविष्कृतं प्रकटितं तमपि विश्वसृजं जगन्निर्मातारं नारायणं नमामि प्रणतोऽस्मि । कम्पमानकेसरभयङ्करवक्त्रं करविद्योतमानशङ्खगदासिचक्रं प्रह्लादेन कृते ध्याने सद्यः प्रकटीकृतनृसिंहरूपाडम्बरं विश्वनिर्मातारञ्च विष्णुं प्रति प्रणतोऽस्मीत्यर्थः । नृसिंहस्याज्ञानविनाशकतया सदा सन्निहितास्तया विघ्ननिवारणक्षमतया चेयं स्तुतिरुपयुक्ता । पूर्वोक्तमेव वृत्तम् ॥ २ ॥

आर्यमिति०—आर्यं पूजनीयं यं तातं गृहे गृहे सर्वेषु गृहेषु लोकः सकलो जन एव अर्चति पूजयति, पुण्यैः पूर्वतनसुकृतैश्च यतः तातात् मया एतद्ग्रन्थपूरणप्रवृत्तेन पुत्रेण आत्मलाभः कृतः जन्म प्राप्तम्, येन तातेन अनन्यशक्या इतरजनासम्पाद्या कथा सृष्टा रचिता एव, वागीश्वरम् सरस्वतीमधिकुर्वाणम् वशीकृतवाग्देवतं तं प्रसिद्धं पितरं स्वजनकं बाणम् आनतोऽस्मि । अयमाशयः—यस्य मम पितुः प्रतिगृहं पूजा क्रियते, प्राक्तनपुण्यप्रभावादेव यतोऽधन्यस्यापि मम जन्माजायत, यश्चान्यकविसंरम्भाविषयामिमां कादम्बरीं नाम कथां सृष्टवान्, तं स्वतातं प्रति प्रणतोऽस्मीति, अन्यत्सुगमम् ॥ १ ॥

याते दिवमिति०—पितरि मम जनके बाणे दिवं स्वर्गं याते मृते सति तद्वचसा बाणवचनेन सार्धम् सह एव यः कथाप्रबन्धः कादम्बरीनामा कथाग्रन्थः विच्छेदमाप विरतरचनाव्यापारतया त्रुटिम् आससादयामास, सतां सज्जनपण्डितानाम् तदसमाप्तिकृतं तद्ग्रन्थापूर्तिनिमित्तकम् दुःखं मनःखेदं विलोक्य ज्ञात्वा एव स कथाग्रन्थो मया प्रारब्धः पूरयितुमुपक्रान्तः, कवित्वदर्पात् कवितानिर्माणप्रौढिगर्वतो न उपक्रान्त इति शेषः । मम पितरि मृते—तद्वचसि विरते सति—तेन सहैव तदुपक्रान्ता कथापि विरता जाता, सन्तस्ततः खेदमन्वभवन्निति सतां मनःखेदस्यापनिनीषैवात्र स्वपित्रारब्धकथापूर्तये प्रवृत्तौ कारणं न पुनः स्वपाण्डित्यप्रकर्षप्रकटनाभिरुचिरिति तात्पर्यम् । एतेन विनयः प्रकटितः । स्पष्टमन्यत् ॥

कंपाई गई केसर-सटा से भीषण मुखवाले एवं हाथों में शङ्ख, गदा, खड्ग तथा चक्र धारण करनेवाले नृसिंहरूप को जिसने सद्यः प्रकट कर दिया था, मैं उस विश्वनिर्माता नारायण को भी नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

जिस आर्य को पूजा लोग घर-घर में किया करते हैं और अपने पुण्यों के बल पर मैंने जिससे जन्म प्राप्त किया है, एवं दूसरे द्वारा नहीं बनाई जा सकनेवाली इस कथा की जिसने सृष्टि की है मैं उस वाणी के समर्थ-अधिकारी पितृदेव के चरणों में प्रणत हूँ ॥ १ ॥

मेरे पिता जी के स्वर्ग चले जाने से उनकी वाणी के साथ साथ ही जिस कथा का विच्छेद हो गया था, उसकी असमाप्ति से होने वाले सज्जनों के मनोदुःख को देख करके ही मैंने पुनः इस कथा को शुरू किया है, अपने कवित्व के अभिमान से नहीं ॥ २ ॥

गद्ये कृतेपि गुरुणा तु तथाक्षराणि यन्निर्गतानि पितुरेव स मेऽनुभावः।
एकल्लवामृतरसास्पदचन्द्रपादसंपर्क एव हि मृगाङ्कमणेर्द्रवाय ॥ ३ ॥
गङ्गां प्रविश्य भुवि तन्मयतामुपेत्य स्फीताः समुद्रमितरा अपि यान्ति नद्यः।
आसिन्धुगामिनि पितुर्वचनप्रवाहे क्षिप्ता कथानुघटनाय मयापि वाणी ॥ ४ ॥
कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम्।
भीतोऽस्मि यन्न रसवर्णविवर्जितेन तच्छेषमात्मवचसाप्यनुसंदधानः ॥ ५ ॥

गद्ये कृतेऽपीति०—गुरुणा मम पित्रा गद्ये गद्यकाव्यात्मकेऽत्र ग्रन्थे कृतेऽपि विरचितेऽपि यत् तथा तेन पित्रानुसृतेन प्रकारेण। अक्षराणि निर्गतानि मयापि लिखितानि स मम पितुरेव अनुभावः अनुग्रहः। तत्र दृष्टान्तमाह—एकेति०—एको मुख्यः ल्लवः प्रवाहो यत्र तादृशो योऽमृतरसस्तदास्पदं तत्स्थानं यश्चन्द्रस्तत्पादसंपर्कः तदीयकिरणपरामर्श एव मृगाङ्कमणेश्चन्द्रकान्तमणेः द्रवाय स्रवाय जायत इति शेषः। अयमाशयः—यथा-पीयूषपूर्णस्य चन्द्रमसः करैः सम्पर्क एव चन्द्रकान्तमणेः द्रवीकरणाय प्रभवति, तथैव पित्रा मम कृतेऽलौकिके गद्यकाव्ये तदनुरूपगद्यकाव्यप्रणयनसमर्थताऽपि मम पितुरनुकम्पयैव जाता इति। स्फुटो दृष्टान्तः ॥ ३ ॥

गङ्गामिति०—भुवि संसारे इतराः साधारणप्रवाहा अपि तास्ता लघुकायाः नद्यः गङ्गां प्रविश्य गङ्गया मिलित्वा तन्मयताम् उपेत्य तदभिन्नतामासाद्य स्फीताः स्वच्छजलाः सत्यः समुद्रं यान्ति सागरमवतरन्ति, (तद्वत्) आसिन्धुगामिनि समुद्रपर्यन्तगामिनि पितुर्वचनप्रवाहे मम तातस्य वचनविन्यासे कथात्मनि कथानुघटनाय कथासम्बन्धयोजनाय मयाऽपि वाणी वचनविन्यासः क्षिप्ता प्रेरिता। यथा साधारणनद्योऽपि गङ्गादिमहानदीसम्पर्कमासाद्य तन्महिम्ना समुद्रमासादयन्ति तथैव मदीया निर्गुणा वाक् स्वयं सहृदयानावर्जिकाऽपि सती मत्पितृवचनसम्पर्कमहिम्ना लोकाननुरञ्जयितुमीशीतेतिप्रत्ययेनैव कथामिमां पूरयितुमस्मि प्रवृत्तो ननु स्वप्रतिभाप्रौढिगर्वेणेति तात्पर्यम्। अस्मिन् पूर्वस्मिंश्च पद्ये प्रकृताप्रकृतयोर्बिम्बप्रतिबिम्बभावाद् दृष्टान्तालङ्कारः, अन्यत्समानम् ॥ ४ ॥

कादम्बरीति०—समस्त एव सम्पूर्ण एव अयं जनो लोकः कादम्बरीरसभरेण कादम्बरी कथाग्रन्थः मद्यञ्च तस्या रसभरेण शृङ्गारादिना माधुर्येण च मत्तः क्षीबतां गमितः सन् न किञ्चिदपि चेतयते अनुध्यायति, यत् यस्मात् रसवर्णविवर्जितेन रसोद्बोधक्षमवर्णविन्यासशून्येन आत्मवचसा स्वीयवचनेन तच्छेषं कादम्बर्या अवशिष्यमाणं भागम् अनुसन्दधानः पूरयन् न भीतोऽस्मि। अयमाशयः—कादम्बर्याः कथया मद्यरूपया लोकस्तथा मत्ततां गमितो यथा त्रुटिपूर्णामपि मम वाचं नैव तथात्वेन ग्रहीष्यति, अतोऽहं सदोषयाऽपि स्ववाचा स्वपित्रारब्धायाः कथायाः पूर्त्तये प्रयस्यन्नोपहास्योऽस्मीति। यद्वा—अयमेव कादम्बरीकथारसभरेण तथा मत्तो यथाऽगुणयाऽपि स्ववाचा तच्छेषं पूरयन्न बिभेमि, मत्तस्य भयाभावादिति। अन्यस्य श्रोतृवर्गस्य मत्तत्वे स्वस्य वा मत्तत्वे त्रुटिपूर्णवचनद्वारापि कथाऽनुसन्धाने भयाभावादिति परमार्थः। 'रसवर्णविवर्जितेन' इति स्ववचोविशेषणं भयस्यौचित्यं गमयितुम्। 'मत्तोऽयं जनः' इति च तदभावे कारणं बोध्यम् ॥ ५ ॥

मेरे पिता जी के द्वारा गद्य के लिखे जाने के बाद भी मेरी कलम से कुछ अक्षर जो निकल पड़े हैं वह मेरे पिता जी का ही प्रभाव है, चन्द्रकान्तमणि पसीजने में अमृतरस से परिपूर्ण चन्द्रमा की किरणों का सम्पर्क ही तो कारण हुआ करता है ॥ ३ ॥

गङ्गा में मिलकर तन्मयता प्राप्त कर लेने के कारण स्वच्छ हो जानेवाली साधारण नदियाँ भी समुद्र तक पहुँच जाती हैं, (इसी बल पर) सिन्धुपर्यन्तगामी पितृदेव के वचन-प्रवाह में कहानी के सिलसिले को जोड़ देने के उद्देश्य से मैंने भी अपनी वाणी डाल दी है ॥ ४ ॥

कादम्बरी कथारूप मद्य के रस से यह समस्त संसार इतना मत्त हो रहा है कि उसे तनिक भी चेतना नहीं बच रही है। इसीलिये रसव्यञ्जकवर्ण से रहित अपने वचनों से कथाशेष का अनुसन्धान करने में प्रवृत्त होकर भी मैं भयभीत नहीं हो रहा हूँ ॥ ५ ॥

बीजानि गर्भितफलानि विकासभाञ्जि वप्त्रैव यान्युचितकर्मबलात्कृतानि ।
उत्कृष्टभूमिविततानि च यान्ति पोषं तान्येव तस्य तनयेन तु संहृतानि ॥ ६ ॥

चन्द्रापीडकथा

'अपि चेदानीमानीतस्यापि कुमारस्य न ददाति तरलतालज्जिता लज्जैव दर्शनम् । मनोभवविकारवेदनाविलक्षं वैलक्ष्यमेव न पुरस्तिष्ठति । अप्रतिपत्तिसाध्वसजडा जडतैव नोपसर्पति । स्वयमुपसर्पणलघु लाघवमेव तत्प्रतिपत्तिस्थैर्यं नावलम्बते । बलात्तदानयनाप-

---

बीजानीति॰—वप्त्रा वपनकर्त्रा कृषकेण गर्भितफलानि फलगर्भाणि बीजानि उचितकर्मबलात् आवश्यकसेकादिद्वारा विकासभाञ्जि विकसितानि कृतानि, उत्कृष्टभूमिविततानि योग्योर्वरभूमिस्थापितानि तानि पुष्टिं यान्ति पुष्यमाणानि बीजानि तु तस्य तनयेन संहृतानि एकत्रीकृतानि । यथा कश्चन कृषको गर्भितफलानि बीजान्यानीतवानिति, तेन; उचितसेकादिद्वारा विकासितानि, तानि बीजानि समुचितचेत्रमाहात्म्येन पुष्टानि भवन्ति; तत्तनयश्च तान्येव बीजानि संहरति, तथैवाहं पित्रारब्धायाः स्वयं विकसितायाश्चास्याः कथाया उपसंहारमात्रं कर्तुमुद्यतोऽस्मि । नहि ममात्र किमपि कौशलं कृषकसुतस्येव तत्रेति भावः । यच्च केचन संहृतानीति पदस्य नाशितानीति प्रतिपाद्यमास्थाय सुरसानि पितुर्वचनानि विरसैर्वचनैः संयोज्य नाशितानि मयेति भावं वर्णयन्ति, तदनतिहृद्यम्, तथा ज्ञाने पूरणप्रवृत्तेरनुदयात्, मदुक्तोऽर्थस्तु सर्वसाधिक इति ॥ ६ ॥

'आनयामि तं देव' मित्युक्त्वा गता पत्रलेखा, सा चन्द्रापीडाय कादम्बर्याः स्थितिमावेदयन्ती कथयति—इदानीमिति॰—अपिच इतोऽधिकमपि शृणोतु भवान् इति पूर्वतो योजनार्थम् । इदानीम् चन्द्रापीडदर्शनं विना मम म्रियमाणतायामपि । आनीतस्य पत्रलेखया प्रयत्नात्र प्रापितस्यापि कुमारस्य चन्द्रापीडस्य । तरलतालज्जिता—तरलतायाः लज्जिता तरलता चञ्चलता स्यादिति त्रपयेव लज्जा मे मह्यम् दर्शनं न ददाति । कुमारेऽत्र कथञ्चिदागतेऽपि तरलता स्यादिति लज्जयेवाहं लज्जमाना कुमारमीक्षितुं न क्षमा स्यामिति भावः । मनोभवविकाराः सन्तापादयः कामविकाराः तेषां वेदनाः कष्टानि ताभिर्विलक्षं गतप्रतिभं मन्दमित्यर्थः । वैलक्ष्यम् लज्जाशीलत्वं न पुरस्तिष्ठति अग्रे तिष्ठति । कामवेदनायाः कियतांशेन तादृशी अप्रतिभता जाता यथाऽऽगतस्यापि कुमारस्य पुरः स्थातुमहमशक्तेत्याशयः । अप्रतिपत्तिः अज्ञानं साध्वसम् लज्जा च ताभ्यां जडा कर्त्तव्यावधारणासमर्था जडता मान्द्यम् एव नोपसर्पति पुरो गन्तुमादिशति । अज्ञानलज्जाभ्यां जायमानया कर्त्तव्यावधारणाशक्त्या बाधिताया मम कुमारपुरोगमनमसम्भवीति भावः । स्वयम् आत्मना उपसर्पणे समीपदेशप्राप्तौ लघु खर्वतां गतं लाघवम् शीघ्रकारित्वम् एव तत्प्रतिपत्तिस्थैर्यं तादृशाचरणदृढतां नावलम्बते नादधाति । स्वयमेव तदीयपार्श्वं गन्तुं लाघवबोधेन न शक्तास्मीत्यर्थः । बलात् प्रसह्य तस्य कुमारस्य आनयनम् मदीयनगरप्रापणम् एव अपराधः, ततो भीता भीतिः एव न संमुखीभवति साक्षाद् भवति । बलात्तमानीतवत्यस्मीतिभयेन कुमारस्य सम्मुखीभवितुं नेच्छामीत्यर्थः । अत्र सर्वत्र कुमारागमने सम्भविनो मनोविकारा निर्दिश्यन्ते, तत्र प्रथमं लज्जा, ततो

अपने भीतर फल को संजो कर रखनेवाले बीजों को बोनेवाला कृषक यथोचित सींचना-गोड़ना आदि कार्य के द्वारा विकसित करता है, अच्छी जमीन में डालता है, तब उसके फल को उस कृषक के बेटे इकट्ठा करते हैं; उसी तरह मेरे पिता जी ने जिस कथा-बीज को उचित पात्र में लगा कर और अपने परिश्रम से सींचकर विकसित किया था, मैं अब उसका उपसंहार करने जा रहा हूँ ॥ ६ ॥

इस समय यदि कुमार को ले आया गया तथापि तरलता से लज्जिता लज्जा ही मुझे उनके दर्शन नहीं करने देगी, कामवेदना से उत्पन्न संकोच ही मुझे आगे में नहीं ठहरने देगा, किंकर्त्तव्यताविमूढ जड़ता ही मुझे पास नहीं जाने देगी, स्वयं पास जाने में होनेवाला लाघव ही मुझे नहीं रहने देगा, बलपूर्वक मैंने कुमार को

---

१. वप्त्रेव ।

राधभीता भीतिरेव न संमुखीभवति। अथ कथंचिद् गुरुजनत्रपया वा राजकार्यानुरोधेन वा चिरावलोकितसहसंवर्धितबन्धुजनदर्शनसुखेन वा सुहृन्मुखकमलावलोकनोत्कण्ठया वा पुनरागमनखेदपरिजिहीर्षया वा निजगृहावस्थानरुच्या वा जन्मभूमिस्नेहेन वाऽनिच्छया वाऽस्य जनस्योपरि पादपतनेनापि नानेतुमेव पारितो यदा मयि स्नेहात्कृतयत्नयापि प्रियसख्या तदा सुतरामेव न किंचित्। किं चाधुनाप्यधिकमुपजातम्। सैवाहं कादम्बरी याऽनेन कुमारेण मधुमदमुखरमधुकरकुलकलकोलाहलाकुलितकोककामिनीकरुणकूजितजनितविरहिजनमनोदुःखे विकचदलारविन्दवृन्दनिष्यन्दानन्दितमन्दगन्धवहसुगन्धदशदिशि विकसितकुसुमामोदमुकुलितमानिनीमानग्रहोन्मोचनदक्षकुसुमायुधे कर्पूरक्षोदमिश्रचन्दनपङ्कपिण्डे कुपितकामिनीविनोददक्षगेयमुखरपरिजने पुनरुक्तदर्शनाभ्युत्थानव्रीडित-

---

वैलच्यम्, ततो जडता, ततो लाघवम्, ततश्च भीतिरुपनिबद्धा, सर्वत्र कारणमप्युक्तम्। सम्प्रति तदनागमने तत्तद्दशानुदयमाह—अथेति०-गुरुजनत्रपया पित्रादिसकाशाल्लज्जया। राजकार्यानुरोधेन राज्यसम्बन्धिकर्त्तव्यव्यग्रतया। चिरावलोकितस्य वियुज्य बहुकालानन्तरं दृष्टस्य सह संवर्धितस्य एकत्रलब्धजन्मक्षपितशैशवादिसमयस्य च। बन्धुजनस्य मित्रवर्गस्य दर्शनसुखेन आलोकनजनितानन्दानुभवेन। सुहृदां मित्राणां मुखान्येव कमलानि सरोजानि तेषाम् अवलोकनस्य दर्शनस्य उत्कण्ठया उत्कटेच्छया। पुनरागमने स्वनगरान्मन्नगरपर्यन्तं पुनरागमे यः खेदः कायिकः क्लेशस्तस्य परिजिहीर्षया त्यागेच्छया। निजगृहावस्थानरुच्या स्वभवनवासाभिलाषेण। जन्मभूमिस्नेहेन-स्वीयमातृभूमिप्रेम्णा। अनिच्छया—मन्नगरागमनविषयकेच्छाविरहेण। मयि स्नेहात् कृतयत्नया प्रयासमास्थितयाऽपि प्रियसख्या पत्रलेखया पादपतनेनापि चरणनिपतनेनापि नानेतुमेव पारितः आनेतुं न शक्तः, तदा सुतरामेव न किञ्चित्। अयमाशयः—यदि कुमार आयाति तदापि लज्जादिना तत्समीपोपसर्पणं न शक्यक्रियम्, अथ केनापि कारणविशेषेण यद्यसौ नागच्छति तदा तु तत्समीपोपसर्पणकथैव नास्ति, तदुभयथापि तत्सङ्गमोपायो नास्तीति। याऽनेनेत्यस्य वक्ष्यमाणेन वीक्षितेत्यनेन सम्बन्धः। अनेन कुमारेण—चन्द्रापीडेन। मधुमदमुखराणां पुष्पपरागपानेन वाचालतां गतानाम् मधुकराणां भ्रमराणां कुलस्य समुदायस्य कलेन मधुरेण कोलाहलेन आकुलिताः व्याकुलत्वं गमिताः कोककामिन्यः चक्रवाकस्त्रियः तासां करुणेन सखेदेन कूजितेन शब्देन जनितम् उत्पादितम् विरहिणां मनोदुःखं यत्र तादृशे इत्येकं विशेषणं हिमगृहस्य। विकचदलानि विकसितपत्राणि यानि अरविन्दवृन्दानि कमलसमूहास्तेषां निष्यन्देन परागेण आनन्दितः प्रसन्नो यो गन्धवहो वायुस्तेन सुगन्धाः मनोहरगन्धवत्यो दश दिशो यत्र तादृशे, इदमप्यपरं तद्विशेषणम्। विकसितानां कुसुमानां पुष्पाणाम् आमोदेन सुगन्धेन मुकुलितः विकासोन्मुखः यो मानिनीनां मानग्रहः तस्य उन्मोचने दूरीकरणे दक्षः कुशलः कुसुमायुधः कन्दर्पो यत्र तादृशे। पुनरुक्तैः पुनः पुनर्जायमानैः दर्शनैः

भुला लिया है इस भावना से भयभीत होकर मैं उसके सामने नहीं हो सकूंगी। और यदि किसी तरह गुरुजनों की लज्जा से, राजकार्यानुरोध से, बहुत दिनों पर देखे गये साथ-साथ संवर्धित बन्धुजन के दर्शन की खुशीसे, मित्रों से मिलने की उत्कण्ठा से, फिर आने के कष्ट से छुटकारा पाने की इच्छा से, अपने घर में रहने की अभिरुचि से, जन्मभूमि-स्नेह से, अथवा अनिच्छा से, मेरी प्रिय सखी मेरे स्नेह के कारण उनके पैरों पर गिर कर भी उन्हें नहीं ला सकी तब तो फिर कुछ बात ही नहीं। अभी अधिक और हुआ ही क्या है? मैं वही कादम्बरी तो हूँ जिसे कुमार ने हिमगृह में फूल की शय्या पर पड़ी हुई देखा था। उस समय वह हिमगृह मधुमत्त वाचाल भ्रमर-कुल के कोलाहल से आकुल-कोकी के करुण शब्दों से विरहिजनों के मन में दुःख पैदा कर रहा था। उस हिमगृह में चारों ओर विकसित कमलवृन्द के मरकन्द से आनन्दित वायु सुगन्ध फैला रही थी। कामदेव पुष्पों की सुगन्ध से मानिनी स्त्रियों की मान-ग्रन्थि को खोलने में दक्ष हो रहा था। कर्पूर के चूर्ण से मिलित चन्दन का पङ्क फैला रहा था। परिजन कुपित कामिनियों के मनोविनोद के लिये गीत गा रहे

---

१. बन्धुजनोत्कण्ठया। २. कमलदर्शनेन। ३. मत्तमद। ४. कूजिते जनित। ५. मोचनदक्षे कुसुमायुधे।

कञ्चुकिजने प्रदोषसमये जरठशरकाण्डविपाण्डुनिबिडकुण्डलोद्घृष्टलडहयुवतिगण्डस्थलान्यखण्डमण्डले भिडम्बयति मण्डयति गगनं चानवरतविस्फुरद्विशदकरनिर्भरावर्जितज्योत्स्नाजलासारवर्षिणि चन्द्रमसि दूरविक्षिप्तदलनिवहकुमुदकाननामोदवासितदिगन्तायाः कुमुदिन्यास्तटे चन्द्रकरस्पर्शप्रवृत्तशशिमणिशिखरनिर्झरझंकारिणि क्रीडापर्वतनितम्बके हृद्यहरिचन्दनरसकणिकाजालकच्छलेन तत्करतलस्पर्शसुखसंभवस्वेदजलनिवहमिव वहति तत्कालहारिणि मुक्ताशिलापट्टशयने कुसुमामोदसुरभितदशादिशि तुषारकणनिकरहारिण्यपि बहिरेव देहदाहमात्रकापहारिणि[1] सर्वरमणीयानां संदोहभूते हिमगृहे कुसुमस्रस्तरावलम्बिनी वीक्षिता। ममापि चापुनरुक्तदर्शनस्पृहे ते एवैते लोचने ययोरालोकनपथमसौ यातः। तदेव चेदमप्रतिपत्तिशून्यं हतहृदयं येनान्तःप्रविष्टोपि न पारितो धारयितुम्। तदेव चैतच्छरीरं

साक्षात्कारैः यान्यभ्युत्थानानि तैः व्रीडिताः सलज्जाः कञ्चुकिजनाः यत्र तादृशे। बहिः स्थिताः कञ्चुकिनो भूयोभूयो हिमगृहाद्बहिरागच्छन्तं तत्र प्रविशन्तं च राजपरिवारं दृष्ट्वा अवश्यकर्त्तव्यमभ्युत्थानमनुतिष्ठन्तः किमपि त्रपन्त इति तन्मनोदशाप्रकाशकमिदं विशेषणम्। जरठः परिणतः। लडहाः मदमत्ताः। अयमाशयः—प्रदोषसमये समुद्यँश्चन्द्रो मदमत्तयुवतीनां कुण्डलोद्घृष्टतया रक्ताभानि कपोलस्थलान्यनुकरोति तदिदं विशेषणं प्रदोषसमय इत्यस्य। अनवरतेति०—अनवरतं सर्वदा विस्फुरतां प्रकाशीभवतां विशदानां स्वच्छानां करजालानाम् किरणानां निकरैः समूहैः निर्भरावर्जिताः अतिसमूहिताः या ज्योत्स्ना कौमुद्यः ता एव जलानि तेषाम् आसारस्य धारासम्पातस्य वर्षिणि वर्षणप्रवृत्ते। दूरविक्षिप्ताः सुदूरगताः दलनिवहाः पत्रप्रकरा येभ्यस्तेषां कुमुदकाननानाम् कुमुदवनानाम् आमोदेन सुगन्धेन वासिताः सुरभीकृताः दिगन्ता दिशावकाशा यया तस्यास्तथोक्तायाः कुमुदिन्याः कुमुदसन्ततेस्तटे। चन्द्रकरेति०—चन्द्रकराणां चन्द्रकिरणानां स्पर्शेन प्रवृत्ताः स्यन्दितुं चलिता ये शशिमणिशिखराण्येव निर्झराः तैर्झंकारिणि—कौमुदीस्पर्शेन स्यन्दमानानां चन्द्रकान्तमणीनां पयःप्रवाहा एव निर्झरास्तत्कृतशब्दपूर्णे इत्यर्थः। क्रीडापर्वतनितम्बके-कृत्रिमपर्वततटे। हृद्यानां मनोहारिणां हरिचन्दनरसकणिकानां चन्दनबिन्दूनां जालकस्य समूहस्य छलेन व्याजेन। तत्करतलस्पर्शेन चन्द्रकरपरामर्शेन यत्सुखमानन्दः तत्सम्भवस्तन्मूलको यः स्वेदजलनिवहः स्वेदवारिप्रवाहस्तमिव। तत्कालहारिणि—तत्कालरमणीये। मुक्तशिलापट्टशयनं त्यक्त्वा स्थिते। कुसुमामोदसुरभितदशदिशि—पुष्पसुगन्धवासितसकलदिगवकाशे। तुषारकणनिकरहारिणि—अवश्यायबिन्दुरमणीये। कुसुमस्रस्तरावलम्बिनी—पुष्पशयननिषण्णा। वीक्षिता दृष्टा। अपुनरुक्ततद्दर्शनस्पृहे—भूयोभूयस्तद्दर्शनाभिलाषिणि। आलोकनपथम्—दर्शनविषयम्। असौ—चन्द्रापीडः। अप्रतिपत्तिशून्यं—किंकर्त्तव्यताविमूढम्। हतहृदयम्—दग्धं मानसम्। अन्तः प्रविष्टः—स्वान्तर्गतः।

थे। स्वामी को देखकर बार-बार उठने से कञ्चुकी लज्जित हो रहे थे। प्रदोष समय में चन्द्रमा शरकण्डे की तरह पाण्डुवर्ण होकर निबिड़ कुण्डल से घिसे हुए अल्हड़ युवती के कपोल का अनुकरण एवं आकाश को भूषित करता था। चन्द्रमा सतत प्रकाशित होनेवाले किरण-समुदाय से चन्द्रिकारूप जल की धारा बरसा रहा था। वह मेरा हिमगृह अति विकसित कुमुद-पुष्प की सुगन्ध से दश दिशाओं को आमोदित करनेवाली कुमुदिनी के तट पर चन्द्र-कर के स्पर्श से पसीजे हुए चन्द्रकान्त-खण्ड से बहते हुए झरनों के झङ्कार से परिपूर्ण क्रीडा-पर्वत के ऊपर अवस्थित था। रमणीय चन्दन के कणों के बहाने चन्द्र-कर-स्पर्श से होने वाले सुखानुभव से उत्पन्न स्वेद-बिन्दु को धारण करनेवाली, तत्काल अति रमणीय लगनेवाली रमणियाँ शिलापट्ट-शयन को छोड़कर दल बांध कर वहीं उपस्थित थीं। फूल की सुगन्ध से सारी दिशायें आमोदित हो रही थीं। चन्द्रमा की किरणों से मनोहर बाहर से देह के सन्ताप को दूर करनेवाले समस्त रमणीय पदार्थ वहाँ इकट्ठे हो रहे थे। मेरी आँखें भी वही हैं—जिनसे मैंने कुमार को देखा था तथा जिनकी कुमार-दर्शन-लालसा नित्य-नूतन रहती आई हैं। मेरा किङ्कर्त्तव्यमूढ़ तथा अभागा हृदय भी वही है जिसने भीतर पैठने पर भी कुमार को नहीं रोक

---

१. कायहारिणि।

येन तत्समीपे चिरमुदासीनेन स्थितम्। स एव चायं पाणिर्योऽलीकगुरुजनापेक्षी नात्मानं परिग्राहितवान्। अनपेक्षितपरपीडश्चन्द्रापीडोऽपि स एव योऽत्र वारद्वयमागत्य प्रतिगतः। मय्येवोपक्षीणमार्गणतया चाकिञ्चित्करोऽन्यत्र पञ्चशरोपि स एव यस्त्वयावेदितो मे।

प्रतिज्ञातं च मया महाश्वेतायाः। 'त्वयि दुःखितायां नाहमात्मनः पाणिं ग्राहयिष्यामि' इति। सा तु 'देवि, मैवं स्म मनसि करोः, कुमतिरियम्, अतिदारुणोयं पापकारी मकरकेतुः कदाचिददृश्यमाने प्रियजने जनितहृदयानुरागाज्जीवितमप्यपहरति' इत्यब्रवीत्। एतदपि नास्त्येव मे। मदनेन वा दैवेन वा विरहेण वा यौवनेन वानुरागेण वा मदेन वा हृदयेन वान्येन वा केनापि दत्तः संकल्पमयः कुमारो जनसंनिधावपि केनचिदविभाव्यमानः सिद्ध इव सर्वदा मे ददाति दर्शनम्। अपि चासाविव नायमकाण्डपरित्यागनिष्ठुरहृदयः। अयमेवास्मद्विरहकातरः। नायं नक्तंदिवं लक्ष्मीसमाकुलः। न पृथिव्याः पतिः। न सरस्वती-

---

तत्समीपे-चन्द्रापीडस्य पार्श्वे। उदासीनेन-निष्क्रियेण। पाणिः-हस्तः। अलीकगुरुजनापेक्षी-मिथ्यैव गुरुजनानामनुरोधं कुर्वन्। परिग्राहितवान्-चन्द्रापीडद्वारा स्वं स्वीकारितवान्। अनपेक्षितपरपीडः-परदुःखानभिज्ञः। प्रतिगतः-परावृत्तः। उपक्षीणमार्गणतया-समाप्तसमस्तबाणतया। यत्किञ्चित्करः-ईषत्करः। पञ्चशरः-कामदेवः। त्वया-पत्रलेखया। आवेदितः-निवेदितः। मे मह्यम्-कादम्बर्यै।

त्वयि-महाश्वेतायाम्। दुःखितायाम्-पुण्डरीकवियोगेन सदुःखायां सत्याम्। आत्मनः पाणिं ग्राहयिष्यामि-स्वविवाहं करिष्ये। मैवं स्म मनसि करोः-एवं मनसि न चिन्तय। अतिदारुणः-नितान्त-क्रूरः। पापकारी-दुष्टः। मकरकेतुः-कामः। अदृश्यमाने प्रियजने-प्रियजनवियोगावस्थायाम्। जनित-हृदयानुरागात्-हृदये स्नेहस्य जातत्वात्। जीवितमप्यपहरति-प्राणानपि हरति। एतदपि नास्त्येव-महा-श्वेतया तत्प्रियजनादर्शनस्य मरणहेतुत्वमुक्तं तन्मे नास्ति, प्रियजनस्य सङ्कल्पसन्निहितत्वेन तददर्श-नायोगादिति भावः। सङ्कल्पमयः-ध्यानकल्पितः। जनसन्निधौ-लोकेषु वर्त्तमानेषु। अविभाव्यमानः—अदृश्यः। सिद्धः-अञ्जनादिसिद्धियुक्तः। असाविवेति०—यथा चन्द्रापीडः असमये परित्यज्य मां निष्ठुर-हृदयः संवृत्तस्तथा अयं सङ्कल्पमयः कुमारो मां कदापि न जहाति, तदयं स इव निष्ठुरहृदयो न भव-तीति। अयम्-ध्यानोपनीतः कुमारः। अस्मद्विरहकातरः-मम वियोगेन खिन्नः, स तु वास्तविकः कुमारो मम वियोगेऽप्यखिन्न एवेति। नायमिति०—यथासौ कुमारो नक्तंदिवं सर्वदा लक्ष्मीसमाकुलः लक्ष्म्या-मासक्तस्तथाऽयं सङ्कल्पमयः कुमारो न लक्ष्मीसमासक्त इत्यर्थः।

वास्तविककुमारापेक्षया ध्यानोपनीयमानस्य कुमारस्य सुखसाध्यसङ्गमत्वं प्रमापयितुमेव—अपि-

---

रखा। वही यह शरीर है जो उनके आगे देरतक उदासीन भाव से बैठा रहा। वही यह मेरा हाथ है जो व्यर्थ ही गुरुजनों की अपेक्षा करता रहा और अपने को कुमार के हाथों में पकड़ा नहीं दिया। दूसरे की पीड़ा की चिन्ता नहीं करनेवाले चन्द्रापीड़ भी वही हैं जो दो बार यहाँ आकर वापस चले गये हैं। कन्दर्प के सारे बाण मुझ पर ही क्षीण हो गये हैं, वह दूसरी जगह बहुत थोड़ी सफलता प्राप्त कर रहा है जैसा कि तुमने मुझसे कहा है, वह कन्दर्प भी वही है।

मैंने महाश्वेता से प्रतिज्ञापूर्वक कहा कि जब तक तुम दुःख में रहोगी मैं अपना पाणिग्रहण नहीं होने दूंगी। इसके उत्तर में महाश्वेता ने कहा—'मेरी रानी, ऐसी बात मन में मत सोचो, यह दुर्बुद्धि है, पापी कन्दर्प बड़ा क्रूर है, वह कदाचित् हृदय के अनुरक्त हो जाने पर प्रियजन की अदर्शनावस्था में प्राण भी ले लेता है। यह भी नहीं हो रहा है। काम से, दैव से, विरह से, यौवन से, प्रेम से, मद से, हृदय से या अन्य किसी कारण से मेरा संकल्पमय कुमार लोगों के सामने ही सबसे छिप कर सिद्ध की तरह मुझे दर्शन दे जाता है। मेरा यह संकल्पमय कुमार वास्तविक कुमार की तरह असमय में परित्याग करनेवाला निष्ठुर हृदय नहीं है। यह रात दिन लक्ष्मी से उलझा हुआ नहीं रहता है। यह मेरे विरह से कातर हो उठता है। यह न लक्ष्मी का पति

मपेक्षते। न कीर्तिशब्दं वर्धयति। पश्यामि चाहर्निशमासीनोत्थिता भ्राम्यन्ती शयाना जाग्रती निमीलितलोचना चलती स्वप्नायमाना च शयने श्रीमण्डपे गृहकमलिनीषूद्यानेषु लीलादीर्घिकासु क्रीडापर्वतके बालगिरिनदिकासु च यथा तमज्ञजनविडम्बनैकहेतुं विप्रलम्भकं कुमारं ते तथा कथितमेव मया। तदलमनया तदानयनकथया।' इत्यभिदधानाऽतर्कितागतमूर्च्छेव निमीलिताक्षी पक्ष्माग्रसंपिण्डितनयनजलवर्षिणी विलीयमानेवोत्पीड्यमानेवान्तर्जातमन्युवेगेन तथैव वेदिकावितानानाभिदामांशुकावलम्बिन्यां बाहुलतिकायामच्छसलिलस्रोतसि प्रसूतायां मृणालिकायामिव जलाहतिश्यामारुणतामरसमिवाननमुपावेश्य तूष्णीमुत्कीर्णेव तस्थौ।

अहं तु तच्छ्रुत्वा समचिन्तयम्। 'सत्यमेव गरीयः खलु जीवितालम्बनमिदं विनोदश्च वियोगिनीनां यदुत[1] संकल्पमयः प्रियः। नितरां कुलाङ्गनानां विशेषतः कुमारीणाम्। तथा हि। अनेन सार्धमकृतदूतिकापादपतनदैन्यानि प्रतिक्षणं समागमशतान्यकालरस-

चासाविवेत्यारभ्य न कीर्तिशब्दं वर्धयतीत्येतावद्भिर्विशेषणैर्व्यतिरेक उक्तः। अहर्निशम्-सदा। आसीना-उपविष्टा। अज्ञजनविडम्बनैकहेतुम् = मादृशमूढजनप्रतारकम्। विप्रलम्भकम्=प्रतारणदक्षम्। अतर्कितागतमूर्च्छा-अकस्मादेव मूर्च्छिता। निमीलिताक्षी-मीलितनेत्रा। पक्ष्माग्रे-पक्ष्मणोऽग्रभागे। संपिण्डितम्-एकत्रीभूतं यन्नयनजलमश्रु तद्वर्षिणी तत्स्राविणी रुदतीत्यर्थः। विलीयमाना-अन्तर्लयं प्राप्ता। अन्तर्जातमन्युवेगेन-मनोव्यथाघातेन। वेदिकावितानानाभिदामांशुकावलम्बिन्याम्-आसनोपरिस्थापितस्य महत उपधानस्य नाभिदाम अंशुकं चावलम्बमानायाम् बाहुलतिकायामिति योजना। अच्छसलिलस्रोतसि-स्वच्छजलप्रवाहे प्रसूतायाम्-उत्पन्नायाम्। मृणालिकायाम्-कमलनाले। जलाहत्या' पानीयजनिताघातेन श्यामारुणमंशतः श्याममंशतोऽरुणं च यत् तामरसं कमलं तदिव। उपमा स्फुटा। उत्कीर्णा चित्राङ्किता।

तत्-पत्रलेखोक्तम्। गरीयः श्रेष्ठम् जीविताबलम्बनम्-प्राणधारणकारणम्। विनोदः-मनोविनोदनसाधनम्। संकल्पमयः-ध्यानसन्निधापितः। कुलाङ्गनानाम्-कुलवधूनाम्। अयमाशयः-वियोगिन्यः कुलाङ्गनाः कुमार्यश्च ध्यानोपनीतं प्रियतमं पश्यन्त्यस्तेन सह संभाषमाणा रममाणाश्च जीवितं धारयन्ति मनश्च विनोदयन्तीति। अनेन ध्यानोपनीतेन प्रियतमेन। अकृतदूतिकापादपतनदैन्यानि-विनैव दूतीपादपतनदैन्यम्। समागमशतानि-अनेकानि सुखसंगतानि। वास्तविकस्य प्रियतमस्य समागमाय दूतीप्रेषण

है, न इसे सरस्वती की अपेक्षा है। यह कीर्त्ति-विस्तार भी नहीं करता है। अहर्निश मैं आसन पर बैठी हुई, सोती, जागती, घूमती, नीचे ताकती हुई, चलती, स्वप्न देखती हुई, बिछावन पर, श्रीमण्डप में, गृह-सरोवर एवं उद्यान में, क्रीड़ा-पुष्करिणी में, क्रीड़ा-पर्वत पर, छोटी पहाड़ी नदियों में—उसी अज्ञजन को चिढ़ानेवाले छलिया कुमार को देखा करती हूँ यह बात तो मैंने तुम से कह दी है। अतः उसे बुलाने की बात रहने दो। इस प्रकार कहती हुई कादम्बरी एकाएक मूर्छित हो गई, उसने आँखें मूँद लीं, बरौनियों के आगे से स्थूल जल की वर्षा होने लगी, हृदय में होनेवाले दुःख के वेग से पीड़ित होकर विलीन-सी होती हुई उसी तरह मसनद की डोरी तथा कपड़े को पकड़नेवाली बाहुलतिका पर अपना मुख स्थापित करके चित्राङ्कित-सी हो गई, उस प्रकार रखा गया उसका मुख स्वच्छ जल-प्रवाह में प्रसून मृणाल पर अवलम्बित जलाघात से श्यामारुण कमल के समान लगता था।

मैंने उसकी बातें सुन कर मन में सोचा—सचमुच संकल्पोपनीत प्रियतम वियोगिनियों के लिये बड़ा भारी प्राणावलम्बन तथा विनोद स्वरूप हुआ करता है, खास करके कुलाङ्गनाओं के लिये, उसमें भी कुमारियों के लिये। उस संकल्पमय प्रियतम के साथ होनेवाले सुरत में दूती के पैरों पड़ने का दैन्य नहीं भोगना पड़ता

१. यदुक्तसंकल्प।

णीयानि स्वेच्छाभिसरणसौख्यान्यदूषितकन्यकाभावानि सुरतानि । सुरतेषु चाकृतस्तनव्यवधानदुःखान्यालिङ्गनानि, अजनितव्रणदर्शनव्रीडानि नखदन्तक्षतसुखानि, अनाकुलितकेशपाशाः कचग्रहमहोत्सवाः, शब्दविहीनानि निधुवनानि, अनुत्पादितगुरुजनविभावितक्षतवैलक्ष्याण्यधरखण्डनविलसितानि । नैनमन्धकारराशिरन्तरयति । न जलधरधारापातः स्थगयति । न नीहारनिकरस्तिरोदधाति ।' इत्येवं चिन्तयन्त्या एव मेऽनुरागकथारसप्लावेनेव रक्ततामगाद्दिवसः । तत्क्षणं प्रकटितरागं हृदयमिव कादम्बर्यास्त्रपया पलायमानमदृश्यत रविमण्डलम् । पल्लवशयनमिव संध्यारागमरचद्यामिनी । परिचारक इव चन्द्रमणिशिलातलतल्पमकल्पयत्प्रदोषः । अत्रान्तरे चागत्य स्वं स्वं नियोगमशून्यं कुर्वाणा दूरतो दीपिकाधारिण्यो गन्धतैलावसिक्तसुरभिगन्धोद्गारिणीभि-

---

मपेक्ष्यते तत्र दूतिकाः पादपतनेनानुकूलनीया भवन्ति इति दैन्यं प्रकटीकर्त्तुं बाध्यन्ते कुलस्त्रियः, प्रियतमस्य ध्यानोपनीतस्य समागमे तु दूत्यो नापेक्ष्यन्ते इति भावः । अकालरमणीयानि-सर्वदाहृद्यानि । स्वेच्छाभिसरणसौख्यानि—स्वयमभिसारसुखानि । वास्तविकः प्रियतमः कालं विचार्य अभिसर्त्तुं शक्यतेऽयं तु संकल्पमयः प्रियः कालबन्धनं विधूय सर्वदाऽभिसर्त्तुं शक्य इत्यर्थः । अकृतस्तनव्यवधानदुःखानि-वास्तविकप्रियतमस्यालिङ्गने यत्स्तनकृतव्यवधानजन्यं दुःखं जायते तदत्र न भवति, किञ्च वास्तविकप्रियतमसुरते जनितानां नखक्षतादीनां व्रणानां दर्शने गुरुजनकृते नववध्वस्त्रपन्ते नात्र ध्यानोपनीतप्रियतमसुरते तदाशङ्कालवोऽप्यस्ति, तत्प्रियकृतकचग्रहे केशपाशाकुलीभावप्रसङ्गः, ध्यानोपनीतप्रियतमकृते तु कचग्रहे साप्याशङ्का नास्ति, तत्प्रियतमसुरते मणितशब्दाः संभवन्ति तैश्च त्रपाख्यातिभीरस्ति, ध्यानोपनीतप्रियसुरते साऽपि नाऽस्तीति भावः । वास्तविकप्रियतमेनाधरे खण्डिते तत्क्षते गुरुभिरीक्ष्यमाणे वनितानां वैलक्ष्यमुत्पद्यतेऽत्र तु तदप्यसंभावितमिति बोध्यम् । वास्तविकं प्रियतममन्धकारराशिस्तिरोधापयति, वर्षासारो वारयति, नीहारनिकरश्च तिरोदधाति, सा सर्वाप्याशङ्का ध्यानोपनीतप्रियतमविषये नोदयत इति वास्तविकप्रियमिलनात् ध्यानोपनीतप्रियतममिलने व्यतिरेका अभिहिताः । तैश्च व्यतिरेकैर्ध्यानोपनीतसुरतस्य गरीयस्त्वमुपपादितं भवतीति भावः ।

अनुरागकथारसप्लावनेन—स्नेहवार्त्तारागमज्जनेन । रक्ततामगाद्दिवसः–सायङ्काले जाते दिनं रक्तवर्णमभवत्, उत्प्रेक्षाऽलङ्कारः । प्रकटितरागम्–प्रकाशितस्नेहम् अन्यत्र रक्तवर्णञ्च, त्रपया–अनुरागप्रकाशीभावजनितया लज्जया । रविमण्डलम्–सूर्यबिम्बम् । यामिनी–रात्रिः । पल्लवशयनम्–नवपल्लवास्तरणम् । यथा कस्याश्चिद्वियोगिन्याः सखी तत्तापशान्तये नवपल्लवशयनीयमारचयति तद्वत् रात्रिप्रारम्भवेला सन्ध्या रविरागरूपं नवपल्लवशयनीयमकल्पयदित्याशयः । परिचारकः भृत्यविशेषः । यथा वियोगिन्या भृत्यः चन्द्रकान्तमणिशिलातल्पं कल्पयति तथा प्रदोषश्चन्द्रमण्डलमकल्पयदित्यर्थः । अशून्यं कुर्वाणाः–स्वकर्त्तव्यलग्नाः स्वाधिकारसावधाना इति भावः । गन्धतैलम्–सुगन्धितैलम् । सुरभिगन्धोद्गारिणीभिः–सुगन्धप्रसारिणीभिः, सुरभिगन्धोद्गारे हेतुसमर्पकं विशेषणं गन्धतैलावसिक्तत्वं बोध्यम् ।

है, असमय रमणीय समागमशत किये जा सकते हैं, स्वेच्छाभिसार का सुख भोगा जा सकता है और कन्याभाव भी अदूषित रहता है । उस सुरत में स्तनव्यवधान से रहित आलिङ्गन, व्रणदर्शनकृत लज्जा से मुक्त नखक्षत, दन्तक्षत, बिना केश को आकुल किये केशग्रहण-महोत्सव, बिना शब्द के संभोग, एवं गुरुजनों द्वारा क्षतों के देखे जाने पर होनेवाली लज्जा से मुक्त अधर-खण्डन होते हैं । इस संकल्पमय प्रियतम को न अन्धकार छिपा सकता है न जलधारा अन्तर्हित कर सकती है और न कुहासा ढंक सकता है । मैं इस प्रकार सोच ही रही थी कि अनुराग से आप्लावित सा दिन लाल हो उठा, तत्काल कादम्बरी के हृदय की तरह राग प्रकट करनेवाला रविमण्डल लज्जा से भागता हुआ नजर आने लगा । रात्रि ने पल्लव-शयन के समान सन्ध्या-राग की रचना की । प्रदोष ने परिचारक की तरह चन्द्रकान्तमणि शिला का तल्प प्रस्तुत कर दिया । इसी समय अपने कार्य पर तत्पर दीपिकाधारिणी सुगन्धित तेल से सिक्त वातियों की गन्ध फैलानेवाली बालिकायें मण्डल बांध कर चारों

दीपिकाभिर्विरचितचक्रवालिका बालिकाः पर्यवारयन् । अथ निर्मललावण्यलक्षितानि दीपिकाप्रतिबिम्बानि ज्वलितानि मदनसायकशल्यानीवाङ्गलग्नानि समुद्वहन्तीं नवनिरन्तरकलिकाचितां चम्पकलतामिव तथावस्थितां तां पुनर्व्यजिज्ञपम् । 'देवि प्रसीद । नार्हस्यखेदार्हा हृदयखेदकारिणं संतापमङ्गीकर्तुम् । संहर मन्युवेगम् । एषाहमादाय चन्द्रापीडमागतैव' इति । अथानेन देवनामग्रहणगर्भेण मद्वचसा विषापहरणमन्त्रेणेव विषमूर्च्छिता झटित्युन्मील्य नयने सस्पृहं मामवलोक्य 'कः प्रदेशेऽस्मिन्' इति परिजनमपृच्छत् ।

अथ धवलवसनोल्लासितगात्रयष्टयः, द्वारप्रदेशसंपिण्डिताङ्गयः, परशुरामशरविवरविनिर्गता इव कलहंसपङ्क्तयः, कलहंसकलालापमधुररवैः प्रतिवाचमिव प्रयच्छद्भिर्नूपुरैः पतत्कर्णपूरपल्लवोल्लासितैश्चाज्ञाश्रवणाय धावद्भिरिव श्रवणैर्मौक्तिककुण्डलांशुजालकानि स्कन्धदेशनिक्षिप्तानि चामराणीव वहन्त्यः, समाहतकपोलस्थलैः कुण्डलैर्बलादिव वाह्य-

---

विरचितचक्रवालिकाः—बद्धमण्डलाः । निर्मलेति०—दीपानां प्रतिबिम्बानि कादम्बर्याः दर्पणस्वच्छे वपुषि कामबाणशल्यानीव ज्वलन्ति प्रतिभान्तिस्मेति तात्पर्यम् । तस्यां स्थितौ सा चम्पककोरकैश्चिता चम्पकलतेवाद्दश्यतेति भावः, उभयत्रोपमालङ्कारौ । अखेदार्हा—क्लेशसहनस्यापात्रभूता । हृदयखेदकारिणम्—मनोव्यथकम् । देवनामग्रहणगर्भेण·भवदभिधानसंयुतेन । विषव्याकुलो जनो यथा विषापहारिगारुडमन्त्रश्रवणाद्यथा निवृत्तमूर्च्छावेगः प्रकृतिमापद्यते तद्वदियं कादम्बरी भवदभिधानगर्भेण मद्वचसा निवृत्तमूर्च्छा सती चक्षुषी उदमीलयदित्यर्थः ॥

अथेति०—धवलैः स्वच्छैः वसनैः वस्त्रैः उल्लासिताः प्रकाशिताः गात्रयष्टयो देहलताः यासां तास्तथोक्ताः स्वच्छवस्त्रप्रकाशमानदेहा इत्यर्थः । द्वारप्रदेशेषु सम्पिण्डितानि संकुचितानि अङ्गानि यासां ताः तथोक्ताः द्वारदेशे स्थिता इति भावः। परशुरामशरविवरेभ्यः परशुरामबाणकृतहिमालयरन्ध्रेभ्यः विनिर्गताः बहिर्भूताः कलहंसपङ्क्तयः हंससमूहा इवेत्युपमा । धवलवसनपरिधानानां द्वारदेशादागच्छन्तीनां कन्यकानां परशुरामशरविवरनिर्गतहंसावलीसादृश्यं नितरां स्फुटम् । श्रूयते महादेवाद्धनुर्विद्यामभ्यस्यतोः परशुरामकार्त्तिकेययोर्जाते स्पर्द्धाभावे परशुरामः स्वातिशयं प्रमापयितुं बाणेन हिमालयं बिभेदेति । कलहंसानां हंसानां मधुरो रवश्शब्द इव मधुरो रवः शब्दो येषां तैः नूपुरैः पादभूषणमञ्जीरैः प्रतिवाचम् उत्तरमिव प्रयच्छद्भिः ददद्भिः, कलहंसमधुरशब्दाः पादलग्नाः नूपुराः प्रतिवाचमिव ददतीत्यर्थः । पतद्भिः कर्णपूरपल्लवैः श्रवणाभरणभावं प्रापितैः पल्लवैः उल्लासितानि चालितानि यानि श्रवणानि कर्णेन्द्रियाणि तैः आज्ञाश्रवणाय स्वामिनिदेशाकर्णनाय धावद्भिरिव । कर्णपूरपल्लवाः पतन्तः श्रवणानि चपलयन्ति तासां कन्यकानाम् मन्ये तानि श्रवणानि आज्ञां श्रोतुं धावन्तीत्यर्थः । मौक्तिककुण्डलांशुजालकानि मुक्तामयकुण्डलरश्मयः स्कन्धदेशनिक्षिप्तानि स्कन्धपतितानि चामराणि इव वहन्त्यः । कुण्डलानि मुक्तामयानीति तदंशवोंऽसदेशपतिताश्चामरवदवभासन्ते इत्यर्थः । समाहत-

---

ओर से आकर खड़ी हो गईं । इसके बाद स्वच्छ लावण्य में प्रतिबिम्बित दीपरूप कामदेव के शल्यों को अङ्गों में धारण करनेवाली निरन्तर नूतन कलियों से व्याप्त चम्पकलता की तरह दीखती हुई तदवस्था कादम्बरी से हमने निवेदन किया—देवि, प्रसन्नता प्रकट कीजिये, आप इस कष्टदायक खेद का त्याग कीजिये, आप इस कष्ट के योग्य नहीं हैं । अपने दुःख-वेग को दूर कीजिये; अभी मैं चन्द्रापीड को लेकर आती हूँ । इस तरह आपका नाम लेकर कहे गये मेरे वचन से उसने उसी तरह आँखें खोल दीं जैसे विषमूर्च्छित आदमी विषापहरणमन्त्र से आँखें खोल देता है । उसने लालसापूर्ण नयनों से मेरी ओर देखकर परिजन से पूछा कि यहाँ कौन है ? ।

आवाज सुनते ही कन्यायें दौड़ीं जो श्वेत वस्त्र से शरीर को आवृत किये हुई थीं । द्वार देश में बैठी थीं अतः ऐसी प्रतीत हो रही थीं कि परशुराम के बाण से निर्मित मार्ग से होकर निकली कलहंसपंक्ति हों । हंसों के मधुर शब्द की तरह मधुर शब्द करने वाले उनके नूपुर प्रत्युत्तर सा दे रहे थे । उनके कानों से गिरने वाले कर्णपूर-पल्लव आज्ञा सुनने के लिये दौड़ते हुए से लग रहे थे । कानों में पहने गये मौक्तिक कुंडलों की किरणें कन्धों

मानाः, वाचालैः कर्णोत्पलमधुकरैः समाज्ञापयेति व्याहरन्त्यः कन्यकाः समधावन्। आज्ञाप्रतीक्षासु च मुखकमलावलोकिनीषु तासु क्रमेण दृष्टिं पातयन्ती स्निग्धामिन्दीवरस्रजमिव मरकतशिलातले न्यषीदत्। अब्रवीच्च। 'पत्रलेखे, न खलु प्रियमिति ब्रवीमि। त्वामेव पश्यन्ती संधारयाम्येव जीवितमहम्। तथापि यद्ययं ते ग्रहस्तत्साधय समीहितम्' इत्याभिधायाङ्गस्पृष्टनिवसनाभरणताम्बूलप्रदानप्रदर्शितप्रसादातिशयां मां व्यसर्जयत्।

इत्यावेद्य च किंचिदिव नमितमुखी शनैः पुनर्व्यजिज्ञपत्। 'देव प्रत्यग्रदेवीप्रसादातिशयाहितप्रागल्भ्या दुःखिता च विज्ञापयामि। 'देवेनाप्येतदवस्थां देवीं दूरीकुर्वता किमिदमापन्नवत्सलायाः स्वप्रकृतेरनुरूपं कृतम्' इति। चन्द्रापीडस्तु तथोपालम्भगर्भं विज्ञप्तः पत्रलेखया तं च कादम्बर्याः स्नेहोक्तिपुरःसरं गम्भीरं च सतापं च सपरिहासं च

कपोलस्थलैः कपोलदेशमाघ्नद्भिः कुण्डलैः बलादिव बलपूर्वकम् वाह्यमानाः अग्रे गन्तुं प्रेर्यमाणाः, कपोलं घर्षयद्भिः कुण्डलैस्ताः कन्यकाः बलात् पुरः सर्तुमिव प्रेर्यन्त इत्यर्थः। वाचालैः शब्दायमानैः कर्णोत्पलमधुकरैः कर्णाभरणीभूतकमलसौरभाकृष्टभ्रमरैः समाज्ञापय इति व्याहरन्त्यः कथयन्त्यः। कन्यकानां तासां कर्णयोः स्थितेषु कमलेषु सौरभाकृष्टा भ्रमराः शब्दायमाना आसन्मन्ये तास्तच्छब्दद्वारा स्वामिनीं व्याहरन्तिस्माज्ञां प्रदातुमिति भावः। आज्ञाप्रतीक्षासु आदेशं प्रतिपालयन्तीषु। मुखकमलावलोकिनीषु-स्वामिनीमुखमीक्षमाणासु। तासु कन्यकासु। स्निग्धाम् मसृणाम्। इन्दीवरस्रजम्-नीलकमलमालाम्। दृशं पातयन्ती दृष्टिं निक्षिपन्ती। स्निग्धया नीलकमलमालयेव दृशा ताः वीक्षमाणा इत्यर्थः। न्यषीदत्-उपविष्टवती। न खलु प्रियमिति ब्रवीमि तव सुखावहमिति कृत्वा नाहं वक्ष्यमाणं कथयामि किन्तु वस्तुभूतं तदिति भावः। त्वामेव-पश्यन्ती सन्धारयामि जीवामि। अयम्-कुमारानयनविषयकः। ग्रहः-आग्रहः। साधय-कुरु। निवसनम्-वस्त्रम्। प्रसादातिशयः-कृपाप्राचुर्यम्। वसनाभरणताम्बूलादीनि स्वाङ्गस्पर्शं प्रापय्य प्रदाय च कृपातिशयं प्रकाश्येत्यर्थः। व्यसर्जयत्-गमनाज्ञया सनाथितवतीत्यर्थः।

आवेद्य-कथयित्वा। नमितमुखी-नतवदना। व्यजिज्ञपत्-सूचितवती। प्रत्यग्रेति०—प्रत्यग्रेण अभिनवेन देव्याः कादम्बर्याः प्रसादातिशयेन कृपाप्राचुर्येण आहितम् सञ्जातं प्रागल्भ्यं यस्याः सा तथोक्ता-अभिनवकादम्बरीकृपाप्राचुर्यधृष्टाऽहमित्यर्थः। दुःखिता खिन्ना। देवेन भवता। एतदवस्थाम्-इमां दशां प्राप्ताम्। देवीम्-कादम्बरीम्। दूरीकुर्वता-आत्मनो वियोगं लम्भयता। आपन्नवत्सलायाः-शरणागतसकृपायाः। स्वप्रकृतेः-स्वीयस्वभावस्य। अनुरूपम्-अनुकूलम्। उपालम्भगर्भम्-उपालम्भपूर्णम्। विज्ञप्तः-पत्रलेखयोक्तः। स्नेहोक्तिपुरस्सरम्-प्रेमवचनपूर्वकम्। साभ्यर्थनम्-प्रार्थनायुतम्।

पर फैल रही थीं जो चामर की तरह प्रतीत होती थीं, कपोल स्थल पर चोट पहुँचाने वाले कुंडल उन्हें बरबस आगे बढ़ाते से लग रहे थे, उनके कान में धारण किये गये उत्पलों पर आसक्त भ्रमर बोल रहे थे। जो आज्ञा माँगते से लग रहे थे। आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ी होकर मुख-कमल की ओर देखने वाली उन कन्याओं पर कादम्बरी ने स्नेहपूर्ण दृष्टि डाली—मानो मरकत-शिला पर नील कमल की माला डाली गई हो, और कहा—

पत्रलेखे, अच्छा लगता है इसलिये नहीं कह रही हूँ, केवल तुमसे बातें करके ही मैं प्राणधारण कर सकती हूँ, इसलिये कहती हूँ। यदि तुमको ऐसा ही विश्वास है तो अपनी रुचि के अनुसार कार्य करो। इस प्रकार कह कर और अपने अङ्गों से छुलाकर वस्त्र, अलङ्कार, पान आदि के प्रदान से कृपा विशेष प्रकाशित करके कादम्बरी ने मुझे विदा किया।

इस प्रकार कहकर थोड़ा मुख झुका लेने के बाद पत्रलेखाने पुनः धीरे-धीरे कहा—देव, देवी ने जो अभी-अभी मुझ पर अपनी विशेष कृपा की है उससे मैं ढीठ हो रही हूँ, और मुझे बड़ा दुःख है, इसलिये मैं कहती हूँ कि आपने इस स्थिति में कादम्बरी को अलग करके क्या शरणागत-वत्सलता अथवा अपनी प्रकृति के अनुकूल कार्य किया है। पत्रलेखा के इस उलाहने से भरे कथन को सुन कर तथा कादम्बरी के स्नेहोक्तिपूर्वक, गम्भीर,

---

१. ससन्तापं।

साभ्यर्थनं च साभिमानं च सावहेलं च सप्रसादं च सनिर्वेदं च सानुरागं च सार्तिविशेषं च सावष्टम्भं च सकोपं च सात्मार्पणं च ससद्भावं च सोत्प्रासं च सोपालम्भं च सानुक्रोशं च सस्पृहं च सावधारणं च मधुरमपि दुःश्रवं सरसमपि शोषहेतुं कोमलमपि कठोरं नम्रमप्युन्नतं पेशलमप्यहंकृतं ललितमपि प्रौढमालापमाकर्ण्योत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्य च स्तिमितपक्ष्मतया दुर्विषहदुःखबाष्पोपप्लुतायताक्षं तन्मुखं स्वभावधीरप्रकृतिरपि नितरां पर्याकुलोऽभवत् ।

अथ कादम्बरीशरीरादिवालापपदैरेव सहागत्य युगपद्गृहीतो हृदये मन्युना कण्ठे जीवितेनाधरपल्लवे वेपथुना मुखे श्वसितेन नासाग्रे स्फुरितेन चक्षुषि च बाष्पेण च तुल्यवृत्तिर्भूत्वा कादम्बर्याः क्षरद्बाष्पविक्षेपपर्याकुलाक्षरमुच्चैः प्रत्युवाच । 'पत्रलेखे किं करोमि । अनेन दुरात्मना दुःशिक्षितेन ज्ञानाभिमानिना पण्डितम्मन्येन दुर्विदग्धेन दुर्बुद्धिनालीकधीरेण स्वयंकृत[1]मिथ्याविकल्पशतसहस्रभरितेनाश्रद्दधानेन मूढहृदयेन यद्यदेवानेकप्रकारं शृङ्गार-

---

सार्तिविशेषम्-पीडया युक्तम् । मधुरमपि दुःश्रवम्-दुःखेन श्रोतुमर्हम्, मधुरं सदपि मर्मव्यथकतयाऽऽकर्णयितुम् योग्यम् इत्यर्थः । सरसमपि-रसयुक्तमपि शोषहेतुं-सन्तापकरम् । पेशलम्-कोमलम् । सर्वत्र विरोधाभासस्तत्परिहारः सुखावसेयः । आलापम्-उक्तिम् । उत्प्रेक्ष्य-सम्भाव्य तन्मुखमित्यस्य कर्म । स्तिमितपक्ष्मतया-पक्ष्मपातशून्यतया । दुर्विषहेण-असह्येन दुःखेन यत् बाष्पम्-अश्रु तेन आप्लुतम्-व्याप्तम् अक्षि यत्र तदिति मुखविशेषणम् । स्वभावधीरप्रकृतिः-अकृत्रिमधीरः । पर्याकुलः-व्यग्रः ।

कादम्बरीति०—कादम्बर्या उक्तिं पत्रलेखामुखान्निशम्य चन्द्रापीडो हृदये मन्युना गृहीतः, तस्य जीवितं कण्ठे समाजगाम, अधरश्चकम्पे, मुखे दीर्घश्वासः प्रावर्त्तत, नासाग्रं प्रास्फुरत्, चक्षुषि बाष्पमुदैषीत्, मन्ये आलापपदैः सहैव कादम्बर्याः मन्युकण्ठगतप्राणताऽधरकम्पप्रभृतयो वियोगाङ्काश्चन्द्रापीडस्य शरीरं प्रविष्टाः, तेन चन्द्रापीडः कादम्बर्याः समवृत्तिर्जात इत्याशयो भूत्वेतिपर्यन्तस्य ग्रन्थस्य । क्षरद्बाष्पेति०—क्षरता स्रवता-बाष्पेण-अश्रुप्रवाहेण यो विक्षेपः-निर्गमबाधस्तेन पर्याकुलानि-अस्तव्यस्तानि अक्षराणि-वर्णाः यत्र तथेति क्रियाविशेषणम् । दुरात्मना-दुष्टेन । दुःशिक्षितेन-दुष्टशिक्षां प्राप्तवता । ज्ञानाभिमानिना-मिथ्याज्ञानाभिनयनिपुणेन । दुर्विदग्धेन-दुःशीलेन । अलीकधीरेण-मिथ्याधैर्याभिमानिना । स्वयंकृतमिथ्याविकल्पशतसहस्रभरितेन-आत्मनैव कृतैः मिथ्याभूतैः-अवस्तुसद्भिः विकल्पानां-नानाप्रकारककल्पनानां शतसहस्रैः-कोटिभिर्भरितेन, आत्मनैव विनैव कामपि भित्तिं नानाविधान् विकल्पानुत्पादयतेत्यर्थः । अश्रद्दधानेन-अविश्वासिना । मूढहृदयेन-अविवेकशीलेन । शृंगारनृत्ताचार्येण-

---

सन्तापयुक्त, परिहासपूर्ण, प्रार्थनामय, साभिमान, प्रसन्नतायुक्त, खेदपूर्ण सानुराग, पीड़ा से युक्त, उपालम्भपूर्ण, साक्रोश, साभिलाष, सनिश्चय, मधुर होकर भी दुःश्रव, सरस होकर भी शोषक, कोमल होकर भी कठोर, नम्र होकर भी उन्नत, मुलायम होकर भी साहङ्कार, ललित होकर भी साहङ्कार आलाप की सम्भावना करके चन्द्रापीड़ की आँखों के पक्ष्म ठिठक गये, दुर्विषहदुःख से उनकी बड़ी-बड़ी आँखें अश्रुपूर्ण हो उठीं और वह स्वभावतः धीर प्रकृति होकर भी अत्यन्त व्याकुल हो गये।

इसके बाद चन्द्रापीड़ को ऐसा प्रतीत हुआ कि बात-चीत के द्वारा कादम्बरी के शरीर से आकर एक साथ दुःख ने हृदय में, प्राणों ने कण्ठ में, कम्पन ने ओठों में, श्वास ने मुख में, स्फुरण ने नासाग्र में, और रोदन ने आँखों में स्थान बना लिया है, जिससे वह कादम्बरी के समान हो गया है। उसकी आँखों से आँसू गिर रहा था, उसने गद्गद स्वर में उत्तर दिया—पत्रलेखे, मैं क्या करूँ? दुरात्मा, दुःशिक्षित, ज्ञानाभिमानी, पण्डितंमन्य, मिथ्याचातुर्यशाली, दुर्बुद्धि, मिथ्या गम्भीर, स्वयं मिथ्या सङ्कल्प करके बैठे हुए, अश्रद्धालु तथा मूढ़-हृदय इस

---

१. स्वकृत।

नृत्ताचार्येण भगवता मनोभवेनान्तर्गतविकारावेदनाय मामुद्दिश्य बाला बलात्कार्यते तत्त-देवादृष्टपूर्वत्वाद्दिव्यकन्यकानां रूपानुरूपलीलासम्भावनया च तावतो मनोरथस्याप्यात्मन उपर्यसम्भावनया च सर्वं सहजमेवैतदस्या इति विकल्पसंशयदोलाधिरूढं मां माहयतैवमीदृशस्य देव्या दुःखस्य तव चोपालम्भस्य हेतुतां नीतोऽस्मि। मन्ये च ममापि मनोव्यामोहकारी कोपि शाप एवायम्। अन्यथाऽप्रबुद्धबुद्धेरपि येषु न सन्देह उपपद्यते तेष्वपि स्फुटेषु मदनचिह्नेषु कथं मे धीर्व्यामुह्येत। तिष्ठन्त्वेव तावदतिसूक्ष्मतया दुर्विभाववृत्तीनि तानि स्मितावलोकितकथितविहृतलीलालज्जायितानि यान्यन्यथापि सम्भवन्ति। चिरानुभूतात्मकण्ठसंसर्गसुभगं हारमिममकृतपुण्यस्य मे तत्क्षणमेव कण्ठे कारयन्त्या किमिव नावेदितम्। अपि च हिमगृहकवृत्तान्तस्तु तवापि प्रत्यक्ष एव। तत्किमत्र प्रणयकोपाक्षिप्तयाप्यन्यथा व्याहृतं देव्या। सर्व एवायं विपर्ययान्मम दोषः। तदधुना प्राणैरप्युपयुज्यमान-

---

कामकलाशिक्षणदक्षेण। मनोभवेन कामेन। अन्तर्गतमनोविकारावेदनाय-हार्दिकभावप्रकटनाय। बाला-अप्रौढनायिका कादम्बरी। रूपानुरूपलीलासम्भावनया-एतस्या रूपस्य अनुकूला एव इमे भावा इति बुद्ध्या। तावतो मनोरथस्य-एतादृशस्य प्रणयस्य। सहजं-स्वाभाविकम्। विकल्पसंशयदोलाधिरूढम्-संदिहानम्। माहयता-प्रत्याययता। अयमेतत्प्रघट्टकार्थः-कादम्बर्यास्त्वयोक्ता स्थितिर्मया श्रुता, परमहं किं करोमि, यदा मया कादम्बरी दृष्टा, तस्मिन् काले कामदेवेन कादम्बर्या मनसि सञ्चारो लब्धस्ततः सा यां यां चेष्टामकृत, तासु चेष्टासु कामदेवप्रभावादेव मयाऽन्यादृश्येव धारणा कृता, अदृष्टपूर्वत्वाद्दिव्यकन्यानां मया तस्याः कामचेष्टाः स्वाभाविकतया गणिताः, तदनेन कामेन तां मां च सममेव वञ्चयता सा कादम्बरी कष्टं प्रापिताऽहं च तदुपालम्भस्य विषयः कृतोऽस्मीति। मनोव्यामोहकारी-मनोविक्षेपकर्त्ता। अप्रबुद्धबुद्धेः-जडमतेः। मूढमतयो यानि मदचिह्नानि दृष्ट्वा तत्त्वेन परिचिन्वन्ति, तेष्वपि स्फुटेषु मदनचिह्नेषु यन्न मम प्रत्ययो जातः स शापस्यैव प्रभाव इति भावः। व्यामुह्येत-मूढभावं प्रपद्येत, इदमित्थमिति निर्णयाय न क्षमेतेत्यर्थः। दुर्विभाववृत्तीनि-असुबोधानि। स्मितम्-ईषद्धसितम्, अवलोकितम्-कटाक्षवीक्षणम्, कथितम्-सविभ्रमं वचनम्, विहृतम्-श्रृङ्गारचेष्टितम्, लीलालज्जायितम्-सलीलं त्रपाप्रकाशनम् एतानि असुखावसेयव्यापाराणि सन्ति, तदिमानि दूरे तिष्ठन्तु, कादम्बरी स्वकण्ठादुत्तार्य यन्मम कण्ठे स्वां मालामर्पितवती स तु तस्या व्यापारः सर्वमपि तन्मनोभावं प्रकटमाकथयदेव, ततोऽपि तु मया तन्मनोगतं ज्ञातुं न शेके, तदयं कोपि कस्यापि चित् मम शापस्यैव प्रभाव इत्यर्थः। चिरमनुभूतः-प्राप्तो य आत्मकण्ठसंसर्गः-स्वकण्ठनिवासः तेन सुभगम्-रमणीयम्। अकृतपुण्यस्य-पापिनः। किमिव नावेदितम्-सर्वमप्युक्तमित्यर्थः, हिमगृहकवृत्तान्तः-हिमगृहे जाता घटना। तव-पत्रलेखायाः। प्रत्यक्षः-साक्षात्। अत्र-स्वन्मुखाच्छ्रुते तदीयसन्देशे। प्रणयकोपाक्षिप्तया-प्रेमकोपपराधीनमनसा। प्रणयकोपपराधीनमनसाऽपि कादम्बर्या किमपि नाधिकमुक्तं, सर्वमुपयुज्यमानमेवोक्तमित्यर्थः। विपर्ययात्-आचरणवैप-

---

कन्दर्प ने अनेक प्रकार के जो कार्य अन्तर्गत विकार की सूचना देने के लिये कादम्बरी द्वारा मेरे विषय में करवाये हैं, उन कार्यों को उसी कन्दर्प के कारण स्वाभाविक समझता रहा हूँ, क्योंकि मैंने कभी दिव्य कन्या देखी नहीं थी, मैं समझता था कि यह सारी लीला इसके रूप के अनुरूप हैं मेरे लिए ही इसके सारे मनोरथ हैं ऐसी संभावना मुझे नहीं थी, इस तरह संशय तथा विकल्प के झूले पर झूलने वाला मैं कादम्बरी के कष्टों तथा तुम्हारे द्वारा किये गये अपने तिरस्कार का कारण बन गया हूँ। मालूम पड़ता है मेरे मन को मोह में डाल देने वाला यह कोई शाप ही है। यदि ऐसा नहीं होता तो मूढ को भी जिन विषयों पर सन्देह नहीं होना चाहिये उन्हीं कन्दर्प-चिह्नों को देखकर भी मेरी बुद्धि क्यों चकरा गई। मुस्कुराने, हँसने, बोलने, विहार तथा लीला लज्जाओं की बात को जाने दिया जाय, उनके कारणों को समझना कठिन था, वह किसी अन्य कारण से भी हो सकते हैं, परन्तु कादम्बरी ने चिरधारित अपने गले का हार उतार कर जब मुझ अभागे को पहना दिया तब उसने क्या नहीं कह दिया ! हिमगृह की बातें तो तुमको भी प्रत्यक्ष ही हैं। वहाँ क्या उसने प्रणय-कोप करके भी कुछ दूसरी तरह की बात

स्तथा करोमि यथा नेदृशमेकान्तनिष्ठुरहृदयं जानाति मां देवी।' इत्येवं वदत्येव चन्द्रापीडेऽनाविततैव प्रविश्य वेत्रहस्ता प्रतीहारी कृतप्रणामा व्यज्ञापयत्। 'युवराज, एवं देवी विलासवती समादिशति। कृतजल्पात्परिजनतः श्रुतं मया यथा किल पृष्ठतः स्थिताद्य पत्रलेखात्र पुनः परागतेति। न च ने त्वय्यस्यां च कश्चिदपि स्नेहस्य विशेषो विलसतीति मयैवेयं संवर्धिता। अपि च तवापि कापि महती वेला वर्तते दृष्टस्य[1]। तदनया सहित एवागच्छ। मनोरथशतलब्धमतिदुर्लभं ते मुखकमलालोकनम्' इति।

चन्द्रापीडस्तु तदाकर्ण्य चेतस्यकरोत्। 'अहो संदेहदोलारूढं मे जीवितम्। एवमम्बा निमेषमपि मामपश्यन्ती दुःखमास्ते। पत्रलेखामुखेन चैवमाज्ञापितमागमनाय मे निष्कारणवत्सलेन देवीप्रसादेन। आजन्मक्रमहितो बलवाञ्जननीस्नेहः। वाञ्छाकुलं हृदयम्। अमोच्यं तातचरणशुश्रूषासुखम्। प्रमाथी मन्मथहतकः। हारिणी गुरुजनलालना। दुःसहान्युत्कण्ठितानि। अनुबन्धिनी बान्धवप्रीतिः। कुतूहलिन्यभिनवप्रार्थना। मुखावलोकिनः कुलक्रमागता राजानः। जीवितफलं प्रियतमामुखावलोकनम्। अनुरक्ताः प्रजाः। गरीयान्गन्ध-

---

रीत्यात्। प्राणैरप्युपयुज्यमानः-प्राणानपि पणीकृत्य। एकान्तनिष्ठुरम्-अतिशयनिर्ममम्। अनाविता-केनाप्यसूचितागमना। वेत्रहस्ता-वेत्रलतां करे धारयन्ती। विलासवती-चन्द्रापीडमाता। कृतजल्पात्-परस्परमालपतः। परिजनात्—भृत्यवर्गतः। पृष्ठतः स्थिता-पश्चाद्वर्तमाना। परागता-प्रत्यावृत्ता। त्वयि-चन्द्रापीडे। अस्याम्-पत्रलेखायाम्। इयं-पत्रलेखा। संवर्धिता-पोषिता। महती वेला-बहुसमयः। त्वामप्यहं चिराद्य दृष्टवत्यस्मीत्यर्थः। अनया-पत्रलेखया। मनोरथशतलब्धम्-बहुभिर्मनोरथैः प्राप्तम्।

चेतस्यकरोत्-अचिन्तयत्। सन्देहदोलाधिरूढम्-संशयग्रस्तम्। निमेषमपि मामपश्यन्ती-क्षणमपि मामवीक्षमाणा। दुःखमास्ते-खिद्यते। पत्रलेखामुखेन-पत्रलेखाद्वारा। निष्कारणवत्सलेन-अहेतुकस्नेहशालिना। आजन्मक्रमाहितः-जन्मकालादेव क्रमश उपचितः। जननीस्नेहः-मातृप्रेम। वाञ्छाकुलम्-नानाविधाभिलाषपूर्णम्। अमोच्यम्-अत्याज्यम्। तातचरणशुश्रूषणम्-पितृपादसेवा। प्रमाथी-पीडादायकः। मन्मथहतकः-क्रूरः कन्दर्पः। हारिणी-आकर्षिका। गुरुजनलालना-जननीजनकप्रीतिः। उत्कण्ठितानि-प्रीतिपरायणजनमिलनौत्सुक्यानि। अनुबन्धिनी-त्यक्तुमशक्या। बान्धवप्रीतिः-स्वजनस्नेहः। कुतूहलिनी उत्सुकताकारिणी। अभिनवप्रार्थना-नूतनप्रियजनप्राप्तिकामना। मुखावलोकिनः-सततमाज्ञानुवर्तिनः। कुलक्रमागताः-वंशपरम्परानुवृत्ताः। जीवितफलम्-जीवनसाफल्यम्। प्रियतमामुखावलोकनम्-प्रेयसीमुखवीक्षणम्। अनुरक्ताः-प्रीतियुक्ताः। गन्धर्वराजसुतानुरागः-कादम्बरीस्नेहः परि-

---

की थी। मेरी बुद्धि मारी गई थी, यह सारा दोष मेरा है। अतः अब प्राणों की बाजी लगाकर मैं वही कार्य करूँगा जिससे कादम्बरी मुझे निष्ठुर नहीं समझेगी। चन्द्रापीड़ जब इस तरह कह रहे थे उसी समय बिना सूचना दिये ही वेत्रहस्ता प्रतीहारी वहाँ आई और उसने प्रणाम करके कहा—युवराज देवी विलासवती ने कहा है कि बातचीत के सिलसिले में परिजन से मुझे ज्ञात हुआ है कि पीछे बैठी हुई पत्रलेखा यहाँ आई है, मेरे स्नेह में तुम्हारे तथा उसके लिये कुछ अन्तर नहीं है, मैंने उसे पाला है, तुम्हें देखे कितने दिन भी बीत गये हैं अतः उसके साथ ही यहाँ आओ, मेरे किये मनोरथ-शत प्राप्त तुम्हारे मुख कमल का दर्शन दुर्लभ हो रहा है।

यह सुनकर चन्द्रापीड़ ने मन में सोचा—मेरा जीवन किस तरह संशय के झूले पर झूल रहा है, मेरी माता मुझे एक क्षण भी नहीं देखती हैं तो उन्हें क्लेश होता है, मेरे ऊपर अकारण प्रीति रखने वाले कादम्बरी के अनुग्रह ने पत्रलेखा के द्वारा इस प्रकार कहला भेजा है। मेरे हृदय में चाह है। पिता के चरणों की सेवा का सुख छोड़ा नहीं जा रहा है, काम सताने वाला है, गुरुजन की लालना में बड़ा आकर्षण है, उत्कण्ठा बड़ी असह्य है, बन्धु-प्रीति का सिलसिला जारी है, नया प्रेम नये-नये कुतूहल पैदा किया करता है, कुलक्रमागत राजागण मुख देखा करते हैं, प्रियतमा के मुख का देखना जीवन की सार्थकता है, प्रजा अनुरक्त है, और उससे भी बड़ा है

---

१. वर्ततेऽद्यदृष्टस्य।

वैराजसुतानुरागः। दुस्त्यजा जन्मभूमिः। परिग्राह्या देवी कादम्बरी। कालातिपातासहं मनः। विप्रकृष्टमन्तरं हेमकूटविन्ध्याचलयोः।' इत्येवं चिन्तयन्नेव प्रतीहार्योपदिश्यमानवर्त्मा पत्रलेखाकरावलम्बी जननीसमीपमगात्। तत्रैव च तमनेकप्रकारजननीलालनसुखाचिन्तित-दुर्विषहहृदयोत्कण्ठं दिवसमनयत्।

उपनतायां चात्मचिन्तायामिवान्धकारितदशदिशि शर्वर्याम्, अनिवार्यविरहवेदनो-न्मथ्यमानमानसाकुलेषु कलकरुणमुच्चैर्व्याहरत्सु चक्रवाकयुगलेषु, उत्तेजितस्मरशरं समुत्सर्प-माणेषु चन्द्रमसोऽङ्कोल्लधूलिधूसरालोकेष्वग्रमयूखेषु, विजृम्भमाणकुमुदिनीश्वासपरिमलग्राहिणि मन्दं मन्दमावातुमारब्धे प्रदोषानिले च, शयनवर्ती निमीलितलोचनोऽप्यप्राप्तनिद्राविनोदः, हेमकूटागमनखेदान्निपत्य विश्रान्तेनेव पादपल्लवच्छायायाम्, जङ्घानुरोधिरोहिणा लग्नेनेव

ग्राह्या-स्वोपस्थित्या सम्भावनीया। कालातिपातसहम्-विलम्बासहिष्णु। विप्रकृष्टम्-सुदूरम्। इत्येवं चिन्तयन्-गमनविषये स्वगेहावस्थानविषये च तारतम्यं विभावयन्। उपदिश्यमानवर्त्मा-दर्श्यमान-मार्गः। पत्रलेखाकरावलम्बी-पत्रलेखाहस्तं धारयन्। तत्रैव-जननीसमीप एव। अनेकप्रकारैः-नानाविधैः जननीलालनैः-मातृस्नेहैः। अचिन्तिता-अविभाविता दुर्विषहा-कष्टसह्या हृदयोत्कण्ठा-स्वमनसि स्थिता समुत्कता यत्र तादृशं मातृकृताभिर्लालनाभिर्हृदयगतामप्युत्सुकतां विस्मरन्नित्यर्थः।

अथ रात्रिं वर्णयति-उपनतायामिति०-आत्मचिन्तायामिव अन्धकारितदशदिशि शर्वर्यामुपनतायां-मित्यन्वयः। आत्मनश्चन्द्रापीडस्य चिन्ता-कथं कादम्बर्याः समीपमुपगच्छेयमित्याकारा यथा तस्य सर्वा दिशोऽन्धकारावृताः करोति तथैव सर्वा दिशोऽन्धकारावृताः कुर्वत्यां शर्वर्यां रात्रावुपनतायां-प्राप्तायामि-त्यर्थः। अनिवार्यया-केनापि प्रकारेण शमयितुमशक्यया विरहवेदनया-प्रेयोविरहपीडया उन्मथ्यमानं व्यथमानं मानसं येषां तादृशेषु अतएव चाकुलेषु-व्यग्रेषु चक्रवाकयुगलेषु-तन्नामपक्षिमिथुनेषु कलं-मधुरं करुणं-दयोत्पादकञ्च यथा स्यात्तथा उच्चैः व्याहरत्सु-शब्दायमानेषु। चन्द्रमसः-चन्द्रस्य अङ्कोल्लधूलि-धूसरेषु-पुष्पविशेषपरागपाण्डुरेषु। अग्रमयूखेषु-प्रथमकिरणेषु उत्तेजितस्मरशरं-वर्द्धितकामबाणप्रहारं समुत्सर्पमाणेषु-समन्ततः प्रसरत्सु। विजृम्भमाणाः-विकसन्त्यो याः कुमुदिन्यः-कुमुदपुष्पाणि तासां श्वासस्य यः परिमलः-सुवासस्तद्ग्राहिणि-तेन पूर्णे प्रदोषानिले-सायंकालिकमरुति मन्दं मन्दं-शनैःशनैः आवातुमारब्धे-प्रचरणप्रवृत्ते सति। शयनवर्ती-शय्यागतः। निमीलितलोचनः-मुद्रितनयनः। अप्राप्तनि-द्राविनोदः-अलब्धनिद्रासुखः। (चन्द्रापीडो मनसा कादम्बरीरूपस्य सस्मारेति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः, तत्रागतस्य मनसेत्यस्य विशेषणान्याह-'हेमकूटादित्यारभ्य लावण्यपूरे' इत्यन्तेन सन्दर्भेण) हेमकूटा-गमनखेदात् कादम्बरीनिवासागमने यः परिश्रमस्तस्मात् पादपल्लवच्छायायाम् निपत्य-पतित्वा विश्रान्तेन इव, यथा कश्चन पान्थो दूरागमनखेदात्कचनच्छायायां निपत्य विश्राम्यति तद्वदस्य मनः कादम्बरीनिवा-सभूतहेमकूटादागमने श्रममनुभूय कादम्बरीपादपल्लवच्छायायां पतित्वा विश्रान्तमिव जातमित्यर्थः। जङ्घानुरोधिरोहिणा-कादम्बरीजङ्घयोरारोढं प्रवृत्तेन सुसंहतयोः-अत्यन्तमिलितयोः ऊर्वोः-कादम्बर्याः

कादम्बरी का अनुराग, हृदय को विलम्ब असह्य और हेमकूट तथा विन्ध्याचल की दूरी अधिक है। चन्द्रापीड इस प्रकार सोचते हुए पत्रलेखा का हाथ पकड़कर माता के पास गये, प्रतिहारी आगे-आगे मार्ग दिखलाती चली। माता द्वारा किये गये स्नेह-लालन से हृदय की उत्कण्ठा भूल गई, वह दिन वहीं बीता।

अनन्तर दश दिशाओं को अन्धकारमय बनाने वाली चिन्ता के समान रात्रि आई। अनिवार्य विरह वेदना से व्याकुल-हृदय चक्रवाक के जोड़े मधुर करुण चीत्कार कर उठे, कन्दर्प को उत्तेजित करने वाली चन्द्रमा की अङ्कोलकी धूलि की तरह दीखने वाली किरणें फेंकने लगीं, खिलते हुए कुमुद-पुष्प के श्वास की सुगन्धि को लेकर सायं समीर मन्द-मन्द बहने लगा, ऐसे समय में चन्द्रापीड बिछावन पर लेट गये, नींद नहीं आ रही थी, उसका मन हेमकूट से आने के कारण थककर विश्राम सा कर रहा था, कादम्बरी की जंघा पर चढ़कर उसकी संसक्त ऊरु में

१. जंघानुरोधरोहिणा।

सुसंहतयोरूर्वोः, लिखितेनेव विस्तारिणि नितम्बफलके, मग्नेनेव नाभिमुद्रायाम्, उल्लसितेनेव रोमराज्याम्, आरूढेनेव त्रिवलिसोपानहारिणि मध्यभागे, कृतपदेनेवोन्नतिविस्तारशालिनि स्तनतटे, मुक्तात्मनेव बाह्वोः, कृतावलम्बनेनेव हस्तयोः, आश्लिष्टेनेव कण्ठे, प्रविष्टेनेव कपोलयोः, उत्कीर्णेनेवाधरपुटे, ग्रथितेनेव नासिकासूत्रे, समुन्मीलितेनेव लोचनयोः, स्थितेनेव ललाटशालायाम्, अन्वितेनेव चिकुरभारान्धकारे, प्लवमानेनेव सर्वदिक्पथप्लाविनि लावण्यपूरप्लवे, मनसा सस्मार स्मरायतनभूतस्य कादम्बरीरूपस्य।

उत्पन्नात्मीयबुद्धिश्च निर्भरस्नेहार्द्रचेतास्तत एव वासरादारभ्य तां प्रति गृहीतरक्षापरिकर इव यतो यत एव मण्डलितकुसुमकार्मुकं मकरध्वजमस्यां प्रहरन्तमालोकितवाँस्तस्तत एवात्मानमन्तरेऽर्पितवान्। एवमम्लानमालतीकुसुमकोमलतनौ निर्घृणं प्रहरन्न लज्जस इत्युपालभमान इव दिवसमुत्तरलतारयान्तर्बाष्पार्द्रया दृष्ट्या कुसुमचापं पुनः स्मरशरप्रहार-

---

ऊर्वोः लग्नेन-आसक्तेन इव। विस्तारिणि-परिणाहशालिनि नितम्बफलके-कादम्बर्या नितम्बदेशे लिखितेन-निःस्पन्दं स्थितेन इव। नाभिमुद्रायाम्-गभीरे नाभिगह्वरे मग्नेन-ब्रुडितेन इव। रोमराज्याम्-रोमावलौ उल्लसितेन-रोमाञ्चितेन इव। त्रिवलिः-वलित्रयमेव सोपानं-निश्रेणिः तेन हारिणि-मनोहरे मध्यभागे-कटिप्रदेशे आरूढेन इव। उन्नतिविस्तारशालिनि उन्नते विस्तीर्णे च स्तनतटे कृतपदेन प्राप्तस्थानेन इव। बाह्वोः-कादम्बरीभुजयोः मुक्तात्मना-मुक्तिमिवासाद्य स्तिमितेन। कृतालम्बनेन-प्राप्तालम्बनेन। आश्लिष्टेन-कृतालिङ्गनेन। उत्कीर्णेन-खचितेन। समुन्मीलितेन-विकासभावं लम्भितेन। चिकुरभारान्धकारे-केशपाशतमसि। अन्वितेन-लग्नेन। सर्वदिक्पथप्लाविनि-सर्वतः प्रसृते। लावण्यपूरप्लवे-सौन्दर्यपयःप्रवाहे। प्लवमानेन-तरता इव।

उत्पन्नात्मीयबुद्धिः—सञ्जातस्वीयताज्ञानः। निर्भरस्नेहार्द्रचेताः-गाढप्रेमपूर्णहृदयः। ताम्-कादम्बरीम्। गृहीतरक्षापरिकरः-कादम्बरीपरित्राणाय बद्धपरिकरः। यतो यतः-येन येन भागेन। मण्डलितकुसुमकार्मुकम्-चक्रीकृतस्वीयपुष्पधन्वानम्। अस्याम्-कादम्बर्याम्। प्रहरन्तम्-प्रहारं कुर्वन्तम्। आलोकितवान्-अपश्यत्। ततः ततः-तेषु तेषु भागेषु। अन्तरेऽर्पितवान्-व्यवधानाय स्वं स्थापितवान्। कादम्बर्याम्। निर्घृणम्-अदयभावेन। इति-एवं प्रकारेण दिवसं-सकलमहः उत्तरलतारया चञ्चलकनीनिकया अन्तः बाष्पार्द्रया-अश्रुपूर्णया दृशा कुसुमचापम्-कामदेवम्। उपालभमानः-तिरस्कुर्वन्। स्मरशरप्रहारमूर्च्छिताम्-कामबाणप्रहारेण सञ्जातमूर्च्छाम्। ताम्-कादम्बरीम्। संज्ञाम् लम्भयितुम्-चैतन्यं

वह मन सट गया था, चौड़े नितम्ब प्रदेश में मन लिखित सा हो रहा था, नाभि की गहराई में वह डूब सा गया था, रोमावलि में वह रोमाञ्चित सा हो रहा था, त्रिवलि रूप सोपान-मार्ग से वह मध्य भाग पर आरोहण कर चुका था, उन्नत तथा विस्तृत स्तनतट पर वह बस गया था, बाहुओं में वह अपने को मुक्त दिया था, हाथों का उसने सहारा लिया था, गले का आलिङ्गन कर चुका था, कपोलों में प्रवेश कर लिया था, अधरों पर वह खचित सा हो गया था, नासिका के सूत्र में वह गूँथ गया था, आँखों में समा गया था, ललाट रूप घर में वह बस गया था, केशपाशके अन्धकार में वह खो गया था, सर्वतः प्रसरणशील सौन्दर्य-प्रवाह में वह तैर रहा था। इस तरह के मन से चन्द्रापीड़ कामास्पद कादम्बरी के रूप का स्मरण कर रहा था।

चन्द्रापीड़ के हृदय में कादम्बरी के लिए आत्मीयता उत्पन्न हो गई थी, वह उसकी रखवाली करने के लिए जिधर से कन्दर्प कादम्बरी पर प्रहार करना चाहता था उधर ही अपनी देह बीच में व्यवधान कर देता था जिससे काम का प्रहार कादम्बरी की देह तक नहीं पहुँच सके। दिन भर आँखों में आँसू भरकर चन्द्रापीड़ कन्दर्प को यही उलाहना देता रहता था कि कन्दर्प, तुमको इस कुसुम सुकुमारी कादम्बरी की देह पर इस प्रकार निर्दय प्रहार

मूर्च्छितां संज्ञामिव लम्भयितुं तामवयवैरुवाह स्वेदजललवानुत्ससर्ज च दीर्घदीर्घान्निश्वासमारुतान्। तच्चेतनालम्भमुदित इव च सर्वाङ्गीणं क्षणमपि न मुमोच रोमाञ्चम्। सह्यते हृदयेन वेदना न वेति तद्वार्तां प्रष्टुमिव नियुक्तेन मनसा शून्यतामधार्षीत्। तत्प्रतिवार्ताकर्णनायेव च गृहीतमौनः सर्वदैवातिष्ठत्। तदाननालोकनान्तरितमिव सर्वमेव नाद्राक्षीत्। चन्द्रबिम्बेपि नास्य दृष्टिररमत। तदालापपरिपूरितश्रोत्रेन्द्रिय इव न किंचिदप्यपरमन्तःकर्णे[1] कृतवान्। वीणाध्वनयोप्यस्य बहिरेवासन्। सुभाषितान्यपि न प्रवेशमलभन्त। सुहृद्वाचोपि परुषा इवाभवन्। बान्धवजनजल्पितान्यपि नासुखायन्त। भावावगमभीत्येव यथापूर्वं न कस्यचिद्दर्शनमदात्। अनवरतमुक्तज्वालेन मदनहुतभुजान्तर्दह्यमानोपि गुरुजनत्रपया न सद्यःसमुद्धृताद्रारविन्दशयनमभजत। न सरसबिसलताजालानि गात्रेष्वकरोत्। न जललवमौक्तिकक्षोदतारकितान्यजरठपद्मिनीपत्राणि पार्श्वेप्यकारयत्। न कुसुमपल्लवस्रस्तर-

---

प्रापयितुम्। अवयवैः-स्वशरीरभागैः। स्वेदजललवान्-स्वेदबिन्दून्। उवाह-धारयामास। दीर्घदीर्घान् निश्वासमारुतान्-श्वासानिलान्। उत्ससर्ज-विसृष्टवान्। यथा कमपि मूर्च्छितं स्वीयं जनं पुनः संज्ञां प्रापयितुं कश्चित्तदात्मीयः जलबिन्दुभिस्तं सिञ्चति वायुं च करोति, तद्वदयं चन्द्रापीडः कामबाणप्रहार-मूर्च्छितां कादम्बरीं पुनः संज्ञां प्रापयितुमिव स्वेदजललवान्धारयति श्वासानिलांश्च विसृजतीत्याशयः। तच्चेतनालम्भमुदितः-कादम्बरी संज्ञामापन्नेति प्रसन्नः। सर्वाङ्गीणं-सर्वावयवव्यापिनम्। रोमाञ्चम्-रोमहर्षम्। हृदयेन-कादम्बर्याश्चित्तेन। प्रष्टुं नियुक्तेन-ज्ञातुमादिष्टेन। शून्यताम्-निःसंज्ञताम्। मनसि कादम्बर्या हृदयस्य दशां प्रष्टुं गते तस्य शून्यता स्वाभाविकी। तत्प्रतिवार्ताकर्णनाय-कादम्बर्या उत्तरं श्रोतुम्। गृहीतमौनः-नियन्त्रितवागिन्द्रियः। तदाननावलोकनान्तरितम्-कादम्बरीमुखदर्शनव्यवहितम्। चन्द्रापीडस्याक्ष्णोः पुरतः सदा कादम्बरीमुखं स्थितं तेन च विश्वं व्यवहितमिति स किमपि द्रष्टुं नाक्षमतेत्यर्थः। तदालापपूरितश्रोत्रेन्द्रियः-कादम्बरीभाषणभृतकर्णः। कर्णे कृतवान्-श्रुतवान्। बहिरेवासन्-कर्णं न प्राविशन्। सुभाषितानि-सूक्तिरूपाणि वाचो विलसितानि। असुखायन्त सुखजनकानि नाजायन्त। यथापूर्वम्-पूर्ववत्। भावावगमभीत्या-कादम्बरीमयता ज्ञाता स्यादिति भयेन। अनवरतमुक्तज्वालेन-सततप्रज्वलितेन। मदनहुतभुजा-कामाग्निना। अन्तर्दह्यमानः-हृदये दह्यमानः। गुरुजनत्रपया-श्रेष्ठा जना जानीयुरिति लज्जया। सद्यःसमुद्धृताद्रारविन्दशयनम्-तत्कालोत्पाटितकमलशय्याम्। सरसबिसलताजालानि-आर्द्रमृणालानि। गात्रेष्वकरोत्-शरीरे स्थापितवान्। जललवरूपो-जलबिन्दुस्वरूपो यो मौक्तिकक्षोदः-मुक्ताचूर्णं तेन तारकितानि-सनक्षत्राणि अजठरपद्मिनीपत्राणि-अजीर्णकमलदलानि। पार्श्वेऽप्यकारयत्-समीपेऽप्यानीतवान्। कुसुमपल्लवस्रस्तररचनाम्-पुष्पपत्रशय्याकल्पनाम्। आदिदेश-आज्ञापितवान्।

करने में लाज नहीं लगती है? काम के प्रहार से मूर्च्छिता कादम्बरी को होश में लाने के लिये वह उठा लेता, स्वेद जल छिड़का करता और श्वास वायु किया करता था। उसके शरीर में सदा होते रहने वाले रोमाञ्च यह प्रकट करते थे कि उसे कादम्बरी के चैतन्य-लाभ से हर्ष हो रहा है। चन्द्रापीड का मन कादम्बरी से पूछने चला जाता कि हृदयवेदना असह्य तो नहीं हो रही है, और उस स्थिति में वह शून्यहृदय हो जाया करता था। वह कादम्बरी की बातें सुन सके इसलिये सदा मौन रहा करता था। उसकी आँखों के सामने कादम्बरी का मुख रहा करता था अतएव वह दूसरी चीज को देख नहीं पाता था। उसका मन चन्द्रमण्डल में भी नहीं रमता था। कादम्बरी की बातें उसके कानों में गूँजा करती थीं, जिससे उसके कान अन्य शब्द नहीं सुनते थे, वीणा की आवाज भी बाहर ही रह जाती थी। सूक्तियाँ भी उनमें नहीं प्रवेश पाती थीं। मित्रों के वचन भी रूखे प्रतीत होते थे। बान्धवों के वचन भी सुखावह नहीं लगते थे। चन्द्रापीड किसी के सामने नहीं होता था क्योंकि उसे डर लगता था कि कहीं वह उसके भाव न समझ लें। सतत प्रज्वलित कामाग्नि से भीतर जलते रहने पर भी गुरुजन की लज्जा से सद्यः-समुद्धृत कमलपत्र के शयन पर नहीं सोता था। कमल के गीले नालों को शरीर पर नहीं डालता था। जल की

---

१. कर्णे।

रचनामादिदेश। नानवरतधारानिपातोच्छ्वसितशिशिरसीकराबद्धदुर्दिनं ददर्शापि धारागृहम्। न मकरन्दसंततसंपातशीतलाभ्यन्तराणि हर्म्योद्यानलताभवनान्यप्यसेवत। न मलयजजललुलितपृष्ठेषु मणिकुट्टिमेष्वप्यलुठदिच्छया। न तुहिनकरकरनिकरसंक्रान्तिहृद्येषु ललनाकरकलितचन्द्रकान्तमणिदर्पणेष्वप्यसंक्रामयदात्मसंपातम्। किं बहुना। नाश्यानहरिचन्दनरसचर्चामप्याचरणाददापयत्।

एवमेव केवलं रात्रौ दिवा चाकृत[1]निर्वृतिज्वलताप्यदहनात्मकेन दहताप्यक्षतस्नेहेन्धनेन दुःखानुभावनायेव भस्मसादकुर्वता मदनदहनेनान्तर्बहिश्च क्वाथ्यमानदेहः शोषमगात्। आर्द्रतां पुनः प्रतिक्षणाधीयमानवृद्धिं नात्याक्षीत्। एवं च निष्प्रतिक्रियतया दुस्त्यजतया वातिविसंष्ठुलेनोपास्यमानोपि मनसिजेनाकारमेव लोकलोचनेभ्यो रक्षन्न कुसुमशर-

---

अनवरतं-सततं यो धारानिपातः तेन उच्छ्वसिताः-उत्पतिताः ये सलिलसीकराः-जलबिन्दुसमुदयास्तैराबद्धं दुर्दिनं-वृष्टिदिनं यत्र तत्तथा। धारागृहम्-यन्त्रधाराभवनम्। मकरन्दस्य-पुष्पपरागस्य सन्ततसंपातेन-अनवरतनिपातेन शीतलम् अभ्यन्तरम् येषां तानि तथोक्तानि। हर्म्योद्यानलताभवनानि-प्रासाद-संलग्नोद्यानवर्तिलताकुञ्जानि।

मलयजजललुलितपृष्ठेषु-चन्दनरससिक्तोपरिभागेषु। मणिकुट्टिमेषु शीतलमणिनिर्मितकुट्टिमेषु। इच्छयाऽलुठत् शरीरं शिशिरयितुं यथेच्छं लुठितवान्। तुहिनकरस्य चन्द्रस्य करनिकराः किरणसमूहास्तेषां संक्रान्त्या प्रवेशेन हृद्येषु रमणीयेषु। ललनाकरकलितचन्द्रकान्तमणिदर्पणेषु-वनिताकरोपनीतचन्द्रकान्तमणिदर्पणेषु। असंक्रामयत्-स्वं प्रतिबिम्बं प्राहितवान्। समक्रामयदिति तु युक्तः पाठः। आश्यानहरिचन्दनरसचर्चाम्-गाढचन्दनलेपम्।

अकृतनिर्वृति-विना शान्तिम्। ज्वलता-अन्तर्दाहं जनयता। अदहनात्मकेन-अदाहकेन। दहता-दाहं जनयता। अक्षतस्नेहेन्धनेन-असमाप्तिंगतप्रेमरूपकाष्ठेन। कामाग्नेरन्यन्तरापेक्षया व्यतिरेकं बोधयितुमिमे विशेषणे प्रयुज्येते, अन्यो वह्निर्यदि ज्वलति तदा दहति, अथ दहति, तदा इन्धनं समापयति, अयं च कामाग्निरहर्निशं ज्वलन्नपि देहं न समापयति, अन्तर्दहन्नपि स्नेहरूपमिन्धनं न समापयति। दुःखानुभावनाय-दुःखान्यनुभावयितुम्। भस्मसादकुर्वता-भस्मभावमप्रापयता। मदनदहनेन-कामाग्निना। क्वाथ्यमानदेहः-शोष्यमाणशरीरः। शोषमगात्-शुष्कतां यातः। आर्द्रतां क्लिन्नताम् सरसताम् इति यावत्। शुष्यमाणस्याप्यार्द्रतेति विरोधः, कायिके शोषे जायमानेऽपि मनसः सरसता संभवतीति तत्परिहारश्च-प्रतिक्षणाधीयमानवृद्धिम्-अनुक्षणमुपचीयमानाम्। निष्प्रतिक्रियतया-अशक्यप्रतिकारेण। दुस्त्यजतया-त्यक्तुमशक्यतया। अतिविसंष्ठुलेन-अतिविषमेण। उपास्यमानः-आश्रीयमाणः। आकारम्-

---

बूँदों से भरे प्रौढ़ कमलपत्रों को समीप में भी नहीं आने देता था। फूल तथा पल्लवों की शय्या का आदेश भी नहीं करता था। सतत धारा के गिरते रहने से दुर्दिनायमान धारागृह का यह दर्शन भी नहीं करता था। प्रासाद-समीपवर्ती उद्यान के लतागृहों में—जो मकरन्दसम्पात से शीतल थे—वह झाँकता भी नहीं था। अपनी इच्छा से वह मलयज-जलसिक्त मणिकुट्टिम पर पीठ के बल नहीं लेटता था। ललनाओं द्वारा आनीत चन्द्रमा की किरणों से शीतल चन्द्रकान्तमणि-दर्पण में वह अपना चेहरा नहीं देखता था। अधिक क्या कहा जाय, गाढ़े चन्दन के लेप की वह चर्चा भी नहीं किया करता था।

इस प्रकार उसकी कामाग्नि रात-दिन जला करती थी। वह जलाती नहीं थी। दिन-रात उसके जलते रहने पर स्नेह रूप इन्धन समाप्त नहीं होते थे, दुःख देने के लिये ही वह उसे भस्म नहीं कर देती थी। इस प्रकार कामाग्नि से उसकी देह क्वथित होती-होती सूख गई। इस स्थिति में भी प्रतिक्षण वर्द्धिष्णु सहृदयता का त्याग उसने नहीं किया। इस प्रकार कन्दर्प का कोई प्रतीकार नहीं था, उसका त्याग भी नहीं हो सकता था, कन्दर्प सदा उसके

---

१. निर्वृतिराज्वलता, निर्वृतिनाज्वलता।

सायकेभ्यो जीवितम्। तनोरेव तानवमङ्गीचकार न लज्जायाः। शरीरस्थितावेवानादरं कृतवान्न कुलक्रमस्थितौ। प्रजा एवान्वरुध्यत न मन्मथोत्कलिकाः। सुखमेवावधीरयामास न धैर्यम्। एवं चास्य पुरः कादम्बरीरूपगुणावष्टम्भाहितप्राणेन बलवतानुरागेणाकृष्यमाणस्य पश्चाद्गुरुजनप्रतिबन्धदृढतरेण महीयसा स्नेहेन च वार्यमाणस्य गम्भीरप्रकृतेः सरित्पतेरिव चन्द्रमसा सुदूरमुल्लास्यमानस्यापि मर्यादावशादात्मानं स्तम्भयतः कथंकथमपि कतिपयेष्वपि सहस्रसंख्यायमानेष्वतिक्रान्तेषु वासरेष्वेकदा रणरणकसकाशादिवान्तरलब्धावस्थानो निर्गत्य बहिर्नगर्यास्तरंगसङ्गशीतसीकरासारमरुन्ति कलक्वणितकलहंसचक्रवाकचक्रवालाक्रान्तसरससुकुमारसैकतानि सिप्रातटान्यनुसरन्नातिदूरमिव चरणाभ्यामेव बभ्राम। भ्राम्यंश्च रुद्रतनयायतनं रयेणागच्छतः सावष्टम्भया गत्या त्वरितखुरसंचारान्युज्यमानांश्च विरलीभवतश्च संघट्टमानांश्च विश्लिष्यतश्चोत्सहमानांश्च लम्बमानांश्च परापततश्च विच्छिन्नपङ्क्तिव्यव-

---

मनोभावम्। कामपीडितश्चन्द्रापीडो निजं मनोभावं लोकेभ्यो गोपयितुं प्रभूभवन्नपि कामबाणेभ्यः स्वप्राणान् रक्षितुं नाक्षमतेत्यर्थः। तनोः-शरीरस्य। तानवम्-कृशताम्। शरीरं दुर्बलं जातं न पुनरसौ लज्जां त्यक्त्वा स्वमनोगतं प्रकटयितुं प्राभूदित्यर्थः। शरीरस्थितौ-देहदशायाम्। कुलक्रमस्थितौ-कुलमर्यादायाम्। शरीरदशामुपेक्षमाणोऽपि कुलमर्यादां नोपेक्षितवानित्याशयः। अन्वरुध्यत-अनुरोधं कृतवान्। मन्मथोत्कलिकाः-कामोत्कण्ठाः। अवधीरयामास-तिरस्कृतवान्। धैर्यम्-गभीरभावम्। कादम्बरीरूपगुणावष्टम्भाहितप्राणेन-कादम्बर्या रूपेण गुणैश्च योऽवष्टम्भो-निरोधस्तेन आहितप्राणेन-जीवता। बलवता-प्रबलेन। गुरुजनप्रतिबन्धदृढतरेण-पित्रोरनुरोधवशाद् दृढीभूतेन। वार्यमाणस्य-निरुध्यमानस्य। यथा समुद्रश्चन्द्रमसा सुदूरमुल्लास्यमानोऽपि मर्यादावशादात्मानं स्तम्भयति तथा चन्द्रापीडोऽपि कादम्बरीरूपगुणविजृम्भितेन गुरुजनप्रतिबन्धदृढीभूतेन च स्नेहेन सुदूरमुल्लास्यमानोऽपि गभीरप्रकृतितया मर्यादावशादात्मानं स्तम्भयामासेत्येतत्प्रघट्टकार्थः। कतिपयेषु-अल्पसंख्यकेषु। सहस्रसंख्यायमानेषु-सहस्रसंख्यकेष्विव प्रतीयमानेषु। रणरणकसकाशात्-अन्तर्द्वन्द्ववशात्। अलब्धावस्थानः-निष्क्रियतया स्थातुमशक्नुवन्। नगर्याः-उज्जयिन्याः। बहिर्निर्गत्य-बहिर्भूय। तरङ्गसङ्गेन-वीचीसम्पर्केण शीतः-शीतलः यः सीकरासारः-जलकणवृष्टिः तद्युक्तो मरुत्-वायुर्येषु तानि। कलक्वणिताः-मधुरशब्दाः ये कलहंसाः-चक्रवाकाश्च तेषां चक्रवालेन-मण्डलेन आक्रान्तम्-अध्यासितम् सरसम्-आर्द्रम् सुकुमारं-कोमलं सैकतं-बालुकाराशिर्यत्र तानि। शिप्रातटानि तदाख्यनदीतटानि। अनुसरन्-सञ्चरन्। चरणाभ्यामेव-विनैव किमपि यानम्। रुद्रतनयायतनम्-कार्त्तिकेयमन्दिरम्। रयेण-वेगेन। आगच्छतः-परापततः। सावष्टम्भया गत्या-सलीलगमनेन। त्वरितखुरसञ्चारान्-सत्वरखुरनिक्षेपान्। युज्यमानान्-एकत्रीभवतः। विरलीभवतः-गतिशीघ्रतावशाद्विरलीभवतो वियुज्यमानान्। सङ्घट्टमानान्-सहभवतः। विश्लिष्यतः-वियुज्यमानान्।

पास था, फिर भी वह अपने को लोगों की आँखों से बचाता था, कामशरों से अपने को नहीं बचा सकता था। वह शरीर को ही कृश करता रहा, लज्जा को नहीं कम कर सका। शरीर का ही उसने अनादर किया, कुलगौरव का नहीं। उसने प्रजाओं का ही अनुरोध किया कामजनित उत्कण्ठा का अनुरोध नहीं किया। सुख का ही त्याग किया धैर्य का नहीं। कादम्बरी के रूप तथा गुणों पर उसके प्राण अटक रहे थे, बलवान प्रेम से वह आकृष्ट हो रहा था, गुरुजन के प्रतिबन्ध से दृढ़तर स्नेह उसे रोक रहा था, वह अति गंभीर स्वभाव का था, फिर भी जैसे चन्द्रमा सागर में उल्लास उत्पन्न करता है उसी तरह वह उल्लसित हो रहा था, किसी तरह वह मर्यादावश अपने को नियन्त्रित कर रहा था, हजारों दिनों की बराबरी करने वाले चन्द दिनों के बीतते-बीतते एक समय उसके हृदय में कुछ ऐसी वेदना उठी कि वह स्थिर नहीं रह सका, वह गाँव से बाहर निकला और तरङ्गशीतल वायुयुक्त, मधुर शब्दकारी हंसों से युक्त तटशाली, सिप्रा नदी के किनारे-किनारे चलने लगा। पैदल चलते-चलते उसने कार्त्तिकेय मन्दिर की ओर आते हुए कुछ घोड़े देखे, जो गम्भीर गति से चले आ रहे थे, जिनके पैर जल्दी-जल्दी

---

१. 'नातिदूर'''संचारान्' नास्ति।

स्थानान्स्खलतोपि पततोऽप्यवसीदतोपि यथाशक्ति सादिभिरुत्पीडितान्निःसहतया दूरागमनखेदमतित्वरयागमनकार्यगौरवमावेदयतो दूरादेवातिबहूनिव तुरङ्गमानद्राक्षीत्। दृष्ट्वा चोत्पन्नकुतूहलस्तेषां परिज्ञानायान्यतमं पुरुषं प्राहिणोत्। आत्मनाप्यूरुदघ्नेन पयसोत्तीर्य शिप्रां तस्मिन्नेव भगवतः कार्तिकेयस्यायतने तत्प्रतिवार्तां प्रतिपालयन्नतिष्ठत्।

तत्रस्थश्च कुतूहलात्तस्मिन्नेव वाजिवृन्दे निक्षिप्तदृष्टिः पार्श्वस्थितां हस्तेनाकृष्य पत्रलेखामवादीत्। 'पत्रलेखे, पश्य य एष पुर एवार्ककिरणनिवारणोल्लासितया प्रेङ्खदालोललम्बशिखया मयूरपिच्छमय्या छत्रिकया[1] दुर्विभाव्यवदनोऽश्ववारोऽदृश्यते केयूरकोऽयम्' इति। यावत्तया सहैवं निरूपयत्येव तावत्तस्मात्प्रहितपुरुषादुपलब्धात्मावस्थानं दृष्टिपथ एवावतीर्य तुरंगमादापतन्तं दूरात् द्रुतागमनधूलीधूसरश्यामीकृतशरीरं परिवर्तितमिवेतराकारेणोज्झिताङ्गरागसंस्कारान्मलिनेन वपुषा विषादशून्येन च मुखेनान्तर्दुःखसंभारपिशुनया च

उत्सहमानान्-धृतोत्साहान्। लम्बमानान्-विलम्बं कुर्वतः। परापततः-आगच्छतः। विच्छिन्नपङ्क्तिव्यवस्थानान्-त्रुटितपङ्क्तीन्। स्खलतः-गतिविच्छेदं प्राप्नुवतः। अवसीदतः-शाम्यतः। सादिभिः-अश्वारोहिभिः। उत्पीडितान्-त्वरितगमनाय ताड्यमानान्। आगमनकार्यगौरवम्-आगमने लक्ष्यभूतस्य कार्यस्य महत्त्वम्। आवेदयतः-सूचयतः। अतिबहून्-सुबहून्। तुरङ्गमान्-अश्वान्। उत्पन्नकुतूहलः-सञ्जातकौतुकः। परिज्ञानाय-परिचयाय कुत आगच्छन्ति कुत्र गच्छन्ति चेति ज्ञानाय। प्राहिणोत् प्रेषितवान्। ऊरुदघ्नेन-जानुमितेन। पयसा-जलेन। आयतने-मन्दिरे। प्रतिपालयन्-प्रेषितस्य पुरुषस्यागमनं प्रतीक्षमाणः।

तत्रस्थः-कार्तिकेयमन्दिरस्थितः। वाजिवृन्दे अश्वसमुदये। निक्षिप्तदृष्टिः। दत्तनेत्रः। पार्श्वस्थिताम् समीपेऽवस्थिताम्। आकृष्य स्वसमीपमानीय। अर्ककिरणनिवारणोल्लासितया-सूर्यकरनिरोधाय प्रसारितया। प्रेङ्खदालोललम्बशिखया-चलचञ्चलशिखया। मयूरपिच्छमय्या-मयूरपिच्छनिर्मितया। छत्रिकया-लघुना छत्रेण। दुर्विभाव्यवदनः-अदृश्यमुखः। अश्ववारः-अश्वारोही। तया-पत्रलेखया। एवं-पूर्वोक्तप्रकारेण। निरूपयति-विचारयति। उपलब्धात्मावस्थानम्-ज्ञातचन्द्रापीडावस्थितिम्। दृष्टिपथे-समक्षे। तुरङ्गमात् अवतीर्य-अश्वादवरुह्य। आपतन्तम्-आगच्छन्तम्। द्रुतागमनधूलीधूसरश्यामीकृतशरीरम्-शीघ्रागमनरजोधूसरतया कृष्णकायम्। इतराकारेण परिवर्तितम्-अन्यमाकारमापन्नम्। उज्झिताङ्गरागसंस्कारान्मलिनेन-अङ्गरागस्य संस्कारस्य स्नानादेश्च त्यागेन मलदूषितेन। वपुषा-शरीरेण। विषादशून्येन विषण्णतया निष्प्रभेण। अन्तर्दुःखसंभारपिशुनया हृदयस्थितं मन्युं सूचयन्त्या। अपृष्टाम-

---

उठा करते थे, जो कभी जुड़ते तथा कभी बिछुड़ते थे, जो कभी उत्साहयुक्त तथा कभी मन्द पड़ जाते थे, जो पंक्ति में नहीं चलकर छिटपुट चल रहे थे, जो गिरते-पड़ते चले आ रहे थे फिर भी जिन्हें सवार पीट रहे थे, और जिनकी संख्या प्रचुर थी। उन घोड़ों को देखकर चन्द्रापीड़ की उत्कण्ठा हुई, उनकी जानकारी के लिए उसने एक आदमी भेजा। स्वयं भी जाँघ भर पानी में सिप्रा पार करके उसी कार्तिकेय-मन्दिर में उनकी खबर की प्रतीक्षा करता रहा।

वहाँ रहते हुए चन्द्रापीड़ ने उन घोड़ों पर दृष्टि डाली, और बगल में खड़ी पत्रलेखा को हाथ से अपनी ओर खींचकर कहा—पत्रलेखे, यह जो सूर्यकिरणों से बचाव के लिये फैलाई गई लम्बी शिखायुक्त मयूरपिच्छकी छतरी से आवृत मुखवाला सवार आ रहा है, वह केयूरक है। जब तक वह पत्रलेखा के साथ उस ओर देख ही रहे थे, तब तक भेजे गये आदमी से उनको वहाँ जानकर आये हुए केयूरक को उन्होंने देखा। वह उनके सामने घोड़े से उतर रहा था, बहुत दूर की घुड़सवारी में धूली से उसका शरीर श्याम हो रहा था, अङ्गसंस्कार के छूट जाने से उसका आकार इतना बदल गया था कि वह दूसरा ही मालूम पड़ता था। विषाद से शून्य चेहरे

---

१. वेत्रिकया।

दृष्ट्या दूरत एवापृष्टामपि कष्टां कादम्बरीसमवस्थामनक्षरमावेदयन्तं केयूरकमद्राक्षीत्। दृष्ट्वा च दर्शितप्रीतिरेह्येहीत्याहूय ससंभ्रमप्रणतोपसृतमतिदूरप्रसारिताभ्यां दोर्भ्यां पर्यष्वजत तम्। अपसृत्य पुनः कृतनमस्कारे तस्मिन्ननामयप्रश्नवचसा संवर्ध्य सर्वानेव तत्सहायान् पुरः स्थितं पुनः पुनः सस्पृहमालोक्य केयूरकमवादीत्। 'केयूरक त्वद्दर्शनेनैव भद्रं देव्याः सपरिवाराया इत्येतदावेदितम्। आगमनकारणमपि विश्रान्तः सुखितः कथयिष्यसि'। इत्युक्त्वा संभ्रान्तागतारोहकढौकितां करिणीमारुह्य कुतोस्य जनस्य सुखितेत्यभिदधानमेव केयूरकं पृष्ठतः पत्रलेखां चारोप्य स्वभवनमयासीत्। तत्र च निषिद्धाशेषराजलोकप्रवेशः प्रविश्य वल्लभोद्यानं सपरिवारेण केयूरकेण सहोत्ताम्यता चेतसा चेतितमेव दिवसकरणीयं निर्वर्तयामास। निर्वर्त्य च पत्रलेखाद्वितीयः सुदूरोत्सारितपरिजनः केयूरकमाहूयाब्रवीत्। 'केयूरक, कथय देव्याः कादम्बर्याः समदलेखाया महाश्वेतायाश्च संदेशम्।'

इत्यभिहितवति चन्द्रापीडे पुरः सप्रश्रयमुपविश्य केयूरकोप्यगादीत्। 'देव किं विज्ञा-

---

अकृतजिज्ञासाम्। कष्टाम्-दुःखपूर्णाम् । कादम्बरीसमवस्थाम्-कादम्बर्या दशाम्। अनक्षरम्-विनैव अक्षरोच्चारणम्। आवेदयन्तम्-कथयन्तम् । दर्शितप्रीतिः-प्रकटीकृतानुरागः । एहि-समीपमागच्छ। आहूय-आकार्य। ससंभ्रमप्रणतोपसृतम् संभ्रमेण कृतप्रणामं समीपागतञ्च। अतिदूरप्रसारिताभ्याम्-अतिदूरादेव विस्तारिताभ्याम्। दोर्भ्याम्-बाहुभ्याम् । पर्यष्वजत-आलिङ्गितवान्। तम्-केयूरकम्। अपसृत्य-आलिङ्गनपाशादात्मानं मोचयित्वा। कृतनमस्कारे-आलिङ्गनसत्कारेणात्मानमुपकृतं सूचयितुं पुनः कृतप्रणामे। तस्मिन्-केयूरके। अनामयप्रश्नवचसा-कुशलप्रश्नेन । संवर्ध्य-आदृत्य। तत्सहायान्-केयूरकसहागतान्। पुरःस्थितम्-अग्रे वर्तमानम्। सस्पृहम्-साभिलाषम्।

भद्रम्-कुशलम्। देव्याः-कादम्बर्याः। सपरिवारायाः-सपरिजनायाः । आगमनकारणम्-स्वागमनहेतुम्। विश्रान्तः-प्राप्तविश्रामः। सुखितः-प्राप्तसुखः । संभ्रान्तागतारोहकढौकिताम्-ससंभ्रममागतेन हस्तिपकेनोपनमिताम्। करिणीम्-हस्तिनीम्। सुखिता-सुखप्राप्तिः। पृष्ठतः-स्वपृष्ठभागे। आरोप्य-हस्तिनीपृष्ठे आरोहणं कारयित्वा। तत्र-स्वभवने। निषिद्धाशेषराजलोकप्रवेशः-निवारितसमस्तभृत्यवर्गागमनः । वल्लभोद्यानम्-अतिप्रियं स्वीयमारामम् । उत्ताम्यता-अधीरेण । अचेतितम्-विनैव ज्ञानम् । दिवसकरणीयम्-दिनकृत्यम् । निर्वर्तयामास-संपादितवान् । पत्रलेखाद्वितीयः-पत्रलेखया सहितः। सुदूरोत्सारितपरिजनः-दूरीकृतभृत्यवर्गः। संदेशम्-वाचिकम्।

अभिहितवति-उक्तवति। सप्रश्रयम्-नम्रभावेन । अगादीत्-अवदत् । संदेशलवः-स्वल्पोऽपि

से तथा अन्तर्दुःखपूर्ण दृष्टि से ही वह बिना पूछे ही कादम्बरी की दुरवस्था बिना शब्द के कह रहा था। उसे देखते ही स्नेह उमड़ पड़ा, समीप बुलाया, उसके दौड़कर आने तथा प्रणाम करने पर चन्द्रापीड़ ने बाहुओं को फैलाकर उसे गले लगा लिया। अलग होकर उसने पुनः प्रणाम किया, चन्द्रापीड़ ने उससे कुशल पूछी, अन्यान्य उसके साथियों को भी कुशल प्रश्न द्वारा सत्कृत किया, अनन्तर सम्मुख स्थित केयूरक को सस्पृह नयन से देखकर चन्द्रापीड़ ने कहा—केयूरक, तुम्हारा यह दर्शन ही बता रहा है कि सपरिवार कादम्बरी सकुशल हैं। पहले विश्राम कर लो, बाद में आने का कारण बताना। इस प्रकार कहकर शीघ्रता से लाकर बैठाई गयी करिणी पर आरूढ़ होकर-मुझे कहाँ सुख ? इस प्रकार कहते हुए केयूरक तथा पत्रलेखा को भी करिणी पर बैठाकर चन्द्रापीड़ घर चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने वल्लभोद्यान में प्रवेश किया, समस्त राजवर्ग का वहाँ आना रुकवाया, बिना जाने सारे दिनकृत्य समाप्त कर दिये, दिनकृत्य समाप्त करके केवल पत्रलेखा को पास में रखा, अन्य परिजन को दूर हटा दिया, अनन्तर केयूरक को बुलाकर पूछा—केयूरक, अब तुम देवी कादम्बरी, मदलेखा, तथा महाश्वेता का सन्देश कहो। चन्द्रापीड़ के इस प्रकार पूछने पर केयूरक ने नम्रभाव से सामने बैठते हुए कहा—

महाराज, मैं क्या कहूँ। मैं देवी कादम्बरी, मदलेखा, अथवा महाश्वेता का कोई सन्देश नहीं लाया हूँ।

पयामि। नास्ति मयि संदेशलवोपि देव्याः कादम्बर्याः समदलेखाया महाश्वेताया वा। यदैव पत्रलेखां मेघनादाय समर्प्यागतेन प्रतिनिवृत्य मयायं देवस्योज्जयिनीगमनवृत्तान्तो निवेदितस्तदैवोर्ध्वं विलोक्य दीर्घमुष्णं च निश्वस्य सनिर्वेदम् 'एवमेतत्' इत्युक्त्वोत्थाय महाश्वेता पुनस्तपसे स्वमेवाश्रमपदमाजगाम। देव्यपि कादम्बरी झटिति हृदये द्रुघणेनेवाभिहता, अतर्कितापतिताशनिनेव मूर्ध्नि ताडिता, अन्तःपीडाकूणननिमीलितेन चक्षुषा मूर्च्छितेव मुषितेव परिभूतेव वञ्चितेव चोन्मुक्ते चान्तःकरणेन, अविदितमहाश्वेतागमनवृत्तान्ता चिरमिव स्थित्वोन्मील्य नयने विलक्षेव लज्जितेव विस्मृतेव विस्मयस्तब्धदृष्टिर्महाश्वेतायाः कथयेति सासूयमिव मामादिश्य मदलेखायां पुनर्वलितमुखी सविलक्षस्मितं 'मदलेखे अस्ति केनचिदपरेणैतत्कृतं करिष्यते वा यत्कुमारेण चन्द्रापीडेन' इत्येवमभिदधत्युत्थाय निवारिताशेषपरिजनप्रवेशा शयनीये निपत्योत्तरवाससोत्तमाङ्गमवगुण्ठ्य निर्विशेषहृदयवेदना मदलेखामप्यनालपन्ती सकलमेव तं दिवसमस्थात्। परेद्युश्च प्रातरेवोपसृतं मामेवं दृढतरशरीरेषु म्रियमाणेष्विव भवत्स्वहमीदृशीमवस्थामनुभवामीत्युपालभमानेव न

संदेशः। मेघनादाय समर्प्य-मेघनादस्य समीपे स्थापयित्वा। प्रतिनिवृत्य-परावृत्य। देवस्य-भवतः। उज्जयिनीगमनवृत्तान्तः-उज्जयिनीसमागमनसमाचारः। ऊर्ध्वं विलोक्य-उपरि दृष्टिं निक्षिप्य। सनिर्वेदम्-सखेदम्। एवमेतत्-किमिदं सत्यम्। तपसे-तपस्यां कर्तुम्। द्रुघणेन-द्रुर्वृक्षः हन्यते येन तेन कुठारेण। अभिहता-आहता। अतर्कितापतिताशनिना-अज्ञातपतितेन वज्रेण। अन्तःपीडाकूणननिमीलितेन-हार्दिकदुःखमुद्रितेन। चक्षुषा-नेत्रेण। मूर्च्छिता-सञ्जातमूर्च्छा। मुषिता-लुण्ठिता। परिभूता-अनादृता। उन्मुक्ता-परित्यक्ता। अविदितमहाश्वेतागमनवृत्तान्ता-अज्ञातमहाश्वेतागमना। उन्मील्य-विकास्य। विलक्षा-लज्जिता। विस्मयस्तब्धदृष्टिः-आश्चर्यस्तिमितनेत्रा। महाश्वेतायाः कथय चन्द्रापीड उज्जयिनीं प्रयात इति समाचारं महाश्वेतायै निवेदय। सासूयम्-सेर्ष्यम्। महाश्वेता चन्द्रापीडमानीय कादम्बर्या सह तत्परिचयं कारितवती, तत एव च चन्द्रापीडस्याकस्मात्ततः प्रयाणे महाश्वेतां प्रति कादम्बर्याः सासूयभावः कविना निबद्धः। मदलेखायां पुनर्वलितमुखी-पुनर्मदलेखां पश्यन्ती। सविलक्षस्मितम्-सलज्जहसितम्। अपरेण-चन्द्रापीडातिरिक्तेन। अभिदधती-कथयन्ती। निवारिताशेषपरिजनप्रवेशा-निषिद्धसमस्तभृत्यवर्गागमना। शयनीये शय्यायाम्। निपत्य-पतित्वा। उत्तरवाससा-उत्तरीयेण। उत्तमाङ्गम्-शिरः। अवगुण्ठ्य-आवृत्य। निर्विशेषहृदयवेदना-समभावावस्थितमनोदुःखा। अनालपन्ती-अभाषमाणा। सकलमेव दिवसम्-सम्पूर्णमहः। अत्यन्तसंयोगे द्वितीया। परेद्युः-परदिने। उपसृतम्-समीपमायातम्। एवं दृढतरशरीरेषु-इत्थं बलवत्कायेषु। म्रियमाणेषु-जीवत्सु। ईदृशीमव

पत्रलेखा को मेघनाद के जिम्मे लगाकर मैं जब लौटा, और मैंने आपके उज्जयिनी चले जाने की बात कही, तत्काल महाश्वेता ने आकाश की ओर देखकर लम्बी सांस ली, और 'यह बात है' इस प्रकार कहती हुई वह फिर तपस्या करने के लिये अपने आश्रम को चल पड़ी। देवी कादम्बरी को भी ऐसा मालूम पड़ा मानो किसी ने माथे पर कुल्हाड़ी मार दी। उसके ऊपर अतर्कित वज्रपात-सा हुआ। मनोव्यथा से उसकी आंखें मुंद गईं, वह मूर्च्छितसी, लुटी हुईसी, अनादृतसी एवं ठगीसी हो गई। उसका हृदय कहीं भागसा गया, उसे यह भी पता नहीं चला कि महाश्वेता कब चली गई, बड़ी देर के बाद उसने आंखें खोलीं, वह उदास लज्जित एवं भूलीसी हो रही थी, विस्मय से उसकी आंखें निःस्पन्द थी, उसने मुझे क्रोध से कहा कि महाश्वेता को खबर कर दो, अनन्तर कादम्बरी ने गरदन घुमाकर लज्जा की मुस्कुराहट के साथ मदलेखा से कहा—मदलेखे, कुमार चन्द्रापीड़ ने जैसा कार्य किया है क्या कभी किसी दूसरे ने ऐसा किया है या करेगा? इस प्रकार कहती हुई वह उठी, शयनगृह में सभी के आने का निषेध कर दिया, बिछावन पर गिर पड़ी, चादर से मुँह ढक लिया, उसकी वेदना वैसी ही बनी रही, उसने मदलेखा से भी बातें नहीं कीं, दिनभर उसी तरह पड़ी रही। दूसरे दिन सबेरे मैं उसके पास गया, उसने कहा—तुम लोग मोटी देह लेकर जीवित होकर भी मुर्दा बने पड़े हुए हो

मे भवद्भिः पार्श्ववर्तिभिः कार्यमिति निर्भर्त्संयन्तीव किं मे पुरस्तिष्ठसीत्यन्तर्मन्युवेगेन तर्जयन्तीव च बाष्पपूरोद्रेकोत्कम्पपर्याकुलया दृष्ट्या चिरमालोकितवती। तथा दृष्टश्च दुःखितया देव्यादिष्टमेव गमनायात्मानं मन्यमानोहमनिवेद्यैव देव्यै देवपादमूलमुपागतोस्मि। तच्च देवैकशरणजनजीवितपरित्राणाकुलमतेः केयूरकस्य विज्ञापनाकर्णनावधानदानेन प्रसादं कर्तुमर्हति देवः। देव श्रूयताम्। यदैव ते प्रथमागमनेनामोदिना मलयानिलेनेव चलितं समस्तमेव तत्कन्यकालतावनं तदैव सकलभुवनमनोभिरामं भवन्तमालोक्य वसन्तमिव रक्ताशोकतरुलतामिवारूढवान्मकरकेतनस्ताम्। इदानीं तु महान्तमायासमनुभवति त्वदर्थे कादम्बरी। तस्या हि दिनकरोदयादारभ्य दिवसकरकान्तोपलानलस्येव निःशब्दस्यापवनेरितस्याधूमस्याभस्मनः प्रज्वलतो मकरध्वजहुतभुजो न परिजनकरकमलकलितकोमलपल्लवलास्यलीलया

स्थाम्-एनां दशाम्। उपालभमाना-उपालम्भं कुर्वंती। पार्श्ववर्तिभिः-समीपस्थितैः। निर्भर्त्संयन्ती-तिरस्कुर्वंती। अन्तर्मन्युवेगेन-हृदयदुःखवेगेन। तर्जयन्ती-भीषयन्ती। बाष्पपूरोद्रेकपर्याकुलया-अश्रुप्रवाहव्याकुलया। चिरम्-बहुकालपर्यन्तम्। आलोकितवती-दृष्टवती।

तथा—साश्रुनयनम्। दुःखितया-खिन्नया। देव्या-कादम्बर्या। गमनाय आदिष्टम्-गन्तुमाज्ञाप्यमानम्। अनिवेद्यैव देव्यै-कादम्बर्यै गच्छामीत्यनुक्त्वैव। देवपादमूलम्-भवदन्तिकम्। उपागतोऽस्मि-आयातोऽस्मि। देवैकशरणजनपरित्राणाकुलमतेः-भवच्छरणागतरक्षाव्यग्रस्य। विज्ञापनाकर्णनावधानदानेन-कथनश्रवणे सावधानताऽवलम्बनेन। प्रसादम्-अनुग्रहम्। ते-तव चन्द्रापीडस्य। प्रथमागमनेन-प्रथममिलनेन। आमोदिना-सुगन्धिना। मलयानिलेन-दक्षिणवातेन। यथा मलयमारुतेन लतावनं चलति तथा त्वदागमनेन तत्रस्थं समस्तमेव कन्याजातं चलतिस्मेति रूपकार्थः। सकलभुवनमनोऽभिरामम्-समस्तसंसारमनोरमम्। यथा वसन्तमालोक्य मदनः रक्ताशोकलतामारोहति तथा भवन्तमालोक्य मदनः कादम्बरीमारूढवानिति समासार्थः। वसन्ते समागते रक्ताशोकलताः कामास्त्रतया तदुद्दीपकतां भजन्त इति कृत्वा कामकर्तृकं तदारोहणमत्र निबद्धम्। महान्तम्-दीर्घम्। आयासम्-खेदम्। दिनकरोदयात्-प्रातःकालात्। दिवसकरकान्तोपलानलस्य-सूर्यकान्तमणिनामकप्रस्तरखण्डगतवह्नेः। अशब्दस्य-विनैव शब्दम्। अपवनेरितस्य-वायुनाऽसन्धुक्षितस्य। अधूमस्य-धूमरहितस्य। अभस्मनः-भस्मशून्यस्य। यथा सूर्यकान्तमणिः सूर्योदयमारभ्य प्रज्वलति न च तस्मिन् ज्वलति कोपि शब्दो भवति, न वायुस्तं सन्धुक्षयति, न तस्मिन्धूमो भस्म वा भवति, तथैव कादम्बर्याः कामाग्नेरपि दिनं व्याप्य प्रज्वलतोऽपि शब्दवायुकर्तृकसंधुक्षणधूमभस्मभिः कोऽपि संबन्धो न जायते इति तुलना बोध्या। परिजनेति० परिजनकरकमलैः भृत्यानां हस्तरूपकमलैः कलिता अवलम्बिताः ये कोमलपल्लवास्तेषां

और मैं इस तरह की अवस्था भोग रही हूँ। इस प्रकार उलाहना देती हुई वह कहती गई—मुझे तुम जैसे परिजनों की आवश्यकता नहीं है, तुम क्यों मेरे सामने खड़े हो? इस प्रकार वह हमको लजवाती और डराती रही, अश्रुपूर्ण नयनों से वह बड़ी देर तक हमें देखती रही। दुःखित होकर कादम्बरी ने मुझे उस तरह देखा तो मुझे मालूम हो गया कि वह मुझे आपके पास जाने को कह रही है, ऐसा समझ कर बिना उन्हें पूछे मैं आपकी सेवा में उपस्थित हो गया हूँ। एकमात्र आपकी ही शरण में आई हुई कादम्बरी की रक्षा के लिये मैं व्यग्र हूँ, अतः आप कृपा करके मुझ केयूरक की बातें सावधान होकर सुनें।

आप जब पहली बार वहाँ गये थे, तो जिस प्रकार सुगन्धपूर्ण मलयानिल से सारी लतायें हिल उठती हैं उसी तरह वहाँ का सारा कन्या-समुदाय हिल उठा था, और जैसे वसन्त को देखकर कामदेव रक्ताशोक-लता पर आरूढ़ हो जाता है उसी तरह आपको देखते ही कन्दर्प कादम्बरी पर आरूढ़ हो गया। इस समय तो आपके बिना कादम्बरी बड़ी पीड़ा में पड़ी हुई है। जैसे सूर्यकान्तमणि सूर्योदय के बाद प्रज्वलित हो उठती है, जिसमें न शब्द होता है, न हवा ही चलती है, न धूम होता है और न भस्म होता है, उसी तरह आपके दर्शन के बाद उसका कामानल प्रज्वलित है। वह कामानल परिजन द्वारा कोमल पल्लव से ढँकने पर भी नहीं बुझता

प्रसरभङ्गः। नानुत्तालतालवृन्तवान्तजलजडकणिकासारसेकेन निवृत्तिः। न सरसहरिचन्दनपङ्कच्छटाच्छुरणेन च्छेदः। न विदलितमुक्ताफलवालुकापटलोद्धूलनेन व्युपरमः। नोत्कीलितयन्त्रमयकलहंसपङ्क्तिमुक्ताम्बुधारेण धारागृहेण प्रशमः। यथा यथा चलितजलयन्त्रविगलिताभिरतिशिशिरसीकरनिकरतारकिताभिरम्बुधाराभिराहन्यते तथा तथा वैद्युतानलसहोदर इव स्फुरति मदनपावकः। सुतरां च शिशिरः कुन्दकलिकाकलापमञ्जरीमिव विकासयति स्वेदजललवजालकसंततिमुपचारः। चित्रं चेदम्। मकरकेतुहुतभुजा दह्यमानमप्यग्निशौचमंशुकमिव नितरां निर्मलीभवति लावण्यम्। मन्ये च मृदुस्वभावमपि जलमिव मुक्ताफलतामुपगतं कठिनीभवत्युत्कण्ठितं हृदयमबलाजनस्य। यत्तादृशेनातिसंतापेनापि न विलीयते। बलवती खलु वल्लभजनसंगमाशा। यत्तथाविधमप्यनुभववेदनाविह्वलितप्राणमतिकष्टं प्राण्यते। किं

लास्यलीलया सञ्चरणेन प्रसरभङ्गः निवृत्तिः न। पल्लववीजनेन परिजनास्तं कादम्बर्याः कामाग्निं निवृत्तं कर्त्तुं न क्षमा इत्यर्थः। अनुत्तालः मध्यमवेगो यस्तालवृन्तस्तेन वान्तः विसृष्टः यो जलकणिकाऽऽसारः जलबिन्दुवृष्टिस्तेन निवृत्तिः उपशमो न भवतीत्यर्थः। सरसेन आर्द्रेण हरिचन्दनपङ्केन चन्दनद्रवेण यच्छुरणं लेपस्तेन छेदः निवृत्तिर्न। विदलितानां चूर्णीकृतानां मुक्ताफलानां मुक्तानां या वालुकाः तासां पटलस्य समुदायस्य उद्धूलनेन निक्षेपेण व्युपरमः समाप्तिर्न। उत्कीलितानां कीलस्थापितानां यन्त्रमयकलहंसपङ्क्तीनां समूहेन मुक्ताः याः अम्बुधारा जलप्रवाहास्तद्युक्तेन धारागृहेण जलसदनेन प्रशमः शान्तिर्न भवतीत्यर्थः। अत्र सर्वत्र कामानलस्य दुःशमतोक्ता। चलितजलयन्त्रविगलिताभिः यन्त्रद्वारा विसृष्टाभिः अतिशिशिरसीकरनिकरतारकिताभिः अत्यन्तशीतलजलबिन्दुव्याप्ताभिः जलधाराभिः जलप्रवाहैः आहन्यते शमयितुमाघातविषयीक्रियते, तथा तथा तावान् वैद्युतानलसहोदरः विद्युदग्निसदृशः स्फुरति देदीप्यते। वैद्युतो वह्निर्जलधाराभिराहन्यमानोऽपि न शान्तिमायाति तथैवायं कामाग्निरपि शीतलजलधाराभिराहतोऽपि न मनागपि शान्तिमृच्छति प्रत्युताधिकमेव दीप्यत इत्याशयः। उपमा स्फुटा। यथा शिशिरो नाम ऋतुः कुन्दकलिकाकलापमञ्जरीम् कुन्दपुष्पकलिकासमुदयम् विकासयति पुष्पभावं नयति तथैव शिशिर उपचारः जलसेकादिका क्रियाऽस्याः कामाग्निदग्धवपुषः कादम्बर्याः स्वेदजललवजालकसन्ततिः स्वेदबिन्दुपरम्परां विकासयति वर्धयति। चित्रं चेदम् अत्याश्चर्यकरमिदम्। मकरकेतुहुतभुजा–कामाग्निना। दह्यमानम्–भस्मीक्रियमाणम्। अग्निशौचमंशुकम्–पावकद्वारा संस्करणीयं वस्त्रम्, श्रूयते पूर्वमेतादृशमपि वस्त्रं यद्वह्निना संस्कृतमभूत्, तथा च दुर्गासप्तशत्याम्–'वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी' इति। यथा यथा कामाग्निना दह्यते तथा तथा अग्निशौचं वस्त्रमिव कादम्बर्या लावण्यं निर्मलीभवतीति भावः। यथा मृदुस्वभावं कोमलप्रकृति अपि जलं यदा मुक्ताफलतां याति तदा काठिन्यं लभते तद्वत् स्वभावकोमलमपि अबलाजनस्य हृदयं यदा उत्कण्ठितं–कस्यचित्प्रेम्णा तेन सह मिलनायोत्सुकं भवति तदा कठिनतां प्रपद्यत इत्यर्थः। तदेव कठिनीभवनं प्रमाणयति-यदिति० तादृशेन अनुभवैकवेद्येन अतिसन्तापेन अपि न विलीयते गलति तदतिकाठिन्यमूलकमेवेत्याशयः। बलवती–अतिसामर्थ्यशालिनी। वल्लभजनसंगमाशा–प्रियमिलनसंभावना। तदेव सामर्थ्यं प्रमाणयितुमाह–यत्तथेति० अनुभ·

है, तालव्यजन द्वारा दिये गये जलकण-सेक से भी वह शान्त नहीं होता है, हरिचन्दनपङ्कज लेप से उसमें कमी नहीं आती है, चूर्ण किये गये मोती की धूल डालने से भी उसमें न्यूनता नहीं आती है, फव्वारे द्वारा दिये गये जलप्रवाहयुक्त धारागृह में भी वह नहीं शान्त होता है, चलाये गये फव्वारों से निकली बूंदमय जलधारा से जैसे-जैसे तर किया जाता है वैसे-वैसे विद्युत् में अनल की तरह कामानल बढ़ता ही जाता है। किये गये शीतल उपचार उसके शरीर पर कुन्दकली के समान पसीने की बूँद पैदा करते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि कामाग्नि में जलते रहने पर भी उसका लावण्य अग्निशौच वस्त्र की तरह निखरता जा रहा है। मालूम पड़ता है जैसे कोमल जल मुक्तारूप में बदल जाने पर कठिन हो जाता है उसी तरह कोमल अबलाहृदय उत्कण्ठावस्था में कठिन हो जाता है। इसीलिये उस तरह के ताप में भी नहीं पिघलता है। प्रियतम से मिलने की आशा बड़ी बलवती होती है जिससे हार्दिक वेदना से प्राणों के विह्वल हो जाने पर भी किसी तरह जीवन धारण किया जाता है। मैं क्या

करोमि। कथय कथं कथ्यते कया वृत्त्या वर्ण्यते कीदृशेनोपायेन प्रदर्श्यते केन प्रकारेणावेद्यते कया युक्त्या प्रकाश्यते कतमया वेदनयोपमीयते बलवती तदुत्कण्ठा। स्वप्नेषु विगलितवेदनाः स्फुटं प्राणिनः। प्रतिदिनं दृश्यमानोपि यन्न पश्यसि तामीदृशीमवस्थाम्। प्रचण्डकिरणसहस्रातपसहानि कमलानि शयनीकृतानि म्लानिमुपनयन्त्या दिवसकरमूर्तिरपि निर्जिता तया निजोष्मणा। निष्करुणेन चाकारणवामेन कामेन मथ्यमानास्तास्ताश्चेष्टाः करोति। तथा हि। 'सासोढमदनवेदने त्वमतिकठिने मनसि निवससि' इति मृदुनि कुसुमशयने कथमपि सखीजनेन पात्यते। कुसुमशयनगता च संतापगलितचरणतलालक्तकलवपाटलितैः शय्याकुसुमैः कुसुमशरेण शरतामुपनीतैः सरुधिरैरिव हृदयात्पतितैर्भयमुपजन-

---

नवेदनाविह्वलितप्राणम् अनुभूयमानेन कष्टेन व्याकुलीभवद्धृदयमपि अतिकष्टं महता क्लेशेन जीव्यते प्राणधारणं क्रियते, यदि प्रियमिलनाशा प्रबला नाभविष्यत्तदा विरहे कष्टातिशयं प्राप्यापि लोको जीवितुं नाशक्ष्यदित्यर्थः। कया वृत्त्या वर्ण्यते-त्रिविधासु शब्दशक्तिषु अभिधालक्षणाव्यञ्जनानामिकासु मध्ये कया शब्दशक्त्या प्रतिपाद्यते। प्रदर्श्यते-साक्षात्कार्यते। कतमया वेदनया उपमीयते-केन कष्टेन सदृशी कथ्यते। स्वप्नेष्विति० स्वप्नेषु निद्राकालेषु प्राणिनः विगलितवेदनाः निवृत्तव्यथा जायन्ते इति स्फुटम्, यतः तां कादम्बरीं स्वप्नेषु तस्या निद्रावस्थायां पश्यन्नपि ईदृशीं वर्णितपूर्वां तदीयावस्थां न पश्यसि। प्रचण्डकिरणः सूर्यस्तस्य सहस्रं सहस्रसंख्यका ये आतपाः किरणास्तेषां सहानि सहनसमर्थानि सूर्यस्य शतमपि किरणान् सोढुमीशानि। शयनीकृतानि शय्यायामुपयुज्यमानानि। कमलानि पुष्पाणि। म्लानिमुपनयन्त्या म्लपयन्त्या। तथा कादम्बर्या। दिवसकरमूर्त्तिः-सूर्यमूर्त्तिः। निजोष्मणा स्वकायसन्तापेन। जिता अतिक्रान्ता। यानि कमलानि सहस्रसंख्यकमपि सूर्यकरनिकरं सुखं सहन्ते तान्येव कादम्बर्याः शयने उपयुज्यमानानि तत्कायसन्तापेन म्लायन्ति, अतः सूर्यमूर्त्तेः समधिक ऊष्मा तद्वपुषीति प्रमाणितं भवति। निष्करुणेन-निर्दयेन। अकारणवामेन-अहेतुप्रतिकूलेन। कामेन-कन्दर्पेण। मथ्यमाना-क्लेशं प्राप्यमाणा। तास्ताः वक्ष्यमाणरूपाः। सासोढा-पुनः पुनरतिशयेन वा सोढा मदनवेदना येन तादृशे कामवेदनां सोढुमीशे अत एव अतिकठिने मनसि चन्द्रापीडहृदये निवससि वर्त्तसे इति कृत्वा मृदुनि कोमले कुसुमशयने पुष्पास्तरणे कथं कथमपि महता प्रयासेन सखीजनेन पात्यते शाय्यते। अतिकठिनेऽत एव च कामव्यथां सोढुमीशे तव हृदये वर्त्तमानायाः कादम्बर्याः कामकृतां दशां पश्यन्त्यः सख्यस्तां बलात्कोमले पुष्पशयने स्थापयन्तीति भावः। कुसुमशयनगता-पुष्पशय्यापतिता। सन्तापेन गलितः चरणालक्तकलवः कायिकोष्मणा स्रुतश्चरणलग्नयावकबिन्दुस्तेन पाटलितैः रञ्जितैः शय्याकुसुमैः। कुसुमशरेण-कामेन। शरतामुपनीतैः बाणतयोपयुक्तैः। सरुधिरैः शोणितव्याप्तैः। अयमाशयः-पुष्पशयनगतायाः कादम्बर्याः पादप्रदेशे लग्नोऽलक्तकरसः सन्तापद्रुतः सन् शय्याकुसुमेषु पतित्वा तानि पुष्पाणि रञ्जयति, रक्तानि च तानि पुष्पाणि कामेन प्रयुज्यमानान् इषून् हृदयं भित्त्वा पतितान्

करूँ? आप ही कहिये उसकी बलवती उत्कण्ठा किस प्रकार कही जाय, किस तरह उसका वर्णन किया जाय, किस उपाय से दिखा दी जाय, कैसे निवेदित हो, किस प्रकार प्रकाशित की जाय और किस वेदना से उसकी उपमा दी जाय। स्वप्नावस्था में प्रायः प्राणियों की वेदना घटती है, तुमको वह रोज देखती है परन्तु तुम उसकी वेदना को क्यों नहीं देख पाते हो? सूर्यकिरणों को सहनेवाले कमलपत्र उसके शयन बनाये जाते हैं, उन कमलपत्रों को वह मुरझा देती है जिससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि उसके शरीर की गर्मी सूर्य की गर्मी से अधिक है।

अकारणद्रोही निर्दय कन्दर्प उसकी सारी चेष्टाओं को व्यर्थ कर देता है। 'बराबर कामवेदना सहते रहनेवाले अत्यन्त कठोर मन में तुम निवास करती हो' इसलिये सखियाँ कादम्बरी को किसी तरह कोमल कुसुमशयन पर डाल देती हैं, वह जब कुसुमशयन पर पड़ जाती है तब सन्ताप से बहनेवाले अलक्तक रस से रक्तवर्ण शयनकुसुम कन्दर्प के रक्तरञ्जित बाण बनकर उसे भयभीत करते हैं। वह समस्त शरीर में रोमाञ्च धारण

यति । सर्वाङ्गीणमनङ्गशरनिवारणाय कवचमिव भवदनुस्मरणरोमाञ्चमुद्वहति । रोमाञ्चिनि कुचयुगले श्वासगलितमंशुकं निदधाना त्वत्पाणिग्रहणतृष्णया कण्टकशयनव्रतलीलामिव दक्षिणकरकमलमनुभावयति । वामं तु वामकपोलभरजडाङ्गुलिमुल्लसत्पद्मरागवलयप्रभांशुरज्यमानं ज्वलितमदनहुताशनविप्लुष्यमाणमिव हस्तकमलं विधुनोति । नलिनीदलव्यजनपवनविक्षिप्यमाणकर्णकुवलयदलं वदनमजस्रस्रवदश्रुभयपलायमानलोललोचनमिव बिभर्ति । प्रतिक्षणं क्षामतां व्रजन्ती न केवलं मङ्गलवलयं पतनभयेन दोलायमानं हृदयमपि मुहुर्मुहुः पाणिपल्लवेन रुणद्धि । शिशिरवारिक्षोदक्षरिण्या लीलाकमलमालिकयेव वपुषि निहितया सखीजनहस्तपरम्परया परिक्लाम्यति । तथा चरणयुगलेन रसनाकलापं नितम्बविस्तारेण

रुचिराक्रान्त् मत्वा सा कादम्बरी नितान्तं बिभेतीति । सर्वाङ्गीणं समस्तशरीरव्यापिनम् । अनङ्गशरनिवारणाय-कामबाणनिवर्तनाय । कवचम् वर्म इव भवदनुस्मरणरोमाञ्चम् भवद्ध्यानजन्मानं रोमहर्षम् उद्वहति धारयति । तस्याः शरीरं व्याप्य वर्तमानो भवत्स्मरणजो रोमाञ्चस्तया कामशरनिवारणाय धृतोऽभेद्यकवच इव प्रतीयते इत्यर्थः । रोमाञ्चिनि-रोमहर्षयुक्ते । कुचयुगले-कादम्बर्याः स्तनद्वये । श्वासगलितम् दीर्घनिश्वासवशात् पतितम् । अंशुकम् अञ्चलम् । निदधाना-स्थापयन्ती । त्वत्पाणिग्रहणतृष्णया-त्वया सह विवाहस्येच्छया । कण्टकशयनव्रतलीलाम्-अतिकृच्छ्रकण्टकशयनरूपनियमम् अनुभावयति अभ्यासाय प्रापयति । अयमाशयः-कोऽपि किमपि दुर्लभं वस्तु प्राप्तुमिच्छुर्यथाऽतिकष्टं किमपि तपश्चरति तथैवेयं कादम्बरी स्वं पाणिं त्वया ग्राहयितुं-स्वं पाणिं कण्टकशयनव्रतमनुभावयति, यदा यदा सा रोमाञ्चकण्टकिते स्वस्तनद्वये श्वासपतितमुत्तरीयाञ्चलं स्थापयति, पतितस्यांशुकस्य स्थापनकाले दक्षिणहस्तः रोमाञ्चितं स्तनद्वयं स्पृशति, तदेवात्र कण्टकशयनव्रतत्वेन तस्याभिहितमिति बोध्यम् । वामं दक्षिणेतरं तु करम् वामकपोलभरजडाङ्गुलिम् वामस्य कपोलस्य भरेण भारेण जडाङ्गुलिम् जडीभूताङ्गुलिम् उल्लसत्पद्मरागस्य पद्मरागखचितस्य वलयस्य प्रभया रक्ताभया कान्त्या रज्यमानं रक्तीभवन्तम् ज्वलितमदनहुताशनविप्लुष्यमाणमिव कामाग्निदह्यमानमिव विधुनोति कम्पयति । वामे हस्ते पद्मरागखचितस्य वलयस्य रक्तवर्णा कान्तिस्तं हस्तं कामाग्निदह्यमानमिव प्रत्याययति, कादम्बरी तादृशं निजं हस्तं कामाग्निना दह्यमानमुत्प्रेक्ष्य विधुनोतीत्यर्थः । नलिनीदलेति० नलिनीदलस्य कमलपत्रस्य यद्व्यजनं तत्कृतो यः पवनो वायुस्तेन विक्षिप्यमाणं कर्णकुवलयदलं कर्णस्थितनीलकमलपत्रं यस्य तादृशं निजं वदनं मुखं सा कादम्बरी अश्रुणो भयेन पलायमानं लोलं चञ्चलं लोचनं नयनं यस्य तादृशमिव बिभर्ति धारयति, नलिनीपत्रव्यजनवायुना कर्णावतंसीभूतं कमलपत्रं पलायते तदित्थं प्रतीयते यत् अश्रुभयात् लोलं लोचनमेव पलायते कादम्बर्या इत्यर्थः । प्रतिक्षणं क्षामतां व्रजन्ती अनुक्षणं क्षीयमाणशरीरा सा कादम्बरी न केवलं मङ्गलवलयं मङ्गलार्थं धार्यमाणं कङ्कणमेव पतनभयेन करेण रुणद्धि वारयति अपितु दोलायमानं हृदयमपि मुहुर्मुहुः पाणिपल्लवेन रुणद्धि निवारयति । शिशिरवारिक्षोदक्षरिण्या शीतलजलबिन्दुवर्षिण्या लीलाकमलमालिकया लीलाकमलसमूहेन वपुषि निहितया शरीरे स्थापितया तथैव परिक्लाम्यति खिद्यते यथा शिशिरवारिक्षोदक्षरिण्या सखीजनहस्तपरम्परया आलीजनहस्तमालयेति भावः । अधुना सम्प्रति कादम्बरी चरणयुगलेन रसनाकलापं काञ्चीं धारयति,

---

करती है जो समस्त शरीर पर गिरनेवाले कामशरों को रोकने के लिये धारित कवच सदृश प्रतीत होते हैं । रोमाञ्चशाली स्तनों पर जब वह श्वास से गिराये गये वस्त्र को रखती है तब उसके हाथ को रोमाञ्च का स्पर्श होता है, वह ऐसा लगता है मानो आपके द्वारा अपने पाणि के ग्रहण की लालसा से वह अपने हाथ को कण्टक शयन व्रत करवा रही हो । उसका वाम हाथ जब कपोल पर जाता है तब उसी अङ्गुलियाँ जड़ हो जाती हैं, वह कान के पद्मराग की कान्ति से रक्त हो जाता है तब वह हाथ ऐसा लगता है मानो वह प्रज्वलित कामाग्नि में जल रहा हो, ऐसी स्थिति में वह अपने उस वाम हाथ को झटक देती है । कमलदल व्यजन से उसके कान के कुवलय दल पड़ने लगते हैं—उस समय ऐसा लगता है मानो उसके सततप्रवर्त्तमान अश्रु के भय से आँखें भागी जा रही हों । वह प्रतिक्षण दुर्बल होती जाती है अतः गिरने से बचाने के लिये वह मङ्गलसूत्र को ही नहीं अपने हृदय को भी

मध्यं संगमाशया हृदयं हृदयेन भवन्तमुरसा बिसिनीपलाशप्रावरणं कण्ठेन जीवितं करकमलेन कपोलपालीं त्वदालापेनाश्रुपातं ललाटफलकेन चन्दनलेखिकामंसेन वेणीमधुना धारयति। त्वद्दिदृक्षया विघटमानं हृदयमभिवाञ्छति। गोत्रस्खलनेनेव जीवितेन लज्जते। प्रियसख्येव मूर्च्छया मनसि मुहुर्मुहुः स्पृश्यते। परिजनेनेव रणरणकेन मदनपरवशा कुसुमशयनादुत्थाप्यते। परिचारिकयेवार्त्या स्रस्ताङ्गी संचार्यते। मुहुः पवनप्रेङ्खोलितमुत्कण्ठाव्यजनपल्लवभङ्गभयकम्पितमिव लतामण्डपमधिवसति। मुहुः सत्कोशकलिकं बिसवलयसंरक्षणरचिताञ्जलिपुटमिव स्थलनलिनीवनमधिशेते। मुहुरुद्बन्धनभयादिव निरन्तरकिसलयाच्छादितलतापाशमुद्यानमासेवते। मुहुर्निपतदविरतरोदनाताम्रनयनप्रतिबिम्बं स्रस्तरास्तरणत्रास-

---

काञ्चीस्थानस्यातिकृशीभूततया तदीया रसना पादयोः पततीति भावः। नितम्बविस्तारेण मध्यं धारयति, अतिविस्तृतो नितम्बोऽपि मध्य इव कृशीभूत इत्यर्थः। संगमाशया मिलनाभिलाषेण हृदयं धारयति। उरसा वक्षसा। नलिनीपलाशप्रावरणम्—कमलिनीपत्रकृतमाच्छादनम्। कण्ठेन जीवितं धारयति-कण्ठगतप्राणा सेति भावः। करकमलेन कमलोपमेन करेण। कपोलपालीम्-कपोलमूलम्। त्वदालापेन अश्रुपातं धारयति-त्वदीयां कथां श्रुत्वाऽश्रुपातं निरुणद्धीत्यर्थः। अंसेन-स्कन्धदेशेन। त्वद्दिदृक्षया-त्वद्दर्शनेच्छया। विघटमानम्-स्थानात्पलाय्य त्वदन्तिकमुपागतम्। गोत्रस्खलेन-स्वप्नादौ हृदयप्रियस्य नामग्रहणेन। यथा गोत्रस्खलनेन कादम्बरी लज्जते तथा जीवितेनापि लज्जते इत्यर्थः। प्रियसख्येति० यथा तदीया सखी मुहुर्मुहुस्तां स्पृशति सन्तापस्थितिपरिज्ञानार्थं तथैव मूर्च्छापि तस्या मनो मुहुर्मुहुः स्पृशति इत्यर्थः। मदनपरवशा-कामपरतन्त्रा सा कादम्बरी यथा परिजनेन कुसुमशयनात् उत्थाप्यते तथैव रणरणकेन मानसिकोद्वेगेन कुसुमशयनादुत्थाप्यते इत्याशयः। स्रस्तानि सन्तापातिशयशिथिलानि अङ्गानि यस्याः सा कादम्बरी परिचारिकया दास्या इव अर्त्या पीडया सञ्चार्यते इतस्ततश्चाल्यते। पवनप्रेङ्खोलितम्-वायुकम्पितम्। उत्कण्ठाव्यजनपल्लवभङ्गभयकम्पितम् इव-उत्कण्ठाविनोदनाय व्यजनं निर्मातुं भावी यः पल्लवभङ्गः पत्रच्छेदस्तस्य भयेन कम्पमानम् इव लतामण्डपम् लतागृहम् अधिवसति स्वावासतां प्रापयति। कादम्बरी मुहुर्लतामण्डपमधिवसति यो लतामण्डपो वातकम्पितः सन् कादम्बर्या उत्कण्ठां शमयितुं निर्मास्यमानस्य व्यजनस्य कृते भाविनं स्वपल्लवभङ्गमुत्प्रेक्ष्येव कम्पमानत्वेन संभाव्यत इत्यर्थः। सत्कोशकलिकम्-उत्तमैः कोशैः कलिकाभिश्च युक्तम् स्थलनलिनीवनम् कमलिनीकाननम्। बिसवलयसंरक्षणाय बिसनिर्मितवलयधारणाय रचिताञ्जलिपुटम् बद्धाञ्जलि इव अधिशेते अधिवसति, कमलवनं कोशकलिकोपेतं मन्ये अञ्जलिं बद्ध्वा कादम्बरीं प्रार्थयते यत् बिसवलयं रक्ष धारय, यदि त्वं बिसवलयं न धारयिष्यसि तदा सख्यः पुनर्बिसान्तरमादाय वलयनिर्माणाय यतिष्यन्ते, तथा च बिसनाशः स्यादतः कोशकलिकोपेतानि कमलानि स्वबिसत्राणाय बद्धाञ्जलीनीवेत्यर्थः।

उद्बन्धनभयात्—रज्ज्वादिनाऽस्मानमुद्बद्ध्य म्रियेतेति भीतेः। निरन्तरैः घनैः किसलयैः पत्रैः आच्छादितः आवृतः लतापाशः पाशवद्भासमानो लताभागो यत्र तादृशम् उद्यानम् आरामम् आसेवते आश्रित्य तिष्ठति। कदाचिदियं वियोगव्यग्रा कादम्बरी लतापाशैरस्मानमुद्बध्य व्यापादयेदिति भीताः

हाथ से दबाये रहती हैं। उसका शरीर शीतजलस्रावी लीलाकमलमालोपम सखियों के हाथों के स्पर्श से भी कष्ट पाता है। वह इन दिनों चरणयुगल में काञ्चीदाम को, नितम्ब की विशालता के स्थान में कृशमध्य को, मिलन की आशा से हृदय को, हृदय से आपको, छाती से कमलपलाश को, कण्ठ से जीवन को, हाथों से कपोल को, आपकी चर्चा से अश्रुपात को, ललाट से चन्दन-चर्चा को, और कन्धे से केशपाश को धारण करती है। वह आपको देख पाने की इच्छा से चाहती रहती है कि उसका हृदय उड़ जाय। गोत्रस्खलन की तरह उसे जीवन से लज्जा होती है। प्रिय सखी की तरह मूर्च्छा उसके मन को बार-बार छुआ करती है। परिजन के समान व्यग्रता उसे कुसुमशयन पर उठा देती है। परिचारिका की तरह आर्त्ति उस दुर्बलशरीरा को यहाँ से वहाँ पहुँचाती है। पवनकम्पित लतामण्डप में—जो उत्कण्ठाशमन के लिये बनाये जानेवाले व्यजन के लिये सम्भावित

निमज्जत्कमलमिवोपवनसरोजलमवगाहते । तस्मादुत्थाय तमालवीथीमुपैति । तस्यां शाखावलम्बोर्ध्वभुजलतानिहितनिमीलितलोचनवदना चम्पकदलमालिकोद्बद्धदेहाशङ्कामुत्पादयन्ती मुहूर्तं विश्रम्य संगीतकगृहमाविशति । ततो मधुरमुरजरवलयललितलास्यलीलयोद्वेज्यमाना मयूरीव मुक्तधारं धारागृहमभिपतति । ततोपि घनजलधारासीकरपुलकितकाया कदम्बकलिकेव कम्पमाना शुद्धान्तकमलिनीतीरमुपसर्पति । तस्माच्च भवनकलहंसरवमसहमाना प्रस्थिता तत्कालावतारितनूपुरयुगला निपुणप्रेक्षामिव क्षामतामभिनन्दति । वलयर-

---

सव्यस्तां निरन्तरपत्रावृतलताशालिन्येवोद्याने स्थापयन्ति, तादृशे ह्युद्याने नास्ति तस्या उद्बन्धनप्रवृत्तेराशा, लतायाः पत्रावृतत्वेन अदृश्यतयोद्बोधकाभावादिति भावः, मुहुर्निपतदविरतरोदनाताम्रनयनप्रतिबिम्बम्-वारं वारं पतति सततरुदितेन रक्तवर्णस्य नयनस्य प्रतिच्छविर्यत्र तादृशम् । स्रस्तरास्तरणात् शयनीयनिर्माणोपयोगाद्यस्त्रासो भयं तेन निमज्जत् कमलं यत्र तादृशम् उपवनसरोजलम् उद्यानसरोवरवारि अवगाहते । कादम्बर्याः सततरोदनवशादाताम्रस्य नयनस्य प्रतिबिम्बं तदुद्यानसरोजले निपतति तदुत्प्रेक्षते-स्रस्तरेति० वियोगमग्नायाः कादम्बर्याः शयनीयनिर्माणाय कमलस्योपयोगे क्रियमाणे कमलवनमुच्छिन्नं स्यादिति भयेन कमलं जले निमज्जति, प्रतिफलन्नयनप्रतिबिम्बस्य मज्जत्कमलरूपत्वमत्रोत्प्रेक्ष्यमाणं बोध्यम् । तस्मात्-सरोजलात् । उत्थाय-निर्गत्य । तमालवीथीम्-तमालवृक्षवनावलीम् । उपैति-गच्छति । तस्याम्-तमालवीथ्याम् । शाखायां तमालतरुशाखायाम् अवलम्बा कृतावलम्बना या ऊर्ध्वं भुजलता उपर्यवस्थापिता बाहुवल्ली तत्र निहितं स्थापितं निमीलितलोचनं मुद्रितनेत्रं वदनं मुखं यया तादृशी सती कादम्बरी चम्पकदलमालिकया चम्पकपुष्पपत्रनिर्मितस्रजा उद्बद्धस्य देहस्य आशङ्काम् संशयम् उत्पादयति जनयति । तमालतरुशाखायां ऊर्ध्वावलम्बिनि बाहौ मुद्रितनेत्रं मुखं स्थापयित्वा स्थिता कादम्बरी चम्पकदलमालिकया उद्बन्धनमारचयन्तीव प्रतीयत इत्याशयः । अत्र बाहौ चम्पकदलमालात्वं संशय्यमानं बोध्यम् । मुहूर्तं विश्रम्य-क्षणं विश्राममनुभूय । संगीतकगृहम्-संगीतशालाम् ।

मधुरेति० मधुरेण कर्णप्रियेण मुरजरवेण-वाद्यविशेषध्वनिना लयेन तालेन च ललिता मनोहरा या लास्यलीला नृत्यकला तया उद्वेज्यमाना व्यग्रतामापाद्यमाना मयूरी इव मुक्तधारं धारावर्षि धारागृहम् अभिपतति वेगाद् धारागृहं प्रविशति । ततः धारागृहात् । घनजलधारासीकरपुलकितकाया-सततप्रवृत्तजलधारासम्पर्कवशोदितशैत्यानुभवरोमाञ्चिततनुः । कदम्बकलिका इव-रोमाञ्चोदयेन कदम्बकलिकावत् कम्पमाना । शुद्धान्तकमलिनीतीरम्-अन्तःपुरसंलग्नसरोजिनीतटम् । तस्मात्-शुद्धान्तकमलिनीतीरात् । भवनकलहंसरवम्-गृहकादम्बशब्दम् । असहमाना-वियोगव्यथावर्धकतया सोढुमपारयन्ती । प्रस्थिता-ततः शुद्धान्तकमलिनीतीरात् चलिता । तत्कालावतारितनूपुरयुगला-तत्कालदूरीकृतपादभूषणा । निपुणप्रेक्षाम्-चतुरनृत्यम् । क्षामताम्-कार्श्यम् । अभिनन्दति-प्रशंसति । वलयरचनया वलयनिर्माणद्वारा

पल्लवभङ्ग के भय से काँपता सा दीखता है—वह निवास करती है । स्थल कमलिनी के वन में—जिसकी कलियाँ बिसवलय-संरक्षणार्थं बद्धाञ्जलि-सी प्रतीत होती हैं,—वह रहा करती है । फाँसी लगाने के भय से वह निरन्तर पल्लवपूर्ण लताओं से भरे उद्यान में भ्रमण करती है । जब वह उपवन सरोवर के जल में प्रवेश करती है तब सतत-रोदन से रक्त उसकी आँखों का प्रतिबिम्ब जल में पड़ता है, जो ऐसा लगता है मानो बिछावन बनाने में लाये जाने के भय से कमल जल में डूब रहे हों । वहाँ से उठकर वह तमालवीथी में जाती है । तमालवृक्ष की शाखा पर हाथ उठाकर रख देती है, उस पर मुख रख देती है, तब ऐसा लगता है मानो चम्पक की माला से उसने अपनी देह बाँध रखी हो । क्षण भर यहाँ रुक कर वह संगीतशाला में जाती है । वहाँ मधुर मृदङ्गशब्द तथा उसके लय की लास्य-लीला से वह उद्विग्न हो उठती है और मयूरी की तरह धारावर्षी धारागृह में पैठ जाती है । वहाँ मोटी जलधार से उसकी देह रोमाञ्चित हो उठती है, वह कदम्ब-कलिका की तरह काँपती हुई अन्तःपुर के सरोवर पर आ खड़ी होती है । वहाँ भी जब वह भवनकलहंसों की आवाज को नहीं सहन कर सकती है तब तक वहाँ से चल देती है, पैर के नूपुर उतार देती है, और उत्तम नाट्य-कला की तरह दुर्बलता की प्रशंसा करती है ।

चनाम्लापितमृणालकुपितैरिव भवनवापीचक्रवाकमिथुनैः कूजितेन खेद्यते। शय्याविलासमृदितकुसुमसंचयामर्षितैरिव प्रमदवनमधुकरैर्विरुतेनोद्वेज्यते। निर्भरोत्कण्ठागीतनिर्जितस्वरोषितैरिवाङ्गणसहकारपिकवृन्दैः कलकलेनाकुलीक्रियते। मदनपाण्डुगण्डपरिभूतगर्भपत्रकान्तिभिर्विद्धेवोद्यानकेतकीसूचिभिरुद्भूतवेदना भवति। एवंप्रायैश्च मदनदुश्चेष्टितायासैः परिणाममुपैति दिवसः।

चन्द्रोदये चास्यास्तिमिरमयीवापैति धृतिः। कमलमयमिव दूयते हृदयम्। कुमुदमय इव विजृम्भते मकरकेतनः। चन्द्रकान्तमयमिव प्रक्षरति नयनयुगलम्। उदधिजलम-

---

म्लापितानि म्लानिं गमितानि मृणालानि कमलदण्डाः तैः कुपितैः क्रुद्धैः इव भवनवापीचक्रवाकमिथुनैः गृहदीर्घिकाचक्रवाकदम्पतिभिः कूजितेन शब्देन खेद्यते खेदं प्राप्यते। गृहदीर्घिकाकमलिनीमृणालानि वलयरचनया म्लानिं प्रापयन्तीं कादम्बरीं प्राप्य भवनवापीचक्रवाकाः स्वप्रियमृणालकदर्थनया तदुपरि कुपिता इव स्वकूजितेन तां खेदयन्तीत्यर्थः। शय्याविलासेन शयनीयोपयोगेन मृदिताः कुसुमसञ्चयाः पुष्पनिवहास्तेन अमर्षितैः क्रुद्धैः इव प्रमदवनमधुकरैः उद्यानभ्रमरैः विरुतेन शब्देन उद्वेज्यते उद्वेगं प्राप्यते—इयं कादम्बरी भ्रमरप्रियाणि पुष्पाणि शयनीयोपयोगद्वारा क्षपयन्ती भ्रमराणां कोपस्य भाजनमिति ते तां दृष्ट्वा स्वशब्दैस्तस्या वियोगव्यथां समेधय तां क्लेशयन्तीत्यर्थः। निर्भरोत्कण्ठागीतैः अतिशयितोत्कलिकागायनैः निर्जितः पराजितो रवः शब्दस्तेन रोषितैः कुपितैः अङ्गणसहकारपिकवृन्दैः अङ्गणवर्त्तिन्याम्रवृक्षे स्थितैः पिकनिकरैः कादम्बरी कलकलेन आकुलीक्रियते। अयमाशयः—वियोगमग्ना कादम्बरी वियोगव्यथापनुत्तये यदुत्कण्ठागीतानि गायति तत्र तद्ध्वनिमाधुर्येण पिकरवमाधुर्यं पराजितं भवति, तेन कुपिताश्चाङ्गणवर्त्याम्रवृक्षस्थपिकास्तस्यां दृश्यमानायां तामाकुलीकर्त्तुं कलकलमारभन्त इत्यर्थः। मदनपाण्डुना कामपरिभूततया पाण्डुवर्णेन गण्डेन कपोलदेशेन परिभूताः तिरस्कृताः गर्भपत्रकान्तयोऽन्तर्वर्त्तिपत्ररुचो यासां ताभिः उद्यानकेतकीसूचीभिः विद्धा क्षता इव सा कादम्बरी उद्भूतवेदना सञ्जातपीडा जायते। उद्यानकेतकीगर्भपत्राणि वियोगपाण्डुना कपोलेन कान्त्या पराजयमाना सा उद्यानकेतकीभिः सूच्या विध्यमानेव वेदनाभाग्भवतीति तात्पर्यम्। एवंप्रायैः—एतत्सदृशैः। मदनदुश्चेष्टितायासैः—कामकृतपीडाभिः। दिवसः परिणाममुपैति—तस्या दिनं समाप्नोति।

चन्द्रोदये चेति० चन्द्रोदये—चन्द्रमस उदये सति रात्रौ समागतायामित्यर्थः। तिमिरमयी अन्धकारनिर्मिता। धृतिः—धैर्यम्। अपैति—पलायते, यथा अन्धकारश्चन्द्रोदये पलायते तथैव तस्या धैर्यमपि पलायते मन्ये। धृतिस्तमोनिर्मितेत्युत्प्रेक्षेति बोध्यम्। कमलमयम्—कमलनिर्मितम्। दूयते—परितप्यते। यथा कमलं चन्द्रोदये दूयते तथा तस्या हृदयं दूयत इत्यर्थः। कुमुदमयः—कुमुदनिर्मितः। विजृम्भते—वर्द्धते विकसति। मकरकेतनः—कामदेवः। चन्द्रकान्तमयम्—चन्द्रकान्तमणिनिर्मितम्। प्रक्षरति—स्रवति। तथा चन्द्रोदये चन्द्रकान्तमणिः पयः स्रावयति तथा तदीयं नयनमपि चन्द्रोदये पयः स्रावयतीत्यर्थः।

घर की बावली में पाले गये चक्रवाक के जोड़े उसे अपनी आवाज से इसलिये कष्ट पहुँचाते हैं कि वलयरचना के लिये मृणालों का उपयोग किया गया जिससे उन चक्रवाकों को क्रोध है। प्रमदवन के भ्रमर अपने शब्दों से उसको इसलिये उद्विग्न किया करते हैं कि शय्यानिर्माण में फूल मसल दिये गये जिससे उन्हें क्रोध हुआ। आँगन के आम्र वृक्ष पर रहने वाले पिक वृन्द अपने कल-कल से उसको व्याकुल कर देते हैं क्योंकि उत्कण्ठा गीत के शब्द से उनके शब्द पराजित हो गये हैं जिससे उन्हें कोप है। उद्यान-केतकी की सूची से वह बिंधी हुई सी होकर वेदना का अनुभव करती है, केतकी के गर्भपत्रों की कान्ति को मदनपाण्डु उसके कपोलों की कान्ति ने जो परास्त कर दिया है। इस तरह के कन्दर्प की दुश्चेष्टा जनित आयासों में ही दिन निकल जाता है।

चन्द्रोदय होते ही उसका धैर्य भाग जाता है मानो वह अन्धकारमय हो। कमलमय की तरह उसका हृदय सन्तप्त होने लगता है। कुमुदमय की तरह उसका कामदेव बढ़ने लगता है। चन्द्रकान्तमय की तरह उसके नयन

यानीव वर्धन्ते श्वसितानि । चक्रवाकमया इव विघटन्ते मनोरथाः । शीतज्वरातुरेव मणिकुट्टिमोदरसंक्रान्तस्य तुषारकिरणमण्डलस्योपरि वेपथुलुलिततरलाङ्गुलिनिकरं करयुगलं प्रसारयन्ती शशिसंतापमनक्षरं कथयति । सीत्कारेषु दशनांशुव्याजेन मन्मथशरजर्जरितहृदयप्रविष्टानिन्दुकिरणानिवोद्गिरति । वेपथुषु व्यजनीकृतकदलीदलकम्पोपदेशमिव गृह्णाति । विजृम्भिकासु कण्ठागतजीवितनिर्गममार्गमिवोपदिशति । गोत्रस्खलितविलक्षस्मितेषु हृदयनिपतितमदनशरपुष्परज इव वमति । बाष्पमोक्षेषु स्थूलाश्रुसंतानवेणिकावाहिनी विलीयत इव । शशिमणिदर्पणेषु विस्फुरितानेकप्रतिबिम्बनिभेन शतधेव विदलति । कुसुमशयनेषु

उदधिजलमयानि–सागरपयोनिर्मितानि । चन्द्रोदये सागरस्य जलं वर्धते तद्वत् तस्या दीर्घनिश्वासा अपि चन्द्रोदये वर्धन्त इति तेषां सागरजलनिर्मितत्वमुत्प्रेक्षितं बोध्यम्, सर्वत्रात्रस्य उत्प्रेक्षाप्रपञ्चः कार्यकारणयोः समानधर्मत्वस्मृतिमूलकः । चक्रवाकमयाः–चक्रवाकस्वरूपाः । विघटन्ते–परस्परं वियुज्यन्ते । यथा चन्द्रोदये चक्रवाकाः परस्परं विघटन्ते तथैव कादम्बर्या मनोरथा अपि विघटमाना जायन्त इत्यर्थः । शीतज्वरातुरा–शीतज्वरपीडिता । मणिकुट्टिमोदरसंक्रान्तस्य–मणिकुट्टिमप्रविष्टस्य । तुषारकिरणमण्डलस्य–चन्द्रबिम्बस्य । वेपथुलुलिततरलाङ्गुलिनिकरम्–वेपथुना कम्पेन लुलिताः अयथाविन्यासमस्तव्यस्तभावेन स्थिताः अङ्गुलिनिकराः अङ्गुलिसमूहा यस्य तादृशम् । करयुगलम्–हस्तद्वयम् । प्रसारयन्ती–स्थापयन्ती । शशिसन्तापम्–चन्द्रकृतं परितापम् । अनक्षरं वदति–विनैव शब्दोच्चारणमाह । कुट्टिमप्रतिबिम्बिते चन्द्रमण्डले वेपथुलुलितस्याङ्गुलिनिवहस्यावस्थापनेन कादम्बरी स्वस्य चन्द्रद्वारा सन्ताप्यमानतां विनैव शब्दव्यापारमभिधत्त इवेत्याशयः । सीत्कारेषु–वियोगव्यथाद्योतकेषु सीत्कारशब्देषु । दशनांशुव्याजेन–दन्तकान्तिच्छलेन । मन्मथस्य कामदेवस्य शरैः बाणैः जर्जरिते शतच्छिद्रतां प्रापिते हृदये प्रविष्टान् इन्दुकिरणान् चन्द्रकरान् इव उद्गिरति वमति । कादम्बरी यदा सीत्करोति तदा तदीयदन्तप्रभा बहिः प्रसरति, मन्ये सा कामशरजर्जरीकृते हृदये प्रविष्टान् इन्दुकरान् वमतीवेत्यर्थः । वेपथुषु–कम्पेषु । व्यजनीकृतेभ्यः व्यजनभावं प्रापितेभ्यः कदलीदलेभ्यः कदलीपत्रेभ्यः कम्पोपदेशम् कम्पशिक्षाम् इव गृह्णाति । विजृम्भिकासु–जृम्भासु । कण्ठागताय–बहिर्निर्गन्तुं कण्ठदेशमागताय । जीविताय प्राणवायवे । निर्गममार्गम्–बहिर्गमनवर्त्म । उपदिशति–दर्शयति । गोत्रस्खलितविलक्षस्मितेषु गोत्रस्खलने सर्वजनसमक्षं हृदयस्थितस्य प्रियतमस्य जनस्य नामोच्चारणसम्बोधने यत् विलक्षस्मितं सलज्जहसितं तत्र हृदये निपतितानां मदनशरपुष्पाणां कामबाणकुसुमानां रजः परागं वमति उद्गिरति । गोत्रस्खलने जाते सति यस्सा सलज्जं हसति तत्र च या दन्तप्रभा प्रकटति सात्र हृदयपतितकामपुष्परूपबाणानां परागतयोत्प्रेक्ष्यते । बाष्पमोक्षेषु अश्रुविसर्जनेषु । स्थूलाश्रुसन्तानवेणिकावाहिनी स्थूलाश्रुप्रवाहपतिता विलीयते तिरोधीयत इव । शशिमणिदर्पणेषु चन्द्रकान्तमणिरचितादर्शेषु विस्फुरितानेकप्रतिबिम्बनिभेन अनेकधाप्रतिबिम्बितेन स्वस्वरूपेण शतधा विदलति विदीर्णा भवति । चन्द्रकान्तमणिनिर्मितेषु दर्पणेषु यत्तस्य शतं प्रतिबिम्बानि पतन्ति तन्मन्ये सा शतधा विदीर्णा भवतीवेति भावः । कुसुमशयनेषु पुष्परचित-

---

पसीजने लगते हैं । सागरमय की तरह उसकी साँसें बढ़ने लगती हैं । चक्रवाकमय की तरह उसके मनोरथ बिछुड़ने लगते हैं । मणिमय सदन पर प्रतिबिम्बित चन्द्रमण्डल पर काँपती अंगुलियों से युक्त अपना हाथ जब फैला देती है तब काँपते रहने से ऐसा मालूम पड़ता है जैसे उसे शीतज्वर हो आया हो, इस प्रकार बिना बोले ही वह अपने चन्द्रकृत सन्ताप को कहती है । सीत्कार के समय उसके दाँतों की कान्ति बाहर फैलती है, ऐसा लगता है जैसे वह मन्मथ-शर-जर्जरित हृदय में प्रविष्ट चन्द्रकरों को उगल रही हो । कम्पन के समय वह व्यजन बनाये गये कदली पत्रों से कम्पोपदेश सा ग्रहण करती है । जम्भाई के समय वह कण्ठ तक आये हुये प्राणों को निकल भागने का मार्ग-सा बताती है । गोत्रस्खलन काल में सलज्ज हास द्वारा वह हृदय में गिरे हुये कन्दर्प के बाणों की धूल-सा बाहर निकालती हैं । बाष्पत्याग द्वारा अश्रुप्रवाह में डूबती हुई उसमें लीन हो जाती है । चन्द्रकान्तमणि निर्मित दर्पणों में उसके अनेक प्रतिबिम्बों पर वह शतधा विदलित होती है । पुष्पशयन पर जब सुगन्ध लोभ से आये हुए भ्रमरों से वह व्याप्त हो जाती है तब ऐसा लगता है मानो उसकी देह से धूम निकल रहा हो । निर्मल कमल-

परिमललालसागतालिमालाकुलिता धूमायत इव। अमलकमलस्रस्तरेषु किञ्जल्करजःपुञ्जपिञ्जरिता ज्वलतीव। स्वेदप्रतीकारेषु विशदकर्पूरक्षोदधूलीधवलिता भस्मीभवतीव। न विज्ञायते किं मुग्धतया किं विलासेन किमुन्मादेन संगीतकमृदङ्गध्वनितेषु केकाशङ्कया धारागृहमरकतमणिमयूरमुखानि स्थगयति। दिवसावसानेषु विश्लेषभीता मृणालसूत्रैश्चित्रभित्तिविलिखितानि चक्रवाकमिथुनानि संघट्टयति[1]। चिन्तारतारम्भेषु मणिप्रदीपानवतंसोत्पलैस्ताडयति। उत्कण्ठालेखेषु संकल्पसमागमाभिज्ञानानि लिखति। दूतीसंप्रेषणेषु स्वप्नापराधोपालम्भान्संदिशति।

अपि च तस्याश्चन्दनपरिमल इव दक्षिणानिलेन सह समागच्छति मोहः। चक्रा-

---

शय्यासु परिमललालसया सुगन्धलोभेन आगताभिः अलिमालाभिः भ्रमरपङ्क्तिभिः आकुलिता व्याप्तीकृता सती धूमायते धूमोद्गारिणीव सञ्जायते। पुष्पशयनमधिशयानायां कादम्बर्यां यत् तत् पुष्पसुगन्धलोभाकृष्टा भ्रमरास्तां व्याप्नुवन्ति तदेवात्र तस्या धूमायितत्वेनोत्प्रेक्ष्यमाणं बोध्यम्। अमलकमलस्रस्तरेषु रमणीयकमलपुष्पनिर्मितशयनीयेषु किञ्जल्करजःपुञ्जपिञ्जरिता पुष्परजोभिः पीतवर्णतां गमिता सती ज्वलति इव। कमलशयनमधिशयाना कादम्बरी किञ्जल्करजोभिः समस्ते वपुषि व्याप्ते सति ज्वलितसमस्तशरीरावयवेव प्रतिभासत इत्याशयः। स्वेदप्रतीकारेषु स्वेदनिरोधोपायेषु क्रियमाणेषु विशदकर्पूरक्षोदानां स्वच्छकर्पूरचूर्णानां धूलीभिर्धवलिता स्वच्छीकृता सती भस्मीभवतीव भस्मीभावमिव प्रतिपद्यते। मुग्धतया-अज्ञानेन। सङ्गीतकमृदङ्गध्वनिषु-सङ्गीतकालिकमृदङ्गशब्देषु प्रवर्त्तमानेषु। केकाशङ्कया मयूराणां शब्दायितं सम्भाव्य। धारागृहमरकतमणिमयूरमुखानि-धारागृहे मरकतमणिभिर्विरचितानां मयूराणां मुखदेशान्। स्थगयति-पिधत्ते। कादम्बरी प्रवर्त्तमाने सङ्गीतमृदङ्गशब्दे मेघध्वनिमुत्प्रेक्ष्य अमी मयूराः शब्दं कुर्युरिति भावनया धारागृहोपान्ते मरकतमणिभिर्विरचितानां मयूराणां मुखानि स्थगयति, तत्र तदीया मुग्धता तदीया विलासप्रियता तदीयोन्मत्तता वा कारणमिति विविच्य वक्तुं न शक्यत इत्यर्थः। दिवसावसानेषु सन्ध्याकालेषु, विश्लेषभीता ·वियोगभिया। मृणालसूत्रैः बिसतन्तुभिः। चित्रभित्तिलिखितानि चित्रितानि। चक्रवाकमिथुनानि·चक्रवाकयुगलानि। सङ्घट्टयति परस्परं योजयति। वियोगकष्टाभिज्ञा कादम्बरी सन्ध्यायामुपनतायां चक्रवाकमिथुनानां भाविनं वियोगमनुमाय तेषां योजनाय बिसतन्तून् व्यापारयतीत्यर्थः। चिन्तारतारम्भेषु ध्यानोपनीतसुरतसमागमेषु। मणिप्रदीपान्-मणिमयान्दीपान्। अवतंसोत्पलैः-कर्णाभरणीकृतैः कमलैः। ध्यानोपनीतसुरतारम्भे प्रकाशनिवृत्तये मणिदीपान् कर्णाभरणीभूतैर्नीलकमलैस्ताडयित्वा निर्वापयितुमिच्छति कादम्बरीति भावः। उत्कण्ठालेखेषु-उत्कण्ठापत्रेषु। सङ्कल्पसमागमाभिज्ञानानि·सङ्कल्पमिलनोपयुक्तसूचनानि। दूतीसम्प्रेषणेषु-दूतीप्रेषणकर्मसु। स्वप्नापराधोपालम्भान्-स्वप्नसमागमकाले कृतानामपराधानां कृते उपालम्भवचनानि।

तस्याः कादम्बर्याः। चन्दनपरिमलः-मलयजसुगन्धः। दक्षिणानिलेन· मलयवातेन। यदा दक्षिणानिलो वाति तदा तत्परिमलेन सह कादम्बर्या मोहोऽप्यागच्छतीत्यर्थः। निशया सह रात्रिसमागमेन

शयन पर किञ्जल्क पराग से पीताभ पड़ी हुई वह जलती हुई सी मालूम देती है। पसीना बन्द करने के लिये जब उसकी देह पर कपूर की धूल दी जाती है तब उससे उज्ज्वल उसका शरीर भस्म के सदृश प्रतीत होता है। समझ में नहीं आता है कि मुग्धता से या विलास से अथवा उन्माद से वह जब संगीत मृदङ्ग की ध्वनि उठती है तब केका की आशङ्का से धारागृह में बने हुये मणिमय मयूरों के मुख बन्द कर देती है। सन्ध्या होने पर वियोगभीता कादम्बरी चित्र-लिखित चक्रवाक के जोड़े को मृणाल-सूत्र से बांध देती है। मानसिक सुरत-क्रीड़ा के आरम्भ में वह मणिप्रदीपों को कर्णोत्पल से पीटने लगती है। प्रेम-पत्रों में वह संकल्प समागम के लिये संकेत स्थान लिखा करती है। दूतीप्रेषण में वह स्वप्नावस्था के अपराधों के लिये उलाहने भेजती है।

दक्षिण दिशा से आने वाली हवा के साथ जैसे चन्दनपरिमल आता है वैसे ही उसको मूर्च्छा आती है।

---

१. संघटयति।

इशाप इव निशया सहापतति प्रजागरत्रासः। प्रतिरुतानीव वलभीकपोतकूजितैः सहाविर्भवन्ति दुःखानि। मधुकर इवोपवनकुसुमामोदेन सहोपसर्पति मरणाभिलाषः। तथा च जलकणिकेव पद्मिनीपलाशस्थिता कम्पते। प्रतिच्छायेव स्फटिकोपलसलिलमणिदर्पणमणिकुट्टिमतलेषु दृश्यते। नलिनीव शशिकरस्पर्शेन म्लायति। हंसीव सरसमृणालिकाहारव्यतिकरेण जीवति। शरदिव कुमुदकुवलयकमलसंपर्कमनोहरगन्धवहा सकुसुमबाणा च विजृम्भते। चन्द्रमूर्तिरिव कमलप्रकरस्खलितपादपल्लवा संचरन्ती निशां नयति। कुमुदिनीव रजनिकरकिरणकृतप्रजागरा दिवसमलीकनिद्रयातिवाहयति।

सार्धम्। चक्राह्वस्य चक्रवाकनाम्नः पक्षिणः शाप इव रात्रिवियोगाभिशाप इव प्रजागरत्रासः जागरणभयम् आपतति उत्पद्यते। रात्रावागतायां यथा चक्रवाकमिथुनस्य वियोगफलः शापः समापतति तथा कादम्बर्यां प्रजागरत्रासोऽपि समापततीत्यर्थः। वलभीकपोतकूजितैः गोपानसीस्थितकपोतशब्दैः सह यथा प्रतिरुतानि प्रतिशब्दाः आविर्भवन्ति तथा कादम्बर्याः दुःखान्यपि आविर्भवन्ति। उपवनकुसुमामोदेन उद्यानकुसुमसुवासेन सह यथा मधुकरो भ्रमरः उपसर्पति तथा मरणाभिलाषः उपसर्पति। सायमुपवनकुसुमेन सह यथा भ्रमरकुलं समुपसर्पति तथा तन्मरणाभिलाषोऽपि समुपसर्पतीत्यर्थः। पद्मिनीपलाशस्थिता–पुष्करपलाशोपरि वर्तमाना। जलकणिका–पानीयबिन्दुः। प्रतिच्छाया–प्रतिबिम्बम्। यथा प्रतिबिम्बं स्फटिकोपले सलिले मणिदर्पणे मणिकुट्टिमतले च दृश्यते तथैव कादम्बर्यपि स्वसन्तापनिवृत्तये स्फटिकोपलादिषु तेषु तेषु शीतलस्थानेषु तिष्ठतीति तत्र दृश्यते इत्यर्थः। शशिकरस्पर्शेन–चन्द्रकिरणपरामर्शेन। यथा कमलिनी चन्द्रकरस्पर्शेन ग्लानिमायाति तथैवेयमपीत्यर्थः। सरसमृणालिकाया आर्द्रनलिन्या च आहारः भोजनं तद्व्यतिकरेण तत्सम्बन्धेन, आर्द्रनलिनीरचितहारोपयोगेन वेत्यर्थद्वयम्। हंसी यथा मृणालिकाया आहारेण जीवनं धारयति तथेयं कादम्बरी मृणालिकाया हारं शैत्योपपादकतया स्वीयजीवनसाधनत्वेन मन्यते इति श्लिष्टविशेषणोत्थापितोपमा। शरदिव शरत्समय इव। कुमुदस्य, कुवलयस्य नीलकमलस्य, कमलस्य च सम्पर्केण सम्बन्धेन मनोहरो हृद्यो गन्धवहो वायुर्यत्र तथा, सकुसुमः पुष्पितो बाणस्तदाख्यस्तरुश्च यत्र तथा, कादम्बरीपक्षे तु कुमुदकुवलयकमलसंपर्केण मनोहरः चेतनाहारी गन्धवहो वायुर्यस्याः सा: तादृशी, सकुसुमावणा समदना चेत्यर्थो बोध्यः। चन्द्रमूर्तिः–चन्द्रबिम्बम्। कमलप्रकरे प्रस्खलितः अव्यवस्थितः पादः किरण एव पल्लवो यस्यास्तादृशी। कादम्बरीपक्षे कमलप्रकरे प्रस्खलितः अस्थिरसंचारो भवन् पादपल्लवो यस्यास्तादृशीत्यर्थः। रजनिकरस्य चन्द्रमसः किरणैः कृतः प्रजागरो रात्रिजागरणं यया तादृशी। कुमुदिनी रात्रौ विकसतीति तज्जागरणं कादम्बरी विरहव्यथया जागर्तीति च बोध्यम्। अलीकनिद्रया मिथ्यास्वापेन। कुमुदिन्याः स्वापो निमीलनम्।

जैसे रात के साथ चक्रवाक का शाप आता है उसी तरह उसका रात्रि-जागरण-त्रास आता है। छज्जे पर पाले गये कबूतरों के शब्द के साथ उसके दुःख प्रकट होते हैं। उपवन-कुसुमपरिमल के साथ भ्रमरों की तरह उसकी मरणाभिलाषा भी आती है। वह पद्मपलाशस्थित जलबिन्दु की तरह काँपती है। स्फटिकमणि, जल एवं मणि दर्पणों में वह प्रतिबिम्ब की तरह दीखती है। चन्द्रकिरणस्पर्श से वह नलिनी की तरह सन्तप्त होती है। जैसे हंसी सरस मृणाल के आहार पर जीती है उसी तरह वह सरल मृणाल के हार से जीती है। जैसे शरद् ऋतु कुमुद-कुवलय-रक्त कमल आदि की गन्ध से मनोहर वायु तथा फुल्ल बाणवृक्ष से युक्त रहती है उसी तरह वह कुमुद-कुवलय-रक्त-कमल प्रभृति फूलों से अपने पास की वायु को सुगन्धपूर्ण बनाती एवं कामबाणों से युक्त रहती है। चन्द्रमा की मूर्त्ति जैसे कमलों पर अपनी किरणों को बिना डाले रात बिता देती है उसी तरह यह कमल पुष्पों पर चरण रख कर रात बिताती है। जैसे कुमुदिनी रात में चन्द्रमा की किरणों के साथ जागती रह कर दिन को मिथ्या निद्रा में व्यतीत करती है उसी तरह वह रात में चन्द्रमा की किरणों द्वारा सन्तप्त होकर जागती रहती है और दिन भर मिथ्या निद्रा में बिताती है।

मुररिपुजलशयनलीलेव मन्दोच्छ्वसितशेषा निमीलितलोचना किमपि चिन्तयति। मलयनिम्नगेव सरसहरिचन्दनकिसलयलाञ्छितेषु शिलातलेष्वभिपतति। कुन्दकलिकेव तुषारसिक्तपल्लववर्तिनी वनानिलेनायास्यते। भुजंगीवासह्यसंतापालिङ्गितचन्दना शिखिशकुन्तकुलकोलाहलेन ताम्यति। हरिणीव केसरिकाननं परिहरति। कुसुमघटितशिलीमुखमनोहरान्मदनचापादिव प्रमदवनात् त्रस्यति। जानकीव पीतरक्तेभ्यो रजनिचरेभ्य इव चम्पकाशोकेभ्यो बिभेति। उषेव स्वप्नसमागमेनापि कृतार्थतामेति। ग्रीष्मलक्ष्मीरिवानुदिनमति-

मुररिपुजलेति० यथा भगवान्मुरारिः जलशयनकाले मन्दोच्छ्वासमात्रचेष्टाशेषः निमीलितलोचनश्च संजायते तद्वदियमपि मन्दोच्छ्वासमात्रेणानुमेयजीविता निमीलितनयना च तिष्ठतीति कादम्बर्या मुररिपुजलशयनलीलासादृश्यं बोध्यम्। मलयनिम्नगा-मलयाचलप्रवाहिणी नदी। सरसैः आर्द्रैः हरिचन्दनकिसलयैः चन्दनदलैः लाञ्छितेषु युक्तेषु। यथा मलयाचलवाहिनी नदी 'आर्द्रचन्दनपल्लवयुक्ते शिलातटे पतति तथैव कादम्बर्यपि चन्दनपल्लवयुतेषु शिलातलेषु शरीरसन्तापापनुत्तये पततीति भावः। कुन्दकलिका-माघ्यपुष्पकली। तुषारसिक्तपल्लववर्तिनी-प्रालेयसिक्तकिसलयमध्यगता। तुषारसिक्तकिसलयशयनशयिता चेति कादम्बर्याः पक्षेऽर्थः। वनानिलेन-वनवायुना। आयास्यते खेद्यते। यथा तुषारसिक्तपल्लवस्थिता कुन्दकलिका वनवायुना खेदं प्राप्यते तद्वत् तुषारसिक्तं पल्लवं शयनत्वेनाश्रिता कादम्बरी वनवायुना खेदं प्राप्यते इत्यर्थः। भुजङ्गी-सर्पिणी। असह्यसन्तापालिङ्गितचन्दना-अतिशयितेन सन्तापेन चन्दनलतामाश्रिता। शिखिनां मयूराणां शकुन्तानां पक्षिणां च कुलस्य समूहस्य कोलाहलेन ताम्यति आकुलीक्रियते यथा असह्येन सन्तापेन चन्दनलतामाश्रयन्ती सर्पिणी मयूराणां पक्षिणाञ्चान्येषां शब्देन व्याकुलीक्रियते तद्वदियं कादम्बर्यपि असह्येन वियोगावस्थासन्तापेन चन्दनमुपयुञ्जाना मयूराणां शकुन्तानाञ्च शब्देन व्याकुलतां नीयते इत्याशयः। हरिणी-हरिणस्त्री। केसरिकाननम्-सिंहाध्यासितं वनम्, नागकेसरयुक्तं वनञ्च यथा हरिणी सिंहाध्यासितं वनं परिहरति तथा कादम्बरी नागकेसरयुक्तं वनं परिहरतीत्यर्थः। कुसुमघटितशिलीमुखमनोहरात्-पुष्परचितबाणरमणीयात् पुष्पासक्तभ्रमररम्याच्च, मदनचापात्-कामबाणात्। प्रमदवनात्-पुष्पोद्यानात्। यथैव कादम्बरी पुष्परचितकामबाणाद्बिभेति तथैव पुष्पासक्तभ्रमरयुक्तात्प्रमदवनादपि बिभेतीत्यर्थः। जानकी जनकसुता सीता पीतरक्तेभ्यः-शोणितपायिभ्यः। रजनिचरेभ्यः-राक्षसेभ्यः। यथा जानकी रक्तपायिभ्यो राक्षसेभ्योऽबिभेत्तथा कादम्बरी पीतरक्तवर्णेभ्यश्चम्पकाशोकेभ्यो बिभेतीति प्रकृष्टकार्थः। उषा बाणासुरपुत्री अनिरुद्धपत्नी। सा यथाऽनिरुद्धस्य स्वप्नमिलनेन पूर्णाभिलाषा जाता तथैव कादम्बर्यपि स्वप्ने चन्द्रापीडस्य सङ्गमेनात्मानं कृतार्थं मन्यते इत्याशयः। ग्रीष्मलक्ष्मीः-ग्रीष्मर्त्तुशोभा। यथा ग्रीष्मर्त्तुशोभाऽनुदिनमपचीयमाना

विष्णु की जलशयन-लीला की तरह उसका मन्दनिश्वासमात्र शेष है और वह आँख मूँद कर कुछ सोचा करती है। मलयाचल पर प्रवाहित होने वाली नदी जैसे चन्दनपल्लवपूर्ण शिलातलों पर गिरा करती है उसी तरह वह भी चन्दन तथा पल्लवों से युक्त शिलातलों पर लोटती रहती है। ओस से भरे पल्लव में लिपटी कुन्दकली को जैसे वनानिल कष्ट देता है उसी तरह पाले से सिक्त पल्लवों पर पड़ी कादम्बरी को वनानिल कष्ट देता है। सर्पिणी जब असह्य सन्ताप से पीड़ित होकर चन्दन वृक्ष से लिपटती है उस समय मयूर के कोलाहल से उसे जिस प्रकार कष्ट होता है, उसी तरह असह्य सन्ताप-शमनार्थ इसने भी चन्दन-लेप रखा है और मयूर के शब्द से इसको भी कष्ट होता है। हरिणी सिंहयुक्त वन से जैसे अलग रहती है उसी तरह यह नागकेसर के वन में नहीं जाना चाहती है। फूलों पर आसक्त भ्रमरों से भरे प्रमदवन से वह उसी तरह डरती है, जैसे पुष्प-निर्मित तथा बाणयुक्त कामचाप से डरती है। जानकी जैसे रक्तपायी राक्षसों से डरती थीं, उसी तरह यह पीले तथा लाल वर्ण के चम्पक तथा अशोक पुष्प से डरती है। बाणासुर-सुता उषा जैसे अनिरुद्ध के स्वप्न-समागम से कृतार्थ हो गई थी उसी तरह यह आप के स्वप्न-समागम से कृतार्थ हो जाती है।

ग्रीष्म की शोभा जैसे दिनानुदिन क्षीण होती जाती है, उसी तरह वह दिनानुदिन क्षीण हो रही है। काम-

क्षामा भवति । सर्वथा तस्याः कन्दर्पवेदनयाङ्गानि दिवसैर्जीवितसंधारणवस्तूनि वलयरचनया गृहकमलिनीमृणालान्युपदेशैः सखीजनवचनानि शय्यापरिकल्पनेनोपवनकुसुमान्यनवरतमोचेण मदनायुधानि निःशेषं क्षीणानि । किं बहुना । संप्रति तस्यास्त्वन्नामा सर्वसखीजनस्त्वत्संबद्धानि सर्वरहस्यानि त्वत्समागमोपायान्वेषिणः सर्वसमवायास्त्वद्वार्त्तोपलम्भनतत्पराः सर्वप्रश्नास्त्वद्वृत्तान्तमुखरः परिजनस्त्वदालापनिर्मिताः सर्वविनोदास्त्वदाकारमयश्चित्रकलाभ्यासस्त्वदुपालम्भगर्भा मागधीमङ्गलगीतयस्त्वद्दर्शनपुनरुक्ताः स्वप्नास्त्वत्परिहासप्राया मदनज्वरदाहविप्रलापास्त्वन्नामग्रहणैकोपायगम्यप्रबोधा मोहमहावेगाः ।'

इत्यावेदयन्तं केयूरकं 'भवतु, संप्रति न शक्नोम्यतः परं श्रोतुम्' इत्यामीलनाद्दत्तसंज्ञेव

भवति तथैव कादम्बरी अनुदिनं क्षामतां प्रपद्यत इत्यर्थः । सर्वथेत्यादि क्षीणानीत्यन्तं वाक्यं सर्वथा कादम्बर्याः कदर्थितत्वं बोधयति, तस्या अङ्गानि शरीरावयवाः कन्दर्पवेदनया क्षीणानि, एवमेवाग्रेऽपि सर्वत्र क्षीणानीति योजनीयम् । दिवसैः विरहदिवसैः । जीवितसन्धारणवस्तूनि प्राणावलम्बनसाधनानि । वलयरचनया हस्ताभरणनिर्मित्या, गृहकमलिनीमृणालानि भवनदीर्घिकावर्त्तिसरोजदण्डाः । उपदेशैः धैर्यधारणार्थाभिः शिक्षाभिः । शय्यापरिकल्पनेन शयनीयरचनया । उपवनकुसुमानि–उद्यानस्थितानि पुष्पाणि । अनवरतमोचेण–सततप्रहारेण मदनायुधानि–कामास्त्राणि । त्वन्नामा–भिन्ननामा । सर्वा अपि सखीः सा त्वन्नाम्नैव व्याहरतीत्यर्थः । त्वत्समागमोपायान्वेषिणः–त्वन्मिलनोपायगवेषणासक्ताः । सर्वसमवायाः समस्ताः परिजनाः । त्वद्वार्त्तोपलम्भनतत्पराः–त्वदीयसमाचारप्राप्तिसयत्नाः । त्वद्वृत्तान्तमुखरः–त्वदीयकथानिवेदनवाचालः । परिजनः–भृत्यवर्गः । त्वदाकारमयः–त्वदीयरूपचित्रणप्रचुरः । त्वदालापनिर्मिताः–त्वया सह कृतां वार्त्तामाधारीकृत्य निर्मिताः । त्वदुपालम्भगर्भाः–तवोपालम्भं हृदि कृत्वा कृताः । मागधीमङ्गलगीतयः–मागधीनां वन्दिचारणादिस्त्रीणां मङ्गलगीतयः–प्रातःसन्ध्यादिकालेषु कृतानि स्तुतिवाक्यानि । त्वत्परिहासप्रायाः–त्वया सह कृताभिः परिहासकथाभिः पूर्णाः । मदनज्वरदाहविप्रलापाः–कामसन्तापावस्थायां कृताः । प्रलापोक्तयः । त्वन्नामग्रहणैकोपायगम्यप्रबोधाः–केवलेन त्वन्नामग्रहणेनैव यत्र प्रबोधो भवति तादृशाः । मोहमहावेगाः–मूर्च्छावेगाः । अयमाशयः–सम्प्रति वियोगम्लाना कादम्बरी सर्वाः स्वसखीस्तवैव नाम्ना व्याहरति, सर्वाण्यपि रहस्यानि तव सम्बन्धे एव करोति, सर्वैरपि परिजनः तव समागमस्योपायानेकान्वेषयति, सर्वानपि प्रश्नाँस्तादृशानेव करोति येषु त्वदीयाया वार्त्ताया उपलब्धेस्तत्परता प्रतिभासते, तस्याः सर्वोऽपि तवैव वृत्तान्तान् व्याहरति, तस्याः सर्वेऽपि विनोदव्याहारास्त्वया सह कृतान् वार्त्ताविलपानेवाधारीकुर्वते, सा चित्रकलाभ्यासे केवलानि तवैव चित्राणि निर्माति, मागधीनां मङ्गलगीतेषु केवलस्त्वदुपालम्भ एवान्तर्हितस्तिष्ठति, स्वप्नेषु भूयोभूयसा त्वामेव पश्यति, कामसन्तापेषु सा यत्प्रलपति तत्र तवैव सह परिहासाः स्फुटन्ति, तस्याश्च मूर्च्छावेगाः केवलेन त्वन्नामसंग्रहणेनैव शाम्यन्त इति ।

इत्यावेदयन्तम्–इत्थंकथयन्तम् । केयूरकं तन्नामानमनुचरम् । न शक्नोम्यतः परं श्रोतुम्–न पार·

पीड़ा से उसके अङ्ग, दिनों से जीवितधारणोपयोगी पदार्थ, वलय–रचना से गृहकमलिनीमृणाल, उपदेशों से सखीजनवचन, शय्यापरिकल्पना से उपवन के फूल और बराबर चलाये जाते रहने से कामदेव के बाण निःशेष क्षीण हो गये हैं । अधिक क्या कहा जाय ? इस समय कादम्बरी की सभी सखियाँ चन्द्रापीड–नाम की सारे रहस्य चन्द्रापीड से सम्बद्ध, समस्त सभा–समितियाँ तुमसे मिलने के उपायों के अन्वेषण से संलग्न, सारे प्रश्न तुम्हारी खबर जानने से प्रेरित, समस्त परिजन तुम्हारी चर्चा में व्यस्त, तुम्हारे साथ की गई बातों पर आधारित सारे विनोद, चित्रकलाभ्यास तुम्हारे आकार से परिपूर्ण, प्रातःकालिक मङ्गल–गीत तुम्हारे लिये प्रस्तुत उलाहनों से भरे, सारे सपने तुम्हारे दर्शनों से भरे, सारे कामसन्तापजन्य प्रलाप तुम्हारे साथ किये जाने वाले परिहास से पूर्ण एवं सारे मूर्च्छा के वेग तुम्हारे नाम–ग्रहण से होने वाले प्रबोध से समाप्त हुआ करते हैं ।

इस प्रकार कहते हुए केयूरक को—'रहने दो, अब इससे अधिक मैं नहीं सुन सकता हूँ' इस प्रकार कहते

---

१. क्षामा श्यामा भवति ।

कादम्बरीव्यथाश्रवणवेदनासंभवानुकम्पयेव चन्द्रापीडमाक्रामन्ती मूर्च्छा न्यवारयत्। न तु पुनरवस्थानिवेदनपरिसमाप्तिः।

इति मूर्च्छानिमीलितश्च तामेवानुध्यायन्निव ससंभ्रमप्रतिपन्नशरीरेण केयूरकेण संभावितताल-वृन्तया च पत्रलेखयानुभाव्यार्थसज्जया च नियत्या संज्ञां लम्भितश्चन्द्रापीडः स्वकृतपीडापराधेन भीतमपि लज्जितमिव विलक्षमिव निभृतस्थितं केयूरकमन्तर्बाष्पोपरुध्यमानकण्ठः कथमपि स्खलिताक्षरं प्रत्युवाच। 'केयूरक येन प्रकारेणैवमेकान्तनिष्ठुरहृदयमात्मन्यनुत्पन्नानुरागमेव मां संभाव्य देव्या कादम्बर्या दूरीकृतपुनर्मदागमनसंभावनया न त्वमागमनायादिष्टो न संदिष्टं वा किंचिन्महाश्वेतया समुपहृतानुबन्धया मदलेखया वा त्वन्मुखेन नोपालब्धोऽस्मि तथा मयि पत्रलेखया सर्वमाख्यातम्। तदभिजाततया महानुभावत्वा-

---

यामीतोऽधिकमाकर्णयितुम्। आमीलनाद्दत्तसंज्ञा–नेत्रनिमीलनद्वारा प्रबोधिता। कादम्बर्याः व्यथायाः कामपीडायाः श्रवणेन या वेदना व्यथा तत्संभवा तदुत्थापिता या अनुकम्पा दया तयेव चन्द्रापीडम् आक्रामन्ती अभिभवन्ती मूर्च्छा केयूरकं न्यवारयत् कथनाद् व्यरमयत्। अयमाशयः—पूर्वोक्तरूपासु कादम्बर्याः कष्टावस्थासु निवेद्यमानासु जातेन चन्द्रापीडस्य नेत्रनिमीलनेन प्रबोधिता मूर्च्छा झटिति चन्द्रापीडमाक्रम्य कादम्बर्या व्यथां श्रुत्वा चन्द्रापीडोऽधिकां वेदनां मानुभूदितिकृपयेव केयूरकं न्यवारयत् नतु तदवस्थानिवेदनस्य समाप्तिरजायत, यद्ययं मूर्च्छितो न भवति तदा कादम्बर्या व्यथाः श्रुत्वा समधिकां वेदनामनुभवतीति कृत्वा मूर्च्छा कृपामिव तमाक्रम्याधिकवेदनाप्राप्तेरमोचयदिति तात्पर्यम्।

इति मूर्च्छानिमीलितः–इत्थं मूर्च्छया हृतचैतन्यः। ताम्–कादम्बरीम्। अनुध्यायन्–चिन्तयन्। ससंभ्रमप्रतिपन्नशरीरेण–सद्योऽवलम्बितचन्द्रापीडवपुषा (पतनप्रतिरोधाय चन्द्रापीडशरीरं बाहुभ्यामादाय तिष्ठतेत्याशयः) सम्भावितताल-वृन्तया–करधृततालव्यजनया। अनुभाव्यार्थसज्जया–अनुभवनीयकादम्बरीसमागमरूपवस्तुसचेष्टया। नियत्या–भाग्येन। संज्ञां लम्भितः–चैतन्यं प्रापितः। स्वकृतपीडापराधेन–केयूरकः कादम्बरीदशां श्रावयित्वा चन्द्रापीडाय पीडामदादित्याशयेनेदं विशेषणम्। भीतम्–सभयम्। विलक्षम्–चकितलज्जितम्। निभृतस्थितम्–शान्तभावेन वर्तमानम्। अन्तर्बाष्पोपरुध्यमानकण्ठः–अन्तर्गताश्रुनिरुद्धवाक्प्रसरः। कथं कथमपि–महता प्रयासेन। स्खलिताक्षरम्–गद्गदस्वरसहितम्। एकान्तनिष्ठुरम्–नितान्तनिर्दयम्। आत्मनि–कादम्बर्याम्। अनुत्पन्नानुरागम्–अजातप्रेमाणम्। माम्–चन्द्रापीडम्। संभाव्य–उत्प्रेक्ष्य। दूरीकृतपुनर्मदागमनसंभावनया–मदीयं पुनरागमनसंभवं मन्यमानया। त्वं केयूरकः। आगमनायादिष्टः–मत्पार्श्वमागन्तुमाज्ञप्तः। न संदिष्टं वा किञ्चित्–कोऽपि वाचिकः संदेशो न प्रेषितः। समुपहृतानुबन्धया–समार्पितप्रेमसंबन्धया। उपालब्धः–उपालम्भदानपात्रीकृतः। आख्यातम्–कथितम्। अभिजाततया–महाकुलोत्पन्नतया। महानुभावत्वात्–अत्युदारत्वात्। 'समानशी-

---

कहते चन्द्रापीड को कादम्बरी की दशा सुनने से उत्पन्न दया से प्रसूत मूर्च्छा ने आ घेरा—इस मूर्च्छा ने ही कहने से रोका। ऐसी बात नहीं थी कि कादम्बरी की दशा का निवेदन समाप्त हो गया था।

चन्द्रापीड मूर्च्छा से अचेत हो रहे थे मानों कादम्बरी का ध्यान कर रहे हों। केयूरक ने दौड़ कर उनकी देह पकड़ ली, तालवृन्त लेकर पत्रलेखा झलने लगी, आगे होने वाले कष्टों को भोगवाने के लिये तत्पर भाग्य ने भी योग दिया, इस प्रकार सबने मिलकर चन्द्रापीड को होश में किया। केयूरक—यह सोच कर कि मेरे ही अपराध से इनकी यह दशा हुई है—भीत, लज्जित, कुण्ठित एवं शान्त बैठा था। चन्द्रापीड ने रुंधे गले से गद्गद शब्दों में केयूरक से कहा—केयूरक, जिस प्रकार कादम्बरी मुझे अपने प्रति अनुत्पन्न स्नेह तथा निष्ठुरहृदय समझती है, उसको फिर मेरे आने की सम्भावना नहीं है, इसीलिये उसने तुम्हें न आने का आदेश दिया और न कुछ संदेश ही कहा। महाश्वेता तथा सारी कड़ियों को जोड़ने वाली मदलेखा ने भी कुछ नहीं कहा। तुम्हारे मुंह से कुछ उलाहना नहीं कहवाया, यह सारी बात मुझे पत्रलेखा कह चुकी है। उच्च वंशोत्पन्न, महानुभाव, उदार,

दुदारतया समानशीलतया दक्षिणतया चैकान्तपेशलतया च स्वभावस्यात्मानमात्मना न कलयति देवी कादम्बरी। चन्द्रमूर्तेरालोकेन निश्चेतनस्य चन्द्रकान्ताख्यस्य पाषाणखण्डस्यार्द्रभावोपगमनमेवायत्तं न पुनस्तत्कराकर्षणम्। नितरां पक्षपातिनोपि च मधुकरस्याभिगमनमेवाधीनम्। मकरन्दलाभे तु कलिकाश्रयिणी जृम्भैव प्रभवति। दिवससंतापक्लान्तेन चोन्मुखता कुमुदाकरेण करणीया। विकासयति पुनस्तं ज्योत्स्नाभिरामा रजन्येव। निर्भरमन्तःसरसतायां सत्यामपि मधुमासलक्ष्मीपरिग्रहाद्विना पल्लवानुरागदर्शनस्य कृते किं करोतु पादपः तत्र देव्याः कादम्बर्या एवाज्ञापराधिनी। ययाधरस्पन्दितमात्रप्रतीक्षे पुरःस्थायिनि दासजने निष्करुणतयात्मानमव्यापारयन्त्या सुखपरिपन्थिनी दुःखदानै-

---

लतया सुखे दुःखे च समवर्त्तितया। दक्षिणतया-कुशलतया। एकान्तपेशलतया-नितान्तकोमलतया। आत्मानमात्मना न कलयति-आत्मानं स्वयमपि न परिचिनोति। [इतोऽग्रे पञ्चदेवाक्यैश्चन्द्रापीड इदं बोधयितुं प्रयतिष्यते यत् कादम्बरीमिच्छन्नप्यहं यत्स्वयं किमपि नोक्तवान् स न मेऽपराधः, यतः समानेऽप्यनुरागे स्त्रिया एव प्रस्तावः प्रथममुपयुज्यते न पुंसः, कादम्बर्याः कापि तादृशी चेष्टा मया न दृष्टा ययाहं तामात्मन्युत्पन्नप्रेमाणं मत्वा तत्कामसाफल्याय चेष्टां कुर्याम्, अतो मम न कोऽपि दोष इति] चन्द्रमूर्तेरालोकेन-चन्द्रबिम्बदर्शनेन। निश्चेतनस्य-चेतनाशून्यस्य। पाषाणखण्डस्य-शिलाशकलस्य। आर्द्रभावोपगमनम्-आर्द्रताप्राप्तिः। आयत्तम्-वशवर्त्ति। तत्कराकर्षणम्-चन्द्रकिरणस्यावर्जनम्। अयमाशयः-चन्द्रमण्डलं दृष्ट्वा चन्द्रकान्तमणिरार्द्रतां प्राप्नुयादेतावदेव चन्द्रकान्तमणेर्वशे वर्त्तते, इदन्तु तस्य हस्ते नास्ति यदसौ चन्द्रकरानाकर्षेदेवमेव कादम्बरीं दृष्ट्वा तद्विषये प्रेम्णः करणमेव मदधीनमासीदृत्तः परं कर्त्तव्यमालिङ्गनादि तु मदधीनं नैवासीदिति। नितरां पक्षपातिनः-समधिकस्नेहशालिनः। मधुकरस्य-भ्रमरस्य। अभिगमनम्-समीपोपसर्पणम्। मकरन्दलाभे-पुष्परसप्राप्तौ। कलिकाश्रयिणी-कलिकावर्त्तिनी। जृम्भा-विकासः। प्रभवति-समर्था भवति। अयमाशयः-पुष्परसं कामयमानोऽपि भ्रमर एतावदेव कर्तुं शक्तो यदसौ पुष्पमुपेयात्, परन्तु पुष्पसमीपगतोऽपि कलिकाया विकासे सत्येव पुष्परसं भोक्तुं क्षमते नान्यथा, एवमेव कादम्बर्यामनुरक्तस्तत्समीपस्थश्चाहं तदैव तामुपभोक्तुं क्षमोऽभविष्यं यदाऽसावभिप्रायं स्वं तथाविधं बोधयेत्तथा च न सा कृताऽतो नास्ति मम दोष इति। दिवससन्तापक्लान्तेन-दिनोष्मपीडितेन। उन्मुखता-चन्द्रकिरणाभिमुख्यम्। कुमुदाकरेण-कुमुदवनेन। करणीया-कर्त्तुं शक्या। विकासयति-विकासं प्रापयति। ज्योत्स्नाभिरामा-चन्द्रिकारम्या। रजनी-रात्रिः। दिनसन्तापकदर्थितोऽपि कुमुमाकरः केवलमुन्मुखतामेव प्रकटीकर्तुं शक्तः, विकासस्तु तस्य शशिद्युतिरम्यरजन्यायत्त एवेत्यर्थः।

निर्भरम्-अत्यन्तम्। अन्तःसरसतायाम्-आन्तरिक्यामार्द्रतायाम्। सत्याम्-विद्यमानायाम्। मधुमासलक्ष्मीपरिग्रहात् विना-विना वसन्तश्रीसमुदयम्। पल्लवानुरागदर्शनस्य-पल्लवरूपस्यानुरागस्य प्रकटने। पादपः-वृक्षः। वृक्षस्यान्तर्भागे सरसता तिष्ठति परन्तु यावन्मधुमासलक्ष्मीर्नायाति तावद्रागयुक्तस्य पल्लवस्य दर्शनं न जायते इत्यर्थः। तत्र-यदहं कादम्बरीं मयि धृतकामामपि न सम्भावितवांस्तत्र। अधरस्पन्दमात्रप्रतीक्षे-कादम्बर्या अधरस्पन्दनमात्रं प्रतीक्षमाणे, तदाज्ञामात्रं कामयमाने इत्यर्थः। पुरःस्थायिनि-अग्रतः स्थिते। निष्करुणतया-निर्दयतया। आत्मानमव्यापारयन्त्या-स्वयमचेष्टमानया। सुखपरिपन्थिनी-सुखस्य विरोधिनी। दुःखदानैकनिपुणा-कष्टमात्रप्रदानदक्षा। परहृदयपीडानपेक्षिणी-

---

समानशील तथा चतुर एवं कोमल स्वभाव होने के कारण कादम्बरी स्वयं अपने को नहीं पहचानती है। चन्द्रमण्डल को देख कर अचेतन चन्द्रकान्तमणि-खण्ड गीला ही भर हो जाता है, वह चन्द्रकिरणों का आकर्षण नहीं कर सकता है। अत्यन्त पक्षपाती होकर भी भ्रमर फूल के पास भर जा सकता है, मकरन्द तो तभी मिलता है जब कली खिलती है। दिन के सन्ताप से तप्त कुमुदाकर चन्द्रमा की ओर उन्मुख भर हो सकता है, उसको विकसित तो चन्द्रिका से रमणीय रात ही कर सकती है। भीतर प्रचुर सरसता के रहते हुए भी मधुमास-लक्ष्मी की कृपा के विना वृक्ष को पल्लव की लाली नहीं मिलती है, इसमें वृक्ष क्या करे ? इस विषय में कादम्बरी की आज्ञा का ही कसूर है। मैं दास सामने खड़ा अधरस्पन्दन मात्र की प्रतीक्षा कर रहा था, परन्तु उस निष्करुण

कनिपुणा परहृदयपीडानपेक्षिणी लज्जापेक्षिता न जीवितसंदेहदायिनी देव्याः समवस्था। अथवास्य परिजनस्यापि देव्या अपि कोयमेवंविधो व्यामोहः। यदनिच्छन्त्यपि बलादसौ न व्यापारिता। कीदृशी चरणतलप्रतिबद्धस्य दासजनस्योपरि लज्जा। कीदृशं वा गौरवम्। को वानुरोधः। अविश्वस्तचित्तता वा केयमीदृशी। यदेवमात्मनः शिरीषपुष्पकोमलस्येयमतिदारुणा पीडाङ्गीकृता न कृतार्थितो मे मनोरथः। अथवा क्रमागतमन्तर्धानं वामलोचनानां विशेषतोऽपरित्यक्तनिःशेषबालभावानामनतिप्रबुद्धमुग्धमनसिशयानां कन्यकानाम्। लज्जा न वारिता नामास्मिञ्जने स्वयं परित्यक्तुं देव्या। मदलेखा तु द्वितीयं हृदयमस्याः। तथा किमेवमहार्यसंयमधनैर्मुनिभिरप्यरक्षितहृदयापहारेणानिग्राह्यचौरेण शुचिभिरप्यपरिहार्यस्पर्शेनाबहिष्कार्यचण्डालेन भस्मीकृतापर्यवसानप्राणिसहस्रेणानिर्वाप्यश्मशानाग्निना सर्वदोषाश्रयेणाशरीरव्याधिना रूपापहारिणाकाण्डव्याधेन मर्मभेदिनालीकधनुर्धरेण

परकीयहृदयव्यथामचेतयन्ती। अपेक्षिता–अनुरुद्धा। जीवितसन्देहदायिनी–जीवं संशये पातयन्ती मरणसंशयं जनयन्तीत्यर्थः। देव्याः–कादम्बर्याः। समवस्था–स्थितिः। अयमेतत्प्रघट्टकार्थः–कादम्बर्या यत्कष्टमनुभूयते तत्र तदाज्ञाया एव दोषो यतोऽसौ कष्टदायिनीं लज्जामनुरुध्य स्वमव्यापारयन्ती–मां न प्रवर्त्तितवतीति। एवंविधः–एतादृशः। व्यामोहः–किङ्कर्तव्यमूढता। अनिच्छन्ती–अकामयमाना। असौ–कादम्बर्या आज्ञा। चरणतलप्रतिबद्धस्य शरणरूपेण चरणं श्रितवतः। अविश्वस्तचित्तता–मानसोऽविश्वासः। शिरीषपुष्पकोमलस्य–शिरीषकुसुमसुकुमारस्य। अतिदारुणा–कठोरा। कृतार्थितः–सार्थकीकृतः। क्रमागतम्–परम्परायातम्। अन्तर्धानम्–आत्मगोपनम्। वामलोचनानाम्–स्त्रियाम्। अपरित्यक्तनिःशेषबालभावानाम्–निशेषरूपेण बाल्यमत्यक्तवतीनाम् (वयःसन्धौ स्थितानामित्यर्थः) अनतिप्रबुद्धः अपूर्णरूपेण दीप्तः मुग्धः मनसिशयः कामो यासां तादृशीनाम् अनतिप्रकटकामवेगानामित्याशयः। लज्जापारवश्येन देवी कादम्बरी स्वयं किमपि मावोचत्, तदीया हृदयाभिन्ना सखी मदलेखा किमिति किमपि नावोचदिति महदाश्चर्यम् इत्यभिधातुमुपक्रमते–लज्जेत्यादिना–कर्णेनावेदितमित्यन्तेन ग्रन्थेन। तया–मदलेखया। अहार्यसंयमधनैः–अभेद्यसंयमशालिभिः। दृढनिगृहीतचित्तैरित्यर्थः। अरक्षितहृदयापहारेण–अरक्षितहृदयचौर्येण। [दृढनिगृहीतचित्ता मुनयोऽपि यत्कृतात्चौर्याद् हृदयं स्वं रक्षितुं न शक्नुवन्ति तादृशेन। इदं कामेनेत्यस्य विशेषणम्] अनिग्राह्यचौरेण–ग्रहीतुमशक्येन तस्करेण। शुचिभिः–पवित्रैः। अपरिहार्यस्पर्शेन–अवश्यस्प्रष्टव्येन। अबहिष्कार्यचण्डालेन–चण्डालत्वे सत्यपि हृदयस्थितत्वेन बहिष्कर्तुमयोग्येन। भस्मीकृतापर्यवसानप्राणिसहस्रेण–दग्धीकृतानन्तप्राणिसमुदयेन। अनिर्वाप्यश्मशानाग्निना–निर्वापयितुमयोग्येन श्मशानवह्निना। सर्वदोषाश्रयेण–सकलदोषाधिष्ठानेन। अशरीरव्याधिना–शरीरमपहाय प्रवर्त्तमानेन पीडाकरतया च व्याधिना। [अन्ये रोगाः शरीरमुपद्रवन्ति कामस्तु शरीरं हित्वा मनः पीडयति, तदयमत्राशरीरव्याधित्वेन रूपितः] रूपापहारिणा–सौन्दर्यहरणसमर्थेन। अकाण्डव्याधेन–असमये व्याध-

सुखविरोधिनी तथा दुःखदानदक्षा एवं पर–हृदयपीड़ा की अपेक्षा नहीं रखने वाली आज्ञा ने कादम्बरी के प्राणों को संशय में डाल देने वाली लज्जा की ओर देखा कादम्बरी की दशा की ओर नहीं देखा। अथवा—कादम्बरी के परिजनों को या स्वयं कादम्बरी को ही ऐसा क्या व्यामोह हो गया था कि नहीं चाहने वाली उस आज्ञा को भी क्यों न प्रवृत्त कराया। चरणों में लिपटे रहने वाले इस दास से कैसी लज्जा? कैसा गौरव या कैसा अनुरोध? हृदय में इस प्रकार का अविश्वास ही कैसा? जिसके कारण शिरीष कोमल आत्मा को इतनी पीड़ा पहुँचाई परन्तु मेरा मनोरथ नहीं पूर्ण किया। अथवा—स्त्रियाँ कुछ अपने को छिपा कर रखती हैं यह उनका जातिस्वभाव है, विशेषतः वे स्त्रियाँ अपने को छिपाती ही हैं जिनका लड़कपन निःशेषरूप में नहीं समाप्त हुआ है और जिनका काम अनतिजागृत है। अगर स्वयं देवी कादम्बरी ने मेरे विषय में लज्जा का परित्याग नहीं किया तो कोई बात नहीं, मदलेखा तो उसके द्वितीय हृदय की तरह थी। उसने किस तरह अकृत्रिम संयम के धनी लोगों के भी हृदय को अपहृत करने वाले, नहीं पकड़े जाने वाले चोर, हजारों प्राणियों के शरीरों को निःशेष भस्म कर चुकने वाले, नहीं बुतने वाली श्मशानाग्नि के सदृश, सकलदोषाश्रय, अशरीरव्याधि, रूपहरणकर्त्ता, बिना तीर के व्याध,

सद्यःप्राणापहारक्षमेणाकालमृत्युनानिरूपितस्थानास्थानप्रवर्तिना परापकारकृतार्थेन हृदयवासिनापरप्रत्ययेन स्वयोनिना कामेन दुरात्मनायास्यमानं देवीशरीरमुपेक्षितम्। किमिति तत्रस्थस्यैव मे कर्णे नावेदितम्। अधुना श्रुत्वापि दिवसक्रमगम्येऽध्वनि किं करोमि। मलयानिलाहतलताकुसुमपातस्याप्यसहं देवीशरीरम्। वज्रसारकठिनहृदयैरपि दुर्विषहाः स्मरेषवः। न ज्ञायते निमेषेणैव किं भवतीति। प्रायेण च देव्याप्यनुभवनीय एवायमर्थः। यथा चास्य दुःखैकदानव्यसनिनो दुर्घटघटनापण्डितस्य यत्किंचनकारिणो निष्कारणकुपितस्य हतविधेः सर्वतो विसंष्ठुलं समारम्भं पश्यामि तथा जानामि नैवायमेतावता स्थास्यतीति। अन्यथा क्व निष्प्रयोजनाश्वमुखमिथुनानुसरणेनामानुषभूमिगमनम्। क्व च तत्र तृषितस्याच्छोददर्शनम्। क्व तत्तीरे विश्रान्तस्यामानुषगीतध्वनेराकर्णनम्। क्व तज्जिज्ञासा-

---

चदभिभवं कुर्वता। मर्मभेदिना--मर्मस्थाने हृदये प्रहारं कुर्वता। अलीकधनुर्धरेण–मिथ्याधानुष्कतामभिनयता। सद्यः प्राणापहारक्षमेण--तत्काले प्राणं हर्तुं समर्थेन। अकालमृत्युना--असमये मृत्युमुपस्थापयता। अनिरूपितस्थानास्थानप्रवर्तिना--प्रहारस्य स्थानमस्थानं चाविचार्य प्रवर्त्तनशीलेन। परापकारकृतार्थेन–परकीयमपकारं कृत्वा स्वं धन्यं मन्यमानेन। हृदयवासिना मनसि तिष्ठता। अपरप्रत्ययेन--परस्मिन् विश्वासमबिभ्रता। स्वयोनिना--आत्मयोनिना। दुरात्मना--दुष्टेन। आयास्यमानम्--खेदं प्राप्यमाणम्। देवीशरीरम्–कादम्बर्याः वपुः। तत्रस्थस्य--कादम्बर्याः समीपे एव स्थितस्य। मम--चन्द्रापीडस्य। नावेदितम्--न सूचितम्। दिवसक्रमगम्ये--अनेकदिनलङ्घनीये। अध्वनि--मार्गे। मलयानिलेन--दक्षिणदिशावायुना आहतायाः कम्पितायाः लतायाः यत्कुसुमं पुष्पं तस्य पातः पतनं तस्यापि असहं सहनाक्षमं देवीशरीरं वर्त्तते इत्यन्वयः। अत्यन्तदूरे स्थितोऽहं दिवसपरम्परागन्तव्ये मार्गे मध्ये स्थिते किंकर्तुं शक्नोमि, अत्याहिता हि दशा देव्याः, यतः सा नितान्तसुकुमारतया यावन्मदुपसर्पणं जीवेन्न वेति संशय एवात्र चन्द्रापीडस्य चिन्तायाः बीजम्। वज्रसारकठिनहृदयैः–लौहवत्कठोरचित्तैः। दुर्विषहाः-दुःखं सोढव्याः। स्मरेषवः–कामबाणाः। निमेषेण–क्षणमात्रेण। अनुभवनीयः–साक्षात्करणीयः। दुःखैकदानव्यसनिनः–कष्टप्रदानमात्ररसिकस्य। दुर्घटघटनापण्डितस्य–अघटितघटनापटीयसः। यत्किञ्चनकारिणः–किमपि कर्तुं क्षमस्य। निष्कारणकुपितस्य–अकारणक्रोधिनः। हतविधेः–दुष्टस्य विधातुः। सर्वतो विसंष्ठुलम्–सर्वथा अनुचितम्। एतावता स्थास्यति–एतावदेव कृत्वा विरतो भविष्यति। अयमेतत्प्रघट्टकार्थः–अतिविचित्रः परमसामर्थ्यशाली च विधिः सम्प्रति यावद्यावद् दुःखं दत्तवांस्तावदेव दुःखं दत्त्वा विरतो भविष्यतीति मम विश्वासो नास्ति यतोऽसौ महता समारम्भेणेदं दुःखदानं प्रारब्धवानिति। अन्यथा-यदि विधेः एतावत्पर्यन्तमेवाभीष्टमभविष्यत्तदा। निष्प्रयोजनाश्वमुखमिथुनानुसरणेन-व्यर्थमेव किन्नरयुगलमनुसृत्य। अमानुषभूमिगमनम्-दिव्यस्थलप्राप्तिः। तृषितस्य–पिपासितस्य। तत्तीरे–अच्छोदतटे। विश्रान्तस्य–कृतविश्रमस्य। अमानुषगीतध्वनेः–दिव्यसङ्गीतस्य। आकर्णनम्–श्रवणम्। तज्जिज्ञासागतस्य–कुतोऽयममानुषगीतध्वनिरायातीति

मर्मभेदी, मिथ्याधनुर्धर, सद्यः प्राणापहारी, अकालमृत्युस्वरूप, स्थान तथा अस्थान का विचार नहीं रखने वाले, परोपकारी सन्तुष्ट, हृदयवासी, दूसरे पर विश्वास नहीं रखने वाले आत्मजन्मा इस काम से पीड़ित कादम्बरी के शरीर की उपेक्षा कर दी। मैं जब वहीं था तो मेरे कान में क्यों न कह दिया? अभी सुनकर भी मैं क्या करूँ जब कि मार्ग कुछ दिनों का है। देवी का शरीर इतना कोमल है कि वह मलयानिल-कम्पित लता से गिरने वाले फूल की चोट को भी नहीं सह सकता है। काम के बाण इतने कठोर हैं कि उन्हें लोहे की तरह कठिन हृदय भी नहीं सह पाते हैं। पता नहीं चलता है कि एक क्षण में क्या हो जाय? कादम्बरी देवी भी यह बात समझती होगी। जैसा कि इस दुःख देने में आग्रही, अघटितघटनापटु, यत्किञ्चित्कारी अकारण क्रोधी, दुर्भाग्य का सर्वथा असङ्गत उद्योग देख रहा हूँ उससे मैं समझता हूँ कि यह इतने से नहीं रुकेगा। अन्यथा मैं क्यों बेजरूरत तुरङ्गमुख किन्नर के जोड़े का अनुसरण करता और अमानुषभूमि पर जाता। प्यास लगने पर अच्छोदसरोवर क्यों जाता? कहाँ अच्छोद के तटपर विश्राम करके अमानुषगीत की आवाज सुनता। उस आवाज की खोज में जाकर

गतस्य महाश्वेतावलोकनम्। क्व तत्र तरलिकया सह तवाभिगमनेन मद्गमनप्रस्तावः। क्व महाश्वेतया सह हेमकूटगमनम्। क्व तत्र देवीवदनदर्शनम्। क्वानुरागोत्पत्तिरस्मिञ्जने देव्याः। क्व वाऽपरिपूर्णमनोरथस्य मे पितुरलङ्घनीयागमनाज्ञा। तत्सुदूरमारोप्य पातिता वयं, खल्वनेनाकार्यकारिणास्मत्कर्मबलनियोगदत्तेन दग्धवेधसा। तथापि देवीं संभावयितुं प्रयतामहे।'

इत्यभिदधत्येव चन्द्रापीडे 'नितरामयमनेनैव कादम्बरीवृत्तान्तेन संतापितस्तत्किमपरमहमेनमात्मतेजसा संतापयामि' इत्युत्पन्नदय इव भगवांस्तिग्मदीधितिरुत्तप्तकनकद्रवस्फुलिङ्गपिङ्गलद्युति दिग्विकीर्णधूर्जटिजटामण्डलानुकारि संजहार करसहस्रम्। अस्तानुसारेण च रवेर्वासरोपि यथोच्छ्रिततरुशिखरावलम्बिनो रक्तातपच्छेदानाकर्षन्नपससार। क्रमेणैव संजातकरुणानुबन्धयेव संध्ययाप्युपरि जलार्द्रपट इव प्रसार्यमाणे स्वरागपटले,

ज्ञातुं चलितस्य। तवाभिगमनेन–केयूरकस्य यात्रया हेतुभूतया। अनुरागोत्पत्तिः–प्रेमप्रादुर्भावः। अपरिपूर्णमनोरथस्य–असफलाशस्य। अलङ्घनीया–अनतिक्रमणीया। आगमनाज्ञा–आगन्तुमादेशः। सुदूरम् आरोप्य–अतिदूरं नीत्वा। पातिताः–स्थानाच्च्याविताः। अकार्यकारिणा–निन्दितकर्मप्रवीणेन। अस्मत्कर्मबलनियोगदत्तेन–अस्मदीयादृष्टप्रवर्त्तकेन। दग्धवेधसा–दुरात्मना विधिना। तथापि–विषमायामपि परिस्थितावस्थायाम्। देवीं–कादम्बरीम्। सम्भावयितुम्–मिलनेन समाश्वासयितुम्। प्रयतामहे–चेष्टामहे।

इति अभिदधति–इत्थं कथयति। नितराम्–अत्यन्तम्। अयम्–चन्द्रापीडः। अनेन–केयूरकनिवेदितेन। कादम्बरीवृत्तान्तेन–कादम्बर्या वियोगकालिककष्टदशावृत्तेन। आत्मतेजसा–स्वकरनिकरेण। उत्पन्नदयः–सञ्जातकरुणः। तिग्मदीधितिः–सूर्यः। उत्तप्तकनकद्रवस्फुलिङ्गद्युति–उत्तप्तं सन्तापितं यत्कनकं सुवर्णं तस्य द्रवः स्फुलिङ्गो वह्निकणश्च तयोरिव द्युतिर्यस्य तादृशम्। दिग्विकीर्णधूर्जटिजटामण्डलानुकारि–दिशासु विकीर्णं व्याप्तं यत् धूर्जटेः शिवस्य जटामण्डलं तद्वद् दृश्यमानम्। करसहस्रम्–सहस्रसंख्यं किरणसमूहम्। सञ्जहार–समाहृतवान्। जायमानायां सन्ध्यायां सूर्यः स्वकरनिकरं समकोचयदित्यर्थः। रवेः–सूर्यस्य। अस्तानुसारेण–अस्तमयमनुसृत्य। वासरः–दिवसः। यथोच्छ्रिततरुशिखरावलम्बिनः–उन्नततरुशिखास्थितान्। रक्तातपच्छेदान्–रक्तवर्णनातपखण्डान्। आकर्षन्–सङ्कोचयन्। अपससार–पलायितः। अस्तगामिनं सूर्यमनुसरन् वासरोऽपि तरुशिखास्थितान् रक्तातपान् सङ्कुचितान् कुर्वन्नपसृतवानित्यर्थः। सञ्जातकरुणानुबन्धया–उत्पन्नदयया। जलार्द्रपटः–पानीयार्द्रवसनम्। प्रसार्यमाणे–विस्तार्यमाणे। स्वरागपटले–सन्ध्यारागसमुदये। दयाप्रेरिता सन्ध्या जलार्द्रं वस्त्रमिव स्वं रागं चन्द्रापीडस्य सन्तापापनुत्तये

क्यों महाश्वेता को देखता। कहाँ तरलिका के साथ तुम्हारे जाने पर मेरे जाने का प्रसङ्ग उठता? कहाँ मैं महाश्वेता के साथ हेमकूट पर्वत पर जाता। कहाँ वहाँ कादम्बरी को देखता। कहाँ कादम्बरी का मुझ पर प्रेम उत्पन्न होता, कहाँ मुझ अपूर्ण-मनोरथ को पिता की अलङ्घनीय आज्ञा मिलती कि चले आओ। इस अभागे विधि ने हमें बहुत आगे ला छोड़ा है। यह विधि नितान्त अकर्त्तव्यकारी एवं हमारे कर्म-बल की आज्ञा में बँधा है। तथापि मैं कादम्बरी को देखने का प्रयास करूँगा।

चन्द्रापीड ने इस प्रकार कहा कि सूर्य के हृदय में इसलिये दया हो आई कि जब यह चन्द्रापीड कादम्बरी के वृत्तान्त से ही इस प्रकार सन्तप्त हो रहा है तब मैं उसे और क्यों सताऊँ, और इसके बाद सुवर्ण द्रव के समान पिङ्गल वर्ण तथा दिशाओं में बिखरी महादेव की जटा के सदृश अपने कर–जाल को सूर्य ने समेट लिया। सूर्य के डूबते ही ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की चोटी पर फैले हुए रक्तातपों को समेट कर दिन भी भाग खड़ा हुआ। दयावश सन्ध्या ने भी गीले पट के सदृश अपने रागपटल फैला दिये। आत्मीय जन के समान निशा-प्रारम्भ ने—लोग इस शून्यता से विह्वल को देख न लें-इसलिये चारों ओर काले कपड़े के पर्दे की तरह लगने वाली अन्धकार-लेखा फेर दी। शोषकारी सन्ताप असह्य जान कर कमल सङ्कुचित हो गये क्योंकि उन्हें भय होने लगा कि कहीं बिछावन में उनका भी उपयोग न किया जाने लगे। जलार्द्र, स्वच्छ-पवित्र स्वभाव वाले कुमुद शयन में उपयोग पाने के लिये

निशागमेनाप्येवमस्य शून्यताविक्लवस्य मा भूद्दर्शनमित्याप्तेनेव सर्वतो नीलीपरिलम्बमानायामिव भ्राम्यमाणायां तिमिरलेखायाम्, कमलेष्वपि दुःसहत्वाच्छोषकारिणः संतापस्य तल्पकल्पनाभीतेष्विव संकुचत्सु, कुमुदेष्वपि शुचिस्वभावतयार्द्राद्रेषु शयनसंपादनायेवाहमहमिकयोद्दलत्सु, चक्रवाकेष्वपि सहचरीविरहविधुरेषु कादम्बरीसमीपगमनोपदेशदानायेव कलकरुणमुच्चैर्मुहुर्मुहुर्व्याहरत्सु, चन्द्रमस्यपि भगवति समस्तभुवनैकातपत्रे सुधारजतकलशे पूर्वदिग्वधूवदनचन्दनतिलके गगनतललक्ष्मीलावण्यमहाह्रदे सकललोकाह्लादकारिणि सुधालिप्तैः करैरिव स्प्रष्टुमुच्छ्वासहेतुना तं ज्योत्स्नाजलेन च सेक्तुमुदयगिरिशिखरमारूढे, प्रौढे प्रदोषसमये चन्द्रापीडस्तस्मिन्नेव वल्लभोद्याने चन्द्रातपस्पर्शदर्शितविशदजललवोद्भेदहारिणि चन्द्रमणिशिलातले विमुच्याङ्गानि चरणसंवाहनोपसृतं केयूरकमवादीत् । केयूरक

तदुपरि प्रसारयामासेत्युत्प्रेक्षार्थः । निशागमेन–प्रदोषकालेन । शून्यताविक्लवस्य–वियोगव्यथितस्य । आप्तेन–आत्मीयेन । नीलीपरिलम्बमानायाम्–नीलवस्त्ररचितपटमण्डपे । तिमिरलेखायाम्–अन्धकारराशौ । रात्रिप्रारम्भः स्वजन इव दुःखितस्य चन्द्रापीडस्य दर्शनं परिजिहीर्षुः सन् श्यामपटमण्डपमिव तमःस्तोमं सर्वतो विस्तारयामासेति प्रघट्टकार्थः । शोषकारिणः–शोषजनकस्य । तत्कल्पनाभीतेषु–सन्तापसंभावनया भयपात्रेषु । सङ्कुचत्सु–मुद्रितत्वं भजत्सु । कमलानि शोचन्ति यच्चन्द्रापीडे सन्तप्यमानेऽस्माकमप्युपयोगस्तत्सन्तापापनोदनाय क्रियेत तदाऽस्माभिरपि शोषकारी तत्सन्तापः शरीरस्पर्शद्वाराऽनुभवनीय एव स्यादनयैव भीत्या कमलानि सङ्कुचन्तीत्येतदुत्प्रेक्षार्थः । कुमुदेषु–कैरवेषु । शुचिस्वभावतया–पवित्रस्वभावतया शुक्लतया च । आर्द्राद्रेषु–सरसेषु पानीयसक्तेषु च । शयनसम्पादनाय–वियोगखिन्नतप्तस्य चन्द्रापीडस्य शयनीयत्वेनोपयोगाय । अहमहमिकया–अहंपूर्वमहंपूर्वमितिस्पर्द्धया । उद्दलत्सु–विकसत्सु । उत्तमस्वभावानि कुमुदानि चन्द्रापीडस्य शयनीयतयोपयोगं प्राप्तुमिव सायं विकसन्तीत्येतदुत्प्रेक्षार्थः । सहचरीविरहविधुरेषु–प्रियतमावियोगव्यथितेषु । कादम्बरीसमीपगमनोपदेशदानाय–चन्द्रापीडम् कादम्बरीसमीपं गच्छेत्युपदेष्टुम् । कलकरुणम्–मधुरं करुणञ्च । व्याहरत्सु–शब्दायमानेषु । सायं प्रियावियोगविधुराश्चक्रवाकाः शब्दायन्ते मन्ये ते चन्द्रापीडं कादम्बरीसमीपं गन्तुमिवागृह्णन्ति मधुरेण स्वशब्देनेत्याशयः । समस्तभुवनैकातपत्रे–समस्तस्य संसारस्यावरके छत्रस्वरूपे । सुधारजतकलशे–अमृतरजतघटे । (अमृतस्थापनाय निर्मिते रजतस्य पात्रविशेषे) पूर्वदिग्वधूवदनचन्दनतिलके–प्राचीदिशारूपनायिकाया वदने चन्दनबिन्दुवत्प्रतीयमाने । गगनतललक्ष्मीलावण्यमहाह्रदे–आकाशशोभासौन्दर्यजलाशयरूपे । सकललोकाह्लादकारिणि–समस्तभुवनानन्ददायिनि । सुधालिप्तैः–अमृतलिप्तैः । करैः–किरणैः । स्प्रष्टुम्–स्पर्शं कर्तुम् । उच्छ्वासहेतुना–चैतन्यप्रदेन । ज्योत्स्नाजलेन–किरणस्वरूपजलेन । तम्–चन्द्रापीडम् । सेक्तुम्–आप्लावयितुम् । उदयगिरिशिखरम्–उदयाचलाग्रभागम् । अयमर्थः–समस्तभुवनावरणच्छत्रभूतः सुधारजतकलशवद्भासमानश्च प्राचीदिक्सुन्दरीवदनचन्दनबिन्दुरूपः आकाशलक्ष्मीलावण्यमहाह्रदरूपः सकललोकानन्दकः चन्द्रमाः अमृतलिप्तैः स्वैः किरणैः चन्द्रापीडं स्प्रष्टुमुच्छ्वासयितुं चोदयगिरिशृङ्गमारूढवाँस्तदेति । प्रौढे–निष्ठिते । प्रदोषसमये–सायंकाले । वल्लभोद्याने–अतिप्रिये पुष्पोद्याने । चन्द्रातपस्य चन्द्रकिरणस्य स्पर्शेन दर्शितः प्रकटीकृतो यो जललवोद्भेदः जलबिन्दुराशिस्तेन हारिणि रमणीये चन्द्रमणिशिलातले चन्द्रकान्तमणिशिलायाम् अङ्गानि विमुच्य व्यस्तभावेन पतित्वा । चरण·

बाजी सी लगाकर खिलने लगे । प्रियतमा–वियोगी चक्रवाक मधुर तथा करुण शब्द में चिल्ला कर कादम्बरी के पास जाने का उपदेश सा देने लगे । समस्त भुवन के छत्रस्वरूप, सुधा के रजत-कलश, प्राची दिशा रूप नायिका के मुख के चन्दनतिलक समान, आकाश-शोभा के सौन्दर्य सरोवर तुल्य, सकल लोक को आनन्दित करने वाले चन्द्रमा अपनी सुधासिक्त किरण रूप हाथों से चन्द्रापीड़ को आश्वासन प्रदान करने एवं चन्द्रिका सुधा जल से सिक्त करने के लिये उदयाचल की चोटी पर आरूढ़ हो गये । प्रदोष समय में चन्द्रापीड़ उसी वल्लभोद्यान में चन्द्रातप के स्पर्श से पसीज कर जल से मनोहर चन्द्रकान्तमणि-शिला पर पड़े हुए थे । इसी समय पैर दबाने के लिये केयूरक उनके पास आया । तब चन्द्रापीड़ ने केयूरक से कहा—केयूरक, तुम्हारा क्या अन्दाजा है, जब तक हम पहुँचेंगे

किमाकलयसि यावद्वयं परापतामस्तावत्प्राणान्संधारयिष्यति देवी कादम्बरी। पारयिष्यति वा तां विनोदयितुं मदलेखा। आगमिष्यति वा पुनस्तत्समाश्वासनाय महाश्वेता। मत्परिचयोद्वेजिता प्रतिपत्स्यते वा शरीरस्थितये तयोरभ्यर्थनाम्। द्रक्ष्यामि वा पुनस्तस्याः स्मेरसृक्कोपान्तमालोलतारकमुत्त्रस्तहरिणशावकायताक्षं मुखम्' इति।

स तु व्यज्ञपयत्। 'देव, धैर्यं समवलम्ब्य गमनाय यत्नः क्रियताम्। तिष्ठतु तावदासन्नवर्ती सखीजनः परिजनो वा। तस्या हि त्वदालोकनेच्छैव स्वेच्छया निमेषितुमपि न ददाति। समागमाशयैवावष्टब्धं हृदयम्। श्वसितमेव मुखे वहितम्। रोमाञ्च एव क्षणमपि शरीरं न मुञ्चति। दिवानिशं बाष्प एव लोचनपथस्थायी। प्रजागर एव रात्रावपि दत्तदृष्टिः। अरतिरेव नैकाकिन्याः क्षाम्यत्यवस्थानम्। जीवितमेव कण्ठस्थानान्नापसरति।'

एवं वदन्तं तमादिदेश विश्रान्तये केयूरकम्। आत्मनापि गमनचिन्तां प्राविशत्। यदि तावदकथयित्वा निपत्य चरणयोरनाघ्रातः शिरस्यगृहीताशीः सहसानुत्संकलित एव

संवाहनोपसृतम्-चरणसंवाहनं कर्त्तुं समीपागतम्। आकलयसि-चिन्तयसि। परापतामः-गच्छामः। प्राणान् संधारयिष्यति-जीविष्यति। पारयिष्यति-शक्ष्यति। तत्समाश्वासनाय-कादम्बर्या धैर्यमाधातुम्। मत्परिचयोद्वेजिता-मदीयेन परिचयेन खिन्ना कादम्बरी। शरीरस्थितये-जीवितालम्बनाय। तयोः-मदलेखामहाश्वेतयोः। स्मेरसृक्कोपान्तम्-सहासमुखाग्रभागम्। आलोलतारकम्-चञ्चलकनीनिकम्। उत्त्रस्तस्य भीतस्य हरिणशावकस्येव आयते दीर्घे अक्षिणी नेत्रे यत्र तादृशम्।

सः-केयूरकः। व्यज्ञपयत्-निवेदितवान्। आसन्नवर्त्ती-समीपस्थितः। तस्याः-कादम्बर्याः। त्वदालोकनेच्छा-तव दर्शनेच्छा। निमेषितुम्-नेत्रस्पन्दनं कर्त्तुम्। समागमाशया-त्वया सह मिलनस्याभिलाषेण। अवष्टब्धम्-व्याप्तम्। वहितम्-अवहितम्-सदा सावधानतया स्थितम्। रोमाञ्चः-रोमहर्षः। बाष्पः-अश्रुजलम्। दत्तदृष्टिः-अवधानेन कादम्बर्या उपरिनिहितनयनः। अरतिः-सर्वतो विरक्तिः। क्षाम्यति-सहते। इतः पूर्वं चन्द्रापीडेन केयूरकं प्रत्युक्तं यथावदहं गमिष्यामि किं तावत्कादम्बरी जीविष्यति? एतस्योत्तरभूतोऽयं ग्रन्थभागः, अत्र केयूरकोक्तेरयमाशयः-तिष्ठतु परिजनः, त्वदालोकनेच्छया बाध्यमाना सा तावत्स्वेच्छया निमेषितुमपि न पारयति का कथा जीवितपरित्यागादेरिति।

आदिदेश-आज्ञापितवान्। आत्मना-स्वयम्। गमनचिन्तां प्राविशत्-कादम्बर्याः समीपे गमनस्य विषये चिन्तितुमारब्धवान्। अकथयित्वा-गमनाभिलाषं पित्रोरनिवेद्य। अनिपत्य चरणयोः-चरणयोः प्रणाममकृत्वा। अनाघ्रातः शिरसि-तातेनाम्बया च स्नेहेन यच्छिर आघ्रायते तदप्राप्य। अगृहीताशीः-

---

कादम्बरी तब तक जीती रह सकेगी? मदलेखा उसके दिल को बहलाती रह सकेगी? क्या महाश्वेता उसे आश्वासन प्रदान करने आवेगी? क्या कादम्बरी हमारे परिचय से उद्वेजित होकर भी मदलेखा तथा महाश्वेता की प्रार्थना से शरीर को कायम रखने की चेष्टा करेगी? क्या मैं पुनः मुस्कुराहट भरे, चञ्चल नयन युक्त, भीतहरिणशावक के नयनों जैसे नयन वाला उसका मुख देख सकूंगा?

केयूरक ने कहा—देव, धैर्य धारण करके चलने का प्रयास कीजिये। समीपवर्त्ती सखीजन अथवा परिजन तो दूर रहें, आप को देखने की इच्छा उसे स्वेच्छा से पलक भी नहीं मारने देती है। उसका हृदय आपसे मिलने की आशा पर ही टिका हुआ है। सांस सर्वदा मुंह में ही वर्तमान है। रोमाञ्च कभी भी शरीर का त्याग नहीं करता है। दिन-रात आंसू आँखों में बने रहते हैं। रात्रि का जागरण रात में भी उसपर नजर डाले रहता है। अरति उसे कभी एकाकिनी नहीं रहने देती है। उसके प्राण कण्ठ में ही अटके रहते हैं।

इस तरह कहते हुए केयूरक को चन्द्रापीड ने विश्राम करने की आज्ञा दी। स्वयं वह जाने की चिन्ता करने लगे। यदि मैं माता तथा पिता से बिना कहे, बिना उनके चरण छुए, बिना उनके द्वारा अपना मस्तक

---

१. इव।

तातेनाम्बया वापक्रम्य गच्छामि ततो गतस्यापि मम कुतः सुखं किं श्रेयः कुतो वा फलावाप्तिः कीदृशी वा हृदयनिर्वृतिः। अथवा तिष्ठतु तावदियमुत्तरकालागामिनी चिन्ता। अपक्रम्य गत एव कथमहम्। तातेन दुस्तराहवार्णवोत्तरणमहासेतुबन्धादवन्ध्यवाञ्छितफलप्रदानकल्पद्रुमादहितविक्रान्तियशोनिष्क्रान्तिद्वारार्गलदण्डादशेषभुवनभवनोत्तम्भनस्तम्भात् स्वभुजादवारोप्य मय्येव राज्यभारः समारोपितः। तदनाख्याय पदमपि निर्याते मय्यवश्यमपरिमितकरितुरगरथगमनसंक्षोभितधरातलैरालोलकदलिकाकाननाकुलीकृतभास्वद्गभस्तिभिरूर्ध्वध्रियमाणधवलातपत्रमण्डलच्छायान्तरितवासरव्यतिकरैरतिबहलरेणूद्गमाविच्छेदापूरितभुवनकुहरैः पुरःप्रसृतजवनवाजिभिरनुसंतानलग्नवेतण्डप्रायसाधनैः श्रान्तैरपि बुभुक्षितैरप्यकृतगतिविलम्बैरा पयोधेरष्टाभ्योपि दिग्भ्यो राजभिरनुधावितव्यम्। तिष्ठन्तु तावत्सेवा-

---

अप्राप्तजनकजनन्याशीर्वचनः। अनुत्सङ्कलितः-अज्ञातगमनः। अपक्रम्य गच्छामि-अज्ञातभावेन पलाये। किंश्रेयः-किंकल्याणम्। हृदयनिर्वृतिः-हार्दिकी शान्तिः। उत्तरकालागामिनी-अग्रे भाविनी। गमनानन्तरं फलानवाप्तिचिन्तेति तस्या उत्तरकालागामिनीत्वं प्रोक्तम्, सम्प्रति गमनस्यैव शक्यक्रियत्वमुपपादयति-तातेनेत्यादिना। अपक्रम्य गत एव कथमहम्-पलाय्य मम गमनमेव कथं संभवेत्। दुस्तराहवार्णवोत्तरणमहासेतुबन्धात् दुस्तरो दुःखं तरणीयो य आहव एव महार्णवस्तस्योत्तरणे पारकरणे महासेतुबन्धस्वरूपात् अतिमहान्तमपि समरसागरं सुखं जितवत इत्यर्थः। अवन्ध्यवाञ्छितफलप्रदानकल्पद्रुमात्-सकलाभीष्टार्थप्रदाने कल्पद्रुमसदृशात्। अहितानां शत्रूणां विक्रान्तेः पराक्रमस्य यशसः कीर्तेश्च निष्क्रान्तेः निर्गमस्य मार्गे वर्त्मनि द्वारार्गलदण्डात्-द्वारपिधानसमर्थार्गलदण्डस्वरूपात्। शत्रूणां यशसः पराक्रमस्य च प्रकटीभावस्य निरोधकादित्यर्थः। अशेषं भुवनमेव भवनं तस्य उत्तम्भने धारणे स्तम्भस्वरूपात्। स्वभुजात्-आत्मबाहोः, अवारोप्य-उत्तार्य। पितृपादेन स्वभुजाद्राज्यभारमवरोप्याहं युवराजभावं प्रापय्य राज्यभारभाजनं कृत इत्यर्थः। तत्-तस्मात्। अनाख्याय-अकथयित्वा। पदमपि निर्याते-स्वल्पदूरमपि गते मयि, अपरिमितानाम् असंख्यानां करिणां हस्तिनां तुरगाणामश्वानां रथानां स्यन्दनानां च गमनेन इतस्ततः संचरणेन संक्षोभितं चालितं धरातलं पृथ्वीतलं यैस्तादृशैः। आलोलैः चञ्चलैः कदलिकाकाननैः पताकासमुदायैः आकुलीकृताः भास्वतः सूर्यस्य गभस्तयः किरणा यैस्तादृशाः सर्वतः प्रचलाभिः पताकाभिः सूर्यकिरणान् आकुलयद्भिरित्यर्थः। 'कदली पताका' इति मेदिनी कोशमुद्धरति शब्दकल्पद्रुमः। ऊर्ध्वमुपरि ध्रियमाणानि प्रसार्यमाणानि यानि धवलानि शुक्लवर्णानि आतपत्राणि छत्राणि तैः अन्तरितः आच्छादितः वासराणां दिनानां व्यतिकरः सञ्जातो यैस्तादृशैः छत्रसमुदायेन दिनप्रकाशमावृण्वद्भिरित्यर्थः। अतिबहलेन भूयसा रेणूद्गमेन धूलीप्रसरेण अविच्छेदम् निरवच्छिन्नभावेन आपूरितो भृतः भुवनकुहरः संसारो यैस्तादृशैः, पुरःप्रसृताः अग्रेचलिताः जवनाः शीघ्रगतयः वाजिनः अश्वाः येषां तैस्तथोक्तैः, अनुसन्तानलग्नवेतण्डप्रायसाधनैः क्रमप्रवृत्तासमाप्यगजबहुलसाधनशालिभिः श्रान्तैः कृतश्रमैरपि बुभुक्षितैः बुभुक्षाशालिभिः अकृतगतिविलम्बैः गमने कालक्षेपमकुर्वद्भिः आ पयोधेः आ सागरात् दिग्भ्यः दिशाभ्यः, अनुधावितव्यम् चलितव्यम्। यद्यहन्दूत्वाऽहं चलिष्यामि तदा अपरिमितहस्त्यश्वरथसंचारेण धरां क्षोभयन्तः पताकाभिः

सुंघवाये, बिना उनका आशीर्वाद लिये सहसा भागकर चला जाता हूँ, तब जाने पर भी मुझे सुख, कल्याण, फलप्राप्ति, अथवा मनः-शान्ति कहाँ? अथवा आगे आनेवाली यह चिन्ता अलग रहे, मैं भागकर जा ही कैसे सकता हूँ? पिता जी ने दुस्तर युद्धसागर के सन्तरण में सेतुबन्धस्वरूप, वाञ्छित फलप्रदान में अमोघ कल्पवृक्षस्वरूप, शत्रुओं के पराक्रम एवं यश के निकलने के मार्ग की अर्गलास्वरूप एवं समस्त भुवन रूप भवन को उठाये रखने वाले स्तम्भस्वरूप अपने बाहुओं पर से उतारकर राज्य का भार मुझ पर रख छोड़ा है। यदि बिना कहे मैं एक पग भी चला तो अवश्य ही अपरिमित हाथी, घोड़े और रथ के गमनवेग से धरातल को हिला देनेवाले, चञ्चल पताका-कानन के द्वारा सूर्य की किरणों को व्याकुल कर देने वाले, अधिक मात्रा में उड़ती हुई धूल से भुवन को

---

१. अम्बयोक्तमपक्रम्य।

परा राजानः। सुखपरिभुक्ताः प्रजा अपि तातस्नेहात्परित्यक्तपुत्रदाराः पृष्ठतो लगन्तीति मे चेतसि। अपि च तातस्यापि कोऽपरोऽस्ति यस्मिन्मदीयं स्नेहं संक्रमय्य मय्यपक्रान्ते यातु किमनेन गतेनागतेन वेत्यविनयकोपितोवष्टम्भं कृत्वा स्थास्यति। कस्य वापरस्य मुखमालोकयन्ती सुखायमानहृदया मत्प्रत्यानयनाय कृतार्तप्रलापा न तातमेवाकुलीकरोत्यम्बा। ताते च पृष्ठतो लग्नेऽष्टादशद्वीपमालिनी मेदिन्येव लग्ना भवतीति। तदा मया क गतम्। क स्थितम्। क विश्रान्तम्। क यातम्। क भुक्तम्। कापसृतम्। कात्मा मया गोपायितव्यः। समासादितेन वात्र कथं मया वदनं दर्शयितव्यम्। पृष्टेन वा किमुत्तरं दातव्यम्। अथापि कथंचिद्दैवनियोगान्निःसृतोस्मि। तथाप्यनायासनीयं तातमेवं महीयस्यायासे तातप्रसाददृष्टदुःखामम्बां वा निजापक्रमणशोकार्णवे पातयता किं कृतं भवत्यपुण्यवता। अपि च स बहुदिवसप्रवासोपतप्तः स्कन्धावारोपि मेऽद्यापि न परापतति। तेनापरसंविधानादर्धपथादेव

सूर्यकिरणानावृण्वन्तः छत्रैर्दिनं निवारयन्तः सेनोत्थापितधूलीर्भुवनं भरन्तोऽग्रेसरत्वरच्छीघ्रगतिवाजिनः श्रान्तौ बुभुक्षायाञ्च सत्यामपि गमनविलम्बमसहमाना राजानः सर्वतो मामन्वेष्टुं धाविष्यन्तीत्याशयः। सेवापराः सेवासमासक्ताः। सुखपरिभुक्ताः सुखभोगिन्यः तातस्नेहात्-पितृपादानां प्रेमाणमनुरुध्य। परित्यक्तपुत्रदाराः-स्वान्पुत्रान्दारांश्च परित्यज्य। पृष्ठतो लगन्ति-मामनुगच्छन्ति। यस्मिन् मन्निभे। मदीयं स्नेहं संक्रमय्य-मद्गतं प्रेमाणं स्थापयित्वा। अविनयकोपितः-मदीयेन अपृष्ट्वा गमनरूपेणाविनीताचरणेन कोपं प्रापितः। अवष्टम्भम्-आत्मनिग्रहम्। सुखायमानहृदया-प्रसन्नचित्ता। मत्प्रत्यानयनाय-मम परावर्त्तनाय कृतार्त्तप्रलापा-कृतार्त्तरोदना। आकुलीकरोति-व्याकुलयति। पृष्ठतो लग्ने-यातस्य ममान्वेषणाय चलिते सति। अष्टादशद्वीपमालिनी-अष्टादशभिर्द्वीपैर्युक्ता। मेदिनी पृथ्वी। क्वापसृतम्-क्व पलाय्य गतम्। गोपायितव्यः-निह्नोतव्यः। समासादितेन-अन्विष्य प्राप्तेन। वदनम्-मुखम्। अथापि-मन्यताम्। दैवयोगात्-संयोगवशात्। निःसृतोऽस्मि-पलाय्य गन्तुं समर्थो जातोऽस्मि। अनायासनीयम्-कष्टप्रदानायोग्यम्। महीयसि-दीर्घे। आयासे-क्लेशे। तातप्रसाददृष्टदुःखाम्-पितृपादप्रभाववशात्कदापि दुःखं न प्राप्तवतीम्। अम्बाम्-मातरम्। निजापक्रमणशोकार्णवे-स्वपलायनजन्यदुःखसागरे। पातयता-क्षिपता। किं कृतं भवति-निन्दनीयं कार्यं कृतं भवति। अपुण्यवता-पापिना। बहुदिवसप्रवासोपतप्तः-चिरप्रवासखिन्नः। स्कन्धावारः-सैन्यसमुदायः। न परापतति-नायाति। तेन-स्कन्धावारेण। अपरसंविधानात्-अन्यां यात्रामुद्दिश्य। अर्धपथात्-मध्येमार्गात्। अयमाशयः-सम्प्रति यावत् चिरात्प्रवासे स्थितो मदीयः सैन्यसमुदयोऽपि नायातः, स यत्रैव ममापक्रमणं श्रोष्यति तत एव स्थानात् पुनर्मामन्वेष्टुं

भर देने वाले, ताने गये उज्ज्वल छत्रों की छाया से दिन को छिपा देने वाले, आगे-आगे तेज घोड़े दौड़ाने वाले, अनगिनत गजबहुल साधनवाले, और भूख-प्यास लगने तथा थकने पर भी नहीं रुकने वाले राजगण आठो दिशाओं से समुद्रपर्यन्त दौड़ पड़ेंगे। सेवा-परायण राजगण की बात दूर रहे, सुखभोगी प्रजायें भी पिता जी के स्नेह से स्त्री-पुत्र का त्याग करके मेरे पीछे लग जायँगी, ऐसा मेरा मन कहता है। पिता जी को भी दूसरा कौन है जिस पर मेरे स्नेह को अर्पित करके मेरे चले जाने पर वह यह कह सकेंगे कि उसके चले जाने से मेरा क्या बनता बिगड़ता है वह जाय या रहे, इस प्रकार मेरे अविनय से रूठ कर वह रह सकेंगे। मेरी माता किसका मुँह देख कर सुख प्राप्त करेगी, और मुझे लौटा लाने के लिये आर्त्त प्रलाप करके वह पिता जी को व्याकुल कर देंगी। पिता जी के मेरे पीछे लगने पर अष्टादश द्वीपों वाली यह सारी पृथ्वी ही मेरे पीछे लग जायगी। तब मैं कहाँ गया ? कहाँ ठहरा ? कहाँ विश्राम किया ? कहाँ गया ? कहाँ खाया ? कहाँ भागा ? मैं कहाँ अपने को छिपाऊँगा ? मैं पकड़ लिया गया तब यहाँ कैसे मुँह दिखलाऊँगा ? पीछे क्या उत्तर दूँगा ? यदि संयोगवश निकल भी जा सका, तथापि कष्ट नहीं देने के योग्य पिता जी को कष्ट पहुँचा कर, तथा पिता जी के प्रसाद से कभी भी दुःख का मुख नहीं देखने वाली माता जी को कष्ट के सागर में गिराकर मुझ पापी ने क्या किया। और बहुत दिनों के प्रवास में

निवृत्य पुनर्गोवितव्यम्। अथावेद्य तातस्याम्बायाश्च ताभ्यां च विसर्जितः संविधानेन गच्छामि। तत्रापि किं कथयामि। मम स्नेहेन दुःखिता गन्धर्वराजपुत्री कादम्बरी मामुद्दिश्य मकरकेतुनायास्यमाना दुःखं तिष्ठतीति। किं वा बलवान्मे तस्यामनुरागो नानया विनाहं प्राणान्संधारयामीति। किं तस्या मम च द्वयोरपि जीवितनिबन्धनहेतुभूतया महाश्वेतया तत्परिणयनाय मे संदिष्टमिति। किं वा तद्दुःखमपारयन्सोढुमयं केयूरकस्तद्भक्त्या मामानेतुमागत इति। अपरोऽपि वा कश्चिद् व्यपदेशो न शक्यत एव पुनर्गमनाय कर्तुम्। संप्रत्येव समधिकाद्वर्षत्रयात्प्रसाध्य वसुधां प्रत्यागतोऽस्मि। अद्यापि साधनमेव न परापतति। अकथयित्वा च गमनकारणं कथमात्मानं मोचयामि। कथं वा मुञ्चतु तातोऽम्बा वा। तत्सुहृत्साध्येऽस्मिन्नर्थेऽनर्थपतितः किं करोम्येकाकी। वैशम्पायनोऽप्यसंनिहितः पार्श्वे मे। कं पृच्छामि। केन सह निरूपयामि। को मे समुपदिशतु। को वापरो मे निश्चयाधानं करोतु। कस्यापरस्य वा विवेकिनी प्रज्ञा। कस्य वान्यस्य श्रुतं श्रोतव्यम्। को वापरो वेत्ति वक्तुम्। कस्य वापरस्य मय्यसाधारणः स्नेहः। केन वापरेण सह समानदुःखो भवामि। को वापरो

चलिष्यति इति। आवेद्य-निवेदनं कृत्वा। ताभ्याम्-अम्बातातताभ्याम्। विसर्जितः-गन्तुमादिष्टः। संविधानेन-यात्रासन्नाहेन। किं कथयामि-तातमम्बां चानुकूलयित्वा-यात्रायां करणीयायां तयोरग्रे वक्ष्यमाणं यात्राकारणं नावधारयामीत्यर्थः। गन्धर्वराजपुत्री-कादम्बरी। मकरकेतुना-कामदेवेन। आयास्यमाना-खेदं प्राप्यमाणा। दुःखं तिष्ठति-कष्टे वर्तते। बलवान्-अतिगाढः। तस्याम्-कादम्बर्याम्। अनया-कादम्बर्या। प्राणान् संधारयामि जीवामि। तस्याः-कादम्बर्याः। मम-चन्द्रापीडस्य। जीवितनिबन्धनहेतुभूतया-जीवनधारणे कारणतां श्रयन्त्या। तत्परिणयनाय-कादम्बरीं वरिणेतुम्। मे सन्दिष्टम्-मम पार्श्वे सन्देशः प्रेषितः। तद्दुःखम्-कादम्बर्या वियोगकष्टम्। अपारयन् सोढुम्-सोढुमशक्तः। तद्भक्त्या-कादम्बरीस्नेहेन। व्यपदेशः-छलम्। समधिकाद्वर्षत्रयात्-वर्षत्रयाधिकं कालं व्यतियाप्य। वसुधां प्रसाध्य-समस्तां पृथ्वीं जित्वा। प्रत्यागतः-समायातः। अद्यापि-सम्प्रति यावत्। साधनम्-सैन्यबलम्। परापतति-निवर्तते। कथमात्मानं मोचयामि-यावद्गमनकारणं नोच्यते तावत् कथं तातेनात्मानं गन्तुं विसर्जयामि। सुहृत्साध्ये-मित्रसम्पाद्ये। अस्मिन्नर्थे-स्वप्रयाणरूपे कार्ये। अनर्थपतितः-कष्टे निमग्नः। एकाकी-सुहृद्भिरहितः असहायः। असंनिहितः-अवर्तमानः। निरूपयामि-विचारयामि। निश्चयाधानम्-गन्तव्यं न वा गन्तव्यम्, अथ गन्तव्यं तदा तातमम्बां च पृष्ट्वाऽपृष्ट्वा वा गन्तव्यम्, अथ पृष्ट्वा गन्तव्यम् तदा किं छलं कृत्वा तयोराज्ञा प्राप्येत्यादि निश्चयं कः करोत्विति तात्पर्यम्। विवेकिनी-सदसद्विचारवती। प्रज्ञा-बुद्धिः। श्रुतं श्रोतव्यम्-श्रोतव्यं शास्त्रादिविचारसाधनं श्रुतं ज्ञातम्। असाधारणः-सातिशयः।

थका मांदा मेरा सैन्य भी तो आज तक नहीं लौट सका है। वह सैन्य दूसरी यात्रा के लिये पुनः आधे रास्ते से ही दौड़ पड़ेगा। यदि माता जी तथा पिता जी से पूछकर उनसे विदा लेकर जाता हूँ तो उनसे कहूंगा क्या? क्या यह कहूंगा कि गन्धर्वराज की कन्या कादम्बरी मेरे वियोग में कामपीड़िता होकर कष्ट भोग रही है। या यह कहूंगा कि मैं कादम्बरी को बहुत चाहता हूँ उसके बिना मैं जिन्दा नहीं रह सकता हूँ। अथवा यह कहूंगा कि हमारे तथा कादम्बरी के जीवन की रक्षा में सतत सचेष्टा महाश्वेता ने हम दोनों के विवाह का सन्देश भेजा है। अथवा यह कहूंगा कि कादम्बरी के कष्ट को देख सकने में असमर्थ यह केयूरक कादम्बरी की भक्ति से प्रेरित होकर मुझे बुलाने आया है। दूसरा भी कोई जाने का कोई बहाना नहीं बनाया जा सकता है। अभी-अभी मैं तीन वर्षों से अधिक समय तक सारी पृथ्वी का खाक छान कर तथा उसे जीत कर वापस आया हूं। आज भी तो मेरा सैन्य नहीं वापस आ सका है। जाने का कारण बिना कहे अपने को किस प्रकार छुड़ाऊँ? पिता जी तथा माता जी मुझे कैसे छोड़ेंगे। यह कार्य सुहृत्साध्य था, मैं अकेला इस अनर्थ में पड़ गया हूं, करूँ क्या? वैशम्पायन भी तो मेरे पास नहीं है। किससे पूछूं, दूसरा मेरा है ही कौन जो कुछ निर्णय कर दे। दूसरा ऐसा है कौन जिसे विवेक बुद्धि हो, किस दूसरे ने शास्त्र देखे हैं, दूसरे किसको बोलने का कौशल है? दूसरा कौन मुझ पर असाधारण प्रेम

मयि दुःखिते दुःखी सुखिते सुखी। को वापरो रहस्यावेदनस्थानम्। कस्यापरस्योपरि कर्तव्यभारमवक्षिप्य निर्वृतात्मा तिष्ठामि। कस्य वापरस्य मत्कार्ये पर्याकुलता। को वापरो मयानुकोपितं तातमम्बां च परिबोध्य मां नेतुं समर्थः।'

इत्येवं चिन्तयत एवास्य सा क्षपा दुःखदीर्घापि क्षयमगमत्। प्रातरेव च किंवदन्ती शुश्राव यथा किल दशपुरं यावत्परागतः स्कन्धावार इति। तां च श्रुत्वा समुच्छ्वसितचेताश्चकार चेतसि। 'अहो धन्योऽस्मि। अहो विधेर्भगवतोऽनुग्राह्योऽस्मि। यस्य मेऽनुध्यानानन्तरमेव परागतो द्वितीयं हृदयं वैशम्पायनः' इति। प्रहर्षपरवशश्च प्रविशन्तमालोक्य दूरत एव कृतप्रणामं केयूरकमवादीत्। 'केयूरक करतलवर्तिनीं सिद्धिमधुनावधारय। प्राप्तो वैशम्पायनः' इति।

स तु तदाकर्ण्य गमनपरिलम्बकृतया चिन्तयान्तःशून्य एव भद्रकमापतितं महती हृदयनिर्वृतिर्देवस्य जातेत्यभिदधद्देवोपसृत्योपविश्य पार्श्वे वैशम्पायनागमनालापमेवानुबध्य

समानदुःखं-स्वं दुःखं कथयित्वा समदुःखसुखो भवामीत्यर्थः। रहस्यावेदनस्थानम्-गुप्तविषयकथनोपयुक्तं पात्रम्। कर्त्तव्यभारमवक्षिप्य-कार्यभारं स्थापयित्वा। निर्वृतात्मा-शान्तहृदयः। पर्याकुलता-व्यग्रता। अनुकोपितम्-क्रोधं गमितम्। परिबोध्य-सान्त्वयित्वा। मां नेतुं समर्थः कुपितस्य तातस्य सान्त्वनं कृत्वा मां तत्पार्श्वे नेतुं शक्तः।

इत्येवं चिन्तयतः—एवं भावयतः। दुःखदीर्घा-क्लेशविशाला। क्षपा-रात्रिः। क्षयमगात्-समाप्तिं गता। किंवदन्तीम्-जनश्रुतिम्। दशपुरम्-स्थानविशेषम्। परागतः-परावृत्तः। स्कन्धावारः-सैन्यसमुदयः। ताम्-स्कन्धावारसमागमवार्त्ताम्। समुच्छ्वसितचेताः-किञ्चिदाश्वस्तहृदयः। चेतसि चकार-विचारितवान्। विधेरनुग्राह्यः-विधातुः कृपापात्रम्। अनुध्यानानन्तरम्-चिन्ताऽव्यवहितोत्तरकाले। परागतः-समायातः। द्वितीयं हृदयम्-हृदयाभिन्नः। प्रहर्षपरवशः-आनन्दवशीभूतः। प्रविशन्तम्-आगच्छन्तम्। कृतप्रणामम्-प्रणतम्। करतलवर्तिनीम्-हस्तेस्थिताम् निश्चितामित्यर्थः। अवधारय-जानीहि। प्राप्तः-आयातः। वैशम्पायनागमनविश्वासेनाश्वस्तहृदयश्चन्द्रापीडः सम्प्रति स्वां कादम्बरीसमीपयात्रां प्रति उत्पन्नाशो भूत्वेत्थं कथयतीति बोध्यम्। सः-केयूरकः। गमनपरिलम्बकृतया-गमनविलम्बजनितया। अन्तःशून्यः-शून्यहृदयः चिन्तित इत्यर्थः। भद्रकम्-शुभम्। हृदयनिर्वृतिः-मानसिकी शान्तिः। देवस्य-भवतः, अभिदधत्-कथयन्। वैशम्पायनागमनालापमेवानुबध्य-वैशम्पायनस्य आगमनसम्ब-

---

रखता है ? कौन मेरे दुःख में हिस्सा बटायेगा ? दूसरा कौन मेरे दुःख से दुःखी होगा। दूसरे किसके आगे रहस्य निवेदन किया जाय ? किस दूसरे पर कर्तव्यभार डालकर शान्त-हृदय हो जाऊँ ? कौन दूसरा मेरे कार्य के लिये व्याकुलता प्रकाशित करेगा ? मेरे ऊपर कुपित पिता जी तथा माता जी को मनाकर मुझे उनके पास ले जाने में दूसरा कौन समर्थ है ?

यद्यपि दुःख की रात बहुत बड़ी होती है फिर भी इस प्रकार की चिन्ता में चन्द्रापीड़ की वह रात बीत गई। सबेरे चन्द्रापीड़ ने चर्चा सुनी कि सैन्य दशपुर तक आ गया है। इस बात को सुनते ही चन्द्रापीड़ का हृदय हिल उठा, उसने मन में कहा—'मैं धन्य हूं, भाग्य मेरे अनुकूल है, मैंने ध्यान किया और तत्काल मेरा दूसरा हृदय वैशम्पायन आ गया। इस प्रकार प्रसन्न होते हुए चन्द्रापीड़ ने प्रवेश करके दूर से ही प्रणाम करने वाले केयूरक से कहा, कि केयूरक, अब सिद्धि को तुम हस्तगत ही समझो, क्योंकि वैशम्पायन आ गया।'

ऐसी बात सुन कर गमन में देर होने की संभावना से शून्य-हृदय होकर भी केयूरक—'बड़ा अच्छा हुआ, आपके हृदय को शान्ति मिल गई', इस प्रकार कहता हुआ चन्द्रापीड़ के पास जाकर बैठ गया और कुछ देर

---

१. मामानेतुं।

मुहूर्तमिव संज्ञोत्सारितसमस्तपरिजनं चन्द्रापीडं व्यज्ञपयत्। 'देव, सर्वतो विस्फुरन्ती तडिदिव बलाहकोन्नाहमुपारूढश्यामिका मेघलेखेव सलिलागमनमुपदर्शितपाण्डुच्छविः प्राचीव चन्द्रोदयं परिमलग्राहिणी मलयानिलागतिरिव वसन्तमासावतारमभ्युच्छ्रितमकरध्वजा मधुमासलक्ष्मीरिव पल्लवोद्भेदमुल्लसितरागपल्लवोद्गतिरिव कुसुमनिर्गमं विकसितकाशकुसुममञ्जरीव शरदारम्भावस्थैवेयमावेदयति निःसंशयं देवस्य गमनम्। अवश्यं च देवस्य देवीप्राप्त्या भवितव्यम्। केन कदा वावलोकितो ज्योत्स्नारहितश्चन्द्रमाः। कमलाकरो वा मृणालिकया विना। उद्यानभागो वा लताशून्यः। अपि च न राजत एव सहकारकुसुममञ्जरीपरिग्रहमन्तरेण सर्वजनसुभगोपि कुसुममासः। असंभावितदानलेखालक्ष्मीकं वा वदनं यूथाधिपतेः। किं तु यावद्वैशम्पायनः परापतति यावच्च तेन सह गमनसंविधानं निरूपयति देवस्तावदवश्यं कालक्षेपेण भाव्यम्। यादृशी चाकालक्षमा देव्याः शरीरावस्था तादृशी

निवर्णी वार्तामेवानुरुध्य। संज्ञोत्सारितपरिजनम्-इङ्गितेन तत्र स्थितं परिजनमुत्सार्य। व्यज्ञपयत्-सूचितवान्। सर्वतो विस्फुरन्ती-समन्तात्प्रकाशमाना। तडित्-विद्युत्। बलाहकोन्नाहम्-मेघस्यागमम्। उपारूढश्यामिका-उत्पन्नकालिमा। मेघलेखा-मेघमाला। सलिलागमनम्-जलवृष्टिम्। उपदर्शितपाण्डुच्छविः-दर्शितोज्ज्वलभावा। प्राची-पूर्वदिशा। परिमलग्राहिणी-सुगन्धोद्गारिणी। मलयानिलागतिः-दक्षिणवायोरागमनम्। वसन्तमासावतारम्-मधुमाससमारम्भम्। अभ्युच्छ्रितमकरध्वजा-समेधितकन्दर्पा। मधुमासलक्ष्मीः-वसन्तश्रीः। पल्लवोद्भेदम्-नूतनकिसलयविकासम्। उल्लसितरागपल्लवोद्गतिः-रक्तपल्लवनिर्गमः। कुसुमनिर्गमम्-पुष्पविकासम्। विकसितकाशकुसुममञ्जरी-प्रफुल्लकाशपुष्पमञ्जरी। शरदारम्भम्-शरदृतुप्रारम्भम्। इयमवस्था-साम्प्रतिकी स्थितिः। अत्र सर्वत्र मालोपमाऽलङ्कारः। यथा विद्युन्मेघोदयं, श्यामा मेघमाला वृष्टिं, शुभ्रा प्राची चन्द्रोदयं, सुगन्धपूर्णो दक्षिणानिलो वसन्तारम्भं, वर्द्धितकामा वसन्तश्रीः पल्लवविकासम्, रक्तपल्लवोद्गमः पुष्पविकासं, फुल्ला काशमञ्जरी शरदागमं बोधयति तथैवेयमवस्था भवत्प्रयाणं बोधयति, नात्र कश्चन संशय इति प्रकरणकार्थः। देवीप्राप्त्या-कादम्बरीमिलनेन। अवलोकितः-दृष्टः। ज्योत्स्नारहितः-कौमुदीविरहितः। यथा ज्योत्स्नारहितश्चन्द्रमा न दृश्यते तथा देवीरहितो देवोऽपि न द्रष्टुं शक्योऽतो देवीप्राप्तिस्तव निश्चितेत्यर्थः। कमलाकरः-कमलाशयः। मृणालिकया-कमलिन्या। उद्यानभागः-पुष्पोद्यानम्। सहकारकुसुममञ्जरीपरिग्रहमन्तरेण-आम्रमञ्जरीसमुद्गमं विना। सर्वजनसुभगः-सकललोकमनोहरः। कुसुममासः-वसन्तः। न राजत एव-नैव शोभते। असंभावितदानलेखालक्ष्मीकम्-अनुपलक्षितमदलेखाशोभम्। वदनं-मुखम्। यूथाधिपतेः-यूथपस्य करिणः। परापतति-आयाति। गमनसंविधानम्-यात्राप्रकारम्। निरूपयति-विचारयति। कालक्षेपेण-विलम्बेन। भाव्यम्-भवितव्यम्। अकालक्षमा-विलम्बासहिष्णुः। देव्याः-कादम्बर्याः। शरीरावस्था-शारीरिकी स्थितिः।

तक वैशम्पायन के आने के सम्बन्ध में बातें करता रहा। इशारे से चन्द्रापीड़ ने जब सारे परिजन को वहाँ से हटा दिया तब केयूरक ने चन्द्रापीड से कहा—

देव, चारो ओर चमकती हुई बिजली जैसे मेघ की वृद्धि को, काली मेघमाला जैसे वर्षा को, श्वेताभ आकाश जैसे चन्द्रोदय को, सुगन्धिपूर्ण दक्षिणानिल जैसे वसन्तागमन को, कामोद्दीपक मधुमास की शोभा जैसे पल्लवविकास को, रक्तपल्लव का विकास जैसे पुष्पोद्गम को, और खिले हुए काशपुष्पों की मञ्जरी जैसे शरदागम को सूचित करते हैं उसी तरह यह अवस्था ही आपके निश्चित गमन की सूचना देती है। आपको कादम्बरी की प्राप्ति अवश्य होगी। किसने कब ज्योत्स्ना से हीन चन्द्रमा देखा है? विना कमलिनी का कमलाकर किसने कब देखा है? अथवा लताशून्य उद्यान किसने कब देखा है? सर्वथा सुन्दर होकर भी मधुमास आम्रमञ्जरी के बिना शोभित नहीं ही होता है। गजराज का कुम्भ बिना मदलेखा के शोभा नहीं पाता है। परन्तु जब तक वैशम्पायन नहीं आ लेते हैं आप उनके साथ जाने के सम्बन्ध में परामर्श नहीं कर लेते हैं तब तक समय लगेगा ही।

---

१. समुच्छ्रितमकर। २. रागः पल्लवो।

निवेदितैव मया। सर्वोपि प्रत्याशया धार्यते। देव्यास्तु पुनर्देवदर्शनेऽप्यवस्थितप्रत्याशमेव हृदयं केनाश्वासनेन वर्तताम्। मद्वार्तोपलम्भादेतदुत्पत्स्यते चेतसि यथास्ति कार्यं मे जीवितेन दुःखान्यपि सहन्ती धारयाम्येतदिति। अतो विज्ञापयामि। चेतसा त्वग्रतो गत एव देवः शरीरेणाप्यनुपदमुच्चलित एव। किमपरं मयात्र स्थितेनापि साधनीयम्। तद्देवागमनोत्सवावेदनाय गमनानुज्ञया प्रसादं क्रियमाणमिच्छति मे प्रणयप्रसाददुर्ललितं हृदयमिदानीमेव।'

इति विज्ञापिते केयूरकेण अन्तःपरितोषविकसितया विकचनीलोत्पलपुञ्जमालिकयेव दृष्ट्या दर्शितप्रसादश्चन्द्रापीडः प्रत्युवाच। 'किमुच्यते। कस्यापरस्येदृशोऽस्मद्दुःखासहिष्णुरनपेक्षितस्वशरीरशक्तिरुत्साहः। कस्यापरस्येदृशी देशकालज्ञता। को वापरोऽस्मास्वेवं निर्व्याजभक्तिः। तत्साधु चिन्तितम्। गम्यतां देव्याः प्राणसंधारणाय। मदागमनप्रत्ययार्थं च पत्रलेखाप्यग्रतस्त्वयैव सह यातु देवीपादमूलम्। इयमपि प्रसादभूमिरेव देव्याः। इमामप्यालोक्य कियत्यपि धृतिरवश्यमुत्पद्यत इति मे चेतसि। अपि चास्या अपि देव्यामस्त्येव

प्रत्याशया–आशातन्तुना। धार्यते–जीवनं धार्यते। देवदर्शने–भवत्संगमविषये। अप्रत्याशम्–आशारहितम्। मद्वार्तोपलम्भात्–मम मुखात् समाचारं श्रुत्वा। अतः–सर्वोऽप्याशया जीवति, कादम्बर्यां हृदये भवद्दर्शनाशा नास्ति, अस्यां स्थितौ काचिदनिष्टाशङ्का मम हृदयं तुदति अस्मात्कारणादित्यर्थः। चेतसा–हृदयेन। अग्रतः–अग्रे। देवः–भवान्। अनुपदम्–शीघ्रम्। उच्चलितः–प्रस्थितः। साधनीयम्–कर्तव्यम्। देवागमनोत्सवावेदनाय–भवदागमनोत्सवं सूचयितुम्। गमनानुज्ञया–गन्तुमादेशेन। प्रसादम्–अनुग्रहम्। प्रणयप्रसाददुर्ललितम्–प्रणयेन प्रेम्णा प्रसादेन कृपया च दुर्ललितं नितान्तगर्वितम्। इदानीम्–सम्प्रति।

इति विज्ञापिते—इत्थं कथिते सति। अन्तःपरितोषविकसितया–हार्दिकप्रसादोत्फुल्लया। विकचनीलोत्पलपुञ्जमालिकया–विकसितनीलकमलराशिनिर्मितस्रक्तुल्यया। दर्शितप्रसादः–प्रकाशितानुग्रहः। विकसितया दृष्ट्या विलोकनेनैव व्यञ्जितान्तस्तोष इत्यर्थः। किमुच्यते किं कथ्यते। ईदृशः–तवेव। अस्मद्दुःखासहिष्णुः–मदीयं दुःखं सोढुमपारयन्। अनपेक्षितस्वशरीरस्थितिः–स्वां शरीरस्य दशामध्यायन्। देशकालज्ञता–देशस्य स्थानस्य कालस्य समयस्य च ज्ञानम्। निर्व्याजभक्तिः–अव्याजस्नेहकरः। मदागमनप्रत्ययार्थम्–अहमागच्छामीति विश्वासमुत्पादयितुम्। अग्रतः–मदपेक्षया पूर्वम्। देवीपादमूलम्–कादम्बर्याः समीपम्। इयम्–पत्रलेखा। प्रसादभूमिः–कृपापात्रम्। इमाम्–पत्रलेखाम्। आलोक्य–दृष्ट्वा।

कादम्बरी जिस प्रकार काल-विलम्ब सहने में असमर्थ हो रही है वह मैंने आपसे कह ही दिया है। सभी तो आशा पर जीते हैं। कादम्बरी का हृदय तो आपके पुनर्दर्शन के विषय में निराश ही है, फिर वह किस प्रकार जीवित रहे। मेरे द्वारा समाचार के मिल जाने पर उसके हृदय में यह भावना उत्पन्न हो जायगी कि मेरे जीवन की भी आवश्यकता है, अतः कष्ट सहकर भी मुझे जीना है। अतः मेरा निवेदन है कि हृदय से तो आप आगे गये ही हैं, शरीर से भी आप शीघ्र ही आ रहे हैं। मैं यहाँ रहकर ही दूसरा क्या कर लूंगा। अतः मेरा यह आपकी कृपा पर इठलानेवाला हृदय चाहता है कि आप मुझे आपके आने की सूचना देने के लिये जाने की अनुज्ञा दें।

केयूरक द्वारा इस प्रकार विज्ञापित होने पर चन्द्रापीड की आँखें आन्तरिक सन्तोष से विकसित होकर नीलकमल की माला-समान हो उठीं, उन नयनों से अनुमति प्रकट होने लगी, अनन्तर चन्द्रापीड ने कहा—क्या कहा जाय, दूसरा ऐसा है कौन, जिसको मेरे दुःख को मिटाने के लिये अपने शरीर की चिन्ता से मुक्त इस तरह का अदम्य उत्साह हो। कौन दूसरा इस तरह का देश-कालज्ञ है? कौन दूसरा हम पर

---

१. उपपत्स्यते।

स्नेहो भक्तिश्च। इत्यभिधाय पृष्ठतः समुपविष्टामेवं नेति पत्रलेखामप्राक्षीत्। सा तु 'किंचिदवनतमुखी 'निजाज्ञाक्षराणि प्रयच्छतु देवः' इति व्यज्ञपयत्। कृतप्रस्थितिनिश्चयायां च तस्यां मेघनादाह्वानाय प्रतीहारीमादिदेश। आदेशानन्तरमेवागतं च दूरतः प्रणतमाज्ञाप्रतीक्षं स्वयमेवाहूय सोपग्रहमादिदेश। 'मेघनाद यस्यां भूमौ पत्रलेखानयनाय पूर्वं मया त्वं स्थापितस्तां भूमिं यावत्पत्रलेखामादाय केयूरकेण सहाग्रतो गच्छ। अहमपि वैशम्पायनमालोक्यानुपदमेव ते तुरंगमैः परागतः।' इत्यादिश्य 'यदाज्ञापयति देव' इति कृतनमस्कृतौ त्वरितगमनसंविधानाय निष्क्रान्ते मेघनादे 'देव किमतः परं विलम्बेन' इत्यभिधाय मेघनादनिर्गमनानन्तरं गमनप्रणामोत्थितं केयूरकं सस्नेहमाहूय सबाष्पया दृष्ट्या पुनः पुनरालोक्य परिष्वज्य च सपुलकाभ्यां दोर्भ्यामात्मकर्णादपनीयानेकवर्णरुचिरं संदेशमिव कर्णाभरणमस्य कर्णे कृत्वा कण्ठागतबाष्पगद्गदिकागृह्यमाणाक्षरमवादीत्। 'केयूरक, त्वया

कियती–किञ्चित्परिमाणा। धृतिः–धैर्यम्। उत्पद्यते–जायते। अस्याः–पत्रलेखायाः। स्नेहः–प्रेम। भक्तिः–श्रद्धा। पृष्ठतः समुपविष्टाम्–स्वपश्चाद् भागेऽवस्थिताम्। एवं न–अस्ति कथेयं न वा। अप्राक्षीत्–पृष्टवान्। किञ्चिदवनतमुखी–ईषन्नतवदना। निजाज्ञाक्षराणि–स्वमादेशं ज्ञापयतो वर्णान्। प्रयच्छतु–ददातु। कृतप्रस्थितिनिश्चयायाम्–प्रस्थाननिश्चयं कृतवत्याम्। तस्याम्–पत्रलेखायाम्। मेघनादाह्वानाय–मेघनादं नाम भृत्यमाकारयितुम्। आदेशानन्तरमेवागतम्–आज्ञाश्रवणसमकालमेवोपस्थितम्। दूरतः प्रणतम्–व्यवहितदेशादेव कृतनमस्कारम्। आज्ञाप्रतीक्षम्–आदेशं प्रतीक्षमाणम्। सोपग्रहम्–साग्रहम्। आदिदेश–आज्ञापितवान्। यस्यां भूमौ–यत्र स्थाने। पत्रलेखानयनाय-पत्रलेखामानेतुम्। तां भूमिं यावत्–तत्स्थानपर्यन्तम्। पत्रलेखामादाय–पत्रलेखां सहकृत्वा। वैशम्पायनमालोक्य–आगच्छतो वैशम्पायनस्य साक्षात्कारं कृत्वा। अनुपदम्–अतिशीघ्रम्। तुरङ्गमैः–अश्वैः। परागतः–आगतः। कृतनमस्कृतौ–कृतनमस्कारे। त्वरितगमनसंविधानाय शीघ्रतया यात्रासंनाहं कर्त्तुम्। निष्क्रान्ते–गते। किमतः परं विलम्बेन–नास्ति परमस्माद्विलम्बस्यावसरः। गमनप्रणामोत्थितम्-यात्राकालिकप्रणामायोत्थितम्। सस्नेहम्–सप्रेम। आहूय-आकार्य। सबाष्पया–साश्रुप्रवाहया। परिष्वज्य–आलिङ्गय। सपुलकाभ्याम्–रोमाञ्चिताभ्याम्। दोर्भ्याम्-बाहुभ्याम्। अनेकवर्णरुचिरम्–नानावर्णरमणीयम्, रक्तपीतहरितादिविविधरङ्गरम्यम्–नानाविधाक्षरसुन्दरं चेति सन्देशविशेषणपक्षेऽर्थः। कर्णाभरणम्–श्रवणालङ्कारम्। कर्णे कृत्वा–कर्णे परिधाप्य। कण्ठागतबाष्पगद्गदि·

इस तरह निष्कपट भक्ति रखने वाला है? तुमने ठीक सोचा है। कादम्बरी के प्राणों की रक्षार्थ तुम जाओ। पत्रलेखा भी तुम्हारे साथ जाय जिससे कादम्बरी को विश्वास हो कि चन्द्रापीड़ आ रहे हैं। पत्रलेखा पर भी कादम्बरी की बड़ी कृपा है। पत्रलेखा को भी देखकर कादम्बरी को कुछ धैर्य होगा, ऐसा मुझे विश्वास है। पत्रलेखा भी कादम्बरी के विषय में बहुत आदर तथा स्नेह रखती है।

इस प्रकार कहकर चन्द्रापीड़ ने पीछे बैठी हुई पत्रलेखा से पूछा कि है न ऐसी बात? पत्रलेखा ने अपना मुख थोड़ा अवनत करके कहा—आप जाने की आज्ञा दें। पत्रलेखा ने जब जाने का निश्चय कर लिया तब चन्द्रापीड़ ने प्रतीहारी को मेघनाद को बुला लाने की आज्ञा दी। आज्ञा पाकर मेघनाद अविलम्ब उपस्थित हुआ, दूर से ही उसने चन्द्रापीड़ को प्रणाम किया, आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़े मेघनाद को स्वयं चन्द्रापीड़ ने बड़े प्रेम से कहा—मेघनाद, जिस स्थानपर पत्रलेखा को लाने के लिये पहली बार मैंने तुम्हें रख छोड़ा था, वहाँ तक तुम पत्रलेखा को लेकर केयूरक के साथ आगे चलो, मैं भी वैशम्पायन को देखकर तुरन्त घोड़े से आ ही रहा हूँ। इस तरह की आज्ञा पाकर—'महाराज की जो आज्ञा' ऐसा कहकर मेघनाद प्रणाम करके चला गया। अनन्तर यात्राकालिक प्रणाम करने को खड़े हुए सप्रेम बुलाकर, साश्रु नयनों से देखकर तथा बार-बार गले से लगाकर चन्द्रापीड़ ने अपने कान से उतार कर अनेक वर्णरुचिर संदेश के सदृश कर्णभूषण केयूरक के कान में डालते हुए गद्गद स्वर में कहा—केयूरक, मेरे लिये तो तुम देवी का कुछ सन्देश लाये नहीं थे, अतः मैं क्या तदनुकूल

तु मे देवीसंदेशो नानीत एव। तत्किं तव हस्ते तदनुरूपं प्रतिसंदिशाम्यपूर्वम्। विज्ञापयितव्या देवी। तत्रापि किमलीकलज्जाजालभारोद्वहनेन त्वामायासयामि। यात्येव पत्रलेखा देवीपादमूलम्। इयं विज्ञापयिष्यति।' इत्यभिदधदेवातर्कितोपनतात्मविरहपीडाम्, 'अमङ्गलशङ्कया कृतयत्नामपि बाष्पवेगमपारयन्तीं संधारयितुम्, उत्प्लुताबद्धलक्ष्यशून्यदृष्टिसंचारणां चरणपाताभिमुखीं पत्रलेखां प्रणयेनाभिमुखो भूत्वा बद्धाञ्जलिरभाषत—

'पत्रलेखे, साञ्जलिबन्धेन शिरसा प्रणम्य मदीयेन विज्ञाप्या देवी कादम्बरी। येन सर्वखलानां धुरि लेखनीयेन तथा प्रथमदर्शनेपि वत्सलत्वात्स्वभावस्य दर्शितप्रसादातिशयां देवीं प्रणामेनाप्यसंभाव्य गच्छता प्रज्ञा जडतया ज्ञानं मौढ्येन धीरता तारल्येन स्नेहलता रौक्ष्येण गौरवं लघुतया प्रियंवदता पारुष्येण मृदुहृदयता नैष्ठुर्येण स्थैर्यं चञ्चलतया दयालुता नृशंसत्वेनार्जवं मायाजालेन सत्यवादितालीककाकुसंपादनेन दृढभक्तितावज्ञानेन पेशलता

कागृह्यमाणाक्षरम्–कण्ठागतया कण्ठं समाक्रामन्त्या गद्गदिकया गद्गदभावेन गृह्यमाणानि उच्चारणे प्रतिबध्यमानानि अक्षराणि वर्णा यत्र तत्तथा। देवीसंदेशः–कादम्बर्या वाचिकम्। तदनुरूपम्–कादम्बरीसंदेशस्यानुकूलम्। अपूर्वम्–नवम्। अलीकलज्जाजालभारोद्वहनेन–मिथ्यात्रपाराशेरुद्वहनेन। लज्जाकरवार्त्तानिवेदनकष्टेनेत्यर्थः। आयासयामि–खेदयामि। देवीपादमूलम्–कादम्बर्याः समीपम्। अतर्कितोपनतात्मविरहपीडाम्–अचिन्तितमेव उपस्थितेन चन्द्रापीडस्य विरहेण पीडिताम्, अमङ्गलशङ्कया–यात्राकाले रोदनेन भाविनोऽमङ्गलस्य संभावनया। कृतयत्नाम्–अश्रुनिवारणाय सचेष्टाम्। बाष्पवेगं संधारयितुमपारयन्तीम्–अश्रुप्रवाहं रोद्धुमशक्नुवतीम्। उत्प्लुता उपरि सञ्चारिणी आबद्धा निश्चितलक्ष्या या शून्या रिक्तरिक्ता दृष्टिसञ्चारणा यस्यास्तादृशी चरणपाताभिमुखीं चरणे निपतितुं प्रवृत्तां पत्रलेखां प्रणयेन प्रेम्णा अभिमुखः संमुखीनो भूत्वा बद्धाञ्जलिः विनयसंयोजितकरतलद्वयः अभाषत अवोचत।

साञ्जलिबन्धेन—बद्धाञ्जलियुक्तेन। विज्ञाप्या–वक्तव्या। सर्वखलानां धुरि लेखनीयेन–अखिलदुष्टाग्रगण्येन। स्वभावस्य वत्सलत्वात्–वात्सल्यपूर्णस्वभावशालित्वात्। दर्शितप्रसादातिशयाम्–प्रकटीकृतानुकम्पाधिक्याम्। प्रणामेनापि असंभाव्य–प्रणाममप्यकृत्वा। प्रज्ञा–बुद्धिः। जडतया–मूर्खतया। 'परिवर्त्तिताः' इत्यस्य लिङ्गवचनविपरिणामं कृत्वा सर्वत्रान्वयः कार्यस्तथा च प्रज्ञा जडतया परिवर्त्तिता ज्ञानं मौढ्येन परिवर्त्तितमित्यादिरूपेणान्वयः कार्यः। मौढ्येन–मूर्खभावेन। धीरता–गंभीरता। तारल्येन–चाञ्चल्येन। स्नेहलता–प्रीतिशालिता। रौक्ष्येण–रूक्षभावेन, गौरवम्–गुरुत्वम्। लघुतया–लाघवेन। प्रियंवदता–मधुरभाषित्वम्। पारुष्येण–कठोरत्वेन। मृदुहृदयता–कोमलचित्तता। नैष्ठुर्येण–क्रूरतया। स्थैर्यम्–स्थिरप्रकृतिकत्वम्। नृशंसत्वेन–घातकत्वेन। आर्जवम्–सारल्यम्। मायाजालेन–कपटप्रबन्धेन।

प्रतिसन्देश दूं? तुम कादम्बरी से इतना ही कहना कि व्यर्थ की लज्जा को ढोती रहकर वह क्यों अपने को कष्ट में डालती हैं? पत्रलेखा उसके पास आ रही है जो सारी बातें बतायेगी। चन्द्रापीड़ केयूरक से इस प्रकार कह ही रहे थे कि चरण छूने के लिये पत्रलेखा उनके आगे आकर खड़ी हो गई, आकस्मिक चन्द्रापीड़ विरह से उसे कष्ट हो रहा था, अमङ्गल की आशंका से वह आँसू को रोकना चाहती थी परन्तु रोक नहीं पा रही थी, उसकी लक्ष्यशून्य दृष्टि ऊपर की ओर बंधी थी। इस प्रकार से खड़ी हुई पत्रलेखा के सामने खड़े होकर चन्द्रापीड़ ने प्रेम से हाथ जोड़कर कहा—

पत्रलेखे, हाथ जोड़कर प्रणाम करने के अनन्तर मेरी ओर से तुम कादम्बरी से कहना कि समस्त खलों में प्रथम गणनीय मैंने जाने के समय आपको प्रणाम तक नहीं किया जब कि स्नेही स्वभाव के कारण आपने पहली भेंट में ही अत्यन्त कृपा प्रकट की थी। मैंने जब अपनी बुद्धि को मूर्खता में, ज्ञान को जड़ता में, धीरता को चञ्चलता में, स्नेह को रूक्षता में, स्थैर्य को चञ्चलता में, गौरव को लाघव में, प्रियभाषिता को कठोरता में, कोमलहृदयता को निष्ठुरता में, दयालुता को क्रूरता में, सरलता को मायाजाल में, सत्यवादिता को मिथ्याकथा में, दृढ़भक्तिता को अवज्ञा में, अनुकूलता को कुटिलता में, औदार्य को क्षुद्रता में, दाक्षिण्य को अमहानुभावता में,

कौटिल्येन लज्जा धाष्ट्र्येनौदार्यं क्षुद्रतया दाक्षिण्यममहानुभावतया प्रश्रयोभिमानेन कृतज्ञता कृतघ्नतया शीलं पौरोभाग्येण सर्वगुणा एव दोषैः परिवर्तिताः[१] स कथमिवापरं गुणमवलम्ब्य पुनः परिग्रहाय विज्ञापयतु। केन चाङ्गीकरोतु देवी। किमुपदर्शितालीकात्मार्पणेन न प्रतारितं देव्या हृदयमिति। किं प्रकृतिपेशलं हृदयमपहृत्य नापक्रान्तोस्मीति। किमियं प्राणसंदेहकारिणी निष्करुणेन शरीरावस्था नोपेक्षितेति। किमहमस्या न कारणमिति। एतत्सर्वदोषाश्रयेणाप्यनुवृत्त्या चरणावाराधिताविति वा। तदेवमात्मना सर्वगुणहीनस्यापि मे देवीगुणा एवालम्बनम्। इयमेव ते स्वभावसरसा दूरस्थमपि मदनहुतभुजा दह्यमानं रक्षत्येव सरलता। मुहुर्मुहुराह्वयत्येव स्नेहलता। आनयत्येव स्थिरप्रतिज्ञता। ढौकयत्येव दक्षिणता। अभिपद्यत एव वत्सलता। चरणपतितं न निर्भर्त्सयत्येव मृदुहृदयता। उत्थाप्य संभावयत्येव महानुभावता। आलपत्येव प्रियवादिता। ददात्येव हृदयेऽवकाशमत्युदारता।

अलीककाकुसंपादनेन मिथ्याकाकुभावितेन। दृढभक्तिता-अविचला भक्तिः। अवज्ञानेन तिरस्कारेण। पेशलता-सरलता कोमलस्वभावता च। धाष्ट्र्येन-निर्लज्जभावेन। दाक्षिण्यम्-उदारता। पौरोभाग्येण-दोषमात्रदर्शित्वेन। येन मया प्रथमदर्शनेऽपि कृपातिशयं प्रकाश्य देव्याऽनुगृहीतेनापि सता पलायनावसरे देवी प्रणामेनापि न संभाविता, एवञ्च आत्मनि वर्त्तमानाः सर्वे एव प्रज्ञादयो गुणा जडतादिदोषरूपे परिवर्तिताः स एवाहं कमपरं गुणं पुरस्कृत्य देवीं पुनः परिग्रहाय प्रार्थयेयेत्याशयः। केन चाङ्गीकरोतु देवी-मया पुनः परिग्रहाय प्रार्थनायां क्रियमाणायामपि कादम्बरी केन कारणेन मां स्वीयतयाऽङ्गीकुर्यात्। सर्वस्यापि परिग्रहकारणीभूतस्य गुणकदम्बस्य मया दोषत्वे परिवर्त्तनादिति भावः। उपदर्शितालीकात्मार्पणेन मिथ्याऽऽत्मसमर्पणमभिनयता मया। प्रतारितम्-वञ्चितम्। प्रकृतिपेशलम्-स्वभावसरलम्। अपहृत्य-चोरयित्वा। अपक्रान्तः-पलायितः। प्राणसंदेहकारिणी-प्राणान्संशये पातयन्ती। निष्करुणेन-निर्दयेन। शरीरावस्था-कादम्बर्याः कायिकी स्थितिः। एतत्सर्वदोषाश्रयेणापि-एतेषां सर्वेषां दोषाणां पात्रतां भजमानेनापि। अनुवृत्त्या-अनुवर्त्तनेन। आत्मना-स्वयम्। सर्वगुणहीनस्य-गुणमात्रविरहितस्य। देवीगुणाः-कादम्बर्यां विद्यमाना दयादाक्षिण्यप्रभृतयः। स्वभावसरसा-प्रकृत्यार्द्रा। सरलता मदनहुतभुजा कामानलेन दह्यमानं भस्मीक्रियमाणं मां रक्षत्येवेत्यन्वयः। स्नेहलता-प्रेमपरायणता। मुहुर्मुहुराह्वयति-वारं वारमाकारयति। ढौकयति-आकर्षति। अभिपद्यते-शरणीकरोति। न निर्भर्त्सयति-न आक्रोशति। उत्थाप्य संभावयति-चरणपतितमादृत्योन्नमयति। हृदयेऽवकाशम्-चेतसि स्थानम्। तथापि-सर्वदोषाणामाकरो भूत्वापि। निर्लज्जहृदयः-नितान्तनिस्त्रपचेताः। वदनदर्शनदानसाहसमङ्गीकरोमि-

---

नम्रता को अभिमान में, कृतज्ञता को कृतघ्नता में, और सुशीलता को दोषगवेषणा में बदल दिया, तब अब किस गुण के बल पर आप से पुनः अपनाने की याचना करूँ? आप मुझे स्वीकार करें तो किस गुण पर? क्या मैंने मिथ्या आत्मसमर्पण का अभिनय करके आपके हृदय को धोखा नहीं दिया है? क्या मैंने स्वभावतः कोमल आपके हृदय का अपहरण करके पलायन नहीं किया है? क्या मैंने आपकी प्राणसंदेहकारिणी अवस्था की उपेक्षा नहीं की है? क्या मैं आपकी इस अवस्था के लिये उत्तरदायी नहीं हूं? इन सारे दोषों का आश्रय होकर भी मैंने कुछ काल तक आपके चरणों की आराधना की है इसलिये स्वतः सर्वगुणहीन होने पर भी मुझे कादम्बरी के गुण ही बचाते रहे हैं। कादम्बरी की स्वभावसरलसरसता ही दूरवर्त्ती तथा कामाग्नि में जलते हुए मुझ अधम को रक्षित करती रही है। कादम्बरी का स्नेह बार-बार मुझे पुकारता रहा है। उसकी स्थिरप्रतिज्ञता मुझे समीप में ला खड़ा करती है। उसकी उदारता मुझे ढाढस बंधाती है। उसकी वत्सलता आगे खड़ी होती है। उसकी मृदुहृदयता मुझे नहीं फटकारती है जब मैं उसके पैरों पर पड़ता हूँ। उसकी महानुभावता मुझे उठाकर आदर प्रदान करती है। उसकी प्रियवादिता मुझसे बातें करती हैं। उसकी उदारता मुझे हृदय में

---

१. परिवृत्ताः।

यच्च तथापि गत्वा निर्लज्जहृदयः पुनर्वदनदर्शनदानसाहसमङ्गीकरोम्यत्रापि सत्प्रकृतयो देवीप्रसादा एव कारणम्। एते हि विशदत्वादुदारभावात्संगतत्वाच्च क्षणपरिचिता अपि समारोपितजीवितप्रत्याशा न किंचिन्न कारयन्ति। स्मारयन्ति सेव्यतां देव्याः। चरणपरिचर्यायै समुत्साहयन्ति। शिक्षयन्ति सेवाचातुर्यम्। उपदिशन्त्याराधनोपायान्। चाटुकारो भवेत्यसकृदाज्ञापयन्ति। एवं स्थीयतामिति स्वयमेवोपदर्शयन्ति। मुखावलोकिनामकालोपसर्पणकोपेऽनुनयन्ति। परितोषावसरेनुगृह्णन्ति गुणानुवादेन। लज्जापसृतं हठादाकृष्योपसर्पयन्ति। नान्यत्र क्षणमपि ददत्यवस्थातुम्। अपि चैतेनुग्राहकत्वादेवापरित्याज्याः। गुरुत्वादेव कृतावष्टम्भाः। विस्तीर्णत्वादेवालङ्घनीयाः। प्रभूतत्वादेवापरिहार्याः। तदेभिरहं विनाप्यागमनाज्ञया सुदूरमपक्रान्तोपि बलादेवाकृष्य देवीपादमूलमानीय इति। यया वानपेक्षितगमनाज्ञयानियन्त्रणत्वाद्गतोहमिति विज्ञप्तं सैव वाणी विज्ञापयति। यथा च मे न निष्फलमागमनं भवति जगद्वा शून्यं तथा देव्यात्मसंधारणायात्मनैव यत्नः कार्यः।'

मुखं दर्शयितुं साहसं कुर्वे। सत्प्रकृतयः-स्वभावत उत्तमाः। एते-देवीप्रसादाः। विशदत्वात्-निर्मलत्वात्। उदारभावात्-उदारत्वात्। सङ्गतत्वात्-उचितत्वाच्च। क्षणपरिचिताः-अल्पकालिकपरिचयवन्तोऽपि। समारोपितजीवितप्रत्याशाः-जीवनाशां सञ्चारयन्तः। न किञ्चिन्न कारयन्ति-सर्वमपि कारयन्तीत्यर्थः। सर्वमपि कारयन्तीत्युक्तं तदेवोपपादयितुमाह-स्मारयन्तीति देव्याः-कादम्बर्याः। सेव्यताम्-सेवायोग्यत्वम्। स्मारयन्ति-ध्याने आनयन्ति। चरणपरिचर्यायै-पादसेवायै। समुत्साहयन्ति-प्रेरयन्ति। शिक्षयन्ति-उपदिशन्ति। सेवाचातुर्यम्-सेवाकौशलम्। आराधनोपायान्-सेवाप्रकारान्। चाटुकारः-अनुगतप्रियवादी। मुखावलोकिनाम्-सदाऽनुगतानाम्। अकालोपसर्पणकोपे-असमयोपस्थितिजनिते क्रोधे सति। अनुनयन्ति-प्रसादयन्ति। परितोषावसरे-स्वामिकृतप्रसादप्रकटनकाले। लज्जापसृतम्-लज्जावशाद् अपरित्याज्याः-त्यक्तुमशक्याः। गुरुत्वात्-श्रेष्ठत्वात् भारवत्वाच्च। कृतावष्टम्भाः-कृतावरोधाः। विस्तीर्णत्वात्-व्यापकत्वात्। अलङ्घनीयाः-पारं गन्तुमयोग्याः। प्रभूतत्वात्-बहुसंचयकत्वात्। अपरिहार्याः-निवारयितुमशक्याः। एभिः-देवीगुणैः। विनाऽप्यागमनाज्ञया-देव्या गच्छेत्याकाराया आज्ञाया अभावेऽपि। सुदूरमपक्रान्तः-दूरदेशमागत्य स्थितः। बलादेवाकृष्य-बलवदाकृष्य। देवीपादमूलम्-कादम्बर्याः पार्श्वम्। आनीये-प्राप्ये। अनपेक्षितगमनाज्ञया-गमनकालिकादेशमप्रतीक्षमाणया। विज्ञप्तम्-सूचितम्। आगमनं निष्फलं न भवति-आगमनफलं त्वद्दर्शनं प्राप्यते। जगद्वा शून्यं न भवति-त्वयि मृतायां जगत्सारभूतवस्त्वभावेन शून्यतामापद्यते, न तथा यथा न भवति तथा यतेथा इत्याशयः।

स्थान देती है। (उस तरह मैं भाग खड़ा हुआ) फिर भी उसके समीप जाकर निर्लज्जभाव से मुख दिखलाने का साहस कर रहा हूँ इसमें भी उत्तमप्रकृति कादम्बरी के गुण ही कारण हैं। विमल, उदार, तथा संगत कादम्बरी के गुण कुछ क्षणों के परिचय से ही जीवन की आशा को उत्पन्न करके क्या नहीं करवाते हैं? यह गुण कादम्बरी की सेव्यता प्रकट करते हैं। उसके चरणों की आराधना के लिये मुझे उत्साहित करते हैं। आराधना के उपायों का उपदेश देते हैं, बार-बार सेवाकौशल की शिक्षा देते हैं। खुशामद करने की आज्ञा देते हैं। स्वयं उपदेश देते हैं कि इस प्रकार व्यवहार करो। दर्शनार्थ आये हुए लोगों पर जब मैं कोपकर बैठता हूँ तब वही गुण मुझे मनाते हैं। प्रसन्नता की घड़ी में गुणानुवाद का अनुग्रह करते हैं। लज्जा से जब मैं भाग खड़ा होता हूँ तब वह गुण मुझे खींचकर पास लाते हैं। दूसरी जग एक क्षण भी रहीं रहने देते हैं। कादम्बरी के गुण अनुग्राहक होने से अत्याज्य, गौरव से वजनी, विस्तृत होने से अलङ्घनीय एवं अधिकता के कारण अनिवार्य हैं। यह गुण मुझे विना आगमनाज्ञा के ही दूर से खींचकर कादम्बरी के चरणों में लिये जा रहे हैं। जिस वाणी ने विना गमनाज्ञा के स्वतन्त्रभाव से मेरे चले आने की सूचना दी थी वही अभी कह रही है (कि

इति संदिश्य पुनराह। 'पत्रलेखे, त्वयापि यान्त्याध्वनि न मद्विरहपीडा भावनीया। न शरीरसंस्कारेनादरः करणीयः। नाहारवेलातिक्रमणीया। न येन केनचिदज्ञातेन पथा यातव्यम्। न यत्र तत्रैवानिरूप्यावस्थातव्यमुषितव्यं वा। न यस्य कस्यचिदपरिज्ञायमानस्यान्तरं दातव्यम्। सर्वदा शरीरेऽप्रमादिन्या भाव्यम्। किं करोमि। त्वत्तोपि मे वल्लभतरा देवीप्राणाः। येनैवमेकाकिनी तेषां संधारणाय विसर्जितासि। अपि च मम जीवितमपि तवैव हस्ते वर्तते। तन्नियतं त्वयात्मा यत्नेन परिरक्षणीयः।' इत्युक्त्वा सस्नेहं परिष्वज्य केयूरकं पुनस्तदवधानदानाय संविधाय महाश्वेताश्रमं यावत्पुनस्त्वयैष सहानया मन्नयनायागन्तव्यमित्यादिश्य व्यसर्जयत्।

निर्गतायां च केयूरकेण सह पत्रलेखायां 'किं शीघ्रमेते यास्यन्ति न वेत्यन्तरा वा गच्छतां परिलम्ब उत्पस्यते न वेति कियद्भिर्वा दिवसैः परापतिष्यन्ति', इत्यनयैव चिन्तया शून्यहृदयः क्षणमिव स्थित्वा स्कन्धावारवार्तास्फुटीकरणाय वार्ताहरं विसर्ज्य

यान्त्या-कादम्बरीसमीपं गच्छन्त्या। मद्विरहपीडा-मद्वियोगव्यथा। भावनीया-ध्यातव्या। शरीरसंस्कारे-शरीरप्रसाधनोपयुक्ते स्नानाहारशयनादौ। अनादरः-उपेक्षा। आहारवेला-भोजनसमयः। न अतिक्रमणीया-न लङ्घनीया। पथा-मार्गेण। अवस्थातव्यम्-विश्रामाय स्थितिः कार्या। उषितव्यम्-रात्रिनिवासः कार्यः (उषितव्यमिति रूपं चिन्तनीयम्, वस्तव्यमिति तु युक्तः पाठः) अपरिज्ञायमानस्य-अपरिचितस्य। अन्तरं दातव्यम्-स्वरहस्यं वक्तव्यम्। अप्रमादिन्या-सावधानया। त्वत्तः-त्वदपेक्षया। वल्लभतराः-अतिप्रियाः। एकाकिनी-सहायान्तररहिता। तेषां सन्धारणाय-देव्याः प्राणानां रक्षार्थम्। विसर्जितासि-गन्तुमाज्ञापितासि। नियतम्-निश्चयेन। परिष्वज्य-आलिङ्ग्य। तदवधानदानाय-पत्रलेखाविषये सावधानतां कर्तुम्। संविधाय-आगृह्य। त्वया-केयूरकेण। अनया-पत्रलेखया। मन्नयनाय-मम चन्द्रापीडस्य कादम्बरीसमीपे प्रापणाय। व्यसर्जयत्-गन्तुमादिष्टवान्।

निर्गतायाम्-प्रयातायाम्। एते-केयूरकमेघनादपत्रलेखाः। अन्तरा-मध्ये। परिलम्बः-विलम्बः। परापतिष्यन्ति-यास्यन्ति। शून्यहृदयः-अस्यामेव चिन्तायां समासक्तचित्ततया विषयान्तरभावनाविमुखमना इत्यर्थः। स्कन्धावारवार्तास्फुटीकरणाय-आगच्छतः सैन्यसमुदयस्य संबन्धे प्रसृतां किंवदन्तीं निश्चयरूपेण ज्ञातुम्। वार्ताहरम्-दूतम्। विसर्ज्य-प्रेष्य। बहुदिवसान्तरितदर्शनस्य-चिरादृष्टस्य।

मैं कादम्बरी के चरणों में आ रहा हूं)। अतः जिससे मेरा आगमन व्यर्थ न हो, संसार शून्य न हो जाय इसलिए कादम्बरी को प्राण-धारण करना है।

इस प्रकार संदेश देकर चन्द्रापीड़ ने पुनः कहा—पत्रलेखे, रास्ते में जाती हुई तुम भी मेरे विरह का ख्याल मत करना। शरीर-संस्कार में असावधानी मत बरतना। भोजन समय पर करना। जिस किसी अज्ञात मार्ग से यात्रा नहीं करना। विना विचार के जहाँ तहाँ नहीं ठहरना, न निवास करना। जिस किसी अपरिचित को अपना भेद मत बताना। शरीर का ध्यान सदा करते रहना। मैं क्या करूं, तुमसे भी मुझे कादम्बरी के प्राण प्रिय हैं, इसीलिये मैं तुम्हें कादम्बरी के प्राणों की रक्षा के निमित्त भेज रहा हूँ। मेरा जीवन भी तुम्हारे ही हाथों में है। अतः तुम नियमपूर्वक यत्न से अपनी रक्षा करना। इस तरह कहकर चन्द्रापीड़ ने पत्रलेखा को गले लगाया, केयूरक को पुनः पत्रलेखा के विषय में सावधान रहने का आदेश दिया और कहा कि फिर तुमको इसके साथ महाश्वेता के आश्रम तक मुझे बुलाने के लिए आना होगा। इस प्रकार आदेश देकर चन्द्रापीड़ ने उन्हें विदा किया।

केयूरक के साथ पत्रलेखा के चले जाने पर चन्द्रापीड़ सोचने लगा क्या यह शीघ्र जायेंगे ? रास्ते में इन्हें विलम्ब तो नहीं होगा ? यह कितने दिनों में पहुंचेंगे ? इसी चिन्ता में वह कुछ देर खोया हुआ सा रहा। अनन्तर उसने सैन्य-समाचार को स्पष्ट करने के निमित्त दूत भेजा। इसके बाद वह पिता के पास इस उद्देश्य से गया कि

१. विलम्बः।

बहुदिवसान्तरितदर्शनस्य वैशम्पायनस्य प्रत्युद्गमनायात्मानं मोचयितुं पितुः पादमूलमगात्। तत्र चोभयतः ससंभ्रमापसृतप्रतीहारमण्डलवितीर्णविस्तीर्णालोकनमार्गो दूरादेवापसव्यजानुकरतलावलम्बितविमलमणिकुट्टिमोदरसंक्रान्तप्रतिमो द्विगुणायमानायतकुन्तलकलापः पितुः प्रणाममकरोत्।

अथ तारापीडस्तथा दूरत एव कृतप्रणामं चन्द्रापीडमालोक्य निर्भरस्नेहगर्भेण सलिलभरमंथरेणेव जलधरध्वनिना स्वरेण सधीरमेह्येहीत्याहूय ससंभ्रमप्रधावितमपि संभावितशुकनासप्रणाममुपसृत्य पार्श्वे भूमावुपविशन्तमाकृष्य हठात्पादपीठे समुपवेश्यापरिसमाप्तावलोकस्पृहेण चक्षुषा सुचिरमालोक्यास्योपारूढयौवनभराभिरामतराण्यङ्गप्रत्यङ्गानि पाणिना स्पृष्ट्वा दर्शयञ्शुकनासमवादीत्। 'शुकनास, पश्येयमायुष्मतश्चन्द्रापीडस्योत्सर्पिणी महानीलमणिप्रभेव कनकशिखरिणः, गण्डमण्डलोद्भासिनी मदलेखेव गन्धद्विपस्य, उपहितकान्तिपतिपरभागा लक्ष्मच्छायेव चन्द्रमसः, विकासशोभापेक्षिणी

प्रत्युद्गमनाय-स्वागताय। आत्मानं मोचयितुम्-गन्तुमादेशाय। पितुः-तारापीडस्य। पादमूलम्-चरणोपान्तम्, समीपमित्यर्थः। उभयतः-पार्श्वयोर्द्वयोः। ससंभ्रमं वेगेन प्रसृतेन अपक्रान्तेन प्रतीहारमण्डलेन परिजननिवहेन वितीर्णो दत्तः विस्तीर्णः आयतः आलोकनमार्गो राजदर्शनोपयुक्तवर्त्म यस्मै तादृशः। अपसव्यो दक्षिणो जानुजङ्घाप्रदेशः करतलं च ताभ्याम् अवलम्बिते आश्रिते मणिकुट्टिमोदरे मणिनिर्मितभूभागमध्ये संक्रान्ता प्रतिफलिता प्रतिमा मूर्त्तिर्यस्य तादृशः। द्विगुणायमानकुन्तलकलापः दीर्घवक्रासमानकेशराशिः।

तथा-तेन प्रकारेण जानुना करतलेन च भुवं स्पृष्ट्वा। कृतप्रणामम्-प्रणतम्। निर्भरस्नेहगर्भेण-अत्यन्तप्रेमपूर्णेन। सलिलभरमन्थरेण-जलपूर्णतया मन्देन। जलधरध्वनिना-मेघशब्दोपमेन। सधीरम्-गम्भीरभावेन। ससम्भ्रमप्रधावितम्-त्वरितागतम्। संभावितशुकनासप्रणामम्-कृतशुकनासनमस्कारम्। उपसृत्य-समीपे समागत्य। आकृष्य-बाहुभ्यामादाय। पादपीठे-स्वपार्श्वस्थिते उच्चासने। अपरिसमाप्तावलोकनस्पृहेण-पुनः पुनश्चन्द्रापीडदर्शनं कामयमानेन। चक्षुषा-नेत्रेण। उपारूढयौवनभराभिरामतराणि-प्रारब्धेन युवत्वेन रमणीयानि। अङ्गानि-शरीरावयवान्। आयुष्मतः-चिरायुषः। उत्सर्पिणी-अनुदिनमेधमाना। कनकशिखरिणः-सुवर्णशैलस्य। महानीलप्रभेव-महानीलमणिकान्तिरिव। (यथा सुवर्णशैले महानीलमणेः प्रभा शोभते तथैव उत्तप्तकनककमनीयकान्तौ चन्द्रापीडस्य वपुषि श्मश्रुराजिप्रभा शोभते इत्यर्थः, एवमग्रेऽपि बोध्यम्)। गण्डमण्डलोद्भासिनी-कपोलस्थले प्रकाशमाना। गन्धद्विपस्य-युद्धोपयुक्तस्य गजस्य। मदलेखा-दानराजिः। उपहितः आश्रितः कान्तिपतेश्चन्द्रस्य परो भागो यया तादृशी।

चिरकाल-वियुक्त वैशम्पायन के दर्शनार्थ जाने के लिए वह अपने को पिता से छुड़ा ले। वहाँ जाकर उसने—शीघ्रता से प्रतीहारों द्वारा अलग होकर मार्ग के दिए जाने पर—दूर से ही वामजानु तथा करके सहारे पृथ्वी पर बैठकर विमल मणिकुट्टिम में अपनी प्रतिमा को संक्रान्त कराते हुए पिता को प्रणाम किया, प्रणाम के समय झुकने पर उसके सिर के बाल दुगुने बड़े मालूम पड़ते थे।

तारापीड़ ने जब चन्द्रापीड़ को दूर से ही प्रणाम करते देखा, तब स्नेहपूर्ण तथा जलपूर्ण मेघ की ध्वनि के समान स्वर में समीप बुला लिया। चन्द्रापीड़ झटपट पास आकर और शुकनास के चरण छूकर जमीन पर बैठ जाना चाहता था, परन्तु तारापीड़ ने उसे बरवश अपने पास बैठा लिया, असमाप्तदर्शनेच्छा से वह बड़ी देर तक चन्द्रापीड़ का मुख देखता रहा, यौवन से अभिराम उसके अङ्गों को छूता रहा। अनन्तर तारापीड़ ने शुकनास को चन्द्रापीड़ की ओर दिखलाते हुए कहा—शुकनास, देखो, चन्द्रापीड़ के चेहरे पर दाढ़ी-मूँछ निकल रही है, वह ऐसी लगती है मानो सुवर्णशैल पर महानीलमणि की प्रभा हो, गन्धद्विप के गण्डमण्डल से निकली मदलेखा हो, चन्द्रमा की ऊपरी कान्ति को आवृत करने वाली कलङ्कच्छाया हो, कमलाकर के विकास की अपेक्षा

मधुकरावलीव कमलाकरस्य, रूपालेख्योन्मीलनकालाञ्जनवर्तिका, तारुण्यभरजलधरोत्तान-श्यामिका, उज्ज्वलत्कन्दर्पप्रदीपकज्जलशिखा, स्फुरत्प्रतापानलधूमराजी, मकरध्वजोपवनतमालवल्ली, मनोभवविकारदोषारम्भबालतिमिरोद्गतिः, उद्वाहमङ्गलभ्रूसंज्ञा श्मश्रुराजिलेखा समन्तात्समुद्भिन्ना। विवाहमङ्गलयोग्यां दशामारूढोयम्। तद्देव्या विलासवत्या सह संमन्त्र्याभिजनरूपा निरूप्यतां काचिज्जगति राजकन्यका। दृष्टं हि दुर्लभदर्शनं वत्सस्य वदनम्। संप्रति वधूमुखकमलदर्शनेनानन्दयाम आत्मानम्।' इत्युक्तवति तारापीडे शुकनासः प्रत्युवाच।

'साधु चिन्तितं देवेन। अनेन तु सहृदयेन हृदये समारोपिता एव सर्वविद्याः। संभाविता एव सर्वाः कलाः। स्वीकृता एव सर्वाः प्रजाः। गृहीता एव सर्वदिग्वधूनां कराः। स्थापितैव निश्चलकुटुम्बिनीपदे राजलक्ष्मीः। ऊढैव चतुरुदधिमेखलाकलापभूषणा भूः किमपरमवशिष्यते येन न परिणीयते।' इत्यभिहितवति शुकनासे लज्जावनम्रवदनश्चन्द्रा-

लक्ष्मच्छाया-कलङ्कप्रभा। विकासशोभापेक्षिणी-विकासजन्यां शोभामपेक्षमाणा। मधुकरावली-भ्रमरमाला। कमलाकरस्य-कमलराशेः। रूपमेवालेख्यं चित्रं तस्य उन्मीलने चमत्करणे अञ्जनवर्तिका श्यामिकादायिनी वर्त्तिरिव। तारुण्यभरः यौवनसमुदाय एव जलधरो मेघस्तस्य श्यामिका कालिमा। उज्ज्वलतः सततं दीप्यमानस्य कन्दर्पप्रदीपस्य कामाख्यदीपस्य कज्जलशिखा श्यामा धूमराजिः। स्फुरतः सर्वतः प्रसमरस्य प्रतापानलस्य तेजोवह्नेः धूमराजो धूमलता। मकरध्वजः काम एव उपवनमुद्यानं तस्य तमालवल्ली तमालतरुः। मनोभवविकारः कामविकार एव दोषारम्भः राज्यागमस्य बालतिमिरोद्गतिः नूतनान्धकारोदयः। उद्वाहो विवाह एव मङ्गलं शुभं तस्य भ्रूसंज्ञा इङ्गितम्। श्मश्रुराजिलेखा-श्मश्रुपङ्क्तिः। समुद्भिन्ना-प्रकटतां गता। अयम्-चन्द्रापीडः। विवाहयोग्याम्-विवाहोपयुक्ताम्। दशाम्-अवस्थाम्। आरूढः-प्राप्तः। संमन्त्र्य-विचार्य। अभिजनरूपा-कुलरूपवती। निरूप्यताम्-निश्चीयताम्। दुर्लभदर्शनम्-चिरादृष्टतया नितान्तकाम्यावलोकनम्। सम्प्रति-जाते पुत्रे तस्मिन्युवत्वं च प्राप्ते सति। वधूमुखकमलदर्शनेन-स्नुषायाः कमलोपमस्य मुखस्यावलोकनेन। आनन्दयामः-सुखीकुर्मः।

साधु चिन्तितम्-उपयुक्तं विचारितम्। देवेन-भवता। सहृदयेन-उदारचित्तेन। हृदये समारोपिताः-चित्ते स्थापिताः, अधीता अभ्यस्ताश्चेत्यर्थः। संभाविताः-आदृताः। स्वीकृताः-आत्माधीनतां गमिताः। निश्चलकुटुम्बिनीपदे-स्थायिवनितास्थाने। सर्वदिग्वधूनाम्-सर्वासां दिशारूपाणां स्त्रियाम्। ऊढा-विवाहिता। चतुरुदधिमेखलाकलापभूषणा-चत्वारः सागरा एव मेखलाः रशनाः तत्कलापः तत्समुदयो भूषणमलङ्कारो यस्यास्तादृशी चतुरुदधिपरिवेष्टितेत्यर्थः। अवशिष्यते-कर्तुं शिष्यते। येन न परिणीयते-विवाहो न क्रियते। लज्जावनम्रवदनः-नम्रानतमुखः। चेतसि चकार-चिन्तयामास। संवादः-एकरूपता (अहं कादम्बरीं परिणेतुमिच्छामि, तातपादा अपि मम विवाहं कामयन्ते इति संवाद एकरूपता आश्चर्यकारी-

करने वाली भ्रमरमाला हो, रूप को निखारने वाली काली स्याही की कूची हो, यौवनरूप मेघ की प्रौढ़ श्यामता हो, कामदेव के उपवन की तमाललता हो, कामविकार रूप रात्रि के प्रारम्भ की सूचना देने वाली अन्धकारमाला हो, ज्वलित कन्दर्पदीप का कज्जल हो, प्रतापानल की धूमराजि हो। यह दाढ़ीमूँछें विवाह मङ्गल की ओर इशारा करती हैं। अतः आप देवी विलासवती से विचार करके कुलीन रूपवती किसी राजकन्या का अन्वेषण करें। मैंने दुर्लभ पुत्रमुख का दर्शन तो कर लिया, अब पुत्रवधू के मुख कमल को देखकर अपने को आनन्दित कर लें। तारापीड के इस प्रकार के कथन का शुकनास ने उत्तर दिया—

महाराज ने ठीक सोचा है। इस सहृदय चन्द्रापीड ने सारी विद्यायें हृदय में कर ली हैं, समस्तकलायें सीख ली हैं, समूची प्रजा पर अधिकार कर लिया है, सभी दिशारूप नायिकाओं के कर-ग्रहण कर लिये हैं, स्थायी कुटुम्बिनी के पद पर लक्ष्मी को आसीन कर ही लिया है। चारो समुद्रों से घिरी इस पृथ्वी का भार उठा ही लिया है फिर बाकी क्या रहा गया है कि इनका विवाह नहीं किया जाय।

१. मनोभवदोषारम्भः।

पीडश्चकार चेतसि । 'अहो संवादो येन मे कादम्बरीसमागमोपायचिन्तासमकालमेवेदृशी तातस्य बुद्धिरुत्पन्ना । तद्यदुच्यते अन्धकारे प्रविष्टस्यालोको वनगहनप्रविष्टस्य देशिकदर्शनं महार्णवपतितस्य यानपात्राभ्यागमो म्रियमाणस्योपर्यमृतवृष्टिरिति । तदेतदापतितं मयि । सर्वथा वैशम्पायनदर्शनमात्रकान्तरिता वर्तते मे कादम्बरीप्राप्तिः ।' इत्येवं चिन्तयत्येव चन्द्रापीडे क्षितिपतिरुत्तस्थौ । उत्थाय च तमेव विनयावनम्रपूर्वकायं समवलम्ब्यांसदेशे सकलमेदिनीभारोद्वहनगुरुणा दोर्दण्डेन शनैः शनैः संचरञ्शुकनासेनानुगम्यमानो विलासवतीभवनमगमत् । गत्वा च ससंभ्रमकृताभ्युत्थानामिन्दूदयावलोकनविलोलामिव समुद्रवेलां विलासवतीमूर्ध्वस्थित एवावादीत् । 'देवि, पश्यैषा त्वमपि वधूमुखावलोकन-

---

त्याशयः) कादम्बरीसमागमोपायचिन्तासमकालम्—कादम्बर्या सह मिलनाय चिन्तां प्रारभमाण एव मयि । तातस्य मम पितृदेवस्य ईदृशी-चन्द्रापीडस्य विवाहयोग्याऽवस्था जाता, अस्य कृते कापि कन्या निरूपणीया-इत्याकारा । बुद्धिरुत्पन्ना—मतिर्जाता । अन्धकारे प्रविष्टस्य—घनतिमिरमध्यगतस्य । आलोकः-प्रकाशः । वनगहनप्रविष्टस्य—गहन—काननमध्यगतस्य । देशिकदर्शनम्—मार्गदर्शकजनोपलब्धिः । महार्णवपतितस्य—महति सागरे निमग्नस्य । यानपात्राभ्यागमः—नौप्राप्तिः । म्रियमाणस्य—निष्क्रामत्प्राणस्य । अमृतवृष्टिः—सुधावर्षा । तदेतदापतितं मयि—यथाऽन्धकारे पतितस्यालोकदर्शनेनाश्वासो वनमध्यगतस्य मार्गदर्शकजनोपलब्ध्या वाऽऽश्वासो भवति तथैव कादम्बरीमिलनं चिन्तयतो मम तातपादेन कृतया विवाहचिन्तयाऽऽश्वासो जायत इत्याशयः । वैशम्पायनदर्शनमात्रकान्तरिता—केवलेन वैशम्पायनस्य दर्शनेनैव विलम्बयुक्ता । आगते दृष्टे च वैशम्पायने मम कादम्बरीप्राप्तौ कोऽप्यन्यादृशो विलम्बो न भावीत्यर्थः । क्षितिपतिः—राजा तारापीडः । तमेव—चन्द्रापीडमेव । विनयावनम्रपूर्वकायम्—विनयप्रकटनाय शरीरस्य पूर्वार्द्धभागेनावनतम् अनुद्धतभावेन स्थितमित्यर्थः । अंसदेशे—स्कन्धभागे । सकलमेदिनीभारोद्वहनगुरुणा—समस्ताया भुवो रक्षणावेक्षणादेर्भारस्य धारणेन गौरवजुषा । दोर्दण्डेन—बाहुना । अनुगम्यमानः—अनुस्त्रियमाणः । विलासवतीभवनम्—चन्द्रापीडमातुरावासभूतमन्तःपुरम् । अगमत्—गतवान् । ससंभ्रमकृताभ्युत्थानाम्—शीघ्रतया राज्ञः सत्काराय उत्थिताम् । इन्दूदयावलोकनविलोलाम्—चन्द्रोदयदर्शनचञ्चलाम् । समुद्रवेलाम्—सागरतटीम् (यथा चन्द्रोदयदर्शनेन सागरवेला तरङ्गचपला भवति तथैवागतस्य राज्ञो दर्शनेन चञ्चलीभूतां शीघ्रतया कृताभ्युत्थानाञ्च विलासवतीं राजा ऊर्ध्वस्थितः अनुपविष्ट एवावादीत्—इति प्रकरणार्थः)

एषा—प्रत्यक्षदृश्या । वधूमुखावलोकनसुखस्य कृते—स्नुषामुखं दृष्ट्वाऽऽत्मनः प्रसन्नतां प्राप्तुम् । न उत्ताम्यसि व्यग्रतां न प्रकाशयसि । इति—एतदर्थम् । उपालभमाना—उपालम्भं कुर्वती । वत्सस्य—चन्द्रा-

---

शुकनास के इस प्रकार कहने पर लज्जा से अधोमुख चन्द्रापीड़ ने सोचा कि यह कैसा आश्चर्यजनक संयोग है ? इधर मैं कादम्बरी से मिलने की चिन्ता में हूँ और इधर पिता जी इस प्रकार सोच रहे हैं । इसको तो यह कहा जाय कि अन्धकार में प्रविष्ट व्यक्ति को दीप दिखा दिया जाता है, घने वन में प्रविष्ट को मार्ग-दर्शक मिल जाता है, समुद्र में डूबते हुए को जहाज मिल जाती है, अथवा मुर्दे के ऊपर अमृत की वृष्टि हो रही है । मेरे ऊपर इसी तरह हो रहा है । कादम्बरी के मिलने में अब केवल वैशम्पायन को देखने भर की देर है । चन्द्रापीड़ इस प्रकार सोच ही रहे थे कि तारापीड़ उठ गये । समस्त भूमण्डल के भार को ढोने में समर्थ अपने बाहु से विनयावनत चन्द्रापीड़ का कन्धा पकड़ कर तारापीड़ धीरे धीरे विलासवती के वासभवन की ओर चल पड़े । शुकनास उनके पीछे पीछे चले । तारापीड़ जब विलासवती के घर पहुँचे तब उसने उठकर उनका स्वागत किया, उनके आने से उसे बड़ा आनन्द हुआ, वह उस समय चन्द्रोदय देख कर तरङ्गित समुद्र वेला सी लग रही थी । तारापीड़ ने खड़े खड़े विलासवती से कहा—'देवि, देखो चन्द्रापीड़ के चेहरे पर दाढ़ी-मूँछ उग रही है, तुम पुत्रवधू को देखने के लिये उतावली नहीं हो रही हो इसलिये चन्द्रापीड़ के यौवन के

सुखस्य कृते नोत्ताम्यसीत्युपालभमानेव देवीं वत्सस्य यौवनभरारम्भसूत्रपातरेखा, आवयोस्तारुण्यदुर्विलसितेच्छाविनिवर्तनज्ञा विजृम्भमाणा श्मश्रुराजिशोभा विवाहमङ्गलसंपादनायादिशति। त्वमपरं किमादिशसीति प्रष्टव्या तदादिशतु देवी। कथ्यमानेपि किमपरमद्यापहरसि वदनमन्यतो व्रीडया। पृष्टा वा कर्तव्यं नाज्ञापयसि। वरमातासि संवृत्ता। जानामि चन्द्रापीडस्योपर्यप्रीतिरेषा यदेवमेतत्कार्येष्वनादरोवधीरणा च।' इत्येवंविधैर्नर्मप्रायैरालापैः सुखायमानचेताश्चिरमिव स्थित्वा शरीरस्थितिसंपादनाय निरगात्।

चन्द्रापीडोपि शुकनासमुखेनैव वैशम्पायनप्रत्युद्गमनायात्मानं मोचयित्वा जननीभवन एव निर्वर्तितशरीरस्थितिर्वैशम्पायनप्रत्युद्गमनसंविधानविनोदेनैव तं दिवसमनयत्।

अवतीर्णायां च तस्यां यामिन्यां सुहृद्दर्शनौत्सुक्येन शयनगतोपि जाग्रदेव समधिकमिव यामद्वयं स्थित्वा परिवर्तयद्भिरिव स्वकान्त्या नीलिमानमम्बरतलस्य, अपहरद्भिरिव

पीडस्य। यौवनभरारम्भसूत्रपातरेखा-यौवनप्रारम्भसूचिका श्मश्रुराजिः। आवयोः-मम तव च। तारुण्यदुर्विलसितेच्छानिवर्तनज्ञा-तारुण्यस्य यौवनस्य यानि दुर्विलसितानि यथेच्छक्रीडितानि तेषामिच्छाया अभिलाषस्य निवर्तनं समाप्तिं जानाति तादृशी, आवयोर्निरन्तरविलासस्य प्रतिबन्धिकेत्यर्थः (पुत्रस्य यौवनप्राप्तिर्हि पित्रोरनियन्त्रणं कामक्रीडाप्रसक्तत्वं निवर्त्तयतीति लौकिकव्यवहारं मनसिकृत्येयमुक्तिः) विजृम्भमाणा-वर्धमाना। श्मश्रुराजिशोभा-श्मश्रूदयजनिता कान्तिः। विवाहमङ्गलसम्पादनाय-शुभविवाहं कारयितुम्। आदिशति-आज्ञापयति। प्रष्टव्या जिज्ञास्या असीति शेषः। कथ्यमानेऽपि-मया प्रश्ने क्रियमाणे सत्यपि। अन्यतो वदनमपहरसि-मुखमन्यतः परावर्त्तयसि। व्रीडया-लज्जया। अप्रीतिः-प्रेमाभावः। एतत्कार्येषु-चन्द्रापीडस्यावश्यकेषु विवाहादिकार्येषु। अवधीरणा-उपेक्षा। नर्मप्रायालापैः-परिहासपूर्णाभिः उक्तिभिः। सुखायमानचेताः-आनन्दितहृदयः। शरीरस्थितिसम्पादनाय-स्नानाहारादि देहकार्यं कर्तुम्। निरगात्-गतवान्।

शुकनासमुखेन-शुकनासद्वारा। वैशम्पायनप्रत्युद्गमनाय-वैशम्पायनं स्वागतेन सत्कर्तुं कियद्दूरं गन्तुम्। आत्मानं मोचयित्वा-स्वं राज्ञ आदेशेन गन्तुं विसर्जितं कारयित्वा। जननीभवने-मातुरावासगृहे निर्वर्त्तितशरीरस्थितिः-कृतस्नानाहारादिदेहकार्यः। वैशम्पायनप्रत्युद्गमनसंविधानविनोदेन-वैशम्पायनस्य प्रत्युद्गमनाय यत्संविधानं सन्नाहः स एव विनोदस्तेन। दिवसमनयत् दिनं यापितवान्।

अवतीर्णायाम्-आगतायाम्। यामिन्याम्-रात्रौ। सुहृद्दर्शनौत्सुक्येन-मित्रस्य वैशम्पायनस्य दर्शनार्थं जायमानयोत्कण्ठया। शयनगतः-शय्यायां वर्त्तमानः। जाग्रत्-अलब्धनिद्रासुखः। समधिकमिव यामद्वयम् प्रहरद्वयात्किञ्चिदधिकम्। परिवर्त्तयद्भिरित्यारभ्य कुर्वद्भिरित्येतत्पर्यन्तं सर्वाणि तृतीयान्तानि

सूत्रपात की सूचना देने वाली यह श्मश्रुरेखा उलाहना दे रही है, हम दोनों की जवानी के दिन अब निवृत्त हो रहे हैं, यह श्मश्रुरेखा आदेश दे रही है कि अब चन्द्रापीड़ का विवाह-मङ्गल कर दिया जाय। तुम कहो कि 'इस प्रसङ्ग में तुम्हारे क्या विचार हैं, यही पूछना है। मेरे पूछने पर आज तुम लज्जा से अपना मुख क्यों दूसरी ओर फेर रही हो? पूछी जाने पर कर्त्तव्य निर्देश क्यों नहीं करती हो। तुम अब वर की माँ हो गई हो। यह तुम्हारा चन्द्रापीड़ के ऊपर प्रेम का अभाव है कि ऐसे कार्य की तुम अवहेलना करती हो' इस प्रकार की विनोद वार्त्ता में आनन्द का अनुभव कर के थोड़ी देर वहाँ रहने के बाद तारापीड़ शरीर-कार्य के निमित्त वहाँ से चले गये।

चन्द्रापीड़ ने शुकनास के माध्यम से ही पिता वैशम्पायन की अगवानी में जाने की आज्ञा लेली। माता के वासभवन में ही अपना शरीर-कार्य सम्पन्न किया, वैशम्पायन की अगवानी के विषय में तैयारी के विनोद से वह दिन कट गया।

इसके बाद रात आई, शयन पर जाकर भी चन्द्रापीड़ को नींद नहीं आई, क्योंकि वह मित्र-दर्शन के लिये उत्कण्ठित हो रहे थे। दो पहर से कुछ अधिक रात बीत गई, अनन्तर—अपनी कांन्ति से आकाश के कालापन को बदल देने वाली, वृक्षों को हरियाली का हरण करने वाली, छिद्र मार्ग से नीचे प्रवेश करके वृक्षों की छाया को

हरिततां तरुगहनानाम्, अधस्तादपि छिद्रयित्वेव प्रविशद्भिर्निर्वासयद्भिरिव तरुतलच्छायाम्, दरीकुहरकुञ्जोदरेष्वपि निलीनं तिमिरमक्षान्त्येव प्रविश्योत्पाटयद्भिः, विवरप्रवेशव्याजेन च रसातलमिव प्रवेष्टुमारब्धैः, अन्यथा पुनर्धवलयद्भिरिव धवलतां सौधानाम्, उद्धूलयद्भिरिव कर्पूररेणुना दिङ्मुखानि, लिम्पद्भिरिव सान्द्रचन्दनद्रवेण यामिनीम्, उन्नामयद्भिरिव मेदिनीम्, उपनयद्भिरिव द्याम्, संक्षिपद्भिरिव तारकाग्रहनक्षत्रमण्डलानि, विस्तारयद्भिरिव सरित्पुलिनानि, पृथक्पृथक्कमलवनान्युत्पीड्येव धारयद्भिः, उद्दलितदलविकासानेकीकुर्वद्भिरिव कुमुदाकरान्, अपि च पर्यस्तैरिव शिखरिशिखरेषु, आवर्जितैरिव प्रासादमूर्धसु, पिण्डीभूय वहद्भिरिव रथ्यामुखेषु, तरद्भिरिव जलतरंगेषु प्रसारितैरिव सैकतस्थलेषु, हंससार्थैः सहैकीभूतैरिव, संविभक्तैरिव चन्द्राश्रयप्रसुप्तकामिनीकपोल-

वाक्यानि चन्द्रपादैरितिवक्ष्यमाणस्य विशेषणानि। स्वकान्त्या अम्बरतलस्य नीलिमानं परिनर्त्तयद्भिरिव-आत्मनः कान्तिं दत्त्वा तद्विनिमये आकाशस्य श्यामत्वं गृह्णद्भिरिव। तरुगहनानां हरितताम् अपहरद्भिरिव-वृक्षलतादीनां हरितवर्णतामपनयद्भिरिव। (चन्द्रपादैः सर्वतः प्रसृतैः श्वैत्यमापादितेषु तरुगहनेषु तदीया हरितवर्णता मन्ये चन्द्रपादैरपहृतेत्यर्थः।) अधस्तादपि छिद्रयित्वेव प्रविशद्भिः-छिद्रं कृत्वेव पातालेऽपि प्रवेशं कुर्वद्भिः (सर्वतो व्याप्नुवद्भिरित्यर्थः) तरुतलच्छायाम्-वृक्षाधोभागे स्थितमप्रकाशम्। निर्वासयद्भिः-ततोऽन्यत्र प्रेषयद्भिः। दरीकुहरकुञ्जेषु-पर्वतगुहानिकुञ्जेषु। निलीनम्-प्रच्छन्नभावेन स्थितम्। तिमिरम्-अन्धकारम्। अक्षान्त्या-अक्षमया क्रोधेनेत्यर्थः। प्रविश्य-पर्वतगुहासु गत्वा उत्पाटयद्भिः-निष्कासयद्भिः। विवरप्रवेशव्याजेन-विवरेषु प्रवेशस्य च्छलेन। रसातलम्-पातालम्। प्रवेष्टुमारब्धैः-प्रवेशं कर्तुं कृतप्रारम्भैः। अन्यथा-प्रकारान्तरेण। सौधानाम्-प्रासादानाम्। धवलताम्-श्वेतताम्। धवलयद्भिः-उज्ज्वलतां प्रापयद्भिः। कर्पूररेणुना-घनसारपांसुभिः दिङ्मुखानि दिगवकाशान् उद्धूलयद्भिः-धूलिधूसरतां नयद्भिः। सान्द्रचन्दनद्रवेण-गाढचन्दनरागेण। यामिनीम्-रात्रिम्। लिम्पद्भिः-आच्छादयद्भिः। मेदिनीम्-पृथ्वीम्। उन्नामयद्भिः-उन्नतां कुर्वद्भिः। द्याम्-आकाशम्। उपनयद्भिः-समीपमानयद्भिः। तारकाग्रहनक्षत्रमण्डलानि-आकाशचारीणि ताराग्रहनक्षत्राणि अल्पसंख्यतां प्रापयद्भिः। (अन्धकारे सति ताराग्रहनक्षत्राणि समधिकायन्ते, चन्द्रपादेषु विशदेषु सत्सु तानि न्यूनसंख्यानि जायन्त इत्यतिप्रसिद्धम्) सरित्पुलिनानि-नदीतटानि। विस्तारयद्भिः-दीर्घायामतां प्रापयद्भिः। कमलवनानि-पद्मसमूहान्। उत्पीड्य-पीडयित्वा। धारयद्भिः-दधद्भिः। चन्द्रपादानां तावतो धावल्यस्य निदानं कमलानामुत्पीड्य धृतानां धावल्यमूलकमेवेति मनसिकृत्येयमुक्तिः। उद्दलितविकासान्-स्फुटविकसितान्। कुमुदाकरान्-कैरवकुलानि। 'एकीकुर्वद्भिः-परस्परमिलितानिव सम्पादयद्भिः। शिखरिशिखरेषु-पर्वतशृङ्गेषु। पर्यस्तैः-विकीर्णैः। प्रासादमूर्धसु-सौधानामुपरिदेशेषु। आवर्जितैः-आकृष्य स्थापितैः, पिण्डीभूय-सङ्घातभावं प्राप्य। रथ्यामुखेषु-प्रतोलीषु। वहद्भिः-प्रवाहरूपेण सञ्चरद्भिः। जलतरङ्गेषु-पानीयवीचिषु। तरद्भिः-सञ्चरणशीलैः। सैकतस्थलेषु-वालुकामयभूमिषु। प्रसारितैः-विस्तार्य स्थापितैः। हंससार्थैः-हंससमूहैः। एकीभूतैः-अभिन्नतां गतैः। चन्द्राश्रये चन्द्रातपे प्रसुप्तानां शयितानां कामिनीनां

निकाल बाहर करने वाली, कोपवश गुफाओं तथा कुंजों में वर्त्तमान अन्धकार को पैठ कर मार भगाने वाली, बिलों में पैठने के व्याज से पाताल में प्रवेश करने वाली, मकानों की सफेदी को प्रकारान्तर से पुनः स्वच्छ बनाने वाली, दिशाओं के मुखोंपर कपूर की धूल छिड़कने वाली, गीले तथा गाढ़े चन्दनद्रवसे रात को लीप देने वाली, पृथ्वी को ऊपर उठाने वाली, आकाश को समीप लानेवाली, तारा-नक्षत्र ग्रहमण्डल को समेटनेवाली, नदी-पुलिन को विस्तृत करने वाली, कमलवन को पीडित करके अलग अलग करने वाली, विकसित-पत्र कुमुदाकर को एकाकार बनानेवाली, पर्वत-शिखरों पर बिखरी सी लगने वाली, प्रासाद के ऊपर निमन्त्रित सी प्रतीत होने वाली, गलियों में इकट्ठी होकर बढ़ती सी लगने वाली, पानी की तरङ्गों पर तैरती हुई सी, बालुकामय भूमि में फैली हुई सी, हंस-समुदाय के

१. 'तरद्भिरिव जलतरङ्गेषु' इति नास्ति।

लावण्येन, क्षालितैरिव चन्द्रकान्तच्युतजलधारासहस्रैः, तथा च गर्भगृहेष्वप्यविहतप्रवेशैः, दन्तवलभीभ्योपि लब्धपरभागैः, पद्मिनीपत्रखण्डेष्वप्यखण्डितधवलिमभिः, आरामेष्वपि दिवसबुद्धिमुत्पादयद्भिः, परस्परोद्भिन्नक्रमेणोद्गिरद्भिरिवावर्जयद्भिरिव विक्षिपद्भिरिव विस्तारयद्भिरिव प्रवर्तयद्भिरिव वर्षद्भिरिव सर्वतो ज्योत्स्नाप्रवाहम्, कादम्बरीसमागमत्वरादानाय स्मरसर्वास्त्रमोक्षमिव कुर्वद्भिश्चन्द्रपादैर्द्विगुणीकृतमन्मथोत्साहो गमनसंज्ञाशङ्खनादायादिदेश।

अथ गगनतललब्धविस्तारः, विजृम्भमाण इव दिक्कुञ्जेषु, आवर्तमान इवाभ्रंलिहनगरीप्रकारमण्डलाभ्यन्तरे, समारोहन्निवोत्तुङ्गगोपुराट्टालकशिखराणि, चलन्निव हर्म्यान्त-

---

वनितानां कपोलेषु गण्डदेशेषु यल्लावण्यं सौन्दर्यं तेन संविभक्तैः विभज्य गृहीतैः। चन्द्रकान्तेभ्यः चन्द्रकान्तमणिभ्यः च्युतानि गलितानि यानि जलधारासहस्राणि सहस्रसंख्या वारिधारास्तैः क्षालितैः धौतैः। गर्भगृहेषु-गृहाभ्यन्तरभागेषु। अविहितप्रवेशैः-अबाधितगतिभिः। दन्तवलभीभ्यः-गजदन्तनिर्मिताभ्यो गोपानसीभ्यः। लब्धपरभागैः-उपरिभागे वर्त्तमानैः। पद्मिनीपत्रखण्डेष्वपि-अतिहरितकमलपत्रेष्वपि। अखण्डितधवलिमभिः-अक्षतस्वच्छभावैः। आरामेषु-पुष्पोद्यानेष्वपि। दिवसबुद्धिम्-दिवसभ्रमम्। उत्पादयद्भिः-जनयद्भिः। (रात्रावपि चन्द्रपादैर्धवलितान्युद्यानानि दिवसभ्रमं जनयन्तीत्यर्थः।)

परस्परोद्भिन्नक्रमेण-एकस्मात्किरणादपरः किरणः उद्गच्छति ततोऽन्यस्ततश्चान्य एवं क्रमेण। उद्गिरद्भिः-किरणान्तरं वमद्भिः। आवर्जयद्भिः-किरणान्तरमाकर्षद्भिः। विक्षिपद्भिः-किरणान्तरं दूरमुत्सारयद्भिः। विस्तारयद्भिः-किरणान्तरं प्रसारयद्भिः। प्रवर्त्तयद्भिः-किरणान्तरम् प्रवृत्तं कुर्वद्भिः। सर्वतः-समन्तात्। ज्योत्स्नाप्रवाहम्-चन्द्रिकावृष्टिम्। वर्षद्भिः-क्षरद्भिः। कादम्बरीसमागमे कादम्बर्याः समागमे मिलने त्वरायाः शीघ्रतायाः आदानाय ग्रहणाय। कादम्बरीसमागमे चन्द्रापीडस्त्वरां कुर्यादिति समुद्दिश्य। स्मरसर्वास्त्रमोक्षम्-कामस्य सर्वेषामप्यस्त्राणां निक्षेपम्। चन्द्रपादैः-चन्द्रमसः किरणैः। द्विगुणीकृतमन्मथोत्साहः-समेधितकामचेष्टः, गमनसंज्ञाशंखनादाय-गमनबोधकशङ्खनादं कर्त्तुम्। आदिदेश-आज्ञापितवान्, अनुचरानिति योजनीयम्।

अथ शङ्खध्वनिरुदतिष्ठत् इति वाक्यसंक्षेपः। तत्र शङ्खध्वनिविशेषणान्याह—गगनतलेत्यादिना। गगनतले आकाशदेशे लब्धो विस्तारः प्रसारो येन स तादृशः। दिक्कुञ्जेषु-दिशारूपनिकुञ्जेषु विजृम्भमाणः-वर्द्धमान इव। अभ्रंलिहेषु आकाशचुम्बिषु नगर्याः प्राकारमण्डलेषु प्राचीरेषु आवर्त्तमान भ्रमन् इव। उत्तुङ्गस्य अत्युच्चस्य गोपुरस्य पुरद्वारस्य अट्टालकस्य गृहस्य च शिखराणि शृङ्गाणि समारोहन् आक्रामन् इव। हर्म्यान्तरेषु-गृहाभ्यन्तरभागेषु। चलन्-प्रचारं कुर्वन्। चतुष्कचत्वरेषु-अजिरेषु। विकसन्-विकासं प्राप्नुवन्। (विकासं लभमानः)। राजमार्गेषु-घण्टापथेषु। प्रसरन्-विस्तारं प्राप्नुवन्। भवन-

---

साथ घुलमिल गई सी, सोती हुई सुन्दरियों के चाँद की ओर पड़ने वाले कपोलों से बाँटी गई, चन्द्रकान्त मणि से चूने वाली जलधारा से धुली हुई सी, अभ्यन्तर गृह में भी बे-रोकटोक प्रवेश कर जाने वाली, दन्तवलभी के भी ऊपर पहुँच जाने वाली, कमलिनी-पत्रों पर भी अपनी स्वच्छता को अखण्डित रखने वाली, उद्यानों में भी दिन का भ्रम उत्पन्न करने वाली, परस्पर विकास, क्रम से ज्योत्स्ना को आकृष्ट, विस्तृत, प्रवर्त्तमान तथा अभिवर्षित के रूप में रखने वाली एवं कादम्बरी से मिलने में शीघ्रता करने के लिये कामदेव के सारे अस्त्रों का सञ्चालन करने वाली चाँद की किरणों से चन्द्रापीड़ की कामवेदना द्विगुण हो उठी, उसने उसी समय यात्राकालिक शंख फूँकने की आज्ञा दे दी।

इसके बाद आकाश में फैलने वाला, दिक्कुंजों में गूँजने वाला, गगनचुम्बी नगरी के प्राकारों से टकराने वाला, ऊँचे गोपुर तथा प्रासादों पर भी आरोहण करने वाला, प्रासादों के अभ्यन्तर भाग में भ्रमण करने वाला,

---

१. गमनोत्साहः।

रालेषु, विकसन्निव चतुष्कचत्वरेषु प्रसरन्निव राजमार्गेषु, परिभ्रमन्निव भवनसंकटेषु, प्रविशन्निवोद्यानगह्वरेषु[1], संमूर्छन्निव प्रासादकुक्षिषु, तत्क्षणप्रतिबोधितानां गृहसरोजिनीसारसानामनुवर्त्यमान इव तारतरदीर्घेण रणितेन, विच्छिद्यमान इव मुहुर्मुहुः स्वभावगद्गदेन भवनकलहंसानां कलरवेण, निर्धार्यमाण इव श्रोत्रप्रवेशिना गमनवेलाप्रणामसंभ्रान्तस्य वाराङ्गनाजनस्य चलवलयनूपुररशनाकलकलेन तारदीर्घतरः शङ्खध्वनिरुदतिष्ठत्। अनन्तरं चोत्थाप्यमानैश्चोत्थितैश्चाकृष्यमाणैश्चाकृष्टैश्चारोप्यमाणपर्याणैश्च पर्याणितैश्च नीयमानैश्चानीयमानैश्च विलभ्यमानैश्चाच्छिद्यमानैश्चागच्छद्भिश्चागतैश्च पूज्यमानैश्च पूजितैश्च पङ्क्तिस्थितैश्च वाह्यमानैश्च तिष्ठद्भिश्च प्रतिपालयद्भिश्चापर्याप्त[2]राजद्वाराङ्गणैरप्रभूतचत्वरैर्निस्तुच्छितसकलरथ्यान्तरतयान्तर्बहिश्च संकटायमाननगरीविस्तारैस्तुरंगमसहस्रैस्तत्क्षणं

सङ्कटेषु–भवनैः सङ्कीर्णेषु स्थानेषु । परिभ्रमन्–इतस्ततः सञ्चरन् । उद्यानगह्वरेषु–पुष्पोद्यानकुञ्जेषु । प्रविशन्–प्रवेशं कुर्वन् । प्रासादकुक्षिषु–गृहाभ्यन्तरभागेषु । सम्मूर्च्छन्–वर्द्धमानः । तत्क्षणप्रतिबोधितानाम्–तत्काल एव निद्रां त्याजितानाम् । गृहसरोजिनीसारसानाम्–गृहकमलिनीमध्यवासिसारसपक्षिणाम् । तारतरदीर्घेण–उग्रेण महता च । रणितेन–शब्देन । अनुवर्त्यमानः–अनुस्रियमाणः । (जाते शङ्खनादे प्रतिबोधिताः गृहकमलिनीमध्यचारिणः सारसा यच्छब्दायन्ते तेन तेषां तारेण दीर्घेण च शब्देन स शङ्खनादोऽनुस्रियमाण इव प्रतिभातीत्यर्थः) स्वभावगद्गदेन–प्रकृत्याऽव्यक्तमधुरेण । भवनकलहंसानाम्–गृहपोषितहंसकानाम् । कलकलेन–मधुरशब्देन । विच्छिद्यमानः–व्याघातं प्राप्यमाणः । (मध्यमध्ये जायमानेन भवनकलहंसानां गद्गदशब्देन शङ्खध्वनिर्व्याहन्यत इवेत्यर्थः) श्रोत्रप्रवेशिना–कर्णकुहरं व्याप्नुवता । गमनवेलाप्रणामसंभ्रान्तस्य–यात्राकालिकनमस्कारे व्यग्रस्य । वाराङ्गनाजनस्य–वेश्यानिवहस्य । चलवलयरशनानूपुरकलकलेन–चञ्चलानां वलयानां करभूषणानाम् रशनानां काञ्चीदाम्नां नूपुराणां पादभूषणानाञ्च मधुरशब्देन । निर्धार्यमाणः–यात्रासूचकशङ्खध्वनिरयेन निश्चीयमानः । उत्थाप्यमानैः–उपवेशनस्थितिं त्याज्यमानैः । आकृष्यमाणैः–स्थानात्स्थानान्तरं प्राप्यमाणैः । आरोप्यमाणं स्थाप्यमानं पर्याणं पृष्ठास्तरणं येषु तादृशैः पर्याणितैः–दत्तपृष्ठास्तरणैः । नीयमानैः–स्थानान्तरादानीयमानैः । विलभ्यमानैः–समुदायभावं प्राप्यमाणैः । आच्छिद्यमानैः–समुदायात्पृथक्क्रियमाणैः । वाह्यमानैः–आवद्य गतिं प्राप्यमाणैः । प्रतिपालयद्भिः–प्रतीक्षां कुर्वद्भिः । अपर्याप्तराजद्वाराङ्गणैः–राजद्वाराङ्गणे मातुमपारयद्भिः (अतिप्रभूतसंख्यकतया राजद्वाराङ्गणे मातुमशक्तैरित्यर्थः) अप्रभूतचत्वरैः–चत्वरमप्रभूतमतिलघुप्रमाणयद्भिः । निस्तुच्छितसकलरथ्यान्तरतया–अशून्यीकृतरथ्यामध्यभागतया (रथ्यामध्यभागशून्यतां प्रापयद्भिरित्यर्थः) अन्तर्बहिश्च–सर्वतः । सङ्कटायमाननगरीविस्तारैः–नगरीविस्तारं सङ्कीर्णं कुर्वद्भिः । तुरङ्गमसहस्रैः–सहस्रसंख्यकैरश्वैः । अन्तरीक्षम्–आकाशम् । कुन्तवनमिव–कुन्तवनसदृशम् (उत्थितानामश्वानां बाहुल्येन तत्र स्थितानां योधानाञ्च कुन्तधारितया गगनं कुन्तवनमयमिव प्रतिभातिस्मेत्यर्थः)

चौराहों पर विकसित सा होने वाला, उद्यानों तथा पर्वतों की गुफाओं में प्रवेश करने वाला, मकानों के अभ्यन्तर भाग में प्रतिध्वनित होने वाला और तत्काल जगने वाले गृह-सरोजिनी सारसों की ऊँची आवाज से अनुगत, स्वभाव-गद्गद भवनकलहंसों के शब्द से बीच में खण्डित एवं कान में पैठने वाले यात्रा की तैयारी में लगी वेश्याओं के नूपुर-नाद से वर्द्धित शंख-शब्द सुनाई पड़ने लगा।

अनन्तर उठाये हुये एवं उठे हुये, आकृष्यमाण एवं आकृष्ट, जीन कसे गये, जीन कसने के लिये लाये जाते हुये, आते तथा जाते हुये, पूज्यमान तथा पूजित, पङ्क्तिस्थित तथा आगे बढ़ने वाले, खड़े एवं प्रतीक्षा करते हुये, राजा के अङ्गण में नहीं अँटने वाले, चत्वर में भी नहीं स्थान पा सकने वाले, नगर की गलियों को तुच्छ

---

१. नगवनगह्वरेषु । २. पर्याप्त ।

कुन्तवनमयमिवान्तरीक्षं खुररवमयीव मेदिनी हेषारवमयानीव श्रोत्रविवराणि फेनपिण्ड-स्तबकमयमिव युवराजभवनद्वाराङ्गणं खलीनरवमय्य इव दश दिशः, अश्वालंकाररत्नप्रभामया इवाभवञ्छशाङ्करश्मयः। अचिराच्च गृहीतसमायोगोऽङ्गणगतमिन्द्रायुधमारुह्य पुरस्ताच्चलितेनालोकहेतोर्द्वितीयचन्द्रमण्डलेनेव हंसधाम्ना मङ्गलातपत्रेणावेद्यमाननिर्गमो यथादर्शनमितस्ततस्तुरंगगतैरेव प्रणम्यमानो राजपुत्रसहस्रैः प्रसुप्तपुरजनतयासंबाधेनापि राजवर्त्मना बहुत्वात्तुरंगमबलस्य कृच्छ्लब्धसंचारः कथं कथमपि निर्जगाम नगर्याः। निर्गत्य चादूरत एव निर्भरत्वाज्ज्योत्स्नापूरस्याच्छतया च दुर्विभाव्यपानीयामुपरि कलकूजितानुमीयमानोत्त्रस्तहंससार्थोत्पतनव्यतिकरां पुलिनायमानामिव सर्वतो जडतरतरंगा-

---

मेदिनी-पृथ्वी। खुरमयी-शफपूर्णा। हेषारवमयानि-हेषाऽश्वशब्दस्तन्मयानि तेन पूर्णानि। श्रोत्रविवराणि-कर्णच्छिद्राणि। फेनपिण्डस्तबकमयम्-अश्वमुखोत्थितफेनस्तबकपूर्णम्। युवराजभवनद्वाराङ्गणम्-चन्द्रापीडभवनाजिरम्। खलीनरवमय्यः-खलीनशब्दपूर्णाः। अश्वालङ्कारप्रभामय्यः-अश्वालङ्कारज्योत्स्नापूर्णाः। शशाङ्करश्मयः-चन्द्रकिरणाः। अभवन्-अजायन्त।

अचिरात्-अल्पेन कालेन। गृहीतसमायोगः-कृतसन्नाहः। अङ्गणगतम्-भवनाजिरे स्थितम्। इन्द्रायुधम्-तन्नामकं स्वीयमश्वविशेषम्। पुरस्ताच्चलितेन-अग्रतः प्रस्थितेन। आलोकहेतोः द्वितीयचन्द्रमण्डलेनेव-प्रकाशकरणात्कारणादपरचन्द्रमण्डलसदृशेन। हंसधाम्ना-हंसधामनाम्ना। मङ्गलातपत्रेण-मङ्गलव्यञ्जकेन च्छत्रेण। आवेद्यमाननिर्गमः-अभिधीयमानप्रस्थानः। (अग्रतः चलद्राजकीयं छत्रं दृष्ट्वा लोका राज्ञः प्रस्थानमनुमाय तदुचितमाचरन्तीति भावः) यथादर्शनम्-आलोकनक्रमेण। (ये प्रथमं चन्द्रापीडं ददृशुस्ते प्रथमं तं प्रणेमुर्ये च तदनन्तरं ते तदनन्तरमिति यथादर्शनमित्यस्यार्थः) तुरङ्गगतैः-अश्वारूढैः। प्रसुप्तपुरजनतया-नगरे सर्वेषां जनानां सुप्ततया। असम्बाधेन-जनशून्यतया सुगमेन। कृच्छ्लब्धसञ्चारः-कष्टेन सञ्चरमाणः। कथं कथमपि-महता प्रयासेन। निर्जगाम-बहिर्भूतः। अदूरतः-समीपे। निर्भरत्वात्-आधिक्यात्। ज्योत्स्नायाः-चन्द्रिकायाः। अच्छतया-स्वच्छभावेन। अविभाव्यपानीयाम्-अज्ञायमानजलाम्। उपरि-जलोर्ध्वभागे। कलकूजितेन मधुरेण रवेण अनुमीयमानः तर्क्यमाणः उत्त्रस्तानां भीतानां कलहंससार्थानां राजहंससमूहानाम् उत्पतनव्यतिकरः उड्डयनसम्बन्धो यत्र तादृशीम्। (केवलेन कूजितेनैव यत्र हंसानामुत्पतनमनुमीयते-हंसानां जलानां चातिस्वच्छतया चन्द्रिकामिलितत्वेन पृथगपि भावनात् इत्येतादृशीमिति-सिप्राविशेषणमिदम्) पुलिनायमानाम्-तटवत्प्रतीयमानाम् (चन्द्रिकाप्रकाशेन जलतटयोर्भेदस्य दुर्ग्रहत्वेन जलरूपाया अपि सिप्रायास्तटवत्प्रतीयमानत्वमुक्तम्) जडस्य अतिशीतलस्य तरङ्गानिलस्य वीचिवायोः स्पर्शमात्रेण उपलक्ष्यः ज्ञातुं शक्यः सलिलसंनिधिः जलसद्भावो यत्र तादृशीम् (शीतलतरङ्गस्पर्श एव यत्र जलस्य सद्भावमनुमापयति, न तु जलं विलोक्यते स्वच्छस्य जलस्य चन्द्रिकया मिलितत्वेनाविभाव्यत्वादिति बोध्यम्।) सिप्राम्

बनाकर नगर के विस्तार को संकीर्ण बनाने वाले अश्वों से उस समय आकाश कुन्तमय, पृथ्वी खुरमयी, समस्त प्राणियों के कर्णविवर हेषा-शब्दपूर्ण, युवराज-भवन का अङ्गण फेनमय, दश दिशायें लगाम के शब्द से पूर्ण और चन्द्रमा की किरणें अश्वालङ्कार-रत्नों की प्रभा से पूर्ण हो रही थीं। शीघ्र सारी तैयारी करके चन्द्रापीड़ अङ्गणगत इन्द्रायुध पर आरूढ़ हो गये, प्रकाश के लिये आगे आगे द्वितीय चन्द्रमण्डल-समान हंसधाम नामक मङ्गलछत्र चल रहा था जो चन्द्रापीड़ के निकलने की सूचना प्रदान करता था।

राजकुमारगण जैसे जैसे चन्द्रापीड़ को देखते थे वैसे वैसे घोड़े पर से प्रणाम करते थे। लोगों के सोने का समय था अतः राजमार्ग में भीड़ नहीं थी, तथापि घोड़े बहुत थे अतः आगे बढ़ने में दिक्कत हो रही थी। किसी तरह चन्द्रापीड़ नगरी से बाहर हुये। नगरी से बाहर निकलने पर सिप्रा नदी मिली। चाँदनी खूब खिल रही थी जल भी स्वच्छ था, अतः कहाँ पानी है इसका पता लगाना कठिन हो रहा था, मधुर शब्द से डर कर उड़ने

निलस्पर्शमात्रोपलक्ष्यसलिलसंनिधिमुत्तीर्य सिप्रामतिप्रहतत्वादसंकटत्वाच्च वर्धयतेव गमनोत्साहमतिविस्तीर्णेनापि पुनर्विस्तारितेनेव चन्द्रपादैर्दशपुरगामिना मार्गेण प्रावर्तत गन्तुम्।

अथोह्यमानैरिव रयवाहिना सकलदिङ्मुखप्रसृतेन ज्योत्स्नाजलस्रोतसा वैशम्पायनालोकनत्वरितस्य चन्द्रापीडमानसस्यैव तुल्यं वहतो जङ्घानिलेनेन्द्रायुधस्याकृष्यमाणैरिव वाजिभिस्तावत्यैवापररात्रवेलया योजनत्रितयमेवालङ्घयत्। अथाध्वश्रमापहरणायेव प्रवृत्ते वातुमाह्लादकारिणि निर्भरज्योत्स्नाजलावगाहादार्द्रार्द्रस्पर्शेऽवश्यायसीकरवर्षिणि रजोलुलितविविधवनपल्लवानिलवीजिते विनिद्रकुमुदिनीपरिमललग्नपरिमले परिमलाहितजडिम्नि रजनिविरामपिशुने मातरिश्वनि, क्रमेण चापरदिग्वधूवदनचुम्बिनि तदा कल्पकाले च

तच्चामिकां नदीम् उत्तीर्य लङ्घयित्वा। अतिप्रहतत्वात्–सततक्षुण्णत्वात्। असङ्कटत्वात्–विस्तृतत्वात् असङ्कीर्णत्वादित्यर्थः। गमनोत्साहं वर्धयता–गमने उत्साहमधिकयता। विस्तीर्णेन–स्वत आयामिना सता। चन्द्रपादैः पुनर्विस्तारितेन–चन्द्रकिरणैर्भूयो विस्तारं प्राप्यमाणेन। प्रावर्त्तत–प्रवृत्तवान्।

अथ–दशपुरगामिना वर्त्मना चन्द्रापीडेऽग्रतो गन्तुं प्रवृत्ते सति। रयवाहिना–वेगेन चलता। सकलदिङ्मुखप्रसृतेन–सर्वासु दिशासु व्याप्तेन। ज्योत्स्नाजलस्रोतसा–ज्योत्स्ना चन्द्रदीधितिः एव जलं तस्य स्रोतसा प्रवाहेण। उह्यमानैः–नीयमानैः इव, (इत्येकं वाजिविशेषणम्) वैशम्पायनालोकनत्वरितस्य–वैशम्पायनदर्शनोत्कण्ठया शीघ्रतामाचरतः। चन्द्रापीडमानसस्य–चन्द्रापीडहृदयस्य। तुल्यम्–समम् वहतः–मार्गे चलतः। (वैशम्पायनदर्शनोत्कण्ठितेन चन्द्रापीडहृदयेनेव सह वेगेन धावतः) इन्द्रायुधस्य–तन्नाम्नः स्ववाहनाश्वस्य। जङ्घानिलेन–जानुसंभवेन वायुना। आकृष्यमाणैः–अग्रतः समाकृष्यमाणैः बलादिवाग्रे नीयमानैः। वाजिभिः–अश्वैः। यावत्या–तन्मात्रप्रमाणया स्वल्पयेत्यर्थः। अपररात्रवेलया–रात्रेः परभागात्मकेन समयेन। योजनत्रयम्–क्रोशचतुष्टयमेकं योजनमिति द्वादशक्रोशमितं वर्त्म। अलङ्घयत्–अतिवाहितवान्। अथ–तावन्तं पन्थानं लङ्घयित्वा चन्द्रापीडेऽग्रतः चलिते सति। अध्वश्रमापहरणाय–मार्गचलनश्रमापनोदनाय इवेति हेतूत्प्रेक्षा। वातुं प्रवृत्ते–चलति सति (मातरिश्वनि–वायौ इति वक्ष्यमाणस्य विशेषणानीमानि सप्तम्यन्तानि) आह्लादकारिणि–मनःप्रसादजनके। निर्भरज्योत्स्नाजलावगाहात्–अत्युज्ज्वलचन्द्रिकारूपपानीये। निमज्जनाद्धेतोः। आर्द्रार्द्रस्पर्शे–शीतलस्पर्शे। अवश्यायसीकरवर्षिणि–हिमपानीयबिन्दुस्राविणि। रजोलुलिता धूलिव्याप्ता ये विविधाः नानाजातीयाः पल्लवास्तेषां वायुना तदुत्थापितेनानिलेन वीजिते व्यजनत इव सञ्चार्यमाणे। विनिद्राणां विकसितानां कुमुदिनीनां कैरविणीनां परिमलेन सुगन्धेन लग्नः परिमलः सुगन्धो यत्र तादृशे, परिमलेन सुगन्धेन आहितो जनितो जडिमा शैत्यं यत्र तादृशे। रजनिविरामपिशुने–रात्र्यवसानसूचके। मातरिश्वनि–वायौ। वातीति पूर्वोक्तेन सम्बन्धः। क्रमेण–क्रमशः। अपरदिग्वधूवदनचुम्बिनि–पश्चिमाशारूपाया

वाले हंसों की परम्परा चारो ओर तट की सृष्टि सा कर रही थी। शीतल तरङ्ग वायु के स्पर्श से ही पानी का सान्निध्य ज्ञात होता था। सिप्रा को पार करने के बाद चिरपरिचित तथा निर्बाध दशपुर जाने वाला मार्ग मिला, जो उत्साह को बढा रहा था। मार्ग स्वतः विस्तीर्ण था उस पर चन्द्रमा की किरणें उसे और विस्तीर्ण बना रही थीं। उसी मार्ग से चन्द्रापीड़ दशपुर की ओर चल पड़े।

जिन्हें सभी दिशाओं में फैला हुआ किरणरूप जल का प्रवाह बहाये लिये जा रहा था, जो वैशम्पायन को देखने के लिये उत्कण्ठित चन्द्रापीड़ के मन की तरह दौड़ने वाले इन्द्रायुध की जंघावायु द्वारा आकृष्ट हो रहे थे, ऐसे अश्वों द्वारा चन्द्रापीड़ उस अपर रात्रि मात्र में तीन योजन निकल गये। इसके बाद जब मार्गश्रम को दूर करने के लिये चलित, ज्योत्स्ना रूप जल में स्नान सा करने के कारण शीतल स्पर्श, ओस की बूंदों की वर्षा करने वाली, परागपूर्ण-विविध वनपल्लव से प्रेरित, विकसित कुमुदिनी की सुगन्ध से सुगन्धित, सुगन्धशीतल तथा रात्रि के अवसान की सूचना देने वाली प्रातःकालिक वायु बहने लगी, पश्चिम दिशारूप नायिका के मुख को

१. सीकरवर्षिणि।

दुर्विषहशर्वरीविरहचिन्तयेवासन्नदिनकरोदयविषादेनेवाप्रदोषादुत्तानितमुखैः कुमुदराशिभिरापीयमानस्य धाम्नः परिक्षयेणेव सर्वाम्बरसरःपयःपायिपयोदविभ्रमाम्बरजःसंघातोपघातेनेव पाण्डुतामुपगतवति चन्द्रबिम्बे, प्रत्यग्रगगनलक्ष्मीवियोगसंतापोज्झिते धवलोत्तरीयांशुक इव शशाङ्कलग्ने गलति चन्द्रिकालोके, अपरजलधिपातिना ज्योत्स्नाजलप्रवाहेणेव सहसा फेनबुद्बुदावलीष्विव नश्यन्तीषु तारकापङ्क्तिषु, गलदवश्यायसलिलक्षालनादिव शनैः शनैर्दलितमुक्तागौरज्योत्स्नानुभावमुत्सृजन्तीष्वाशासु, पुनर्विभाव्यमानसहजश्यामकान्तिषु सलिलादिवोन्मज्जत्सु तरुलताविटपेषु, समुल्लसति पूर्वदिग्वधूकर्णपूररक्ताशोकपल्लवेऽम्बरसरस्तामरसे दिवसमुखकरिकुम्भसिन्दूररेणौ तरणिरथरक्तध्वजांशुके सन्ध्यारागे, सन्ध्यातपचरितान्तेष्वालग्नदावानलेष्विव वयःसङ्घातैर्जनितारावमुत्सृज्यमानेषु

नायिकाया मुखस्य चुम्बनपरे। तदा-प्रातः समये। कल्पकाले सृष्टयादौ च दुर्विषहः कष्टसह्यो यो महता कष्टेन सह्यते तादृशो यः शर्वर्या रात्रेर्विरहो वियोगस्ततो या चिन्ता तया। आसन्नः निकटमविष्यभावी यो दिनकरस्य सूर्यस्य उदयस्ततो यो विषादो मनोव्यथा तेन इव। आप्रदोषात्-सायंकालमारभ्य। उत्तानितमुखैः-ऊर्ध्वीकृतोर्ध्वप्रसारिताननैः। कुमुदराशिभिः-कैरवसमुदयैः। आपीयमानस्य-आस्वाद्यमानस्य। धाम्नः-तेजसः। परिक्षयेण-समाप्त्या। सर्वमम्बरमाकाशमेव सरः सरोवरस्तस्य यत्पानीयं पयस्तस्य पायिनः पानकर्त्तारो ये पयोदा मेघास्तेषामिव विभ्रमो विलासो येषां तादृशानामश्वानां रजःसङ्घातेन धूलीनिवहेन य उपघातस्तेन-पाण्डुतामुपगतवति क्षीणप्रभतां गते। चन्द्रबिम्बे-चन्द्रमण्डले। प्रत्यग्रः सद्यः सञ्जातो यो गगनलक्ष्मीवियोगः-आकाशश्रियो वियोगस्तेन उज्झिते त्यक्ते। धवलोत्तरीयांशुके-श्वेतोत्तरीयवस्त्रसमाने। शशाङ्कलग्ने-चन्द्रमसि संसक्ते। चन्द्रिकालोके-कौमुदीप्रकाशे। गलति-पतति सति। अपरजलधिपातिना-पश्चिमोदधिगतेन। ज्योत्स्नाजलप्रवाहेण-चन्द्रिकाजलस्रोतसा। फेनबुद्बुदावलीषु-फेनबुद्बुदसमुदायेषु। तारकासु-तारासु। नश्यन्तीषु-क्षीयमाणासु। गलदवश्यायसलिलक्षालनात् पतता शीतजलेन परिमार्जनात्। दलिताः चूर्णीकृताः याः मुक्ताः मौक्तिकानि तद्वत् गौर्यः शुक्लवर्णाः ज्योत्स्नाः तासामनुभावं प्रभावमुत्सृजन्तीषु त्यजन्तीषु। अवश्यायसलिलक्षालनात् कौमुदीप्रभाप्रभावमिव त्यजन्तीषु सतीषु दिशास्वित्यर्थः। पुनर्विभाव्यमाना पुनः प्रकटीभवन्ती सहजा स्वाभाविकी श्यामा कृष्णा कान्तिर्येषां तादृशेषु। सलिलात्-पानीयात्। उन्मज्जत्सु-निस्सरत्सु। तरवो वृक्षाः, लताः वल्लर्यः विटपाः शाखाश्च तेषु। दिग्वधूकर्णपूररक्ताशोकपल्लवे-दिश एव वध्वो नायिकास्तासां कर्णपूरः कर्णाभरणभूतो यो रक्ताशोकपल्लवो रक्ताशोकतरुकिसलयस्तत्स्वरूपे सन्ध्यारागे समुल्लसति सतीति योजना बोध्या। एवमग्रेतनान्यपि सन्ध्यारागस्य रूपकाणि ज्ञेयानि। अम्बरं व्योमैव सरस्सरोवरस्तस्य तामरसे रक्तकमले। दिवसमुखकरिकुम्भसिन्दूररेणौ-दिनप्रारम्भरूपस्य करिणो हस्तिनः कुम्भस्य सिन्दूररेणुस्वरूपे। तरणेः सूर्यस्य यो रथस्तस्य रक्तवर्णं यद् ध्वजांशुकं पताकावस्त्रम् तस्मिन्। सन्ध्यारागे-प्रातःसंध्यारुणिम्नि समुल्लसति प्रकटीभवति सति। सन्ध्यातपचरितान्तेषु-प्रातः प्रभया व्याप्ताग्रभागेषु। आलग्नदावानलेषु इव-संसक्तवनवह्निष्विव प्रतीयमानेषु (प्रातःसंध्यायामातपेन व्याप्ताग्रभागतया वृक्षा

चूमने वाला उस समय तथा प्रलयकाल में असह्य रात्रिविरह-चिन्ता से, अभी अभी होने वाले सूर्योदयजन्य विषाद से, सायंकाल से ही मुँह बाकर कुमुदों ने जिसकी किरणों को पीकर समाप्त कर डाला है ऐसा और समस्त आकाशरूप सरोवर के पानी को पी जाने वाले मेघरूप अश्वों द्वारा उड़ाई गई धूल से भरा हुआ चन्द्रबिम्ब पीला पड़ गया, अभी अभी जाने वाली गगन-लक्ष्मी के वियोग से सन्तप्त होकर चन्द्रमा ने अपनी चादर की तरह चन्द्रिका-प्रकाश को उतार फेंका, ज्योत्स्नारूप जल का प्रवाह पश्चिम सागर में गिर गया अतः बुलबुले से दीखने वाले तारे नष्ट हो गये, गिरती हुई ओस की बूँदों से धुल कर दिशायें धीरे धीरे मुक्ताचूर्ण की तरह गौर ज्योत्स्ना के प्रभाव को छोड़ने लगीं, वृक्ष-लता आदि की सहज श्यामल कान्ति पुनः प्रकट होने लगी मानो वे पानी से निकल रहे हों, प्राची दिशा नायिका के कर्णपूर रक्ताशोक-पल्लव की तरह दीखने वाला, आकाशरूप सरोवर के रक्तकमल-सदृश प्रातःकालरूप हाथी के मुख में लगे सिन्दूर के समान तथा सूर्य के रथ पर लगी लालपताका सदृश सन्ध्या-राग प्रकट हो आया, पक्षि-समुदाय शब्द करने के साथ साथ वृक्षों से उड़ने लगे मानो

निवासपादपेषु, सशेषनिद्रालसैश्चिरप्रसारणाविशदजङ्घाङ्घ्रिभिर्हठादाकृष्टदीर्घपदसञ्चारिभिर्मृगकदम्बकैरुन्मुच्यमानासूषरशय्यासु, इच्छावखण्डितोत्खातपल्वलोपान्तप्ररूढमुस्ताग्रन्थिष्वरण्यगह्वराभिमुखेषु वराहयूथेषु, निशावसानप्रचारनिर्गतैर्गोधनैरितस्ततो धवलायमानासु ग्रामसीमान्तारण्यस्थलीषु, आलोक्यमानजनपदविनिर्गमेषु प्रसूयमानेष्विव ग्रामेषु, यथार्ककिरणावलोकोद्गमं चोन्नाम्यमान इव पूर्वदिग्भागे, समुत्सार्यमाणास्विवाशासु, अपसर्पत्स्विवारण्येषु, विस्तार्यमाणास्विव ग्रामसीमासु, उत्तानीभवत्स्विव सलिलाशयेषु, अवच्छिद्यमानेष्विव शिखरिषु, उद्ध्रियमाणायामिव मेदिन्याम्, अदृश्यतामिवोपयान्तीषु कुमुदिनीषु, तिरोधानकारिणीं नीलतिरस्करिणीमिव करैरुत्सार्य तिमिरमालां विरहविधुरां कमलिनी-

---

वनदावानला इव प्रतीयन्त इति पक्षिणस्तं त्यजन्ति, अत्र प्रातःकाले पक्षिणां वृक्षत्यागस्य कारणान्तरकृतत्वेऽपि वृक्षाणां दावानलयुक्तत्वमूलकत्वमुत्प्रेक्ष्यमाणं बोध्यम्) निवासपादपेषु–आश्रयतरुषु। सशेषनिद्रालसैः–निद्रावशेषवशात् आलस्ययुक्तैः। चिरप्रसारणात् चिरकालं प्रसृतभावेनावस्थापनात् अविशदा अयथास्थिताः जङ्घाङ्घ्रयः जानुचरणा येषां तादृशैः। हठादाकृष्टैः सद्यः सञ्चारितैः दीर्घपदैः लम्बमानचरणैः सञ्चारिभिः सञ्चरणशीलैः। मृगकदम्बकैः–हरिणैः। ऊषरशय्यासु–ऊषरभूमिरूपासु शय्यासु उन्मुच्यमानासु त्यज्यमानासु सतीषु (प्रातःकाले हरिणाश्चिरप्रसारितत्वेन स्तब्धीभूतान्पादान् हठादाकृष्य विस्तृतचरणं सञ्चरन्तो भूमिशयनं परिहरन्ति इति तत्स्वभावोक्तिवर्णनमिदम्) वराहयूथेषु–शूकरकुलेषु। इच्छया यथेच्छम् अवखण्डिताः दलिताः उत्खाताः उत्पाटिताश्च पल्वलोपान्तप्ररूढाः अल्पजलाशयतटभागोत्पन्नाः मुस्ताग्रन्थयो यैस्तादृशेषु, अरण्यगह्वराभिमुखेषु वनरूपां गुफां प्रति प्रस्थातुं प्रवृत्तेषु सत्सु। (रात्रिशेषे पल्वलपार्श्वोत्पन्नमुस्तामूलं दलयितुमुत्पाटयितुञ्च प्रवृत्तानि शूकरयूथानि सम्प्रति प्रातःकाले जायमाने वनगह्वराभिमुखं प्रतिष्ठन्त इत्याशयेनेदं वर्णनम्) निशावसानप्रचारनिर्गतैः–सञ्चरणचलितैः। गोधनैः–गवां निवहैः। इतस्ततः–यत्र तत्र ग्रामाणां सीमाया अन्ते चरमभागे या अरण्यस्थल्यो वनभूमयस्तासु धवलायमानासु–श्वेततमापाद्यमानासु। आलोक्यमानजनपदविनिर्गमेषु दृश्यमानमार्गेषु। ग्रामेषु संवसथेषु। प्रसूयमानेषु–उत्पत्तिं प्राप्यमाणेष्विव। प्रातःकाले ग्रामा दृष्टिपथमवतरन्ति, जनपदयायिनो मार्गाश्च दृश्यन्ते, मन्ये प्रातरेव ते प्रसूयन्त इत्यर्थः। यथार्ककिरणावलोकोद्गमम्–सूर्यकिरणावलोकनक्रमेण पूर्वदिग्भागे–प्राचीदिशाविभागे। उन्नाम्यमाने उन्नतिं प्राप्यमाणे इव। आशासु–दिशासु। समुत्सार्यमाणासु–सम्मिलनं समाप्य यथास्थानं प्राप्यमाणासु। अरण्येषु–वनेषु। अपसर्पत्सु–पलाय्य दूरं गच्छत्सु। विस्तीर्यमाणासु–विस्तृतिं प्राप्यमाणासु। उत्तानीभवत्सु–उत्तानभावं भजत्सु। (रात्रौ चन्द्रिकानिमग्ने जले जलाशया गभीराकृतयोऽदृश्यन्त, सम्प्रति प्रभाते ते पृथक्प्रतीयमानाः सन्त उत्तानीभावमिव प्रपद्यमाना लक्ष्यन्त इत्यर्थः) अवच्छिद्यमानेषु–परस्परवियोगं प्राप्नुवत्सु। (रात्रौ परस्परमिलितत्वेन प्रतीताः पर्वताः सम्प्रति विभक्तवदवभासन्त इत्याशयः) तिरोधानकारिणीम्–आच्छादिकाम् नीलतिरस्करिणीम्–श्यामवर्णां समाच्छादनपटीम्। तिमिरमालाम्–अन्धकारचयम्। करैः–किरणैः। उत्सार्य–अपसार्य। विरहविधुराम्–सूर्यवियोगदुःखिताम्। कमलिनीं

प्रातः-सन्ध्या के रक्ताभ्र वन वृक्षों में दावाग्नि लग गई हो, शेष निद्रा से अलस बड़ी देर तक फैले रहने से अकड़े हुये चरणों को फैलाकर पुनः चलने को उद्यत हरिणगण ऊषर-शय्या का परित्याग करने लगे, वराह-समुदाय अपनी इच्छा से छोटे जलाशयों में उत्पन्न मोथे की जड़ को नोच पटक कर वन-गह्वर की ओर जाने लगे, प्रातःकालिक चरी के लिये निकले गोधन से ग्राम-सीमा-समीपस्थ वन धवल हो उठे, जनपद का मार्ग दीख पड़ने लगा मानो गाँव उत्पन्न होते जा रहे हों, जैसे जैसे सूर्य का प्रकाश बढ़ता जाता था वैसे वैसे पूर्व दिग्विभाग उठता जाता था, आशायें दूर भगाई जाने लगीं, जलाशय ऊपर की ओर उठने लगे, जङ्गल दूर भागने लगे, गाँव की सीमायें फैलने लगीं, पर्वत अलग अलग प्रतीत होने लगे, पृथ्वी उद्धृत होने लगी, कुमुदिनी अदृश्य होने लगी, काले पर्दे की तरह प्रतीत होने वाली अन्धकार-माला को किरणरूप हाथों से दूर करके विरहपीड़िता कमलिनी को देखने के

मिवालोकयितुमुदयगिरिशिखरमारूढे भगवति सप्तलोकचक्षुषि सप्तवाहे, विहायस्तलमुद्भास्य दिगन्तराण्युद्भासयन्तीषु सकलजगद्दीपिकासु दिवसकरदीधितिषु, दृष्टिप्रसरक्षमायां वेलायां सहसैवाग्रतोऽर्धगव्यूतिमात्र इव रात्रिप्रयाणकायातम्, अन्तःक्षोभभीतेन रसातलेनेवोद्गीर्यमाणम्, असोढसङ्घातभरया मेदिन्येव विक्षिप्यमाणम्, अपर्याप्तप्रमाणाभिर्दिग्भिरिव संह्रियमाणम्, अपरिमाणरजोनिरोधाशङ्कितेन गीर्वाणवर्त्मनेवावकीर्यमाणम्, अर्कावलोकेनेव सह विस्तीर्यमाणम्, आयासितायततरदृष्टिभिरप्यदृष्टपर्यन्तम्, अनुजीविभूभृच्छतसहस्रकल्पितावष्टम्भं सञ्चारिणं द्वितीयमिव मेदिनीसन्निवेशम्, अजलवाहिनीप्रवेशगम्भीरं प्राणिमयमपरपारमष्टममिव महासमुद्रम्, उद्रिक्तरजःसन्ततेः पूरतया चापरिस्फुटविभाव्य-

---

पद्मिनीं नायिकाम्। आलोकयितुम्–द्रष्टुम्। उदयगिरिशिखरमारूढे–उदयाचलशृङ्गमागते। भगवति–सामर्थ्यशालिनि। सप्तलोकचक्षुषि–सप्तभुवनप्रकाशके। सप्तवाहे–सप्ताश्वे सूर्ये। (प्रातः सूर्योऽपि आच्छादिकां नीलवर्णां तिरस्करिणीमिव तिमिरमालां स्वीयैः करैर्दूरीकृत्य स्वविरहव्यग्रां कमलिनीमालोकयितुमुदयाचलशृङ्गमारोहति–यथा कोऽपि नायको रात्रौ तद्वियोगे नीलपटावृततनोः स्वप्रेयस्याः पार्श्वमागत्य करेण तत्तिरस्करिणीमपसार्य तामालोकयितुं किमपि उच्चं स्थानमाक्रामति तद्वदयं सूर्य इति भावः) विहायस्तलम्–आकाशदेशम्। उद्भास्य–प्रकाश्य। सकलजगद्दीपिकासु–सकलसंसारप्रकाशनक्षमासु। दिवसकरदीधितिषु–सूर्यकरेषु। दिगन्तराणि–दिशामध्यभागान्। उद्भासयन्तीषु–प्रकाशयन्तीषु सतीषु। दृष्टिप्रसरक्षमायाम्–दृष्टेः अग्रतः प्रसरस्य पदार्थग्रहणसामर्थ्यप्राप्तेः क्षमायाम् उपयुक्तायाम् वेलायाम् समये। सहसा–हठात्। अग्रतः–अग्रे। अर्धगव्यूतिमात्रे-क्रोशपरिमिते देशे। रात्रिप्रयाणकायातम्–रात्रौ यात्रां कृत्वा समागतम्। अन्तःक्षोभभीतेन–यदयं सैन्यनिवहो रसातलं यायात्तदा रसातलं क्षुभितं स्यादिति भयेन। रसातलेन–पातालेन। उद्गीर्यमाणम्–बहिः क्षिप्यमाणम्। असोढसंघातभरया–समुदितस्य सैन्यस्य भारं सोढुमशक्तया। मेदिन्या–पृथिव्या। विक्षिप्यमाणम्–विस्तार्य क्षिप्यमाणम्। अपर्याप्तप्रमाणाभिः–सैन्यभारं स्थापयितुं दिशां प्रमाणं न पर्याप्नोति तादृशीभिः। संह्रियमाणम्–संक्षिप्यमाणम्। अपरिमाणरजोनिरोधाशङ्कितेन–अपरिमितेन सैन्योत्थापितधूलीनिवहेन व्योम रुद्धं स्यादिति भीतेन। गीर्वाणवर्त्मना–आकाशेन। अवकीर्यमाणम्–आवृतम्। अर्कावलोकनेन–सूर्यदर्शनेन। (यथा यथा सूर्यो दृश्यते तथा तथा सैन्यं विस्तीर्यत इति) आयासितायततरदृष्टिः–आयततराम् अतिविशालाम् स्वां दृष्टिमपि व्यापारयद्भिः। अदृष्टपर्यन्तम्–अनवलोकितान्तम्। अनुजीविनाम् आश्रितानाम् भूभृतां राज्ञां शतेन सहस्रेण च कल्पितो विहितः अवष्टम्भः धारणं यस्य तादृशम्, अन्यत्र शतसहस्रसंख्यपर्वतेन धार्यमाणम्। द्वितीयम्–अपरम्। मेदिनीसन्निवेशम्–पृथ्वीविस्तारम्। अजलायाः जलशून्यायाः वाहिन्या सेनायाः प्रवेशेन गम्भीरम्। प्राणिमयम्–नानाप्राणिप्रचुरम्। अपरपारम्–अपारम्। सागरो हि सजलानां वाहिनीनां नदीनां प्रवेशेन गभीरः, अपारः, प्राणिबहुलश्च भवति, अयं स्कन्धावारस्तु अजलवाहिनीप्रवेशगभीरो भवति शेषं समानम्। उद्रिक्तरजःसन्ततेः पूरतया–व्याप्तधूलीभरतया। अपरिस्फुटविभाव्य-

---

लिये भगवान् सूर्य उदयाचल की चोटी पर आये, समस्त विश्व को प्रकाशित करने वाली सूर्य की किरणें आकाश को आलोकित करके दिगन्तर को भी आलोकित करने लगीं और आँखों के फैलकर देखने का समय हुआ, तब चन्द्रापीड ने आगे एक कोश पर रात में चल कर आये हुये अपने सैन्य के पड़ाव को देखा, वह सैन्य ऐसा लगता था मानो अन्तःक्षोभ के भय से रसातल ने उसे उगिल दिया हो, भार नहीं सह्य होने पर पृथ्वी ने उसे फेंक दिया हो, अपरिमित दिशाओं ने उसे संहृत कर दिया हो, अपरिमित धूल से निरुद्ध होने के भय से उसे देवमार्ग ने नीचे ढकेल दिया हो। वह सैन्य-समुदाय सूर्य की किरणों के साथ फैलता जाता था, आँखों को आयास पहुँचा कर भी उसका आखिरी हिस्सा नहीं देखा जा सकता था, वह सैन्य-समुदाय सञ्चरणशील द्वितीय महीतल के समान प्रतीत हो रहा था जिसे अनुजीवि-भूपालगणरूप पर्वत थामे हुये थे, बिना पानी के नदीरूप सेना से गम्भीर, प्राणियों से परिपूर्ण तथा अनन्त अष्टम सागर की तरह लगता था, धूल के उड़ने से सारी

---

१. न–सन्ततिदूरतया चापरिस्फुटः।

सर्ववृत्तान्तमपीतस्ततो वलितधवलकदलिकोद्भासितानेककरिघटासहस्रसंकुलमविरलबलाकावलीविभ्राजिताम्भोदसंघातं मूर्तिमन्तमिव मेघसमयारम्भम्, आवासभूमिग्रहणसंभ्रमाभिप्रधाविताअसंख्यकरितुरगनरपरम्परोर्मिसंबाधतयाऽमन्दमन्दरास्फालनलुलितकल्लोलजालाकुलस्य महाजलधेर्लीलया निविशमानं स्कन्धावारमद्राक्षीत्।

दृष्ट्वा चाकरोच्चेतसि। 'अहो भद्रकं भवति यद्यचिन्तितागमन एव प्रविश्य वैशम्पायनं पश्यामि।' इत्येवं चिन्तयित्वा छत्रचामरादिभिः स्वचिह्नैः सह निवारिताशेषराजपुत्रलोको जवविशेषग्राहिभिस्त्रिचतुरैस्तुरंगमैरनुगम्यमानो मूर्धानमावृत्योत्तरीयेण रयविशेषग्राहिणेन्द्रायुधेन नानाव्यापारव्यग्रसकललोकमचिन्तित एव स्कन्धावारमाससाद। प्रविशंश्च प्रत्यावासकं वहन्नेव 'कस्मिन्प्रदेशे वैशम्पायनावासः' इति पप्रच्छ। ततस्तत्संनिहिताभिः स्त्रीभिरितरत्वादप्रत्यभिज्ञाय यथारब्धकर्मव्यग्राभिरेवोद्बाष्पशून्यवदनाभिः 'भद्र किंपृच्छसि, कुतोऽत्र

सर्ववृत्तान्तम्–अस्पष्टदृश्यसकलवृत्तम्। इतस्ततः–यत्र तत्र। वलिताः–स्थापिताः या धवलाः स्वच्छाः कदलिकाः पताकाः ताभिः उद्भासिताः अनेकाः बहवः करिघटाः हस्तिमालाः तासां सहस्रेण संकुलम्–व्याप्तम्। अविरलबलाकावलीविभ्राजिताम्भोदसङ्घातम्–घनबकपङ्क्तियुक्तजलदवृन्दम्। मूर्तिमन्तम्–शरीरधारिणम्। मेघसमयारम्भम्–वर्षाकालागमम्। वर्षाकाले बलाकायुक्ता मेघा अत्र धवलपताकायुक्ताः करिण इति स्कन्धावारवर्षाकालयोः सादृश्यमत्रोक्तम्। आवासभूमिग्रहणाय–आवासस्थानप्राप्तये यः संभ्रमः शीघ्रता तेन अभिप्रधाविताः प्रचलिताः असंख्याः अपरिमिताः करिणो गजाः तुरगाः अश्वाः नराः मानवाश्च तेषां परम्परा पङ्क्तिरेव ऊर्मिः तरङ्गः तत्संबाधतया तद्व्याप्ततया अमन्देन वेगिना मन्दरास्फालनेन मन्दरपर्वतद्वारकसञ्चालनेन लुलितं सञ्चालितं यत्कल्लोलजालं तरङ्गनिकरस्तेन आकुलस्य व्याप्तस्य महाजलधेर्महासागरस्य लीलया सादृश्येन निविशमानम् आवासप्रबन्धं कुर्वन्तम् स्कन्धावारम् सैन्यसमुदयम् अद्राक्षीत् दृष्टवान्। सागरे मन्दरचालनेन तरङ्गमालाः समुपसर्पन्ति, अत्र च स्कन्धावारे आवासग्रहणव्यग्राः करिणस्तुरगा नराश्चेतस्ततः सञ्चरन्तीति सागरलीलया स्कन्धावारस्य निविशमानत्वं वर्णितं बोध्यम्॥

दृष्ट्वा–तथा निविशमानं स्कन्धावारमालोक्य। चेतसि अकरोत्–चिन्तितवान्। भद्रकं भवति–साधु भवेत्। अचिन्तितागमनः–अतर्कितोपनतः। प्रविश्य–स्कन्धावारे गत्वा। स्वचिह्नैः–युवराजलक्षणैः। निवारिताशेषराजलोकः–सकलमपि राजलोकं युवराजचिह्नैः सह परावर्त्य। जवविशेषग्राहिभिः–वेगातिशयशालिभिः। अनुगम्यमानः–अनुसृतः। मूर्धानम्–शिरोदेशम्। उत्तरीयेण–उत्तरीयवसनेन। आवृत्य–आच्छाद्य। रयविशेषग्राहिणा–गतिविशेषेण चलता। नानाव्यापारव्यग्रसकललोकम्–बहुविधकार्यसंलग्नसमस्तलोकम्। स्कन्धावारम्–सैन्यसमुदयम्। आससाद–प्राप्तवान्। प्रत्यावासकम्–सर्वेष्वावासेषु। वहन्–गच्छन्। तत्संनिहिताभिः–तदावाससमीपस्थाभिः। इतरत्वात्–तासां स्त्रीणामनात्मीयत्वात्। अप्रत्यभिज्ञाय–चन्द्रापीडत्वेनापरिचित्य। यथारब्धकर्मव्यग्राभिः–आरभ्यमाणकार्यसमास-

---

बातें स्पष्ट नहीं दीखती थीं तथापि इधर-उधर स्वच्छ कदलिका से उद्भासित हजारों हाथी घूमते दीख रहे थे जिससे वह सैन्य-समुदाय बलाकावलीयुक्त मेघमण्डल से घिरे बरसात के दिन की तरह लगता था। आवासग्रहणार्थ इधर-उधर दौड़ते हुये असङ्ख्य नर, अश्व तथा हाथियों से व्यस्त होने के कारण वह सैन्य-समुदाय मन्दराचल के चलने से कल्लोलित समुद्र की लीला प्रकट कर रहा था।

सैन्य-समुदाय को देखकर चन्द्रापीड़ ने मन में सोचा—अच्छा होता यदि मैं अचानक पास जाकर वैशम्पायन को देखता। ऐसा सोच कर चन्द्रापीड़ ने छत्र-चामर आदि राजचिह्न तथा अशेष राजगण को छोड़ दिया और खास तरह से तेज चलने वाले तीन चार घोड़े साथ लिये, चादर से मुँह ढक लिया, वेग-विशेषगामी इन्द्रायुध पर आरूढ़ होकर अचानक सैन्य-समुदाय को प्राप्त किया जहाँ लोग अनेक तरह के कार्यों में व्यस्त थे। आवास के पास से गुजरते हुये चन्द्रापीड़ ने पूछा कि वैशम्पायन किधर है? पूछने पर वहाँ सन्निहित स्त्रियों ने

वैशम्पायनः' इत्यावेद्यमाने 'आः पापाः किमेवमसंबद्धं प्रलपथ' इति शून्यहृदय एव ताः प्रतारयन्नन्तर्भिन्नहृदयत्वान्नापराः पृच्छन्नेवमेवोत्त्रस्त इव हरिणशावको यूथपरिभ्रंशविलोल इव करिकलभको धेनुविरहादुत्कर्ण इव तर्णको न किंचित्पश्यन्न किंचिद्वदन्न किंचिदालपन्न किंचिदाकर्णयन्न किंचिन्निरूपयन्न क्वचित्तिष्ठन्न कंचिदाह्वयन् क्वागतोस्मि किमर्थमागतोस्मि क्व चलितोस्मि क्व गच्छामि किं पश्यामि किमारब्धं मया किं वा करोमीति सर्वमेवाचेतयमानोऽन्ध इव बधिर इव मूक इव जड इवाविष्ट इव कटकमध्यदेशं यावत्तादृशेनैव वेगेनावहत्।

अथेन्द्रायुधप्रत्यभिज्ञानाद्वार्तयैवानुप्रधावितराजपुत्रदर्शनाच्च देवश्चन्द्रापीड इति समन्तात् ससंभ्रमप्रधावितानामचेतितोत्तरीयस्खलनानामुद्बाष्पशून्यदृष्टीनां दूरादेव लज्जया प्रणामक्रियया च सममेवावनमतां राजन्यसहस्राणां मुखान्यवलोक्य 'क्व वैशम्पायनः' इत्यपृच्छत्। ततस्ते सर्वे सममेव विचार्य 'अस्मिंस्तरुतले ऽवतरतु तावद्देवस्ततो यथावस्थितं

काभिः। उद्बाष्पशून्यवदनाभिः-साश्रुणी शून्ये च नयनेधारयन्तीभिः। इति आवेद्यमाने-इत्थं कथ्यमाने सति। असम्बद्धम्-अनुपयुक्तम्। प्रलपथ-अनर्थकं वचनमुच्चारयथ। शून्यहृदयः-चिन्तितचेताः। ताः-स्त्रियः। प्रतारयन्-वञ्चयन्। अन्तर्भिन्नहृदयत्वात्-कुतोऽत्र वैशम्पायन इति तासां कथाभिश्छिन्नमनाः। उत्त्रस्तः-भीतः (वैशम्पायनसंबन्धेऽनिष्टाशङ्कया भयशाली) हरिणशावकः-मृगशिशुः। यूथपरिभ्रंशविलोलः-यूथात् स्वीयदलाद् परिभ्रंशः स्खलनं तेन चञ्चलः। करिकलभः-बालगजः। धेनुविरहात्-गोर्जनन्या वियोगात्। उत्कर्णः-उत्थापितकर्णः। तर्णकः-वत्सः। न किञ्चित् पश्यन्नित्यारभ्य सर्वमेवाचेतयमान इत्यन्तेन ग्रन्थेन चन्द्रापीडस्य व्यग्रतोक्ता। आलपन्-कथयन्। निरूपयन्-विचारयन्। अचेतयमानः-अविभावयन्। आविष्टः-भूतावेशयुक्तः। कटकमध्यदेशम्-सेनासन्निवेशमध्यभागम्। तादृशेनैव वेगेन-येन वेगेन गमनं प्रारब्धं तेनैव वेगेन कटकमध्यं प्राप्तवानिति भावः।

अथ-चन्द्रापीडस्य-कटकमध्यप्राप्त्यनन्तरम्। इन्द्रायुधप्रत्यभिज्ञानात्-सोऽयमिन्द्रायुध इति ज्ञानस्य जायमानत्वात्। वार्तया-चन्द्रापीड आयात इति समाचारेण। अनुप्रधावितराजपुत्रदर्शनात्-चन्द्रापीडानुगतराजपुत्रावलोकनात्। समन्तात्-सर्वतः। ससंभ्रमप्रधाविताताम्-अतिशीघ्रतया चलितानाम्। अचेतितोत्तरीयस्खलनानाम्-तेषामुत्तरीयाणि पतन्तीति तेषां ज्ञानं न वर्त्ततेऽस्यामेव स्थितौ प्रचलितानाम्। उद्बाष्पशून्यदृष्टीनाम्-साश्रुशून्यनयनानाम्। लज्जया-वैशम्पायनं विनैवायाता इति त्रपया। प्रणामक्रियया-नमनव्यापारेण च। समम्-तुल्यकालम्। अवनमताम्-नम्रतां गच्छताम्। अस्मिंस्तरुतले-अस्य वृक्षस्याधोभागे। अवतरतु-अश्वादवरोहतु। ततः-अवदवरोहानन्तरम्-यथावस्थि-

---

बिना चन्द्रापीड़ को पहचाने तथा अपना कार्य बिना बन्द किये ही आँखों में आँसू भर कर शून्य चेहरे के साथ कहा—महाशय, क्या पूछते हैं ! यहाँ वैशम्पायन कहाँ ! उनके इस उत्तर पर चन्द्रापीड़ ने कहा—आः पापे, क्या बेसिर-पैर की बात करती हो ? इस प्रकार उन्हें डाँट तो दिया किन्तु उसका हृदय शून्य हो गया, उसके हृदय को स्त्रियों के उत्तर से ठेस लगी, अतः उसने दूसरी स्त्रियों से कुछ नहीं पूछा। वह डरे हुए हरिण शिशु, दल से बिछुड़े गजबालक, गाय से वियुक्त कान खड़ा किये बछड़े की तरह बिना कुछ देखे कहे-सुने-विचारे, बिना कहीं रुके, बिना किसी को पुकारे, कहाँ आया हूँ, कहाँ चला हूँ, कहाँ जा रहा हूँ, क्या देख रहा हूँ, क्या किया जा रहा है ? मैं क्या करूँ ? इत्यादि बातों पर बिना ध्यान दिये ही बहरे, अन्धे, मूक, जड़ एवं ग्रहगृहीत की तरह सेना-सन्निवेश के मध्य भाग तक उसी वेग से चला गया ?

इन्द्रायुध को पहचान लेने तथा पीछे आते हुये राजकुमारों को देखने से लोगों ने चन्द्रापीड़ को पहचाना, घबड़ा कर वे चारों ओर से दौड़ पड़े, उनकी चादरें गिर पड़ीं परन्तु उन्हें पता नहीं चला, उनकी आँखें अश्रुपूर्ण एवं शून्य थीं। वे दूर से ही लज्जा तथा प्रणाम-क्रिया से एक साथ ही झुके जा रहे थे, उनके मुख की ओर देखते हुये चन्द्रापीड़ ने उनसे पूछा कि वैशम्पायन कहाँ है ? उन लोगों ने आपस में विचार-विनिमय करके एक साथ कहा कि—तब तक आप इस वृक्ष की छाया में उतरें, फिर हम वस्तुस्थिति से आपको अवगत करायेंगे। सह

विज्ञापयामः' इति न्यवेदयन् । चन्द्रापीडस्य तेन तेषां स्फुटाख्यानादपि कष्टतरेण वचसान्तःशल्यगर्भं स्फुटितमिव हृदयमासीत् । केवलं तत्कालप्रणयिनी मूर्च्छा सा धारणमकरोत् । तुरगादवतारितं च कुथोपविष्टं पितुः समवयोभिरनतिक्रमणीयैर्मूर्धाभिषिक्तपार्थिवैर्धृतमात्मानं तदानीं न वेदितवान् । उपलब्धसंज्ञोपि च वैशम्पायनस्यादर्शनादात्मतत्त्वदर्शनात् किमेतत् क्वाहं वर्ते किं वा मयैतच्चरितमिति भ्रमारूढ इव मुह्यद्भिरिवेन्द्रियैः सर्वमेवानुत्प्रेक्षमाणः केवलं स्कन्धावारागमनेनैव तस्याभावादन्यदसंभावयन् दुर्विषहपीडाभिहतेन चेतसा किमारटामि किं हृदयमवष्टभ्य तूष्णीमासे किमात्मानमाहत्य हृदयात् प्राणैर्वियोजयामि किमेकाकी कांचिद्दिशं गृहीत्वा प्रव्रजामीति कर्तव्यमेव नाध्यगच्छत् । अन्तर्द्रवन्निव दह्यमान इव स्फुटन्निव सहस्रधा दुःखेन चकार चेतसि । 'अहो मे रम्योऽप्यरमणीयः संवृत्तो जीवलोकः । वसन्त्यपि शून्यीभूता पृथिवी । सचक्षुषोऽप्यन्धाः ककुभो जाताः । सुनिष्पन्नमपि हतं जन्म । सुरक्षितमपि मुषितं जीवितफलम् । कं पश्यामि । कमालपामि । कस्मै विश्रम्भं कथयामि ।

तम्-यथावृत्तम् । विज्ञापयामः-कथयामः । तेषाम्-स्कन्धावारजनानाम् । स्फुटाख्यानादपि कष्टतरेण-स्पष्टकथनापेक्षयाऽप्यधिककष्टदायकेन । अन्तःशल्यगर्भम्-अन्तर्भागे शल्यपूर्णं सखेदमित्यर्थः । स्फुटितम्-विदीर्णम् । तत्कालप्रणयिनी-तत्समये प्रिया । तस्मिन् काले जायमानया मूर्च्छयैव चन्द्रापीडो मरणाद्रक्षित इत्यर्थः । तुरगात्-अश्वात् इन्द्रायुधात् । अवतारितम्-प्रयासमास्थायावरोपितम् (न तु स्वयमवतीर्णं, तदानीं मूर्च्छाधृतस्य चन्द्रापीडस्य तथा कर्तुं सामर्थ्याभावात्) कुथोपविष्टम्-गजपृष्ठास्तरणरूपे आसने स्थितम् । पितुः समवयोभिः-चन्द्रापीडपितृसमानावस्थैः । मूर्धाभिषिक्तपार्थिवैः-आदरणीयै राजगणैः । उपलब्धसंज्ञः-प्राप्तचैतन्यः । आत्मतत्त्वदर्शनात्-आत्मज्ञानात् । यथा कश्चियोगी जाते आत्मतत्त्वज्ञाने क्वाहं वर्ते किं वा मयैतच्चरितमिति साधु न प्रतिपद्यते, त्रिपुटीनाशज्ञानेन तस्य कर्तृत्वे भ्रान्तत्वप्रत्ययात्, तथाऽयमपि चन्द्रापीडो वैशम्पायनादर्शनेन विलुप्यमानसंज्ञः सन् किमपि याथार्थ्येन ज्ञातुं नाशक्नोदिति भावः । मुह्यद्भिः-मोहं प्राप्नुवद्भिः । अनुत्प्रेक्षमाणः-अभावयन् । केवलं स्कन्धावारागमेन-केवलस्य सैन्यसमुदायस्यागत्या । तस्य-वैशम्पायनस्य । अभावात्-लोपात् । अन्यत्-इतो भिन्नम् । (स्कन्धावारेण सह नागत इति वैशम्पायनो नास्त्येवेत्थमेव चिन्तितं चन्द्रापीडेन, जीवन्नपि वैशम्पायनः क्वचित्स्थानान्तरे कारणान्तरेण गतः स्यादिति नासौ समभावयदित्यर्थः) दुर्विषहपीडाभिहतेन-असह्यवेदनायुक्तेन । आरटामि-विलापं करोमि । अवष्टभ्य-स्थिरीकृत्य । तूष्णीमासे-मौनमवलम्ब्य तिष्ठामि । आत्मानमाहत्य-आत्मनि प्रहृत्य आत्मघातं कृत्वा । प्रव्रजामि-संन्यासं गृह्णामि । नाध्यगच्छत्-न ज्ञातवान् । द्रवन्-द्रवीभावमापन्नः । सहस्रधा स्फुटन्-अनेकधा विदीर्यमाणः । जीवलोकः-संसारः । वसन्ती-लोकनिवासभूता । सचक्षुषः-नेत्रयुक्ताः । ककुभः-दिशः । मुषितम्-अपहृतम् । विश्रम्भम्-रह·

कथन से भी अधिक कष्ट देने वाली उनकी इस उक्ति से चन्द्रापीड का शल्यपूर्ण हृदय स्फुटित सा हो गया । केवल उसकी तत्कालोत्पन्न मूर्च्छा बनी रही । उसके पिता की उम्र के आदरणीय नृपतियों ने उसे घोड़े पर से उतार कर घोड़े के पृष्ठास्तरण पर बैठाया, इस बात की खबर उसको उस समय नहीं हुई । होश आने पर भी उसे वैशम्पायन को नहीं देख पाने से यह नहीं मालूम हो रहा था कि यह क्या है ? मैं कहाँ हूँ, मैंने यह क्या किया ? जैसे आत्मतत्त्वज्ञानी को अपने शरीर के कार्यों का अभिमान नहीं होता है । उसकी मूढ़ इन्द्रियाँ और कुछ नहीं देख रही थीं, केवल उसे यही मालूम पड़ रहा था कि सैन्यसमुदाय में जब वैशम्पायन नहीं है तब वह नहीं रहा । असह्य विरह-वेदना से स्तब्ध होकर वह कुछ नहीं समझ रहा था कि मैं चुप रहूँ, आत्महत्या करके प्राणों को निकाल दूं, या अकेले किसी ओर निकल जाऊं ? दुःख से उसका हृदय द्रुत एवं सहस्रधा विदीर्ण हो रहा था, उसने मनमें सोचना शुरू किया—अहा, मेरा संसार रमणीय होकर भी अरण्य हो गया, यह आबाद पृथ्वी भी

---

१. अनुत्प्रेक्ष्यमाणः ।

केन सह सुखमासे । किमद्यापि मे जीवितेन कादम्बर्यापि । वैशम्पायनस्य कृते क गच्छामि । कं पृच्छामि । कमभ्यर्थये । को मे ददातु पुनस्तादृशं मित्ररत्नम् । कथं मया तातस्य शुकनासस्य चात्मा वैशम्पायनेन विना दर्शयितव्यः । किमभिधाय च तनयशोकविह्वलाम्बा मनोरमा वा संस्थापयितव्या । किं भूमिः काचिदसिद्धा तां साधयितुं पश्चात्स्थितः । उत नरपतिः कश्चिदसंघटितः तत्संघटनाय पश्चात्परिलम्बितः कच्चिद्विद्या काचिदगृहीता । तां ग्रहीतुं मयोत्संकलितः ।' इत्येतानि चान्यानि चान्तरात्मना चिरमधोमुख एव विकल्प्य हृदयास्फुटनाद्विलक्ष्यमिवापराधिनमिव महापातकिनमिवात्मानं मन्यमानो वदनमदर्शयच्छनैः कृच्छ्रादिव तानप्राक्षीत् ।

'मय्यागते किं कश्चिदेवंविधोऽन्तरे संग्राम उत्पन्नः । व्याधिर्वा कश्चिदाशुकार्यसाध्यरूपः समुपजातः । येनैतदतर्कितमेव महावज्रपतनमुपनतम्' इति । ते त्वेवं पृष्टाः सर्वे सममेव करद्वयापिहितश्रुतयो व्यज्ञपयन् । 'देव, शान्तं पापम् । देवशरीरमिव साग्रं वर्षशतं ध्रियते

स्यम् । सुखमासे-सुखं तिष्ठामि । किमद्यापि मे जीवितेन कादम्बर्यापि-सम्प्रति मम जीवनस्य कादम्बर्याश्च किमपि फलं नावलोक्यते इत्यर्थः । अभ्यर्थये-याचे । आत्मा-स्वीयं स्वरूपम् । दर्शयितव्यः-सम्मुखीकरणीयः । पितुर्मातुश्च पुरतो वैशम्पायनरहितोऽहं कथमुपस्थास्ये इत्याशयः । किमभिधाय-किं कथयित्वा तनयशोकविह्वला-पुत्रशोकविधुरा । संस्थापयितव्या-प्रकृतिं नेतव्या, धैर्यं लम्भनीयेत्यर्थः । असिद्धा-अजिता । साधयितुम्-जेतुम् । असङ्घटितः-अवशीभूतः । परिलम्बितः-विलम्बमाश्रितः । कच्चित् कामप्रवेदने, काचिद्विद्याऽप्राप्ता किम् ? मया-चन्द्रापीडेन । उत्संकलितः-वैशम्पायनः प्रहितः । अन्यानि-एतद्भिन्नानि । विकल्प्य-नानाविधं विकल्पं तर्कं कृत्वा । हृदयास्फुटनात्-वैशम्पायनविरहे प्राप्तेऽपि स्वहृदयस्य अस्फुटत्वात् वैशम्पायनविषयकस्य स्वप्रेम्णः न्यूनकोटित्वेन संशयितत्वस्य संभावनात् । विलक्ष्यम्-लज्जितम् । अपराधिनम्-कृतापराधम् । मन्यमानः-कल्पयन् । वदनमदर्शयन्-मुखदर्शनं परिहरन् । कृच्छ्रात्-कष्टात् । तान्-स्कन्धावारस्थितान् राज्ञः । अप्राक्षीत्-वक्ष्यमाणरूपेण जिज्ञासितवान् ।

मयि-चन्द्रापीडे । आगते-स्कन्धावारं वैशम्पायनस्य नेतृत्वे परित्यज्य चलिते सति । एवंविधः-एतादृशः । अन्तरे-तन्मध्ये । संग्रामः-युद्धम् । उत्पन्नः-जातः । व्याधिः-रोगः । आशुकारी-शीघ्रतया मारणरूपस्वकार्यकारी । असाध्यरूपः-अप्रतिकार्यः । समुपजातः-उत्पन्नः । अतर्कितम्-अचिन्तितरूपेण । महावज्रम्-अतिकठोरं वस्तु । उपनतम्-आपतितम् । ते-स्कन्धावारगता नृपाः । समम्-तुल्यकालम् । व्यज्ञपयन्-सूचितवन्तः । शान्तं पापम्-एतादृशमप्रियं मा बोचथाः । देवशरीरम्-देवतानां वपुः ।

मेरे लिये सूनी हो गई, आँखों के रहते हुए भी दिशायें अंधी हो गईं, मेरा जीवन बरबाद हो गया, मेरे जीवन का फल सुरक्षित रह कर भी लुट गया, मैं किसे देखूँ, किसके साथ बातें करूँ, किससे रहस्य कहूँ, किसके साथ आनन्द से रहूँ, अब मुझे जीवन तथा कादम्बरी की क्या जरूरत है । वैशम्पायन के लिये मैं कहाँ जाऊँ ? किससे पूछूँ ? किससे प्रार्थना करूँ ? मुझको वैसा मित्ररत्न कौन दे ? मैं बिना वैशम्पायन के पिताजी तथा शुकनास को कौनसा मुँह दिखलाऊँगा ? क्या कहकर माता मनोरमा को धीरज बँधाऊँगा ! क्या कोई जगह अजित रह गई थी जिसे जीतने गया है, या कोई राजा अवशीकृत छूट गया था जिसे वशीकृत बनाने गया है । क्या कोई विद्या पढ़ने को रह गई थी जिसे पढ़ने चला गया है । वह इस तरह की बातें अधोमुख रहकर सोचता रहा । हृदय के नहीं फटने से वह लज्जित था, वह अपने को अपराधी एवं महापातकी समझ रहा था, वह मुँह को छिपायें रह कर ही बड़े कष्ट से उन नृपतियों से पूछने लगा—

मेरे चले आने के बाद रास्ते में क्या कोई लड़ाई छिड़ गई थी, अथवा कोई सद्यःप्राणहारी असाध्य रोग हो गया था जिससे यह अतर्कित महावज्रपात हो गया है ? इस प्रकार पूछे जाने पर उन लोगों ने एक साथ अपने-अपने हाथों से कान बन्द करके कहना प्रारम्भ किया—महाराज, अमङ्गल का नाश हो । देवता की

वैशम्पायनः' इति। एतदाकर्ण्य चोज्जीवित इवानन्दबाष्पनिर्भरः संभाव्य तान् सर्वानेव कण्ठग्रहेणावादीत्। 'जीवतो वैशम्पायनस्यान्यत्र क्षणमप्यवस्थानमसंभावयता मयैवं पृष्टा भवन्तः। तज्जीवतीत्येतानि तु तावत्कर्णे कृतान्यक्षराणि। अधुना किं वृत्तमस्य येनासौ नागतः। क्व वा स्थितः। केन वा प्रसङ्गेन स्थितः। कथं वा तमेकाकिनमुत्सृज्यायाता भवन्तः। कथं वा भवद्भिर्बलादपि नानीतोऽसावित्येतदवगन्तुमुत्ताम्यति मे हृदयम्' इति। ते चैवं पृष्टा व्यज्ञपयन्। 'देव श्रूयतां यथावृत्तम्।

पृष्ठतः स्कन्धावारमनुपालयद्भिः शनैः शनैर्वैशम्पायनेन सह भवद्भिरागन्तव्यमित्यादिश्य गतवति देवे तस्मिन्दिवसे सुगृहीतत्वाद् घासेन्धनादिकस्योपकरणजातस्य न दत्तमेव प्रयाणं स्कन्धावारेण। अन्यस्मिन्नहन्याहतायां प्रयाणभेर्यां सज्जीक्रियमाणे साधने प्रातरेवास्मान् वैशम्पायनोऽभ्यधात्। 'अतिपुण्यं ह्यच्छोदाख्यं सरः पुराणे श्रूयते। तदस्मिन् स्नात्वा प्रणम्य चास्यैव तीरभाजि सिद्धायतने भगवन्तं भवानीप्रभुं महेश्वरं शशाङ्कशकलशेखरं व्रजामः। दिव्यजनसेविता केन कदा पुनः स्वप्नेपि [भूमिरियमालोकिता।' इत्यभिधाय चरणाभ्यामेवाच्छोदसरस्तीरमयासीत्। तत्र चातिरम्यतयैव सर्वतो दत्तदृष्टिः संचरन्नमर-

---

म्रियते-प्राणिति। उज्जीवितः-लब्धप्राणः। आनन्दबाष्पनिर्भरः-हर्षाश्रुपूर्णनयनः। तान् सर्वान् एव कण्ठग्रहेण संभाव्य-तेषां सर्वेषां कण्ठग्रहणपूर्वकालिङ्गनेनादरं कृत्वा। जीवतः-प्राणान् धारयतः। अवस्थानम्-स्थितिम्। असंभावयता-अचिन्तयता। अक्षराणि कर्णे कृतानि-वर्णाः श्रुताः। वृत्तम्-जातम्। प्रसङ्गेन-कारणेन। उत्सृज्य-विहाय। असौ-वैशम्पायनः। अवगन्तुम्-ज्ञातुम्। उत्ताम्यति-उत्कण्ठते।

पृष्ठतः-स्वपृष्ठभागे, पश्चात्। स्कन्धावारम्-सैन्यसमुदयम्। अनुपालयद्भिः-प्रतीक्षमाणैः। आदिश्य-आज्ञाप्य। देवे-भवति चन्द्रापीडे। सुगृहीतत्वात्-सञ्चितत्वात्। घासः-अश्वगजादिभक्ष्यम्। उपकरणजातस्य-सामग्रीसमुदयस्य। न दत्तम् प्रयाणम्-न प्रस्थितम्। अन्यस्मिन्नहनि-ततः परदिने। आहतायाम्-वादितायाम्। प्रयाणभेर्याम्-यात्राकालिकढक्कायाम्। सज्जीक्रियमाणे-सन्नाहं प्राप्यमाणे। साधने-प्रयाणोपयोगिनि वस्तुजाते। अतिपुण्यम्-अत्यन्तपावनम्। अच्छोदाख्यम्-अच्छोदनामकम्। अस्यैव तीरभाजि-अच्छोदसरस एव तटस्थिते। सिद्धायतने-देवमन्दिरे। भवानीप्रभुम्-पार्वतीपतिम्। महेश्वरम्-परमसामर्थ्यशालिनम्। शशाङ्कशकलशेखरम्-शशिखण्डशिखण्डमण्डनम्। व्रजामः-गच्छामः। दिव्यजनसेविता-स्वर्गवासिलोकाध्युषिता। चरणाभ्याम्-विनैव किमपि यानम्। अयासीत्-गतवान्।

आयु हो वैशम्पायन की, वह सौ वर्ष जीता रहेगा। यह सुनते ही चन्द्रापीड उज्जीवित हो उठा, उसकी आँखों से आनन्द के आंसू बहने लगे, उसने उन सभी को गले से लगाकर कहा—जीवित अवस्था में वैशम्पायन एक क्षण के लिये भी अलग नहीं हो सकता है, इसी संभावना से मैंने आप से इस प्रकार पूछा था। अच्छा तब तक इतना तो सुना कि वह जीता है, अब आप यह बतावें कि उसे क्या हो गया जो वह नहीं आया। कहाँ रह गया, किस सिलसिले में रह गया? उसे क्या हुआ जो इस समय नहीं आया? आप लोग उसे अकेला छोड़कर क्यों चले आये? आप लोग उसे बलपूर्वक क्यों नहीं ले आये? इन बातों को जानने के लिये मेरा हृदय उतावला हो रहा है। इस तरह पूछे जाने पर—उन लोगों ने कहा—"देव, सुनिये, पीछे पड़ी सेना की प्रतीक्षा करते हुए आप लोग वैशम्पायन के साथ धीरे-धीरे आइये, इस तरह का आदेश दे कर आपके चले जाने के बाद उस दिन हमारे सैन्यसमुदायने यात्रा नहीं की क्योंकि उस दिन के लिये हमारे पास अन्यान्य उपकरण तथा घास पर्याप्त थे। दूसरे दिन यात्राकालिक भेरी के बज जाने एवं साधनों के प्रस्तुत हो जाने पर—प्रातःकाल वैशम्पायन ने हमसे कहा—'पुराणों में सुनते हैं कि अच्छोद नाम का सरोवर बड़ा पुण्यस्थान है। उसमें स्नान करके तथा उसके तट पर अवस्थित सिद्धायतन में अवस्थित महादेव को प्रणाम करके चलेंगे। इस दिव्यजन सेवित पृथ्वी पर फिर क्या कभी आना है!' इस प्रकार कहकर वैशम्पायन पैदल ही अच्छोद सरोवर चले गये। उस स्थान की

कामिनीश्रोत्रशिखरारोहणप्रणयोचितैस्तरंगानिलाहतिविलोलवृत्तिभिः किसलयैरविरलकुसुममकरन्दलोभपुञ्जितानां च मत्तमधुलिहां मञ्जुना शिञ्जितरवेण दूरादाह्वयन्तमिव, मरकतमणिश्यामया प्रभयानुलिम्पन्तमिव समं दशदिग्भागान्, अदत्तदिवसकरकिरणप्रवेशतया दिवाप्यन्तर्निशीथिनीमिव बिभ्राणम्, चिरपरिचितैरपि मेघोद्गमाशङ्कया मुहुर्मुहुरुन्मुक्तमधुरकेकारवैर्वनशिखण्डिभिरुत्कन्धरैरवलोक्यमानम्, पदमिव जलदकालस्य, प्रतिपक्षमिव सर्वसंतापानाम्, निजावासमिव जडिम्नः, निर्गममार्गमिव सुरभिमासस्य, आश्रयमिव मकरध्वजस्य, उत्कण्ठाविनोदस्थानमिव रतेः, आस्पदमिव सर्वरमणीयानाम्, अनवरतवलितसुरभिशीतलाच्छोदसरस्तरंगमारुताभिर्वीजिताभ्यन्तरशिलातलमन्यतमं तटलतामण्डपमद्राक्षीत्।

अतिरम्यतया-सौन्दर्याधिक्येन। सर्वतो दत्तदृष्टिः-सर्वासु दिक्षु दृशं निक्षिपन्। अमरकामिनी-देवाङ्गना तस्याः श्रोत्रशिखरारोहणे-कर्णप्राप्तौ यः प्रणयः-प्रेमा तन्नोचितैः-अभ्यस्तैः देवाङ्गनाकर्णभूषणोपयुक्तैः। तरङ्गानिलाहतिविलोलवृत्तिभिः-तरङ्गवाताघातप्रचलस्थितिभिः। किसलयैः-पल्लवैः। अविरलकुसुममकरन्दलोभपुञ्जितानाम्-सर्वतो वर्तमानपुष्परसलोभेनैकत्रीभूतानाम्। मधुलिहाम्-भ्रमराणाम्। मञ्जुना-मनोहरेण। शिञ्जितरवेण-गुञ्जितेन। दूरात् आह्वयन्तम्-दूरदेशादाह्वानं कुर्वन्तम्। (लतामण्डपविशेषणमिदम्-स हि लतामण्डपः कम्पमानैर्देवाङ्गनाकर्णाभरणोपयुक्तैश्च पल्लवैर्मधुरेण भ्रमरशब्देन च पान्थान् दूरत एवाह्वयतीवेति तदर्थः) मरकतमणिश्यामया-नीलमणिवत्कृष्णवर्णया। प्रभया-कान्त्या। समम्-तुल्यकालम्। दशदिग्विभागान्-दशापि दिशावकाशान्। अनुलिम्पन्तम्-व्याप्नुवन्तम्। अदत्तदिवसकरकिरणप्रवेशतया-सूर्यकिरणाय प्रवेशस्यादत्ततया। दिवा-दिने। अन्तः-अन्तरालभागे। निशीथिनीम्-रात्रिम्। बिभ्राणम्-धारयन्तम्। चिरपरिचितैः—बहोः कालात् परिचितैः। मेघोद्गमाशङ्कया-मेघोऽयमुदित इति (लतामण्डपे मयूराणाम्) संदेहेन। उन्मुक्तमधुरकेकारवैः-कृतकर्णप्रियकेकाशब्दैः। वनशिखण्डिभिः-काननमयूरैः। उत्कन्धरैः-उन्नमितग्रीवैः। अवलोक्यमानम्-दृश्यमानम्। (चिरकालिके परिचये सत्यपि वनमयूरा लतामण्डपं श्यामलतया मेघोऽयमुदयत इति संशय्य मेघत्वेन जानन्तः केकाशब्दमुच्चारयन्तः प्रोन्नतग्रीवाश्च सन्तो विलोकयन्तीत्यर्थः)। पदम्-स्थानम्। जलदकालस्य-वर्षासमयस्य। प्रतिपक्षम्-शत्रुम्। सर्वसन्तापानाम्-सर्वप्रकारकाणां तापानाम् (सर्वप्रकारकानपि तापानपनुदन्तमित्यर्थः)। निजावासम्-स्वीयं निवासस्थानम्। जडिम्नः-शैत्यस्य। निर्गममार्गम्-प्रयाणवर्त्म। सुरभिमासस्य-वसन्तर्तोः। (अस्य विशेषणस्यायमाशयः-वसन्तोऽनेनैव पथाऽऽयाति याति, अत एवात्र तच्चिह्नानि पुष्पाणि सन्तीति)। आश्रयम्-निवासम्। मकरध्वजस्य-कामस्य। रतेः-कन्दर्पस्त्रियः। उत्कण्ठाविनोदस्थानम्-विलासभूमिस्वरूपम्। सर्वरमणीयानाम्-सर्वविधानां सुन्दराणाम्। अनवरतवलितः-सततचलितः सुरभिः-सुगन्धः, शीतलः-जडश्च अच्छोदसरसः-तदाख्यसरोवरस्य तरङ्गमारुतः वीचीवातस्तेन अभिवीजितं-शीतलतां गमितम् अभ्यन्तरशिलातलम् यस्य तादृशम् (लतामण्डपे वर्तमानं शिलातलं सततचलितसुरभिशीतलेनाच्छोदसरस्तरङ्गवायुनाऽभिवीजितं सत् शीतलं भवतीत्यर्थः)। अन्यतमम्-बहुष्वेकम्। लतामण्डपम्-लताकुञ्जम् ॥

रमणीयता से आकृष्ट होकर वह चारों ओर देखते हुए घूम रहे थे कि उन्होंने अच्छोद सरोवर के तट पर वर्तमान एक लतामण्डप देखा, वह लतामण्डप देवाङ्गनाओं द्वारा कान में धारण किये जाने के योग्य, तरङ्गानिल के आघात से कम्पित, किसलय एवं मकरन्द के लोभ से एकत्रित भ्रमरों के गुञ्जन से दूर से ही आह्वान सा कर रहा था, मरकत मणि की तरह श्यामलकान्ति से दश दिशाओं को लिप्त सा कर रहा था, सूर्य-किरणों के प्रवेश को रोककर दिन में भी अपने भीतर रात्रि को धारण कर रहा था, मयूरगण उस लतामण्डप को चिरपरिचित होने पर भी मेघमाला समझकर मधुर शब्द के साथ गरदन ऊंची करके देख रहे थे, वह लतामण्डप बरसात का निवास-स्थान, सर्वसन्ताप का शत्रु, शैत्य का प्रधान आवास, वसन्तऋतु के निर्गम का मार्ग, कामदेव का गढ़, रति का विनोद-स्थान, सकल रमणीय वस्तुओं का आश्रय, एवं अनवरत सञ्चारी सुगन्ध शीतल अच्छोद सरोवर की तरङ्ग-वायु से वीजित होने के कारण शीतल शिलातल से युक्त था।

दृष्ट्वा च तमतिचिरान्तरितदर्शनं भ्रातरमिव तनयमिव सुहृदमिव चानन्यदृष्टिर्विस्मृतनिमेषेण चक्षुषा विलोकयन् स्तम्भित इव लिखित इवोत्कीर्ण इव पुस्तमय इव सुचिरमूर्ध्व एव स्थित्वापारयन्निवाङ्गानि धारयितुमाक्रम्यमाण इव मूर्च्छयोन्मुच्यमान इवेन्द्रियैर्झटित्युन्मुक्ताङ्गः समुपविश्य भूमौ किमप्यन्तरात्मना स्मरन्निवानुध्यायन्निव निर्विकारवदनो गलितलोचनपयोधारासंतानस्तूष्णीमधोमुखस्तस्थौ। तथावस्थितं च तमवलोक्यास्माकमुदपादि चेतसि चिन्ता। 'येन केनचिदपह्रियन्त एव रसिकहृदयाः परिणामधीरमतयोपि किं पुनः कुतूहलास्पदे प्रथमे वयसि वर्तमानः। तस्मान्नियतमियमस्येमामतिमनोहरां भूमिमालोक्य भावयतो हृदयविकृतिरीदृशी जाता' इति। न चिराच्च तमेवमवदाम वयम्। 'दृष्टा दर्शनीयानामवधिरेषा। तदुत्तिष्ठ। संप्रति निर्वर्तयामः स्नानविधिम्। अतिमहती वेला। सज्जीभूतं साधनम्। प्रयाणाभिमुखः सकलः स्कन्धावारस्त्वां प्रतिपालयन्नास्ते। किमद्यापि विलम्बितेन' इति। स त्वेवमुक्तोप्यस्माभिरश्रुतास्मदीयालाप इव जड इव मूक इवाशिक्षित इव वक्तुं न किंचिदपि प्रत्युत्तरमदात्। तमेव केवलमनिमेषपक्ष्मणा

अतिचिरान्तरितदर्शनम्-बहुकालव्यवहितावलोकनम् बहुकालानन्तरं दृश्यमानमित्यर्थः। तनयम्-पुत्रम्। सुहृदम्-मित्रम्। विस्मृतनिमेषेण-निमेषशून्येन। स्तम्भितः-निवृत्तचेष्टः। उत्कीर्णः-चित्रितः। ऊर्ध्वः-अनुपविष्टः। अङ्गानि धारयितुमपारयन्-स्वेषामप्यङ्गानां धारणेऽक्षमः, नितान्तशून्यशक्तिरित्यर्थः। मूर्च्छयाऽऽक्रम्यमाणः-मूर्च्छितः। उन्मुच्यमानः-त्यज्यमानः। इन्द्रियैः-ज्ञानेन्द्रियैः कर्मेन्द्रियैः स्वस्वकार्यसामर्थ्यं परिहरद्भिरित्यर्थः। उन्मुक्ताङ्गः-शून्यशरीरः। अन्तरात्मना-हृदयेन। अनुध्यायन्-चिन्तयन्। निर्विकारवदनः-भावशून्यमुखः। गलितलोचनपयोधारासन्तानः-चक्षुषाऽश्रुधारा वर्षन्। तूष्णीम्-मौनभावेन। अधोमुखः-नतवदनः। तथाऽवस्थितम्—तेन रूपेण वर्तमानम्। तम्-वैशम्पायनम्। उदपादि-उत्पन्ना। अपह्रियन्ते-आकृष्यन्ते। परिणामधीरमतयः-स्वभावगभीराः। कुतूहलास्पदे-उत्कण्ठापूर्णे। प्रथमे वयसि-यौवने। नियतम्-निश्चयेन। अस्य-वैशम्पायनस्य। अतिमनोहराम्-नितान्तरम्याम्। भावयतः-चिन्तयतः। हृदयविकृतिः-मनोविकारः। दर्शनीयानामवधिः-द्रष्टव्यानां सीमाभूता इयं भूमिः। निर्वर्तयामः-सम्पादयामः। अतिमहती वेला-अधिकः समयो व्यतीतः। सज्जीभूतम्-प्रस्तुतम्। साधनम्-स्नानोपकरणम्। प्रयाणाभिमुखः-गन्तुं कृतसन्नाहः। प्रतिपालयन्-प्रतीक्षमाणः। अश्रुतास्मदीयालापः-अस्माकं कथा अशृण्वन्। वक्तुमशिक्षितः-कथां कर्तुमशक्तः। प्रत्युत्तरम्-प्रतिवचनम्। अनिमेष-

---

उस लतामण्डप को देखकर—वह चिरकाल पर देखे गये भाई, पुत्र अथवा मित्र की तरह अनन्य दृष्टि होकर निर्निमेष नयनों से देखते हुए स्तम्भित, चित्रित, एवं मूर्ति की तरह खड़े रहे, उनके अङ्ग उनके वश में नहीं रहे, उनपर मूर्च्छा का आक्रमण सा हो आया, इन्द्रियों ने जवाब दे दिया, उनके अङ्ग ढीले पड़ गये, वह जमीन पर ही बैठकर कुछ याद करते एवं सोचते हुए से निर्विकार वदन तथा अश्रुप्रवाह-युक्त नयनों से अधोमुख देखते रहे। उनको उस स्थिति में देखकर हमारे मनमें हुआ कि परम धीरबुद्धि होने पर भी रसिक हृदय कभी-कभी किसी वस्तु से आकृष्ट हो जाते हैं, फिर कौतूहलपूर्ण यौवन में वर्तमान व्यक्ति के संबन्ध में क्या कहना है। अतः निश्चय ही इनके हृदय में इस अतिमनोहर भूमि को देखकर यह मनोविकार उत्पन्न हो गया है। शीघ्र ही हमने उनसे कहा कि द्रष्टव्यता की पराकाष्ठा यह भूमि आपने देख ली, अब उठिये, हम लोग स्नान करें, बड़ी देर हुई, सारा साधन प्रस्तुत है, समस्त सैन्यसमुदाय यात्रोन्मुख होकर आपकी प्रतीक्षा में खड़ा है, अब क्यों विलम्ब कर रहे हैं? हमारे इस कथन का उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया मानो उन्होंने हमारी बातें सुनी ही

---

१. 'लिखित इव...आक्रम्यमाण इव' इति नास्ति।

निश्चलस्तब्धतारकेण संतताश्रुस्रोतसा लिखितेनेव चक्षुषा लतामण्डपमालोकितवान्।

पुनःपुनश्चास्माभिरागमनायानुरुध्यमानस्तद्ग्रथितदृष्टिरेवास्मान् परिच्छेदनिष्ठुरमाह स्म। 'मया तु न यातव्यमस्मात्प्रदेशात्। गच्छन्तु भवन्तः स्कन्धावारमादाय। न युक्तं भवतां चन्द्रापीडभुजबलपरिरक्षितं गते तस्मिन् महासाधनं गृहीत्वास्यां भूमौ क्षणमप्यवस्थानं कर्तुम्।' इत्युक्तवन्तं तमकस्मान्नाम किंचिदस्य दैवादेव वैराग्यकारणमुत्पन्नमित्याशङ्कय सानुनयमागमनाय पुनः पुनः प्रतिबोध्य तादृशासंबद्धानुष्ठानेन जातपीडा निष्ठुरमप्यभिहितवन्तो वयम्। 'एवं न युक्तमस्माकं स्थातुम्। भवतः पुनर्देवस्य तारापीडस्यानन्तरादार्यशुकनासाल्लब्धजन्मनो देव्या विलासवत्याङ्कलालितस्य देवेन चन्द्रापीडेन सहैकत्र संवृद्धस्य तथा विद्यागृहे महता यत्नेनैव शिक्षितस्य युक्तमिदं यज्ज्येष्ठे भ्रातरि सुहृदि वत्सले भर्तरि जगन्नाथे च गुणवति च भवति सर्वमर्पयित्वा गते तत्परित्यागेनात्रावस्थानम्। कस्यापरस्येदृशो युक्तायुक्तपरिच्छेदः। तिष्ठतु तावदस्माकं तवोपरि स्नेहो भक्तिर्वा। अस्मिंस्तु शून्यारण्ये भवन्तमेकाकिनमुत्सृज्य गताः सन्तो देवेन चन्द्रशीतलप्रकृतिना चन्द्रा-

---

पक्ष्मणा-पक्ष्मपातरहितेन। निश्चलस्तब्धतारकेण-स्थिरकनीनिकेन। सन्तताश्रुस्रोतसा-प्रवहमानजलेन। लिखितेन-चित्रितेन (स्थिरेण) लतामण्डपम्-लताकुञ्जम्। आलोकितवान्-अपश्यत्।

आगमनाय-तस्माल्लतामण्डपादागन्तुम्। अनुरुध्यमानः-आगृह्यमाणः। तद्ग्रथितदृष्टिः-लतामण्डपनिबद्धनयनः। परिच्छेदनिष्ठुरम्-स्थिरविचारपूर्वकम्। न यातव्यम्-नैव गन्तव्यम्। अस्मात् प्रदेशात्-अस्मात्स्थानात्। चन्द्रापीडभुजबलपरिरक्षितम्-चन्द्रापीडबाहुबलपालितम्। तस्मिन्-चन्द्रापीडे (गते) महासाधनम्-सुमहत्सैन्यम्। अकस्मात्-विना किमपि प्राचीनं कारणम्। दैवात्-भाग्यवशात्। वैराग्यकारणम्-विरक्तिहेतुः। सानुनयम्-सविनयम्। प्रतिबोध्य-निवेद्य। तादृशासम्बद्धानुष्ठानेन-तादृशेन अयुक्तेन तत्र स्थातुमिच्छायाः प्रदर्शनस्वरूपेण व्यापारेण। जातपीडाः-प्राप्तदुःखाः। निष्ठुरमप्यभिहितवन्तः-कठोरं वचनमप्युक्तवन्तः। तारापीडस्यानन्तरात्-तारापीडाभिन्नमित्रात्। देव्या विलासवत्या-तदभिधानया राज्ञ्या चन्द्रापीडजनन्या। अङ्कलालितस्य-क्रोडे कृत्वा पोषितस्य। संवृद्धस्य-वृद्धिं गतस्य। विद्यागृहे-विद्यालये। शिक्षितस्य-अधीतविद्यस्य। भवति सर्वमर्पयित्वा-त्वयि सकलं भारं न्यस्य। तत्परित्यागेन-तं विहाय। युक्तायुक्तपरिच्छेदः-कर्त्तव्याकर्त्तव्यविवेकः। शून्यारण्ये-निर्जनवने। उत्सृज्य-विहाय।

नहीं हों, या वह जड़, मूक या बोलने की शिक्षा से शून्य हों। केवल उस लता-मण्डप को निर्निमेष निश्चल कनीनिका युक्त अश्रुप्रवाही एवं लिखितोपम नयनों से देखते रहे।

बारबार हमलोगों द्वारा चलने के लिये अनुरोध किये जाने पर उसी ओर आँख गड़ाये उन्होंने हमलोगों से निष्ठुर भाव से कहा—'मुझे यहाँ से नहीं जाना है। आपलोग सैन्य-समुदाय लेकर जावें। चन्द्रापीड़ के भुजबल से सुरक्षित इतने बड़े साधन को लेकर उनके चले जाने के बाद आपका इस स्थान पर एक क्षण भी ठहरना ठीक नहीं है।' वैशम्पायन ने जब इस प्रकार कहा तब हमको ऐसा मालूम पड़ा कि देववश अकस्मात् इनके हृदय में यह वैराग्य का कारण उत्पन्न हो गया है, इस आशङ्का से हमने उनसे बारबार चलने का अनुरोध किया, उनके निष्ठुर भाषण से हमें दुःख हुआ, हमने उनसे कठोर शब्दों में भी कहा—'ठीक है, हमको यहाँ नहीं ठहरना चाहिये। आपने तारापीड़ के अभिन्न मित्र शुकनास से जन्म पाया, महारानी विलासवती ने आपको गोद में पाला पोसा, चन्द्रापीड़ के साथ आप बड़े हुए, साथ-साथ आपको विद्यागृह में शिक्षा मिली, क्या आपके लिये ठीक है कि जब आपके बड़े भाई, मित्र, स्नेही, मालिक, जगत् के शासक तथा सकलगुणयुक्त चन्द्रापीड़ आप पर ही सारा भार सौंप कर चले गये हैं तब आप यहाँ रुक जायँ'। ऐसा युक्तायुक्त विवेक दूसरा कौन करेगा? आपके लिये हमारे हृदयों में जो भक्ति अथवा स्नेह है वह दूर रहे, यदि हम आपको इस शून्य वन में अकेला छोड़कर चले जाते हैं तब वहाँ जाने पर चन्द्रमा के समान शीतल स्वभाव रखने वाले चन्द्रापीड़

पीडेनैव किं वक्तव्या वयम्। किमन्यो देवश्चन्द्रापीडोऽन्यो वा भवान्। तदुन्मुच्यतामयं संमोहः। गमनाय धीराधीयताम।' इत्यभिहितोस्माभिरीषदिव विलक्षहासेन वचनेनास्मानवादीत्। 'किमहमेतावदपि न वेद्मि यद्गमनाय मां भवन्तः प्रबोधयन्ति। अपि च चन्द्रापीडेन विना क्षणमप्यहमन्यत्र न पारयामि स्थातुम्। एषैव मे गरीयसी परिबोधना। तथापि किं करोमि। अनेनैव क्षणेन सर्वत्र विगलितं मे प्रभुत्वम्। तथा हि। स्मरदिव किमपि मनो नान्यत्र प्रवर्तते। पश्यन्तीव किमपि न दृष्टिरन्यतो वलति। आसक्तमिव क्वापि हृदयं किमपि न जानाति। निगडितावपि पदमपि दातुं न चरणावुत्सहेते। कीलितेव चास्मिन्नेव स्थाने तनुः। तदात्मना त्वहमसमर्थो यातुम्। अथ बलाद्बध्नन्तो मां निनीषवः। तत्रापि चलितस्यास्मात्प्रदेशादात्मनो जीवितधारणं न संभावयामि। अत्र तु पुनास्तिष्ठतो यदेतदन्तर्हृदये किमप्यनवसीयमानं परिवर्तते मे येनैव विधृतोस्मि तेनैवावश्यं धार्यन्ते प्राणा इति चेतसि मे। तदलं निर्बन्धेन। गच्छन्तु भवन्तः। भवतु यावज्जीवमा तृप्तेश्चन्द्रापीडदर्शनसुखम्। अल्पपुण्यस्य तु तन्मे प्राप्तमपि करतलादेवमाच्छिद्य दैवेन नीतम्।' इत्यभिदधानश्च कौतुकात् 'किमेतद्येनैवं भाषसे, नायासि देवस्य चन्द्रापीडस्य समीपम्,'

चन्द्रशीतलप्रकृतिना–चन्द्रवत्कोमलस्वभावेन। किं वक्तव्याः–किं कथनीयाः। अन्यश्चन्द्रापीडोऽन्यो वा भवान्–भवति चन्द्रापीडे च भेदं न पश्याम इत्यर्थः। अयं संमोहः–अत्र स्थानेऽवस्थानाग्रहरूपोऽविवेकः। धीः आधीयताम्–मतिः क्रियताम्। ईषत्–किञ्चित्। विलक्षहासेन–सलज्जं सहासञ्च। एतावदित्यन्मात्रं गमनस्यावश्यकर्त्तव्यस्वरूपम्। पारयामि–शक्नोमि। गरीयसी–श्रेष्ठा। परिबोधना–साग्रहं कथनम्। विगलितम्–नष्टम्। प्रभुत्वम्–सामर्थ्यम्। किमपि स्मरत्–किमप्यनुध्यायत्। अन्यतो वलति–अन्यत्र चलति। आसक्तम्–लग्नम्। निगडितौ–शृङ्खलितौ, पदं दातुम्–एकमपि पदं गन्तुम्। उत्सहेते–उत्साहं कुरुतः। आत्मना–स्वयम्। निनीषवः–नेतुमिच्छवः। अस्मात् प्रदेशाच्चलितस्य–स्थानादस्माद्गतस्य। आत्मनः–स्वस्य। जीवितधारणम्–जीवनम्। न संभावयामि–नोत्प्रेक्षे नाशासे। अनवसीयमानम्–अपरिचीयमानम्। विधृतः–स्थातुं बाधितः गन्तुं प्रतिबद्ध इत्यर्थः। (येन किमपि विशिष्य यद्विषये सम्प्रति न ज्ञायते तादृशेन कारणेन गमनं मे प्रतिषिध्यते तेनैवाहं जीवनं धर्तुं प्रभवामि, इतः प्रस्थितस्य तु मम प्राणधारणं न शक्यक्रियं स्यादित्यर्थः)। निर्बन्धेन–गमनविषयकेणाग्रहेण। आ तृप्तेः–सन्तोषपर्यन्तम्। तत्–चन्द्रापीडदर्शनसुखम्। आच्छिद्य–अपहृत्य। नायासि–नागच्छसि। लज्जे–

हमें क्या कहेंगे, क्या आप और चन्द्रापीड़ दो हैं? अतः आप इस मोह को भुलाकर चलने का इरादा कीजिये।' हमारे इस प्रकार कहने पर वैशम्पायन ने थोड़े सलज्जहास के साथ हमसे कहा—"क्या मैं इतना भी नहीं समझता हूँ कि आपलोग मुझे चलने को समझा रहे हैं। मैं चन्द्रापीड़ के बिना एक क्षण के लिये भी नहीं रह सकता हूँ मेरे लिए सबसे बड़ा यही प्रबोधन है। फिर भी मैं क्या करूँ? इस एक क्षण में ही मेरा सारा प्रभुत्व चला गया है। कुछ याद सा करता हुआ यह मेरा हृदय दूसरी ओर नहीं झुक रहा है। यह मेरे चरण एक पग भी आगे बढ़ना नहीं चाहते हैं मानो इनमें बेड़ियाँ डाल दी गई हों। इस स्थान में हमारी इस देह में कील-सी ठोक दी गई है। अतः मैं स्वतः जाने में असमर्थ हूँ, यदि आप मुझे बलपूर्वक ले जाना चाहेंगे तब भी मुझे इस स्थान से अलग होने पर अपने जीवन की संभावना नहीं है। यहाँ रहने पर—मेरे हृदय में यह जो एक अज्ञात परिवर्त्तन सा हो रहा है, उसी में बँधे मेरे प्राण टिके रहेंगे—ऐसा मुझे मालूम पड़ रहा है। अतः आग्रह बेकार है। आपलोग जाइये। जीवनपर्यन्त भरपेट चन्द्रापीड़ के दर्शनों का आनन्द लूटिये, मुझ अभागे को वह सुख करगत था परन्तु भाग्य ने बलात् वह सुख मुझसे छीन लिया।" वैशम्पायन ने जब इस प्रकार कहा तब हमलोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ—हमने उनसे बार बार पूछा—आपको आज क्या हो गया है, आप इस तरह की बातें करते हैं, और चन्द्रापीड़ के पास नहीं चल रहे हैं? इसके उत्तर में उन्होंने कहा—"मुझे इस तरह की बात कहते

इत्यस्माभिः पुनः पुनः पृष्टोऽभयधात् । 'लज्जेऽहमेवं वक्तुम् । तथापि शपामि वयस्यचन्द्रापीडस्यैव जीवितेन यदि किंचिदपि जानामि यत्केन कारणेन न शक्नोम्यतो गन्तुमिति । अपि च भवतामपि प्रत्यक्ष एवायं वृत्तान्तः । तद् व्रजन्तु भवन्तः ।' इत्युक्त्वा तूष्णीमभूत् ।

मुहूर्तादिव चोत्थाय तेषु तेषु रम्यतरेषु तरुतलेषु लतागृहेषु सरस्तीरेषु तस्मिंश्च देवायतने किमपि नष्टमिवान्विष्यन्ननन्यदृष्टिर्बभ्राम । भ्रान्त्वा च चिरमिव खिन्नान्तरात्मा सनिर्वेदमूर्ध्वं निश्वस्य तस्मिँल्लतागहने पुनरुपविश्य तस्थौ । वयमपि कृतवीरुत्संनिधानास्तत्प्रतिबोधनप्रत्याशया स्थिता एव । गतवति समधिक इव यामद्वये शरीरस्थितिकरणायास्माभिरभ्यर्थितः प्रत्युवाच । 'वयस्यचन्द्रापीडस्य खल्वमी स्वजीवितादपि वल्लभतराः प्राणाः । तद्यदि बलादपि परित्यज्य मां गच्छन्ति तथाप्येषां संधारणे मया प्रयत्नः कार्यः । किं पुनरगच्छतामेव । चन्द्रापीडदर्शनेनैव चाहमर्थी न मृत्युना । तदभ्यर्थनैवात्र निष्फला ।' इत्यभिधायोत्थाय स्नात्वा कन्दमूलफलैर्वनवासोचितां शरीरस्थितिमकरोत् । निर्वर्तितशरीरस्थितौ तस्मिन्वयमपि कृतवन्तः । अनेनैव च क्रमेण विस्मृतान्तरात्मानो रात्रौ च दिवा

लज्जामनुभवामि । शपामि-शपथं गृह्णामि । अहं चन्द्रापीडजीवितेन शपथं कृत्वा ब्रवीमि यदस्मात्स्थानात्स्वीयस्यागमनस्य कारणं न जानामीत्यर्थः । प्रत्यक्षः-साक्षात् । अयं वृत्तान्तः अहमकारणमेवात्र स्थाने निरुद्धगमनतां नीत इत्यर्थः । तूष्णीम्-मूकीभूतः ।

मुहूर्तात्-अल्पकालात् । रम्यतरेषु-अतिसुन्दरेषु । लतागृहेषु-लताभवनेषु । सरस्तीरेषु-अच्छोदसरोवरतटेषु । देवायतने-देवमन्दिरे । नष्टम्-परिभ्रष्टम् । अन्विष्यन्-मार्गयन् । अनन्यदृष्टिः-केवले । लतागृह एव स्थापितनयनः । बभ्राम-भ्रमणं कृतवान् । खिन्नान्तरात्मा-दुःखितः । सनिर्वेदम्-सखेदम् । ऊर्ध्वं निश्वस्य-उपरिमुखं श्वासं त्यक्त्वा । वयम्-स्कन्धावारजनाः । तत्प्रतिबोधनप्रत्याशया-कदाचिदयं वैशम्पायनोऽस्माकमनुरोधं स्वीकृत्य गन्तुमुद्यतः स्यादिति भावनया । कृतवीरुत्संनिधानाः-तद्गुल्मसन्निहिताः । समधिके यामद्वये-यामद्वयादधिके समये । शरीरस्थितिकरणाय-स्नानाहारादिदेहकार्यं कर्तुम् । अभ्यर्थितः-उक्तः । अमी-मत्सम्बन्धिनः । स्वजीवितात्-स्वीयजीवनात् । वल्लभतराः-अधिकप्रियाः । एषाम्-चन्द्रापीडस्य वल्लभतराणां स्वप्राणानाम् । चन्द्रापीडदर्शनेनैव चाहमर्थी ममापि चन्द्रापीडदर्शनमेवाभीष्टम् । वनवासोचिताम्-काननिवासोपयुक्ताम् । शरीरस्थितिम्-स्नानाहारादिकृत्यम् । निर्वर्तितशरीरस्थितौ-कृतस्नानाहारादिदेहकार्ये । तस्मिन्-वैशम्पायने । वयमपि कृतवन्तः इत्यस्य शरीरस्थितिमिति शेषः ।

लज्जा हो रही है । मैं प्रिय मित्र चन्द्रापीड़ के प्राणों की सौगन्ध लेकर कह रहा हूँ कि मैं यहाँ से क्यों नहीं जा सकता हूँ इसके विषय में कुछ भी जानता नहीं हूँ । आप भी तो सब देख ही रहे हैं । अतः आप जाइये", इस प्रकार कहकर वह चुप हो गये ।

वह थोड़ी देर के बाद उठे, वृक्षों के अधोभाग में लतागृहों में, सरोवर के तटोंपर, और उस देवायतन में किसी खोई चीज को ढूंढ़ते हुए से टकटकी लगाये घूमते रहे । चिरकाल भ्रमण से श्रान्त सदृश होकर उन्होंने उदासीनभाव से ऊपर की ओर दीर्घ निश्वास छोड़ा, और फिर वह उसी लतागहन में बैठ गये । हमलोग उन्हें समझा सकने की आशा में लता के अन्तराल में बैठे रहे । दोपहर से अधिक दिन के बीत जाने पर जब हमने उनसे शरीरकृत्य करने को कहा, तब उन्होंने उत्तर दिया—"प्रिय मित्र चन्द्रापीड़ हमारे इन प्राणों को अपने जीवन से अधिक प्यार करते हैं, अतः यह मेरे प्राण यदि बरबस मुझे छोड़कर जाना भी चाहें तो हमें इनको पकड़कर रखने के लिये प्रयत्न करना है । जब यह नहीं जा रहे हैं तब क्या कहा जाय । मैं चन्द्रापीड़ के दर्शन का अर्थी हूँ मृत्यु का नहीं । अतः इस विषय में प्रार्थना करना व्यर्थ है !" इस तरह कहकर वह उठे, स्नान किया, और कन्दमूलफल से वनवासोपयुक्त शरीरकृत्य किया । उनके शरीरकृत्य से निवृत्त होने पर हमलोगों ने भी शरीरकृत्य किया । इसी क्रम से हमलोग वहाँ तीन दिनों तक रहे, दिनरात आश्चर्य में डूबते उतराते यही सोचा करते थे कि यह क्या हो गया । जब हमलोग उनके लौटने तथा लौटाये जा सकने से निराश हो गये तब पुण्यशाली

च किमेतदिति तद्वृत्तान्तमेवानुभावयन्तो दिनत्रयं स्थित्वा निष्प्रत्याशास्तदागमनानयनयोः सुकृतशम्बलसंविधानं तत्परिकरं तत्र स्थापयित्वा चागता वयम्। यच्चाग्रतो न प्रेषितः संवादकस्तदेकं तावदन्तरा गच्छतो देवस्यासौ न परापतत्येव। अपरमपि चिरात्प्रविष्टमात्रस्यैव देवस्य मा पुनरागमनक्लेशो भूदिति।

चन्द्रापीडस्य तु तं स्वप्नेऽप्यनुत्प्रेक्षणीयं वैशम्पायनवृत्तान्तमाकर्ण्य युगपदुद्वेगविस्मयाभ्यामाक्रान्तहृदयस्योदपादि चेतसि। 'किं पुनरीदृशस्य सर्वपरित्यागकारिणो वनवासैकशरणस्य वैराग्यस्य कारणं भवेत्। स्वीयं च न पश्यामि किंचित्स्खलितम्। तातप्रसादात्तु मामिव तमपि चरणतललुठित[1]चूडामणयोऽर्चयन्त्येव राजानः। ममेव तस्यापि चेच्छाधिकेषु सर्वोपभोगेषु न किंचिदपि हीयते। ममेव तस्याप्याज्ञा न विहन्यत एव। अहमिव सोऽपि प्रसादान्करोत्येव। मत्त इव तस्मादपि बिभेत्येवापराधिजनः। मयीव तस्मिन्नपि सर्वाः

विस्मितान्तरात्मानः—आश्चर्यितहृदयाः। तद्वृत्तान्तम्—वैशम्पायनस्य दशाम्। अनुभावयन्तः—चिन्तयन्तः निष्प्रत्याशाः—आशारहिताः। तदागमनानयनयोः—तस्य वैशम्पायनस्य आगमने बलादानयने च। नासौ स्वयमागमिष्यति न वाऽस्माभिर्बलादानेतुं शक्यत इति निश्चये जाते तदागमन-तदानयनयोर्विषये नितान्तनिराशा इत्यर्थः। सुकृतशम्बलसंविधानम्—पुण्यपाथेययुतम्। तत्परिकरम्—वैशम्पायनस्य परिजनम्। तत्र—अच्छोदसरस्तीरे वैशम्पायनस्य पार्श्वे। अग्रतो न प्रेषितः—स्वागमनात् पूर्वं न प्रहितः। तदेकम्—तत्रैकं कारणमिदम्। अन्तरा—मध्येमार्गम्। परापतति—आगच्छति। चिरात् प्रविष्टस्य—बहुकालानन्तरमागतस्य नगरीम्। स्कन्धावारागमनात् पूर्वं वैशम्पायनवृत्तान्तसूचको दूतो यन्न प्रहितस्तत्र कारणद्वयं वर्त्तते—अस्माभिश्चिन्तितं यत् मार्गेऽप्रतर्कितं भवन्तं प्रेषितो न प्राप्नुयाद् दूतः, अथ कदाचिद् राजधानीं प्राप्तमात्रं भवन्तं दूतः प्राप्नुयात्तदा नगरीं प्राप्तमात्रेण भवता वैशम्पायनदशां श्रुत्वा पुनः परावर्त्तनायोद्योगः क्रियेत तदा भवतः कष्टं स्यात्, इदमेव कारणद्वयं मनसि कृत्वा पूर्वं दूतोऽस्माभिर्न प्रहित इत्यर्थः।

स्वप्नेऽप्यनुत्प्रेक्षणीयम्—स्वप्नदशायामप्यसंभाव्यमानम्। वैशम्पायनवृत्तान्तम्—वैशम्पायनस्य तादृशीं दशाम्। आकर्ण्य—श्रुत्वा। युगपत्—तुल्यकालम्। उद्वेगविस्मयाभ्याम्—दुःखेन आश्चर्येण च। आक्रान्तहृदयस्य—आक्रान्तचेतसः। चेतसि उदपादि—मनसि आयातम्। सर्वपरित्यागकारिणः—सकलगृहपरिजनादित्यागकारकस्य। वनवासैकशरणस्य—वनवासमात्रोपायस्य। वैराग्यस्य—उदासीनतायाः। स्वीयम्—आत्मनः। किञ्चित्स्खलितम्—कमपि दोषम्। तातप्रसादात्—तस्य मम वा पितुः प्रभावात्। चरणतललुठितचूडामणयः—चरणप्रणताः। अर्चयन्ति—आराधयन्ति। (अतो राज्ञामपि कोऽपि दोषो नास्ति येन वैशम्पायनविरागः सकारणक उत्प्रेक्ष्येत)। इच्छाधिकेषु—यावदिष्यते ततोऽधिकेषु। सर्वोपभोगेषु—सर्वविषयसुखेषु। हीयते—त्रुटिर्भवति। ममेव तस्याप्याज्ञा न विहन्यते—यथाहमव्याहताज्ञः तथैव वैशम्पायनोऽपि सर्वत्राव्याहताज्ञः। अहमिव सोऽपि प्रसादान् करोत्येव—यथाहं निग्रहमनुग्रहं वा करोमि तथैव सोऽपि निग्रहानुग्रहौ करोत्येव। मत्तः—मत्सकाशात्। अपराधिजनः—अपराधी लोकः। मयीव

उनके परिजनों को वहाँ छोड़कर चले आये। पहले जो दूत नहीं भेजा, इसके दो कारण थे एक तो यह कि बीच में वह आपको पा नहीं सकता, दूसरा यह कि बहुत दिनों के बाद आप घर लौटे फिर तत्काल ही आपको लौटने का क्लेश न उठाना पड़े।"

स्वप्न में भी असंभावित उस वैशम्पायन-वृत्तान्त को सुनकर चन्द्रापीड के हृदय में एक ही साथ उद्वेग तथा आश्चर्य उदित हुए, उसने मन में सोचा। इस तरह के वनवास का कारण तथा सर्वपरित्यागी वैराग्य का कौन-सा हेतु हो सकता है। मैं अपनी तो कोई त्रुटि नहीं देख रहा हूँ। पिताजी के प्रसाद से चरणप्रणत राजागण जैसे मुझे मानते हैं उसी तरह वैशम्पायनको भी मानते हैं। मेरी तरह उसको भी यथेच्छ भोग में किसी तरह की कमी नहीं होती है। मेरी तरह उसकी भी आज्ञा का कहीं भी प्रतिघात नहीं होता है। मेरी ही तरह वह भी

[1] १. लुलित।

संपदः। तमप्यालोक्य मामिवोत्पद्यते स्पृहा लोकस्य। अप्यागच्छंस्तातेनाम्बया चार्यशुकनासेन मनोरमया च तनयस्नेहोचितेन सौहार्देन न संभावितः। विनयाधिक्येच्छुना तातेन शुकनासेन वा किंचित्पीडाकरमभिहितम्। ताडितो वा। तत्रापि नैवासावेवमस्नेहलः पिशुनस्वभावो वा गुरुजनाभक्तो वा गुणोपादानविमुखो वा तरलचित्तो वा यत्किंचनकारी यः कश्चिदिव क्षुद्रप्रकृतिराद्यपुत्रतागर्वितो दुःशिक्षितो दुर्विनीतो वा पुत्रैकतादुर्ललितो वा यो जन्मनः प्रभृति सर्वप्रकारोपकारिणो गुरुजनस्योपरि खेदमेवं कुर्यादनुबन्धाद्विरमेद्वा। प्रशमस्यापीदृशस्य नैष कालः। अद्याप्यसौ विद्वज्जनोचिते गार्हस्थ्य एव न निवेशितो देवपितृमनुष्याणामानृण्यमेव नोपगतः। अगत्वा चानृण्यमृणत्रयेण बद्धः क्व गतः। न तेन पुत्रपौत्रसंतत्या वंशः प्रतिष्ठां नीतः। नानन्तदक्षिणैर्महाक्रतुभिरिष्टम्। न सेतुकूपप्रपाप्रासाद-

---

तस्मिन्नपि सर्वाः सम्पदः-यथा सर्वासां सम्पत्तीनामहमुपभोक्ता, तथैव वैशम्पायनोऽपि सर्वासां सम्पत्तीनामुपभोक्ता, तमप्यालोक्य मामिवोत्पद्यते स्पृहा लोकस्य-यथा मामालोक्य लोकस्य स्पृहा-एवंविधोऽभाग्यशाली अहं स्यामितीच्छोत्पद्यते तथैव तमप्यालोक्य लोकस्य स्पृहोत्पद्यत इति किमपि तारतम्यकृतं विरागकारणं न पश्यामीत्याशयः। आगच्छन्-आगमनं कुर्वन् (राजधानीतः प्रयाणकाले)। अम्बया-मम तस्य वा मात्रा। तनयोचितस्नेहेन-पुत्रोचितवात्सल्येन। संभावितः-आदृतः। विनयाधिक्येच्छुना-अधिकां नम्रतामभिलषता। पीडाकरम्-खेदजनकम्। असौ-शुकनाससुतो वैशम्पायनः। एवम्-एतादृशः। अस्नेहलः-अप्रणयी। पिशुनस्वभावः-क्रूरप्रकृतिः। गुणोपादानविमुखः-गुणग्रहणपराङ्मुखः। तरलचित्तः-चञ्चलहृदयः। यत्किञ्चनकारी-अविवेकी। यः कश्चिदिव-साधारणजनवत्। क्षुद्रप्रकृतिः-नीचस्वभावः। आद्यपुत्रतागर्वितः-प्रथमपुत्रत्वप्रयुक्ताभिमानशाली। दुःशिक्षितः-अनुपयुक्तशिक्षाशाली। दुर्विनीतः-दुष्टः। पुत्रैकतादुर्ललितः-एकपुत्रताधृष्टः। सर्वोपकारकारिणः-सकलप्रकारकोपकारपरायणस्य। गुरुजनस्य-मातुः पितुरन्यस्य वा पूज्यजनस्य। खेदम्-क्लेशम्। अनुबन्धाद्विरमेत्-संबन्धं न रक्षेत्, पलाय्य गत्वाऽऽत्मानं गोपयेत्। प्रशमस्य-वैराग्यस्य। ईदृशस्य-यादृशं वैराग्यं वैशम्पायनेन प्रकटीकृतं तादृशस्य। कालः समयः। अद्यापि-सम्प्रत्यपि। विद्वज्जनोचिते-विज्ञोपयुक्ते। गार्हस्थ्ये-गृहस्थधर्मे। निवेशितः-प्रवेशं प्रापितः। सम्प्रत्यद्यावधि विवाहादिविधिना गृहस्थधर्मे पित्रादिभिर्वैशम्पायनो न निवेशितस्तत्तस्य प्रशमदशाश्रयणकथा नितान्तासङ्गता, ऋणत्रयापाकरणपूर्वकत्वात् प्रशमाश्रयणस्य, तदाह-'जायमानो ह वै त्रिभिरृणैर्ऋणवान् भवति स्वाध्यायेनर्षिभ्यः, प्रजया पितृभ्यो, यज्ञेन देवेभ्य' इति, तद्गार्हस्थ्यप्रवेशमन्तरा प्रशमाश्रयणकथा वृथेति भावः। तदेव स्पष्टयति-देवपित्रिति०। आनृण्यम्-ऋणमुक्तिम्। ऋणत्रयेण-देवर्षिपितॄणामकर्णत्रितयेन। बद्धः-सन्दानितः। पुत्रपौत्रसन्तत्या-पुत्राद्यनुक्रमेण। अनन्तदक्षिणैः-पर्याप्तदक्षिणाकैः। महाक्रतुभिः-राजसूयादिनामकैश्चिरायाससाध्यैर्यज्ञैः। इष्टम्-यागः कृतः। सेतवः-बन्धाः, कूपाः-जलार्थखनयः, प्रासादाः-देवमन्दिराणि, तडागाः-जलाशयाः, आरामाः-

---

लोगों का निग्रह;अनुग्रह किया करता है। जिस तरह मुझ से अपराधी डरते हैं उसी तरह उससे भी डरते हैं। मेरी तरह उसकी भी सारी सम्पत्तियाँ हैं। उसे देखकर लोगों को उसी तरह स्पृहा उत्पन्न होती है जैसे मुझे देख कर। क्या आने के समय पिताजीने, माँ ने, आर्य शुकनासने अथवा मनोरमा माँ ने स्नेहवश पुत्रोचित अनुराग से उसे आदृत नहीं किया था? क्या अधिक विनीत देखने की इच्छा से पिताजी ने या आर्यशुकनासने कुछ कड़ी बात कह दी थी या पीटा था? उस अवस्था में वह इतना रूक्ष, दुष्टस्वभावका, गुरु जन का अभुक्त, गुणग्रहणपराङ्मुख, चञ्चलहृदय, क्षुद्रप्रकृति प्रथम पुत्र होने से गर्वित, दुश्शिक्षित, दुर्विनीत, अथवा एकलौता बेटा होने से बिगड़ा हुआ नहीं है कि जन्म से ही सभी तरह से उपकार करने वाले गुरु जन पर—क्रोध करे और आज्ञा मानना छोड़ बैठे। इस तरह के वैराग्य का भी तो यह काल नहीं है। अभी तो वह विद्वानों से आदृत गार्हस्थ्य में भी नहीं प्रविष्ट हुआ है, देवता, पितर तथा मनुष्यों के ऋण से भी नहीं मुक्त हुआ है, इन तीनों ऋणों से बद्ध रह कर वह कहाँ चला गया? न उसने पुत्र-पौत्र-सन्तति से वंश को प्रतिष्ठित किया, न बड़ी दक्षिणा वाले यज्ञ किये,

तडागारामादिभिः कीर्तनैरलंकृता मेदिनी। नाकल्पस्थायि दिशो यायि यशो विप्रकीर्णम्। न गुरवोऽनुवृत्त्या सुखं स्थापिताः। न स्निग्धबन्धूनामुपकृतम्। न प्रणयिनो निर्विशेषविभवतां नीताः। न साधवः परिवर्धिताः। नानुजीविनः संविभक्ताः। नाभ्यागताः कृता निस्तृषः। न दृष्टाः श्रुता वाङ्गनाः। न जातेन जीवलोकसुखान्यनुभूतानि। न तेन पुरुषार्थसाधनानां धर्मार्थकामानामेकोपि हि प्राप्तः। किमेतत्तेन कृतम्।'

इत्याक्षिप्तचेताश्चिन्तयंश्चिरमिव तस्मिन्नेव तरुतले स्थित्वा शून्यहृदयोपि यथाक्रियमाणप्रसादसंभावनासंभावितं विसर्ज्य सकलमेव राजकमुत्थाय तत्क्षणकृतम्, उत्तम्भिततुङ्गतरतोरणाबद्धचन्दनमालम्, उभयपार्श्वस्थापितोत्पल्लवमुखपूर्णहेमकलशम्, द्वारात्प्रभृति सिक्तसंसृष्टभूमिभागम्, अन्तर्बहिश्च प्रकीर्णसुरभिकुसुमप्रकरम्, इतस्ततः संचरता कर्मान्तिकलोकेन गृहीतविविधभृङ्गारम्, मणिचामरतालवृन्तरत्नपादुकाद्युपकरण-

---

उद्यानानि च, तैः कीर्त्तनैः-कीर्त्तिरूपैः। मेदिनी-पृथ्वी। अलङ्कृता-भूषिता। आकल्पस्थायि-प्रलयकालपर्यन्तस्थायि। दिशोयायि-दिग्व्यापकम्। यशः-कीर्त्तिः। विप्रकीर्णम्-विस्तारितम्। गुरवः-मातापित्रादयः पूज्याः। अनुवृत्त्या-सेवया। सुखं स्थापिताः-स्वस्थभावं गमिताः। स्निग्धबन्धूनाम्-प्रियमित्राणाम्। उपकृतम्-उपकारः कृतः। प्रणयिनः-प्रियसुहृदः निर्विशेषविभवताम्-समानधनिकभावम्। नीताः-प्रापिताः। परिवर्धिताः-सत्कारादिना तर्पिताः। संविभक्ताः-धनभागं लम्भिताः। अभ्यागताः-अतिथयः। निस्तृषः-पूर्णाभिलाषाः। अङ्गनाः-स्त्रियः। जातेन-जन्म गृहीतवता। जीवलोकसुखानि-सांसारिकानन्दाः। पुरुषार्थसाधनानाम्-धर्मार्थकाममोक्षोपयोगिनाम्। एकोपि-अन्यतमोऽपि। एतत्-पलाय्यात्मगोपनरूपवैराग्यप्रकटनम्। तेन-वैशम्पायनेन।

इति-एवंप्रकारेण। आक्षिप्तचेताः-चलीकृतहृदयः। तरुतले-वृक्षाधोभागे। शून्यहृदयः-व्यग्रमानसः। यथाक्रियमाणाभ्यां यथोचिताभ्यां प्रसादसंमानाभ्याम् अनुग्रहाभ्यां या संभावना समादरस्तया संभावितं कृतादरं सकलं-समस्तं, राजकं-राजलोकं, विसर्ज्य-गन्तुमाज्ञाप्य। तत्क्षणकृतम्-तत्कालविरचितम्। उत्तम्भिते-उत्थाप्य स्थापिते तुङ्गतरे-अत्युच्चे तोरणे-बहिर्द्वारे आबद्धा-अवलम्बिता चन्दनमाला-चन्दनचर्चितं माल्यं यत्र तादृशम्। उभयपार्श्वयोः-द्वयोरपि भागयोः, स्थापितः-रक्षितः, उत्पल्लवमुखः पल्लवपूर्णमुखभागः पूर्णः-जलसंभृतः हेमकलशः-सुवर्णघटो यत्र तादृशम्। द्वारात्प्रभृति-द्वारदेशमारभ्य। सिक्तो-जलाभ्युक्षितः संसृष्टः-मृत्तिकाचूर्णनसमीकरणादिना प्रसाधितो भूमिभागो यत्र तादृशम्। अन्तर्बहिश्च-अभ्यन्तरभागे बाह्यदेशे च। प्रकीर्णसुरभिकुसुमप्रकरम्-न्यस्तसुगन्धपुष्पसमुदायम्। इतस्ततः-अखिलस्थानेषु। संचरता-भ्राम्यता। कर्मान्तिकलोकेन-अनुचरवर्गेण। गृहीतविविधभृङ्गारम्-धार्यमाणनानाविधपात्रम्। मणिचामरः-मणिनिबद्धमुष्टिश्चामरदण्डः, तालवृन्तम्-व्यजनम्, रत्नपादुका-रत्ननिर्मिता पादुका, तदादि-तत्प्रभृति उपकरणं-सामग्रीजातं पाणौ-हस्ते-यासां तादृशीभिः वारवनिताभिः

न यज्ञ, कूप, धर्मशाला, प्रासाद, तड़ाग, उद्यान आदि कीर्त्तियों से पृथ्वी को अलङ्कृत किया, न प्रलय-पर्यन्त टिकने वाले दिगन्तव्यापी यश फैलाया, न गुरुजनों की आज्ञा मान कर उन्हें सुख दिया, न प्रेमी बन्धुओं का उपकार किया, न अनुचरों को धन दिया, न याचकों की याचना पूरी की, न स्त्री-सुख भोगा, न संसार का मजा लूटा। पुरुषार्थ के साधन धर्म, अर्थ, काम में से एक की भी प्राप्ति उसने नहीं की, फिर उसने यह क्या किया?

इन बातों से चन्द्रापीड़ का हृदय खिन्न हो उठा, वह चिन्ता करते हुए कुछ देरतक उसी वृक्ष के नीचे शून्य-हृदय बैठे रहे, इसके बाद वह उठ खड़े हुए, समस्त राजगण का प्रसाद, सम्मान, आदर आदि से यथोचित सत्कार किया, उन्हें विदा किया, और तत्काल अपने लिये प्रस्तुत किये गये पटमण्डप में चले गये, उस पटमण्डप के ऊँचे उठे तोरण में चन्दनमाला लटक रही थी, दोनों भाग में पल्लवपूर्णमुख हेमकलश स्थापित थे, द्वार-देश से लेकर समस्त भूमि सिक्त तथा समीकृत थी, भीतर और बाहर सुगन्धिपुष्प बिखेरा हुआ था, इधर उधर घूमते हुए भृत्यगण पानी के पात्र लिये हुए थे, मणिचामर, व्यजन, रत्नपादुका प्रभृति उपकरण हाथ में लिये

पाणिगिर्वारवनिताभिश्चाकीर्णम् , वितानतलवर्तिता मदामोदाधिवासितदिगाननेन राजहस्तिना गन्धमादनेन सनाथीकृतैकपार्श्वम् , अपरपार्श्वेपि कल्पितेन्द्रायुधावस्थानम् , उपवाह्यकरेणुकाक्रान्तबाह्याङ्गणम् , अशेषद्वारावहितबहुवेत्रिलोकं महत्त्वाद्गम्भीरतयानेकसत्त्वशरणतया च महाजलनिधिमनुकुर्वाणाम् । तथा हि सवेलावनमिव यामावस्थितानेककरिघटापरिकरेण, अन्तःप्रविष्टमहाशैलमिव गन्धमादनेन, सकल्लोलमिव संचरत्संभ्रान्तकर्मान्तिकलोकोर्मिपरंपराभिः, सावर्तमिव प्राहरिकजनमण्डलावस्थानैः, सलक्ष्मीकमिव वाराङ्गनाभिः, सरत्नमिव महापुरुषैः, सहंसमालमिव सितपताकाभिः, सफेनपटलमिव कुसुमप्रकरैः, हरिमिवानन्तभोगपरिकरं कायमानमविशत् ।

वेश्याभिः, आकीर्णम्–व्याप्तम् । महामोदाधिवासितदिगाननेन–महता सुगन्धेन दिङ्मुखानि सुगन्धीनि कुर्वता । राजहस्तिना–राजादृतेन करिणा हस्तिराजेन वा गन्धमादनेन–तन्नाम्ना गजेन । सनाथीकृतः–युक्तो भूषितश्च एकः पार्श्वभागो यस्य तथोक्तरूपम् । अपरपार्श्वेऽपि–गन्धमादनयुक्तभागादन्यभागेऽपि । कल्पितं रचितम्, इन्द्रायुधस्य तदाख्यस्य चन्द्रापीडतुरगस्य अवस्थानं स्थितिर्यत्र तत्तथोक्तम् । उपवाह्या वाहनोपयुक्ताः याः करेणुकाः–स्त्रीगजाः ताभिः आक्रान्तं–व्याप्तम् बाह्यम्··आभ्यन्तरभिन्नम् अङ्गणम्–अजिरं यस्य तथोक्तम् । अशेषेषु· सकलेषु द्वारेषु अवहितः सावधानभावेन अवस्थितः बहुवेत्रिलोकः ·अनेकवेत्रधारिपुरुषवर्गो यत्र तादृशम् । महत्त्वात् विशालत्वात् । गम्भीरतया· पर्याप्तावकाशतया । अनेकसत्त्वशरणतया··नानाप्राणिसमाश्रिततया च । महाजलनिधिम्··महासागरम् । अनुकुर्वाणम्··अनुहरन्तम् । सागरोपि विशालो गम्भीरो नानाप्राणियुक्तो भवति, अयमपि तथेतिकायमानस्यात्र सागरानुकर्तृत्वमुक्तम् । इतः परम् श्लिष्टविशेषणोत्थापितां कायमानस्य सागरेणोपमां तदन्यथोपमाभिर्योजयिष्यति, तथाहि· सागरकायमानयोः समानतायां प्रमाणं दर्शयतीत्यर्थः । सवेलावनम्· तटवर्त्तिवनयुक्तम्··यामावस्थितेन· प्रहरिभावेनावस्थितेन अनेकेषां··बहूनाम् करिणां–हस्तिनां याः घटाः–समूहास्तासां परिकरेण–समुद्रतटे वेलावनं भवति, कायमानस्याग्रे च तत्स्थानीयाः यामावस्थिताः गजाः सन्ति, तदस्य कायमानस्य समुद्रानुकारित्वं प्रमापितं भवतीत्याशयः । अन्तः प्रविष्टः–अभ्यन्तरभागे लीनः महाशैलः–मैनाकपर्वतो यत्र तम्, सागरे मैनाकोऽन्तःप्रविष्टोऽत्र च तत्तुल्यो गन्धमादननामा गज इति तदनुकारिता व्यक्ता । सकल्लोलम्–तरङ्गमालाकुलम् । सञ्चरन्तः–इतस्ततो धावन्तो ये सम्भ्रान्ताः–वेगसञ्चारिणः कर्मान्तिकलोकाः परिजनास्तेषामूर्मिपरम्पराः-तरङ्गसमुदायास्ताभिः । सागरे तरङ्गा अत्र कायमाने च धावतां कर्मान्तिकलोकानामेवोर्मय इति समतयाऽस्य सागरानुकारित्वम् । सावर्त्तम् ·अम्भसां भ्रमिभिर्युतम् । प्राहरिकजनाः प्रहरिणो लोकास्तेषां मण्डलस्य समुदायस्य अवस्थानैः स्थितिभिः । सागरे यथाऽऽवर्त्तास्तथात्र प्राहरिकजना इति भावः । सलक्ष्मीकम् लक्ष्मीसहितम्, वाराङ्गनाभिः· वेश्याभिः । सागरे लक्ष्मीरत्र च तत्समानरूपा वेश्याः सन्तीति तदनुकरणमस्य । महापुरुषैरेव रत्नैरस्य सागरसाम्यमिति । सागरे हंसमाला तत्स्थानेऽत्र सिताः स्वच्छाः पताका ध्वजाः । सागरे फेनपटलः, अत्र तत्स्थाने पुष्पचयः, एतावत्पर्यन्तं कायमानस्य सागरानुकारित्वमुक्तम्, सम्प्रति श्लिष्टविशेषणोत्थापितयोपमया एकया कायमानस्यास्य हरिसादृश्यमाह–हरिमिवेति, अनन्तस्य तन्नामभेदस्य शेषनागस्य भोगाः फणा एव परिकरः शयनसा·

वेश्यायें वहाँ भरी थीं, एक तरफ चँदवे के नीचे दिग्दिगन्त को सुगन्धित करता हुआ राजहस्ती गन्धमादन बँधा हुआ था, दूसरी ओर इन्द्रायुध का स्थान बनाया गया था, बाहर आँगन में सवारी में उपयुक्त होने वाली हथिनी खड़ी थी, सभी द्वारों पर वेत्रहस्त द्वारपाल सावधान थे, और वह पटमण्डप महत्त्व, गंभीरता एवं अनेक सत्त्वाश्रयता सागर का अनुकरण कर रहा था । समुद्र के किनारे वन इसके आगे पहरे पर के हाथी ही वन हैं, समुद्र में पर्वत प्रविष्ट हैं इसमें गन्धमादन नामक हाथी ही पर्वत है, कार्यकर्त्ता भृत्यों के दल की परम्परा ही यहाँ तरङ्ग है, यहाँ पहरेदारों के दल ही आवर्त्त हैं, वाराङ्गनायें लक्ष्मी हैं, महापुरुष रत्न हैं, सितपताकायें हंसमाला हैं, फूल ही फेनपटल हैं, अनन्तभोगपरिकर ही वहाँ हरि था ।

प्रविश्य चागृहीतप्रतिकर्मतया मलिनवेषाभिरुद्विग्नदीनमुखीभिरितस्ततो वाराङ्गनाभिर्यामिकलोकेन कर्मान्तिकैश्च प्रणम्यमानस्तूष्णीमिवालोककारकेणेव मदामोदेनावेदिते निसृष्टशून्यदृष्टिर्गन्धमादने शनैः शनैर्वासभवनमयासीत्। तत्र चापनीतसमायोगो विमुच्याङ्गानि शयनीये तरुतालवृन्तानिलेन संवीज्यमानोऽङ्गसंवाहकारिभिश्च शनैः शनैरपनीयमानागमनखेदः सकलरजनीप्रजागरखिन्नोऽपि चाप्राप्तनिद्रासुखो दुःखासिकया पुनरपि दुःखान्तरहेतुं चिन्तामेवाविशत्। 'यदि तावदप्रतिमुक्तस्तातेनाम्बया वा महति शोकार्णवे निक्षिप्य तौ तनयविरहशोकविक्लवं तातं शुकनासमम्बां च मनोरमामनाश्वस्यास्मादेव प्रदेशाद्गच्छामि तदा मयापि वैशम्पायनस्यानुकृतं भवति। निवृत्य पुनर्गमने चामुक्तिपक्षमाशङ्कते मे हृदयम्। तत्किं करोमि। अथवास्थान एवाप्रतिमुक्तिशङ्का मे प्रियसुहृदात्मानं मां च परि-

---

धनं यस्य तादृशम्, अन्यत्र अनन्तः अपरिमितः भोगपरिकरः भोगोपयोगिवस्तुजातं यत्र तादृशमिति। काथमानम्—पटावृतिम्, पटनिर्मितं विश्रामगृहम्। अविशत्—प्रविष्टवान्।

अगृहीतप्रतिकर्मतया—अकृतप्रसाधनतया। मलिनवेषाभिः—अप्रशस्तरूपाभिः। उद्विग्नदीनमुखीभिः—चिन्ताक्षीणप्रभवदनाभिः। वाराङ्गनाभिः—वेश्याभिः। यामिकलोकेन—प्रहरिवर्गेण। कर्मान्तिकैः—परिजनैः। प्रणम्यमानः—नमस्कारद्वारा समाद्रियमाणः। आलोककारकेण—प्रकाशकारिणा। मदामोदेन—मदगन्धेन। यथा कोऽप्यालोककारी पदार्थः किमपि तमोनिहितं वस्तु सूचयति तथैव मदगन्धो गन्धमादनं नाम हस्तिनं सूचितवानिति भावः, निसृष्टशून्यदृष्टिः—निहिताप्रतिमनयनः। वासभवनम्—पटमण्डपान्तर्गतं विश्रामकक्षम्। अपनीतसमायोगः—दूरीकृताधिकवसनाभूषणः। शयनीये—शय्यायाम्। अङ्गानि विमुच्य—शरीरं पातयित्वा। तरुतालवृन्तानिलेन—वृक्षरूपव्यजनवायुना। संवीज्यमानः—अनिलकृतं सुखं प्राप्यमाणः। अङ्गसंवाहनकारिभिः—शरीरमर्दनकरैः। अपनीयमानागमनखेदः—दूरीक्रियमाणमार्गचलनजन्यशरीरक्लमः। सकलरजनीप्रजागरखिन्नः—समस्तरात्रिजागरणश्रान्तः। दुःखासिकया—दुःखमग्नावेन। दुःखान्तरहेतुम्—अन्यदुःखकारणम्। चिन्तामेवाविशत्—चिन्तामेव कर्तुमारब्धवान्। अप्रतिमुक्तः—अननुमनाविष्टः। शोकार्णवे—शोकसागरे। निक्षिप्य—पातयित्वा। तौ—तातमम्बां च तनयविरहशोकविक्लवम्—पुत्रवियोगव्यथाखिन्नम्। अनाश्वास्य—धैर्यमधारयित्वा। अस्मादेव प्रदेशात्—मध्येमार्गादस्मात्स्थानात्। गच्छामि—वैशम्पायनान्वेषणाय यात्रां करोमि। वैशम्पायनस्यानुकृतं भवति—वैशम्पायनो यथाऽपृष्ट्वा तातमम्बां च गतस्तथैव मयापि गतं स्यात्तथागमनं च ममाप्यनुचितमेवेत्यर्थः। निवृत्य पुनर्गमने—राजधानीं गत्वा पुनर्वैशम्पायनान्वेषणाय गमनविषये। अमुक्तिपक्षम्—तातोऽम्बा च मां न मोचयत इति पक्षम्। आशङ्कते—संभावयति। अथवा—पक्षान्तरम्। अस्थाने—अयुक्ता। अप्रतिमुक्तिशङ्का—तातोऽम्बा च मां न मोचयत इति शङ्का। प्रियसुहृदा—मम प्रियमित्रेण वैशम्पायनेन। आत्मानम्—आत्मस्वरूपं

उस पटमण्डप में जब चन्द्रापीड पैठे तब शरीर-संस्कार नहीं करने के कारण मलिनवेश्याओं ने, प्रहरियों ने और भृत्यों ने उन्हें प्रणाम किया, फिर भी वह चुप रहे। प्रकाशकर्त्ता की तरह मद की सुगन्ध ही जिसे दिखा रहा था, उस गन्धमादन गजपर सूनी दृष्टि डालकर चन्द्रापीड वास-भवन में गये। वहाँ जाकर उन्होंने साजसज्जा उतार कर रख दी, अपने अङ्ग शयन पर डाल दिये, पङ्खावाले तालवृन्त से हवा करने लगे, शरीर दबाने वालों ने धीरे-धीरे शरीर की थकावट मिटा दी, यद्यपि वह रात में जागते रहे थे फिर भी उन्हें नींद नहीं आई, वह पुनः अन्यान्य दुःखों को उत्पन्न करने वाली चिन्ता में लग गये।

'यदि मैं माता-पिता की आज्ञा बिना प्राप्त किये उन्हें विशाल शोक-सागर में डालकर और पुत्र-विरह से विह्वल आर्य शुकनास एवं मनोरमा माँ को बिना आश्वासन दिये यहीं से चला जाता हूँ तब तो मैं भी वैशम्पायन का ही अनुकरण करता हूँ। अगर मैं लौट जाता हूँ तब मेरे मन में भय है कि वह मुझे पुनः आने ही नहीं देंगे। तब मैं क्या करूँ? अथवा मेरे नहीं छूट पाने की आशङ्का निर्मूल है। मेरे प्रिय मित्र वैशम्पायन ने मुझे तथा

त्यजताप्यपरेण प्रकारेण गमनमुत्पादयता कादम्बरीसमीपगमनोपायचिन्तापर्याकुलमतेरु-पकृतमेव। तदधुना वैशम्पायनप्रत्यानयनाय यान्तं न तातो नाम्बापि नार्यशुकनासोपि निवा-रयितुं शक्नोति माम्। गतश्च वैशम्पायनसहितस्तेनैव पार्श्वेन पुरस्ताद्गमिष्यामि।' इति निश्चित्य तत्कालकृतं वैशम्पायनवियोगदुःखं परिणामसुखमौषधमिव बहु मन्यमानो मुहूर्त-मिव स्थित्वा विश्रान्तः सुखितैरङ्गैरापूरिते तृतीयार्धयामशंखे शरीरस्थितिकरणायोदतिष्ठत्।

उत्थाय च यत्रैव कादम्बरी तत्रैव वैशम्पायन इति स्वधैर्यावष्टम्भेनैव संस्तभ्य हृदयं शून्यान्तरात्मा पुनरेव संवर्गिताशेषराजलोकः शरीरस्थितिमकरोत्। कृताहारश्चान्तर्ज्वलतो मदनानलस्य वैशम्पायनविरहशोकाग्नेश्च बहिरपि संतापदानाय साहायकमिव कर्तुमुपरि

मां चन्द्रापीडम्। आत्मनोऽस्याऽभिन्नमित्रता व्यक्तीकृता। अपरेण-विचित्रेण गुप्तेन च। गमनमुत्पाद-यता-स्वां यात्रां साधयता। कादम्बरीसमीपगमनोपायचिन्तापर्याकुलमतेः-केन प्रकारेण कादम्बर्याः समीपं गच्छामीति चिन्तया व्यग्रधियः। मे-मम। उपकृतम्-उपकारः कृतः। अयमर्थः-वैशम्पायनो गुप्तया स्वयात्रयानया कादम्बरीसमीपगमनविषयचिन्तया व्यग्रमानसस्य मम कृते तदन्वेषणाय कादम्बरीसमीपदेशवर्तिवैशम्पायनान्वेषणाय गमनस्यौचित्यप्रापितत्वेन तत्समीपप्राप्तिसौविध्यमुपपाद्यो-पकारमेव कृतवानिति। वैशम्पायनप्रत्यानयनाय-तत्परावर्त्तनाय। यान्तम्-गच्छन्तम्। निवारयितुं शक्नोति-निरोद्धुमीष्टे। गतश्च-वैशम्पायनान्वेषणमुद्दिश्याच्छोदसरोवरं प्राप्तश्चाहम्, तेनैव पार्श्वेन-तस्याच्छोदसरस एकेन भागेन। पुरस्तात्-अग्रे, कादम्बरीसमीपमिति मनसिकृत्यायं प्रयोगः। तत्काल-कृतम्-तस्मिन्समये जातम्। परिणामसुखम्-अवसानसुखप्रदम्। औषधम्-भैषज्यम्। यथा किमपि भेषजं स्वादे कटु विरसमपि व्याधिप्रशमनद्वारा परिणामे सुखं जनयति तद्वदिदं वैशम्पायनवियोगदुःख-मपि परिणामे कादम्बरीसमीपसमुपसर्पणसौविध्यमुपपाद्य सुखं जनयिष्यतीति वैशम्पायनवियोगदुःख-भेषजयोः सादृश्यं बोध्यम्। विश्रान्तः-कृतविश्रामः। सुखितैः-स्वस्थतां गतैः। तृतीयार्धयामशङ्खे-तृतीयप्रहरार्धयामशंखे-सार्धद्विप्रहरमितायां रात्रौ गतायां तत्सूचके। आपूरिते-आध्माते वादिते सती-त्यर्थः। शरीरस्थितिकरणाय-शरीरकार्याणि कर्त्तुम्। उदतिष्ठत्-उत्थितः।

स्वधैर्यावष्टम्भेन-धैर्यावलम्बनेन। संस्तभ्य-दृढीकृत्य। शून्यान्तरात्मा-विकलहृदयः। संवर्गिता-शेषराजलोकः-विसर्जितसमस्तानुगामिनृपसमूहः। शरीरस्थितिम्-स्नानभोजनादिकम्। ज्वलतः-प्रदी-प्यमानस्य। मदनानलस्य-कामवह्नेः। बहिरपि सन्तापदानाय-बाह्यदेशादपि सन्तापं दातुम्। साहाय-कम्-सहायताम्। उपरिस्थितः-आकाशरूपोर्ध्वदेशे वर्त्तमानः। (मध्याह्नं वर्णयितुमिच्छुः कविः सूर्य-स्याकाशारूढतायां कारणमुत्प्रेक्षितवानत्र, चन्द्रापीडस्य हृदये कादम्बरीविषयककामाग्निर्वर्त्तते, वैशम्पा-यनविरहशोकाग्निश्चास्ति, तयोरन्योः सन्तापनशक्तिं वर्द्धयितुं बाह्यभागादपि सन्तापं प्रदातुं वियन्मध्य-

---

अपने आत्मीय जनों को छोड़कर भाग खड़े होने के द्वारा कादम्बरी के समागम के उपाय की चिन्ता में व्यग्र चन्द्रापीड का उपकार ही किया है। अब वैशम्पायन को लौटा लाने को जब मैं जाने लगूँगा तब मुझे पिताजी, माताजी या आर्य शुकनास, कोई नहीं रोक सकते हैं। जाने पर मैं वैशम्पायन को साथ करके उसी जगह से आगे बढ़ जाऊँगा। इस तरह निश्चय करने पर उन्हें वैशम्पायन के वियोग का कष्ट परिणामसुख औषध की तरह अच्छा लगने लगा, वे कुछ देर विश्राम करके प्रसन्न अङ्गों से तृतीय प्रहर की सूचना देनेवाले शङ्ख के बजने पर शरीरकृत्य सम्पादनार्थ उठ गये।

चन्द्रापीड ने यह सोचकर कि 'जहाँ कादम्बरी है वहीं वैशम्पायन भी है'। इसी से उसके हृदय को धैर्य प्राप्त हुआ, यद्यपि उसकी आत्मा शून्य हो रही थी, फिर भी उसने समस्त राजगण को धीरज बँधाया, और उनके साथ ही शरीर-कार्य सम्पन्न किये। भोजन-समाप्त करने के बाद उसे ऐसा मालूम पड़ा कि भीतर तथा बाहर ज्वलित होनेवाली कामाग्नि तथा वैशम्पायन विरहाग्नि की सहायता पहुँचाने के निमित्त ऊपर-नीचे सभी दिशाओं में किरणों को फैलाकर मैं भी सन्ताप बढ़ाऊँगा, इसी उद्देश्य से सूर्य आकाश के मध्य में आ गया है,

स्थितश्चातिकष्टमष्टास्वपि दिक्षु युगपत्प्रसारितकरः करोम्ययत्नेनैव संतापमित्याकलय्येव गगनतलमध्यमारूढे सवितरि, आतपव्याजेन रजतद्रवमिवोत्तप्तमुद्गिरति रश्मिजाले, निर्भिद्य विशन्तीष्विव शरीरमातपकणिकासु, पुञ्जयमानप्राणिसंघातासु तलप्रवेशात्संकटायमानासु पादपच्छायासु, बहिरालोकयितुं चाप्यपारयन्तीषु दृष्टिषु, दिङ्मुखेषु ज्वलत्स्विव, दुःस्पर्शासु भूमिषु, निःसंचारेषु पथिषु, संकटप्रपाकुटीरोदरोदपीतिपुञ्जितेष्वध्वन्येषु, नाडिंधमश्वासातुरेषु स्वनीडावस्थायिषु पत्त्ररथेषु, पल्वलान्तर्जलप्रवेशितेषु, महिषवृन्देषु, अरविन्ददलशकलकिञ्जल्कविच्छुरितमिच्छाविलोडितोत्त्रुटितबिसकाण्डच्छेददन्तुरं निपानसरःपङ्कमारोहत्सु करियूथेषु, रक्ततामरसकान्तिषु ललनाकपोलोपान्तेषु, दलितमुक्ताक्षोदानुकारिणीषु विराजमानासु घर्मजलकणिकावलीषु, स्मर्यमाणायां ज्योत्स्नायाम्, गृह्यमाणेषु तुषारगुणेषु,

---

मारोहति सूर्य इति) अतिकष्टम्-अत्यन्ततीव्ररूपेण । दिक्षु-दिशासु । युगपत्प्रसारितकरः-समकालमेव विस्तृतकिरणः । अयत्नेन-विनैव प्रयासम् । आकलय्य-विचार्य । गगनतलमध्यम्-आकाशमध्यभागम् । सवितरि-सूर्ये । आतपव्याजेन-सूर्यरश्मिच्छलेन । रजतद्रवम्-द्रुतं रजतम् । उद्गिरति-वितरति । रश्मिजाले-किरणसमूहे । आतपकणिकासु-आतपखण्डेषु । निर्भिद्य-भित्त्वा । विशन्तीष्विव-प्रवेशमिव कुर्वतीषु । पुञ्जयमानप्राणिसंघासु-एकत्रीभूतप्राणिसमूहासु । तलप्रदेशात्-वृक्षतलसङ्कुचितत्वात् । सङ्कटायमानासु-सङ्कीर्णतां गतासु । वृक्षच्छायास्तलप्रविष्टाः, तत्र च सर्वे प्राणिनः पुञ्जीभूता इति छाया नितान्तसंकीर्णतां गतेत्यर्थः । बहिः-छायातो बाह्यभागे । आलोकयितुम्-द्रष्टुम् । अपारयन्तीषु-अशक्तासु । दिङ्मुखेषु-दिगवकाशेषु । ज्वलत्सु-दह्यमानेषु । दुःस्पर्शासु-सन्तप्ततया कष्टेन स्प्रष्टुं शक्यासु । निःसञ्चारेषु-लोकसञ्चरणशून्येषु । पथिषु-मार्गेषु । सङ्कटम् अतिसङ्कीर्णं यत्प्रपायाः पानीयशालायाः कुटीरस्य लघुभवनस्य उदरं मध्यभागस्तत्र उदपीतये जलपानाय पुञ्जितेषु एकत्रीभूतेषु । अध्वन्येषु-पथिकेषु । नाडिन्धमैः अत्युष्णैः श्वासैः निश्वासपवनैः आतुरेषु व्यग्रेषु । स्वनीडावस्थायिषु-आत्मकुलायस्थितेषु । पत्त्ररथेषु-पक्षिषु । पल्वलान्तर्जलप्रवेशितेषु-अल्पजलाशयमध्यं गमितेषु । महिषवृन्देषु-कासरकुलेषु । अरविन्दस्य कमलस्य यानि दलशकलानि पत्रखण्डानि तैः किञ्जल्कैश्च विच्छुरितम् व्याप्तम्, इच्छया यथेच्छम् विलोडितानाम् मर्दितानाम् अत एव च उत्त्रुटितानाम् खण्डतां गतानाम् बिसकाण्डानाम् कमलनालदण्डानाम् छेदैः खण्डैः दन्तुरम् निम्नोन्नतम् व्याप्तमित्यर्थः । निपानसरःपङ्कम्-उदकपूर्णसरोवरपङ्कभागम् आरोहत्सु प्रविशत्सु करियूथेषु-हस्तिनिवहेषु । (मध्याह्नमार्तण्डे तपति सति सन्तापकदर्थिताः करिणो जलाशयं प्रविश्य तत्पङ्कभागं प्रवेष्टुमिवेच्छन्ति, तथा सति सन्तापापनोदनस्य शक्यक्रियत्वेनोत्प्रेक्षणादिति भावो बोध्यः) ललनानां सुन्दरीणां कपोलेषु गण्डदेशेषु रक्ततामरसकान्तिषु रक्तकमलसादृश्यं गतेषु सत्सु । (मध्याह्ने सन्तापाधिक्यवशाद्वनिताकपोलदेशा रक्ताभा जायन्त इत्याशयेनेदमुक्तम्) घर्मजलकणिकावलीषु-स्वेदजलबिन्दुनिकरेषु । दलितमुक्ताक्षोदानुकारिणीषु-चूर्णीकृतमौक्तिकखण्डसादृश्यं प्राप्तासु । विराजमानासु-शोभमानासु सतीष्वित्यर्थः । (कायसंसक्ताः स्वेदबिन्दुकणिकाश्चूर्णीकृतमुक्ताखण्डवदवभासन्त इत्यभिप्रायः) स्मर्यमाणायाम्-ध्यानपथं प्राप्यमाणायाम् । ज्योत्स्नायाम्-चन्द्रिकायाम् । (दिवा सूर्यसन्तापिता निशायां शैत्यप्रधानविधया कृतोपकारां चन्द्रिकां स्मरन्ति,

---

सूर्य की किरणें धूप के व्याज से रजतद्रव उगिल रही हैं, धूप के कण शरीरभेदन करके भीतर पैठ-से रहे हैं, पेड़ों के नीचे प्राणियों का दल एकत्र हो गया है जिससे पेड़ों की छाया सङ्कट में पड़ गई है, दृष्टियाँ बाहर देखने में भी असमर्थ हो रही हैं, दिशायें जल रही हैं, भूमि को छूना दुश्वार हो रहा है, राहें सूनी हो रही हैं, संकरी पनशाला के बीच पानी पीने के लिये यात्री एकत्र हो रहे हैं, अपने घोसलों में बैठे पक्षिगण व्याकुल होकर गरम साँस ले रहे हैं, महिषवृन्द जलाशयों के भीतर पैठ गये हैं, हाथी का समुदाय अरविन्द के पत्ते, टुकड़े एवं किञ्जल्क से व्याप्त तथा इच्छानुसार तोड़े गये मृणालदण्ड के टुकड़ों से पटे जलाशयपङ्क में घुस रहा है, रक्तकमलाभ ललनाकपोलस्थलों में चूर्ण किये गये मोती के पराग की तरह दीखनेवाले स्वेदकण चमक रहे हैं, लोग ज्योत्स्ना

वाञ्छ्यमाने पयोदकालाभ्यागमे, अभ्यर्थ्यमाने दिवसपरिणामे, प्रदोषदर्शनाकाङ्क्षिषु हृदयेषु, उत्थाय सरस्तीरकल्पितम् , अनवरतापतज्जलासारसेकनिवारितोष्णकरकिरणसंतापम् , एकसंतानावलीधारावर्षवेगवाहिन्या निर्झरिण्येव कुल्यया परिक्षिप्तम् , अन्तरालम्बितजलजम्बूप्रवालाहितान्धकारम् , आमुक्तकुसुमपल्लवलतावृताखिलस्तम्भसंचयम् , अतनुहरिचन्दनचर्चार्द्रम् , मरकतश्यामपद्मिनीपलाशास्तीर्णसमस्तभूतलम् , आमोदमानसरसस्फुटितारविन्दराशिदत्तप्रकरम् , आकीर्णसरसबिसकाण्डम् , अकाण्डकल्पितप्रावृट्कालमितस्ततो वर्षन्तीभिः शैवलप्रवालमञ्जरीभिः, जलदेवताभिरिव सद्यः स्नानार्द्रचिकुरहस्ताभिरुपगृ-

अभावे तस्यावश्यकतायामुपनतायाञ्च तस्यामेव वस्तुविशेषगुणाः स्मृतिमारोहन्तीति प्रसिद्धेः) तुषारगुणेषु-तुषारस्थितेषु शैत्यादिगुणेषु। गृह्यमाणेषु-ज्ञायमानेषु सत्सु । पयोदकालाभ्यागमे-वर्षासमयस्यागमे। वाञ्छ्यमाने-लोकैः काम्यमाने सति। दिवसपरिणामे-दिनावसाने अभ्यर्थ्यमाने लोकैः प्रार्थ्यमाने सति। हृदयेषु लोकानां चित्तेषु। प्रदोषदर्शनाकाङ्क्षिषु-रात्रिप्रारम्भसमयावलोकनं कामयमानेषु सत्सु। उत्थाय-स्वस्थानात् चलित्वा। सरस्तीरकल्पितम्-सरोवरतटे निर्मितम् । इतः प्रारभ्य प्रत्याघातमिव दिवसस्येत्येतावदन्तं जलमण्डपवर्णनम् । अनवरतम् निरन्तरम् आपततः प्रवहमानस्य जलासारस्य वारिधारायाः सेकेन निवारितः दूरीकृतः उष्णकरस्य सूर्यस्य किरणैः करः सन्ताप ऊष्मा यत्र तादृशम् । एकसन्तानावली एकः प्रवाहः तत्र धारावर्षेण जलवृष्ट्या वेगेन वहति तच्छीलया निर्झरिण्या नद्या इव कुल्यया जलप्रणाल्या परिक्षिप्तम् व्याप्तम् । अन्तरालम्बितैः मध्यभागावस्थापितैः जलजम्बूप्रवालैः जम्बूप्रभेदपत्रैः (श्यामलैः) आहित उत्पादितोऽन्धकारो यत्र तादृशम् । आमुक्ताः लम्बिताः कुसुमानि पुष्पाणि पल्लवाः नूतनपत्राणि लताः प्रतत्यश्च ताभिः आवृतः वेष्टितः अखिलः सकलः स्तम्भचयो यत्र तादृशम् । अतन्वा महत्या हरिचन्दनचर्चया चन्दनपङ्कलेपेन आर्द्रम् क्लिन्नम्। मरकतश्यामैः मरकतमणिकृष्णवर्णैः पद्मिनीपलाशैः कमलिनीदलैः आस्तृतम् आच्छादितं समस्तं भूतलं यत्र तादृशम् । आमोदमानैः सुगन्धशालिभिः सरसैः आर्द्रैः स्फुटितैः विकसितैः अरविन्दराशिभिः कमलसमुदयैः दत्तः कृतः प्रकरः आस्तरणं यत्र तादृशम् । आकीर्णम् प्रसारितम् सरसं प्रत्यग्रोद्धृततयार्द्रम् बिसकाण्डम् कमलनालदण्डो यत्र तादृशम् । अकाण्डकल्पितप्रावृट्कालम्-असमये समुपस्थापितवर्षासमयम् । इतस्ततः-यत्र तत्र । वर्षन्तीभिः-जलस्राविणीभिः। शैवलप्रवालमञ्जरीभिः-शैवालमञ्जरीभिः। (शैवलप्रवालमञ्जर्यो जलमण्डपे यत्र तत्र स्थापिताः इतस्ततो वर्षन्तीति जलमण्डपेऽसमय एव वर्षाकाल उपस्थापितो भवतीति वर्णनहृदयम्) वाराङ्गनाभिरुपेतमिति जलमण्डपविशेषणं तत्र वाराङ्गनाविशेषणान्याह-जलदेवताभिरिवेत्यारभ्य उपकरणपाणिभिरित्यन्तेन सन्दर्भेण। जलदेवताभिरिव-जलदेवतासदृशीभिः। सद्यःस्नानार्द्रचिकुरहस्ताभिः हस्तयोः सद्यःस्नानवशादार्द्रं चिकुरं केशपाशं धारयन्तीभिः। उपगृहीता करे धृता सुरभिः सुगन्धपूर्णा कोमला अकठोरस्पर्शा च जलार्द्रिका तालवृन्तं याभि-

का स्मरण कर रहे हैं, पाले के गुण गा रहे हैं, बरसात का आगमन चाह रहे हैं, दिवस के अवसान की प्रार्थना कर रहे हैं, हृदय प्रदोष को देखने की इच्छा कर रहा है। इसी समय चन्द्रापीड़ उठे और सरोवर के तट में बनाये गये जल मण्डप में चले गये। उस जलमण्डप में बराबर गिरती हुई जल की धारा से सूर्य-किरणों का सन्ताप निवारित कर दिया गया था, वह जल-मण्डप एकभाव से गिरने वाली तथा धारा के वेग-वर्षण से निर्झर की तरह लगने वाली नाली से मिला था, बीच में रखे गये जामुन के पत्तों से उस जल-मण्डप में अन्धकार हो रहा था, उसके सारे स्तम्भों पर फूल-पत्ते एवं लतायें लटक रही थीं, वह जलमण्डप अधिक चन्दन लेप से गीला हो रहा था, वहाँ की भूमि मरकतमणि तथा नीलकमल के पत्तों से काली हो रही थी, सुगन्धित एवं विकसित कमल वहाँ लटक रहे थे, गीले मृणालदण्ड यहाँ बिखर रहे थे, शैवाल की मञ्जरियाँ जल की वर्षा कर रही थीं जिससे असमय में वर्षाऋतु की कल्पना जाग उठती थी। सद्यःस्नान से गीले बालों को हाथों में लिये, सुगन्धपूर्ण

१. न-'अतनु'''भूतलम्' नास्ति।

हीतसुरभिकोमलजलार्द्रिकाभिरनाश्यानचन्दनाङ्गरागहारिणीभिर्हारवलयमात्राभरणाभिरवतंसितबालशैवलप्रवालाभिर्मृणाललतालवृन्तकर्पूरपटवासहरिचन्दनचन्द्रकान्तमणिदर्पणाद्युपकरणपाणिभिरबह्वीभिर्वाराङ्गनाभिरुपेतम्, परिभवस्थानमिव निदाघसमयस्य, निदानमिव शीतकालस्य, निवेशमिव वारिवाहानाम्, तिरस्कारमिव रविकराणाम्, हृदयमिव सरसः, सहोदरमिव हिमगिरेः, स्वरूपमिव जडिम्नः, आवासमिव विभावरीणाम्, प्रत्याघातमिव दिवसस्य जलमण्डपमयासीत्।

तत्र चातिरम्यतया क्षुभितमकरध्वजोत्कलिकासहस्रविषमं जलासारशिशिरतया संधुक्षितसुहृद्वियोगानलं महासमुद्रमिव गम्भीरं तं दिवसमेकाकी कथं कथमपि स्वधैर्ययानपात्रेणालङ्घयत्। लोहितायमानातपे सायाह्ने निर्गत्य बहुलगोमयोपलेपहरिते मन्दमन्द-

---

स्ताहशीभिः। अनाश्यानः अधिको यश्चन्दनाङ्गरागः चन्दनलेपस्तेन हारिणीभिः रमणीयाभिः। हारवलयमात्रं केवलो हारवलय एव आभरणं भूषणं यासां ताहशीभिः। अवतंसितबालशैवलप्रवालाभिः भूषणीकृतप्रत्यग्रशैवालपत्राभिः। मृणालः कमलनालः, तालवृन्तम् व्यजनम्, कर्पूरः घनसारः, पटवासः सुगन्धद्रव्यचूर्णम्, हरिचन्दनम्, चन्द्रकान्तमणिदर्पणः चन्द्रकान्तमणिरचितो मुकुरश्च तदादि उपकरणं वस्तुजातं पाणौ हस्ते यासां ताहशीभिः। अबह्वीभिः स्वल्पसंख्याभिः वाराङ्गनाभिः वेश्याभिः। उपेतम्-युक्तम्। निदाघसमयस्य ग्रीष्मकालस्य परिभवस्थानम् पराजयस्थलम् इव। शीतकालस्य-जाड्यसमयस्य। निदानम्-आदिकारणम्। (शैत्यजनकतया जलमण्डपस्य शीतकालनिदानत्वमुक्तम्) वारिवाहानाम्-मेघानाम्। निवेशम्-कादाचित्कनिवासस्थानमिव। तिरस्कारम्-पराभवम्। रविकिरणानाम्-सूर्यकराणाम्। सरसः सरोवरस्य हृदयम्-चित्तम्। हिमगिरेः हिमालयस्य। सहोदरम्-सहोदरभ्रातरम् इव। जडिम्नः-शैत्यस्य। स्वरूपम्-आकारविशेषम्। विभावरीणाम्-रात्रीणाम्। आवासं-निवासदेशम् प्रत्याघातम्-तिरस्कारम्। अत्र कारणे कार्योपचारात्तिरस्कारकारणस्य जलमण्डपस्य तिरस्काररूपतोक्ता, अत एवात्र-'अभेदेनाभिधा हेतोर्हेतुर्हेतुमता सह' इति लक्षितः, 'तारुण्यस्य विलासः समधिकलावण्यसम्पदो हासः। धरणितलस्याभरणं युवजनमनसो वशीकरणम्॥' इत्युदाहृतश्च हेतुर्नामालङ्कारः। जलमण्डपम्-जले निर्मितं शीतलं भवनम्। अयासीत्-गतवान्।

तत्र जलमण्डपे अतिरम्यतया तस्य जलमण्डपस्य सौन्दर्यविशेषेण क्षुभितस्य वर्द्धितस्य मकरध्वजस्य कामदेवस्य यत् उत्कलिकासहस्रम् नानाविधा उत्कण्ठास्ताभिर्विषमम् भीषणम्, जलासारशिशिरतया जलधाराशीततया सन्धुक्षितसुहृद्वियोगानलम् सन्दीपितमित्रवियोगवह्निम्, महासमुद्रम् इव गम्भीरं दुष्पारम् दिवसम् दिनम्। एकाकी सहायान्तरनिरपेक्षः। कथं कथमपि-केनापि प्रकारेण अतिकष्टेनेत्यर्थः। स्वधैर्ययानपात्रेण-स्वकीयधैर्यरूपतरणीसाहाय्येन। अलङ्घयत्-उत्तीर्णवान्। (चन्द्रापीडस्य कृते स दिवसोऽतिदुष्पार आसीत्, यतोऽसौ दिवसोऽतिरम्यतया कामोद्दीपकत्वेन अतिशिशिरतया च मित्रवियोगव्यथोद्दीपकत्वेनातिगम्भीर आसीत्, परन्तु यथा गम्भीरमपि सागरं कोऽपि नौकासाहाय्येन

कोमल पानीफल को हाथों में धारण किये, गाढ़े चन्दन-लेप से सुन्दर दीखने वाली, बाल शैवाल को भूषण रूप में धारण करने वाली, हाथों में मृणाल, तालवृन्त, कपूर की धूलि, चन्दन, चन्द्रकान्तमणि, मणिदर्पण आदि उपकरणों को धारण करने वाली वेश्यायें वहाँ जलदेवता सदृश प्रतीत होती थीं। वह जलमण्डप ग्रीष्मऋतु के लिये पराजय का स्थान, शीतकाल का कारण, मेघों का पड़ाव, सूर्यकिरणों का निवारक, सरोवर का हृदय, हिमालय का सहोदर, शैत्य का स्वरूप, रात्रि का आवास एवं दिन का प्रतिद्वन्द्वी प्रतीत होता था।

उस अति रमणीय स्थान में चञ्चल मकरध्वज की उत्कण्ठा से विषम जलवर्षा से शीतल होने से मित्रवियोगाग्नि को दीपित करने वाले महासागर की तरह गम्भीर उस दिन को किसी तरह अपने धैर्यरूप नौका के सहारे चन्द्रापीड ने पार कर लिया। सायंकाल में धूप के रक्ताभ हो जाने पर जलमण्डप से निकलकर गोमय से लिपे एवं धीमी हवा से चलाये गये सुगन्धपूर्ण श्वेतपुष्पों से शोभित वासभवन के आँगन में सभाभवन की तरह समीपवर्ती

मारुताहतोत्तरलायमानधवलकुसुमप्रकरशोभिनि वासभवनाङ्गणे क्षणमिवास्थाने समासन्नपार्थिवैः सह वैशम्पायनालापेनैव स्थित्वा द्वितीय एव यामे चलितव्यं सज्जीकुरुत साधनमित्यादिश्य बलाध्यक्षमृक्षोदय एव विसर्जिताशेषराजलोको वासभवनमध्यवसत्। अथातिचिरान्तरितोज्जयिनीदर्शनोत्सुको विनापि प्रयाणनान्द्या सकल एव कटकलोकः संवृत्य प्रावर्तत गन्तुम्। आत्मनाप्यलब्धनिद्राविनोदोऽवतरत्येव तृतीये यामे तुरगकरिणीप्रायवाहनेनानतिबहुना राजलोकेन सह विरलकटकसंमर्देन वर्त्मनावहत्। अथाध्वनैव सह क्षीणायां यामवत्याम्, रसातलादिवोन्मज्जत्सु सर्वभावेषु, उन्मीलन्तीष्विव दृष्टिषु, पुनरिवान्यथा सृज्यमाने जीवलोके, विभज्यमानेषु निम्नोन्नतेषु, विरलायमानेष्विव वनगहनेषु, संकुच-

---

तरति तथैव चन्द्रापीडोऽपि धैर्यतरणिसहकारेण तं दिवससागरं लङ्घितवानिति बोध्यम्) लोहितायमाने-रक्ततां प्रतिपद्यमाने। सायाह्ने-दिवसावसाने। निर्गत्य-जलमण्डपाद्बहिरागत्य। बहुलगोमयोपलेपहरिते-अतिप्रचुरेण गोमयकृतलेपनेन हरितवर्णतां प्राप्यमाणे। मन्दमन्दसाञ्चतेन मन्दवायुना आहतं प्रेरितं सत् उत्तरलायमानं चञ्चलीक्रियमाणं यद् धवलकुसुमं श्वेतपुष्पं तत्प्रकरेण तदास्तरणेन शोभिनि शोभायुक्ते। वासभवनाङ्गणे-पटमण्डपरूपवासभवनस्य अजिरे। आस्थाने-सभाभवने। समासन्नपार्थिवैः-समीपवर्त्तिराजपुत्रैः। वैशम्पायनालापेन-वैशम्पायनसंबद्धया कथया। यामे-प्रहरे। सज्जीकुरुत-सन्नद्धभावं प्रापयत। साधनम्-यात्रोपयुक्तं वस्तुजातम्। इति आदिश्य-एवम् आज्ञाप्य। बलाध्यक्षम्-सेनानायकम्। ऋक्षोदये-सन्ध्याकाले नक्षत्रोदये। विसर्जिताशेषराजलोकः-विसृष्टसमस्तराजन्यवर्गः। अध्यवसत्-प्रविष्टः। अथ एतदनन्तरम्। अतिचिरान्तरितम् बहुकालविलम्बितम् यदुज्जयिनीदर्शनम् स्वराजधानीविलोकनम्, तदर्थमुत्सुक उत्कण्ठितः। विनापि प्रयाणनान्द्या-यात्राकालसूचकपटहप्रणादे जातेऽपि। कटकलोकः-सैन्यवर्गः। संवृत्य-मिलित्वा एकत्रीभूय। गन्तुं प्रावर्त्तत-गमने प्रवृत्तः। आत्मना-स्वयमपि। अलब्धनिद्राविनोदः-अनधिगतनिद्रासुखः। अवतरत्येव तृतीये यामे-तृतीयप्रहरे प्रारब्धमात्रे। तुरगकरिणीप्रायवाहनेन-अश्वकरेणुकारूपं वाहनमारूढ। अनतिबहुना-अनतिप्रचुरेण। राजलोकेन-राजन्यवर्गेण। विरलकटकसंमर्देन-कटकसंमर्दरहितेन-विरलप्रचारसैन्ययुक्तेनेत्यर्थः। वर्त्मना-मार्गेण। अवहत्-अचलत्। अथ-एतदनन्तरम्। अध्वना-मार्गेण। क्षीणायाम्-अवसितायाम्। यामवत्याम्-निशायाम्, यथा यथा रात्रिः क्षीयतेस्म तथा तथा मार्गोऽपि क्षीयतेस्मेत्यर्थः। सर्वभावेषु-सर्वपदार्थेषु। रसातलात्-पातालात्। उन्मज्जत्सु-बहिर्भवत्सु। दृष्टिषु-लोकानां नयनेषु। उन्मीलन्तीषु-दर्शनसामर्थ्यं प्राप्नुवतीषु (जाते प्रभाते लोकदृशो वस्तुग्रहणसमर्था जायन्त इति तासामुन्मीलनमत्र वर्णितम्) अन्यथा-प्रकारान्तरेण। सृज्यमाने-निर्मीयमाणे। जीवलोके-संसारे। (निशायां संसारोऽन्धकारनिलीन आसीत् सम्प्रति जायमाने प्रभाते संसारो भूयो दृष्टिपथमवतरतीति तस्य प्रकारान्तरेण सृज्यमानत्वमत्रोत्प्रेक्षितं बोध्यम्)। निम्नोन्नतेषु-नीचोच्चभागेषु। विभज्यमानेषु इदं नीचमिदमुच्चमिति विभागं प्राप्यमाणेषु। वनगहनेषु-घनकाननेषु। विरलायमानेषु-विरलतामापद्यमानेषु। अन्धकारे यानि वनानि नितान्तघनानि प्रतीयन्तेस्म, सम्प्रति तान्येव वनानि प्रकाशवशात् प्राप्तवैरल्यानीव प्रतिभासन्ते

राजागण के साथ चन्द्रापीड़ वैशम्पायन की बात करते रहे, थोड़ी देर के बाद सेनापाल को उन्होंने आदेश दिया कि रात के दूसरे प्रहर में ही चलना है, आप सारी तैयारी कर लें, अनन्तर तारों के उगने पर चन्द्रापीड़ ने राजागण को विदाकर वासभवन में प्रवेश किया। यात्रा का बाजा नहीं बजा, फिर भी बहुत दिनों से उज्जयिनी को नहीं देख पाने के कारण उत्सुक सैन्य-समुदाय यात्रा की तैयारी करने लगा, उन्हें स्वयं निद्रा नहीं आई। तृतीय प्रहर के प्रारम्भ होते ही वह अश्व एवं करिणी को वाहन बनाने वाले थोड़े राजपुत्रों को साथ लेकर थोड़े मार्ग से चल पड़े।

इसके बाद रात के साथ-साथ मार्ग के क्षीण हो जाने पर, पाताल से सारी चीजों के निकलने लगने पर आँखों के उन्मीलित होने लगने पर ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो जीवलोक की पुनः सृष्टि हो रही हो, ऊँचा-नीचा

त्स्विव तरुलतागुल्मेषु, गगनतलमारोहन्त्याः पदे इव बहुललाक्षारसालोहिते दिवसश्रियोऽवश्यायसेकान्नवपल्लव इवोद्भिद्यमाने पूर्वाशालतायाः कमलिनीरागदायिनि दिवसकरबिम्बे, विस्पष्टे प्रभातसमये, कटकलोकेनैव सह परापतितवानुज्जयिनीम्।

अथ दूरत एव प्रसृतिद्वन्द्वसंस्थितैश्च पुञ्ज्यमानैश्च पुञ्जितैश्चाबद्धमण्डलैश्चोपविष्टैः वलितैश्च दत्तकतिपयशून्यपदैश्च निवर्त्यमानैश्चागच्छद्भिश्चोन्मुखैश्चोद्बाष्पदृष्टिभिश्च विवर्णदीनवदनैश्च महाकुष्टशब्दामुखरैश्च दुःखाधिक्याहितमौनैश्च मुनिभिरपि मुमुक्षुभिरपि वीतरागैरपि निःस्पृहैरप्युदासीनैरपि दुर्जनैरपि स्नेहपरवशैः पितृभिरिव सुहृद्भिरिव स्निग्धबन्धुभिरिव च नगरीनिर्गतैरार्त्या पृच्छ्यमानं कथ्यमानं च विचार्यमाणं चानुभाव्यमानं च वैशम्पायनवृत्तान्तमेव समन्ताच्छुश्राव।

शृण्वंश्च चकार चेतसि। 'बाह्यस्य तावज्जनस्येयमीदृशी समवस्था। किं पुनर्येनासा-

---

इति भावः। तरुलतागुल्मेषु–वृक्षलतादिषु। सङ्कुचत्सु खर्वतामल्पतां च भजत्सु। अन्धकारे भूयस्तया प्रतीयमानास्तरुलतागुल्माः प्रकाशे जाते सङ्कोचमिव प्रतिपद्यमानाः प्रतिभासन्त इत्यर्थः। गगनतलमारोहन्त्याः दिवसश्रियो बहुललाक्षारसालोहिते पदे इव, अवश्यायसेकात् पूर्वाशालतायाः उद्भिद्यमाने नवपल्लवे इव, कमलिनीरागदायिनि रविबिम्बे इत्यन्वयः। गगनतलम् आकाशदेशम् आरोहन्त्याः दिवसश्रियो दिनलक्ष्मीरूपनायिकायाः बहुललाक्षारसालोहिते प्रचुरलाक्षारागरञ्जिते पदे चरणे इव (इदमेकमुत्प्रेक्षोपनीतं रविबिम्बस्य विशेषणम्) पूर्वाशालतायाः प्राचीदिशारूपवल्लयाः अवश्यायसेकात् रात्रिचितशीतबिन्दुसेचनात् उद्भिद्यमाने विकासं भजमाने नवपल्लव इव (इदमपरमुत्प्रेक्षोपनीतं रविबिम्बविशेषणम्) कमलिनीरागदायिनि पद्मिनीप्रीतिजनके (इदं तृतीयं साधारणं रविबिम्बविशेषणम्) विस्पष्टे प्रभातसमये–स्फुटे प्रातःकाले जाते। कटकलोकेन–सैन्यसमुदयेन। परापतितवान्–आगतवान्।

प्रसृतिद्वन्द्वसंस्थितैः–किञ्चिद्दूरप्रचलितैः। पुञ्ज्यमानैः–एकत्रीभवद्भिः पुञ्जितैः–एकत्रितैः। आबद्धमण्डलैः–सञ्जातभावं प्रपन्नैः। वलितैः–परावृत्तैः। दत्तकतिपयशून्यपदैः–निरुद्देश्यभावेन कतिचन पदानि चलितवद्भिः। निवर्त्यमानैः अन्यैः परावर्त्यमानैः। उन्मुखैः–ऊर्ध्वीकृताननैः। अधोमुखैः–नम्रवदनैः। उद्बाष्पदृष्टिभिः–साश्रुनयनैः। विवर्णदीनवदनैः–क्षीणप्रभखिन्नाननैः। मुमुक्षुभिः–मोक्षं कामयमानैः। वीतरागैः–विरक्तैः। निःस्पृहैः–सांसारिकभोगविषयेऽनभिलाषशालिभिः। उदासीनैः–स्वर्गादिसुखकामनारहितैः। स्निग्धबन्धुभिः–प्रियमित्रैः। नगरीनिर्गतैः–पुराद्बहिरागतैः। आर्त्या–पीडया। पृच्छ्यमानम्–जिज्ञास्यमानम्। विचार्यमाणम्–अन्योन्यं मन्त्र्यमाणम्। अनुभाव्यमानम्–कथनादिद्वाराऽनुभवविषयतां प्राप्यमाणम्। समन्तात्–सर्वतः।

चेतसि चकार–विचारयामास। बाह्यस्य–आत्मीयभिन्नस्य। समवस्था–स्थितिः असौ–वैशम्पायनः। अङ्केन लालितः–क्रोडे कृतः। संवर्द्धितः–पोषितः। बालचाटवः–बालकोचितानि अव्यक्तमधुराणि

प्रतीत होने लगा, वनगहन घटने लगा, तरु-लता-गुल्म संकुचित सा होने लगा। आकाश पर चढ़ती हुई दिवसश्री के लाक्षाराग-लोहित चरण की तरह एवं ओस के द्वारा सेचन से खिले पूर्व दिशा के नव-पल्लव की तरह दीखने वाला कमलिनी-विकासक सूर्यबिम्ब प्रकट होने लगा, स्पष्ट प्रभात हो गया, उसी समय चन्द्रापीड सैन्य-समुदाय के साथ उज्जयिनी पहुंचे।

उज्जयिनी से कुछ दूर पर से ही एकत्र होने वाले तथा एकत्रित, मण्डल बाँधकर बैठे हुए, चलते हुए, अनमने भाव से लौटते हुए, आते हुए, आये हुए, अश्रुपूर्णनयन, दीनवदन, हाहाकार करने वाले, दुःख से मौन, मुनि, मुमुक्षु, वीतराग, निःस्पृह, उदासीन, दुर्जन, स्नेही, पिता के सदृश, मित्र के सदृश, बन्धु के सदृश, नगरी से आये हुए लोगों को वैशम्पायन के सम्बन्ध में ही पूछते कहते विचारते तथा सोचते हुए चन्द्रापीड ने सुना। सुनकर उन्होंने सोचा—जब तटस्थ व्यक्तियों की यह दशा है तब उस व्यक्ति की कैसी दशा होगी जिसने उसे गोद

वङ्केन लालितः संवर्धितो वा बालचाटवोऽस्यानुभूताः। तदतिकष्टं मे वैशम्पायनेन विना तातस्य शुकनासस्याम्बाया मनोरमाया वा दर्शनम्।' इत्येवं चिन्तयन्नासानिहितोद्बाष्पदृष्टिरदृष्टसर्ववृत्तान्त एव विवेशोज्जयिनीम्। अवतीर्य च स राजकुलद्वारि विशन्नेवार्यशुकनासभवनं सह देव्या विलासवत्या गतो राजेति शुश्राव। श्रुत्वा च निवर्त्य तत्रैव जगाम। गच्छंश्च समीपवर्ती 'हा वत्स वैशम्पायन, अद्यापि मदङ्कलालनोचितो बाल एवासि, कथं त्वमेकाकी व्यालशतसहस्रभीषणे निर्मानुषे तस्मिञ्शून्यारण्ये स्थितः। केन ते तत्रापि सर्वसत्त्वव्याघातकारिणी शरीररक्षा कृता। केन वैषम्यप्रतिपन्थिनी शरीरस्थितिः संपादिता। केन निद्रासुखदायि शयनीयमुपकल्पितम्। कस्त्वयि बुभुक्षिते तृषिते सुषुप्सति वा दुःखितः। ममोत्सङ्गमुत्सृज्य समानसुखदुःखा वधूरपि न पुत्रक त्वयोपात्ता। आगतमात्रस्यैव ते पितरमनुज्ञाप्यात्यर्थं वधूमुखमवलोकयिष्यामीति यन्मया चिन्तितं केवलं तन्मे मन्दपुण्याया न सम्पन्नम्। परं तवापि वदनदर्शनं दुर्लभं भूतम्। वत्स यत्र तेऽवस्थातुमभिरुचितं यस्य तत्रैव मामपि पितरं विज्ञाप्य। त्वामपश्यन्ती न जीवामि। तात त्वयाहं शैशवेऽपि नावमा-

---

मानितानि। अतिकष्टम्-महत् कठिनम्। नासानिहितोद्बाष्पदृष्टिः-अश्रुपूर्णां दृशं नासाग्रे स्थापयन्। अदृष्टसर्ववृत्तान्तः-सकलमपि पुरो वृत्तान्तमपश्यन्। राजकुलद्वारि-राजभवनद्वारदेशे। निवर्त्य-राजभवनात्परावृत्य। तत्रैव-आर्यशुकनासभवनम् एव। समीपवर्त्ती-आर्यशुकनासभवनसमीपं गतः। अद्यापि-सम्प्रत्यपि। मदङ्कलालनोचितः-मदीयक्रोडवासयोग्यः। एकाकी-सहायकान्तररहितः। व्यालशतसहस्रभीषणे-अनेकैः करिभिः सर्पैश्च भयङ्करे। (व्यालपदं श्लेषेण करिणः सर्पांश्चाह) निर्मानुषे-मनुष्यसामान्यशून्ये। शून्यारण्ये-निर्जने वने। सर्वसत्त्वव्याघातकारिणी-सकलप्राणिनिवारयित्री। वैषम्यप्रतिपन्थिनी-विषमतावारणकरी। निद्रासुखदायि-स्वापानन्दप्रदम्। शयनीयम्-तल्पम्। उपकल्पितम्-रचितम्। बुभुक्षिते-भोजनेच्छायुते सति। तृषिते-पिपासाशालिनि। सुषुप्सति-स्वापमभीप्सति। ममोत्सङ्गम्-मदीयं क्रोडम्। उत्सृज्य-त्यक्त्वा। समानसुखदुःखा-त्वयि सुखिते ससुखा, त्वयि दुःखिते च सदुःखा। वधूः-स्त्री। उपात्ता-प्राप्ता। तव पितरमनुज्ञाप्य-तव पितुराज्ञामासाद्य। वधूमुखम्-तव स्त्रियो वदनम्। मन्दपुण्यायाः-हतभाग्यायाः। वदनदर्शनम्-मुखावलोकनम्। न केवलं पुत्रवधूमुखदर्शनालाभ एव परं पुत्रविरहोऽपि समापतित इति महन्ममाभाग्यमिति भावः। अवस्थातुमभिरुचितम्-वासोऽभीष्टः। पितरं विज्ञाप्य-आत्मनो जनकं सूचयित्वा। शैशवे-बाल्यावस्थायाम्। अवमानिता-

---

में रखकर पाला-पोसा है, और उसके बाल्यचापल का अनुभव किया है। अतः मेरे लिये वैशम्पायन के बिना आर्य शुकनास तथा मनोरमा माँ को मुँह दिखलाना बड़ा कठिन है। इस प्रकार सोचते हुए आँखों में आँसू लिये वह बिना सारी घटनाओं की ओर नजर डाले ही उज्जयिनी में प्रवेश कर गये। घोड़े से उतर कर राजभवन के द्वार में प्रवेश करते ही चन्द्रापीड ने सुना कि देवी विलासवती के साथ राजा शुकनास के घर गये हैं। सुनते ही लौटकर वह वहाँ गये। समीप जाने पर चन्द्रापीड ने सुना—'हा बेटा वैशम्पायन, आज भी तूं हमारी गोद में पलने के बालक ही है फिर किस प्रकार सर्पों से भरे मनुष्य शून्य उस महावन में रह गया है। सारे दुष्ट प्राणियों से तुम्हारे शरीर को वहाँ कौन बचावेगा? कौन तुम्हें एक भाव से शरीर-स्थिति का अवसर देगा? कौन तुम्हारे लिये निद्रा-सुखदायी शयन तैयार करेगा? तुम्हारे भूखे-प्यासे होने एवं सोने की इच्छा करने पर किसे वहाँ दुःख होगा! मेरी गोद को छोड़ कर तुमने अभी बहू भी तो नहीं पाई है जो तेरे साथ समान सुख-दुःखिनी बनती। तुम्हारे लौटते ही, मैं तुम्हारे पिता की आज्ञा लेकर तुम्हारी बहू का मुख देखूँगी, मैंने सोच रखा था, परन्तु मेरे अभाग्यवश वह नहीं हो सका। तुम्हारे मुँह के दर्शन भी दुर्लभ हो गये। बेटा, तुम जहाँ रहना चाहते हो, अपने पिताजी से पूछकर मुझे भी वहीं ले चलो। मैं तुम्हें देखे बिना नहीं जी सकती हूं। बेटा, तुमने लड़कपन में भी मेरा अपमान

निता। कुतस्तवेयमेकपद एवेदृशी निष्ठुरता जाता। आ जन्मनः प्रभृति न दृष्टमेव यस्य कुपितमाननं तस्य ते कुतोयमेवंविधो मय्यकस्मादेव कोपः। यदेवं परित्यज्य स्थितोसि। गतोप्यागच्छ शिरसा प्रसादयामि त्वाम्। कोऽपरोस्ति मे। देशान्तरपरिचयान्मुक्तो नामास्मासु स्नेहः। क्षणमप्यनन्तरितदर्शनस्य चन्द्रापीडस्योपरि कथं त्वयेदृशी निःस्नेहता जाता। तात न भद्रकं ते समापत्तितम्। सर्व एव सुखं स्थापनीयो गुरुजनो दुःखं स्थापितः। जानाम्येवं कृत्वा किं त्वया प्राप्तव्यम्।' इतानि चान्यानि चान्तर्भवनगतां प्रत्यग्रतनयविरहशोकविह्वलां स्वयं देव्या विलासवत्या संस्थाप्यमानामपि मनोरमां विप्रलपन्तीमश्रौषीत्।

तेन चातिकरुणेन तत्प्रलापविषेण विह्वल इव निद्रागमेनेव घूर्णमानो निश्चेतनतामनीयत। कथं कथमपि सहजसत्त्वावष्टम्भेनैव संस्तम्भितात्मा प्रविश्य पितुरपि लज्जमानो वदनमुपदर्शयितुमधोमुख एव निस्पन्दसर्वाङ्गेण मन्दराद्रिणेव शुकनासेन सह मथनावसानस्तिमितमिव महार्णवं प्रणम्य पितरं दूरत इवोपाविशत्। उपविष्टं च तं क्षणमिव दृष्ट्वा

तिरस्कृता। एकपदे-अकस्मात्। निष्ठुरता-कठोरता। आजन्मनः प्रभृति-जन्मकालादारभ्य। एवंविधः-एतादृशः। शिरसा प्रसादयामि-शिरोनमनेन त्वां तोषयामि। देशान्तरपरिचयात्-स्थानान्तरस्य परिचयं प्राप्य। मुक्तः-त्यक्तः। अनन्तरितदर्शनस्य-अविलम्बितदर्शनस्य। (यश्चन्द्रापीडस्तव दर्शनं विना कदाचिदपि क्षणमपि न स्थितवान् तस्याप्युपरि त्वयेदृशी अप्रीतिः प्रकटीकृतेति त्वया भद्रं न कृतमिति प्रकरणार्थः) सुखं स्थापनीयः-सुखप्रदानयोग्यः। गुरुजनः-मातापित्रादिः श्रेष्ठवर्गः। प्राप्तव्यम्-लभ्यम्। अन्तर्भवनगताम्-गृहाभ्यन्तरभागेऽवस्थिताम्। प्रत्यग्रतनयविरहशोकविह्वलाम्-नवेन सुतवियोगेन व्यथिताम्। संस्थाप्यमानाम्-धैर्यं धारयितुं प्रबोध्यमानाम्। विप्रलपन्तीम्-विलापं कुर्वन्तीम्। विलपन्तीं मनोरमाम् अश्रौषीदिति धर्मधर्मिणोरभेदोपचारेण प्रयोगः, तथा च मनोरमाविलापमश्रौषीदिति पर्यवसितोऽर्थः। एवमेव—'विलपन्तं कपिञ्जलमश्रौषम्' इति पूर्वार्द्धे कादम्बर्यां बाणभट्टस्य प्रयोगः, 'मन्दानिलापूरकृतं दधानो निध्वानमश्रूयत पाञ्चजन्यः' इति माघेऽपीयमेव गतिः। 'रुदती राघवीरश्शणोत्कपिः' इति वाल्मीकीयरामायणेऽपि एतादृश एव प्रयोगः।

अतिकरुणेन-अत्यन्तहृदयद्रावकेण। तत्प्रलापविषेण-विषवन्मोहजनकेन मनोरमायाः प्रलापेन। विह्वलः-कातरः। निद्रागमेनेव घूर्णमानः-यथा कश्चिन्निद्रायामागच्छन्त्यां क्रमशः सङ्कुचच्चैतन्यो भवति तथैव सङ्कुचच्चैतन्य इत्याशयः। निश्चेतनतामनीयत-अचेतनो जातः। सहजसत्त्वावष्टम्भेन-स्वाभाविकधैर्यावलम्बनेन। संस्तम्भितात्मा-धार्यमाणहृदयः। वदनं दर्शयितुं लज्जमानः-पुरोऽवस्थातुं त्रपमाणः। निस्पन्दसर्वाङ्गेण-निश्चलसकलावयवेन। मन्दराद्रिणा-मन्दरनामकपर्वतेन। मथनावसानस्तिमितम्-जाते मन्थने स्थिरीभूतम्। महार्णवम्-महासमुद्रम्। अन्तर्बाष्पभरगद्गदेन-अन्तर्भागे बाष्पपूर्णतयाऽ-

---

नहीं किया है। आज एकाएक तुम इतने निष्ठुर किस प्रकार हो गये? जन्म से लेकर मैंने जिसका कुपित मुख कभी नहीं देखा उसे मेरे ऊपर आज इतना कोप क्यों हो आया? जिससे इस तरह छोड़कर बैठ रहा। गये तो गये, अभी भी आ जाओ, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। मेरा दूसरा कौन है? क्या देशान्तर के साथ परिचय होते ही हमारा स्नेह भुला दिया? एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होने वाले चन्द्रापीड पर तुम कैसे इस प्रकार निष्ठुर हो गये? बेटा, यह तुमने भला नहीं किया। जिन गुरुजनों को तुम्हें सुख में रखना चाहिये उन्हें तुमने दुःख में रख दिया। मैं नहीं जानती, ऐसा करके तुम क्या पा लोगे?' इस प्रकार से मनोरमा अन्तर्भवन में विलाप कर रही थी। वह नवीन पुत्र-विरह से व्याकुल थी, और स्वयं विलासवती उसे सँभाल रही थी।

मनोरमा का वह करुण-विलाप विष की तरह चन्द्रापीड़ पर फैल गया, जिससे विह्वल होकर चन्द्रापीड़ अचेत हो गये। किसी-किसी तरह स्वाभाविक गाम्भीर्य के अवलम्बन से उन्होंने अपने को सँभाला उन्हें पिता को मुख दिखलाने में लज्जा हो रही थी, उनका मुख नीचे झुका था, उनके सारे अङ्ग निश्चल हो रहे थे। मन्दराचल की तरह शुकनास पास में बैठे थे और मथनोपरान्त शान्त समुद्र की तरह स्तम्भित तारापीड़ बैठे हुए थे। चन्द्रा-

राजान्तर्बाष्पभरगद्गदेन ध्वनिनाभ्यर्णवर्ष इव जलधरोऽभ्यधात्। 'वत्स चन्द्रापीड जानामि ते स्वजीवितादपि समभ्यधिकां भ्रातुरुपरि प्रीतिम्। पीडा च सुखैकहेतोर्वल्लभजनादेवासंभाव्या या समुत्पद्यते। तथैव हि न किंचिन्न क्रियते। तज्जन्मनः स्नेहस्य वयसः शीलस्य श्रुतस्य गुरुजनानुशासनस्य विनयाधानस्य च सर्वस्यैवानुचितमिमं भ्रातुः सुहृदश्च ते वृत्तान्तमाकर्ण्य त्वद्दोषमाशङ्कते मे हृदयम्।' इत्येवं वादिनो नरपतेर्वचनमाक्षिप्य युगपच्छोकामर्षाभ्यामन्धकारिताननः प्रावृडारम्भ इव तडिल्लतादुष्प्रेक्ष्यो विस्फूर्जितेनेव स्फुरिताधरेण शुकनासोऽब्रवीत्।

'देव, यदि चन्द्रमस्यूष्मा, दहने चातिशीतलत्वम्, अंशुमालिनि वा तमः, तमस्विन्यां वा दिवसः, महोदधौ वा शोषः, क्षितेरधारणं वा शेषे, परार्थानुद्यमो वा साधोः, अप्रियवचननिर्गमो वा स्वजनमुखात्संभाव्यते ततो युवराजेऽपि दोषः। तत्किमेवमेवानिरूप्य तस्यानात्मज्ञस्य मूढप्रकृतेर्दुर्जातस्य राजापथ्यकारिणो मातृपितृघातिनो मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य कर्मचण्डालस्य महापातकिनः कृते कृतयुगावतारयोग्यमात्मनोपि गुणवन्तमत्युदा-

---

ध्यक्तेन। अभ्यर्णवर्षः-आसन्नवृष्टिः। जलधरः-मेघः। अभ्यधात्-उक्तवान्। स्वजीवितात्-स्वस्य जीवनात्। भ्रातुः-वैशम्पायनस्य। सुखैकहेतोः-सर्वविधसुखप्रदात्। वल्लभजनात्-प्रियव्यक्तेः। असंभाव्या-अतर्किता। तथैव हि न किञ्चिन्न क्रियते-सुखैकजनकतया संभावितात् प्रियजनादुत्पन्ना पीडा सर्वविधमपि कष्टमुपस्थापयतीति भावः। शीलस्य-सच्चरितस्य। गुरुजनानुशासनस्य-गुरुजनाज्ञावशंवदत्वस्य। विनयाधानस्य-शिक्षाग्रहणस्य। अमुं वृत्तान्तम्-पलायनावस्थानरूपं समाचारम्। त्वद्दोषमाशङ्कते-त्वयैव किमपि तस्य कृतं येनासौ नायात इति संभावयति। नरपतेः-राज्ञश्चन्द्रापीडस्य। आक्षिप्य-प्रतिषिध्य। शोकामर्षाभ्याम्-पुत्रवियोगजन्येन शोकेन राज्ञश्चन्द्रापीडोपरिज्ञातया दोषाशङ्कया च। अन्धकारिताननः-शून्यीकृतवदनः। प्रावृडारम्भः-वर्षासमयप्रारम्भः-तडिल्लतादुष्प्रेक्ष्यः-विद्युता कष्टदृश्यः। विस्फूर्जितेन-चञ्चलतां गतेन। स्फुरिताधरेण-चञ्चलेनौष्ठेन।

देव-राजन्। ऊष्मा-सन्तापकता। दहने-वह्नौ। अंशुमालिनि-सूर्ये। तमस्विन्याम्-रात्रौ। महोदधौ-सागरे। शोषः-शुष्कता। क्षितेः-पृथिव्याः। युवराजे-चन्द्रापीडे। दोषः-वैशम्पायनपलायनकारकत्वंकारित्वरूपं दूषणम्। अनिरूप्य-अविचार्य, अनात्मज्ञस्य-स्वरूपपरिचयशून्यस्य। मूढप्रकृतेः-प्रकृत्याऽविवेकिनः। दुर्जातस्य-दुःशीलस्य। राजापथ्यकारिणः-राज्ञोऽहितं कर्त्तुमुद्यतस्य। कृतघ्नस्य-अकृतज्ञस्य। कर्मचण्डालस्य क्रियया चण्डालस्य। कृतावतारयोग्यम्-सत्ययुगे जन्मग्रहणस्य पात्रम्। आत्मनोऽपि

पीड़ ने पिता को प्रणाम किया, और वह अलग दूर पर बैठ गये। उनको बैठा देखकर अश्रु गद्गद स्वर में आसन्न वृष्टि मेघ की तरह गम्भीर ध्वनि से राजा ने कहा—'बेटा चन्द्रापीड़, मैं जानता हूं कि तुम अपने प्राणों से भी अधिक अपने भाई वैशम्पायन को प्यार करते हो। सुखमात्र देने वाले प्रियजन से होने वाली पीड़ा बड़ी असह्य होती है, विशेषतः तब जब कि उसके लिए कुछ किया नहीं जा सके। अन्तः जन्म, स्नेह, उमर, शील, शास्त्रज्ञान, गुरुजनानुशासन, विनय इन सभी वस्तुओं के प्रतिकूल इस तुम्हारे भाई तथा मित्र वैशम्पायन के वृत्तान्त को सुनने के बाद मेरा हृदय इसमें तुम्हारे दोष की आशङ्का करने लगा है'।

इस प्रकार राजा के कहने पर शुकनास ने बात काट दी, उस समय शोक तथा क्रोध से उनका मुख काला पड़ गया था, वह बिजली से दुष्प्रेक्ष्य बरसात की तरह लग रहे थे उनके ओठ फड़क रहे थे, शुकनास ने कहा—महाराज, यदि चन्द्रमा में उष्णता, आग में अतिशीतलता, सूर्य में अन्धकार, रात में दिन, समुद्र में शुष्कता, शेष के द्वारा पृथ्वी का अधारण, साधुओं में परहित-वैराग्य और आत्मीयजन के मुख में अप्रिय वचन सम्भव होगा तभी युवराज में भी दोष सम्भव है। अतः आप बिना सोचे-विचारे उस अनात्मज्ञ, मूढ़ स्वभाव, दुर्जन, राजद्रोही, मातृपितृघाती, मित्रापकारी, कृतघ्न, कर्मचण्डाल एवं महापातकी के लिये सत्ययुग में अवतार लेने लायक आप से

---

१. क—यथैव।

रचरितं चन्द्रापीडमेवं संभावयति देवः। न ह्यतःपरमपरं कष्टतरं किंचिदपि पीडाकारणं यद्गुणेषु वर्तमानो दोषेषु संभाव्यत इतरजनेनापि। किं पुनर्गुरुजनेन। यो गुणी गुणैरेवाराधनीयः। कस्यापरस्यात्मा गुणवाननेन ज्ञापनीयः। अपि च जन्मनः प्रभृति देवस्य देव्या विलासवत्याश्चाङ्कलालनया यो न गृहीतस्तस्य मरुत इव दुर्ग्रहप्रकृतेश्चन्द्रापीडोपि किं करोतु। स्वयमेवोत्पद्यन्त एवंविधाः शरीरसंभवा महाकृमयः, सर्वदोषाश्रया महाव्याधयः, अन्तर्विषा महाव्यालाः, विनाशहेतवो महोत्पाताः, भुजङ्गवृत्तयो महावातिकाः, वक्रचारिणो महाग्रहाः, तमोमयाः प्रदोषाः, मलिनात्मकाः कुलपांशवः, निःस्नेहाः खलाः, निर्लज्जाः क्षपणकाः, निःसंज्ञाः पशवः, अपि चाकाष्ठा दहनाः, निर्गुणा जालिनः, अतीर्था जलाशयाः, निर्गौरवाः खरप्रकृतयः, अशिवमूर्तयो महाविनायकाधिष्ठिताः। ये सकलङ्काः कृपाणा इव स्नेहेनैव पारुष्यं भजन्ते। मलिनस्वभावाः करिकपोला इव दानेनैव मलिनतरतामाप-

गुणवन्तम्–तारापीडापेक्षयाऽपि समधिकगुणशालिनम्। उदारचरितम्–उदारस्वभावम्। एवं संभावयसि दोषशालितया उत्प्रेक्षसे। पीडाकारणम्–खेदावहम्। गुणेषु वर्त्तमानः–गुणशाली। दोषेषु संभाव्यते–दोषशालितया कल्प्यते। अनेन–गुणशालिना। देवस्य–राज्ञस्तारापीडस्य। अङ्कलालनया–क्रोडे जातेन पोषणेन। गृहीतः–बाधितः। मरुतः–वायोः। दुर्ग्रहप्रकृतेः–स्वभावतो दुर्ग्रहस्य। एवंविधाः–वैशम्पायनतुल्याः शरीरसंभवाः–देहादुत्पन्नाः। सर्वदोषाश्रयाः–सर्वेषां दोषाणामाश्रयभूताः। महाव्याधयोऽपि वातपित्तादिदोषसमुदायेन जन्यन्त इति तेषामिवास्यापि सर्वदोषाश्रयभूताः। महाव्यालयोऽपि विषवन्तः। महोत्पाताः–दिग्दाहादयः। भुजङ्गवृत्तयः–सर्पतुल्याचाराः। महावातिकाः–भुजङ्गजीविनः। क्षपणकाः–नग्नसाधवः। अकाष्ठा दहना इत्यत्र विरोधाभासः, अमी दुष्टाः काष्ठवर्जिताः सन्तोऽपि दाहकाः, वह्नयस्तु काष्ठे सत्येव ज्वलनस्वभावा इति वह्नेर्दुष्टानामेषां व्यतिरेकः। 'निर्गुणा जालिनः' अत्रापि व्यतिरेक एव। जालवत्ताया गुणवत्ता नैयत्येनामीषां दुष्टानामपि जालवत्तया–वञ्चनारूपजालशालितया गुणवत्ता संभाव्यते न तु सा वस्तुस्थितिः, तेषां गुणसामान्याभाववत्त्वात्। अतीर्थाः–जलावतारशून्याः (अशास्त्रज्ञाश्च) अमी दुष्टा जलाशयाः–जडाशयाः जडहृदयाः सन्तोऽपि अतीर्थाः अशास्त्रज्ञाःऽतीर्थभिन्नाश्चेति व्यतिरेकः। अशिवमूर्त्तयः–अमङ्गलशरीराकृतयः। महाविनायकाधिष्ठिताः–गणेशाधिष्ठिताः। शिवमूर्त्तीनां गणेशाधिष्ठितत्वनियमः, अमीषां तु दुष्टानां शिवमूर्त्तित्वविरहेऽपि महाविनायकाधिष्ठितत्वमिति व्यतिरेकः। सकलङ्काः–सचिह्नाः। कृपाणाः–खड्गाः। स्नेहेन–प्रेम्णा तैलादिद्रव्येण च। सकलङ्काः दुष्टाः स्नेहे क्रियमाणेऽपि कठोरतां प्रतिपद्यन्ते यथा सचिह्नाः खड्गाः तैलादिस्नेहोपयोगेन परुषधारा भवन्ति। पारुष्यम्–कठोरता तीक्ष्णधारता च। मलिनस्वभावाः–स्वभावतः श्यामवर्णाः। प्रकृत्यैव मलिनमतयः। करिकपोलाः–गजगण्डस्थलानि। दानेन–दानवारिणा किञ्चिद्वस्तुप्रदानेन वा। मलिनतरताम्–अतिमालिन्यम्। आपद्यन्ते–प्राप्नुवन्ति। यथा प्रकृतिमलिनाः करिणां कपोलदेशाः सति दानोदये मालिन्यप्रकर्षं श्रयन्ते तद्वदमी दुष्टा अपि मलिनाः सन्तोऽपि दाने क्रियमाणेऽपि सातिशयां मलिनतां प्राप्नुवन्तीति

भी अधिक योग्य, गुणवान् , और उदार चरित चन्द्रापीड़ को दोषी करार दे रहे हैं। इससे बढ़कर पीड़ा का कारण कुछ नहीं होता है कि गुणवान् को दोषी ठहरा दिया जाय। साधारण जन भी गुणवान् को दोषी ठहराते हैं तो कष्ट होता है फिर गुरुजनों की बात ही क्या ? जो गुणी है उसका आदर गुणों से ही होना चाहिये।

जन्म से आज तक महाराज तथा विलासवती की गोद में खेलने का ख्याल जिसने नहीं किया, उस हवा की तरह अग्रहणीय व्यक्ति का चन्द्रापीड़ क्या कर सकता था। इस तरह के शरीर में पैदा होने वाले कीड़े, सर्व दोषाश्रय महारोग, अन्तर्विष सर्प, विनाशहेतु महोत्पात, सर्प से जीने वाले संपेरे, कुटिलगति महाग्रह, तमोमय प्रदोष, मलिनात्मक कुलघाती, निःस्नेह खल, निर्लज्ज साधु, निर्बोध पशु, बिना काठ के अनल, बिना गुण के जाल वाले, बिना सीढ़ी के जलाशय, बिना गौरव के क्रूर-स्वभाव, अमङ्गलमूर्त्ति एवं महाविनायकाधिष्ठित सब स्वयं पैदा होते हैं। जैसे तलवार तेल लगाने से तीक्ष्ण होती है उसी तरह वे स्नेह करने से कठोर होते हैं। मलिन करिकपोल की तरह वे दान से और मलिन हो जाते हैं। बिना बाती के जलने वाले मणिदीप की तरह वे प्रसाद से और

द्यन्ते । निर्वर्तयो मणिप्रदीपा इव प्रसादेनैव ज्वलन्ति । अङ्गलग्ना भुजा इव दाक्षिण्यपरिग्रहेणैवेतरे वामाः संजायन्ते । गुणमुक्ताः सायका इव सपक्षाश्रयेण फलेनैव दूरं विक्षिप्यन्ते । सरागाः पल्लवा इव दिवसारूढ्यैवापरज्यन्ते । भूतिपरामृष्टा दर्पणा इवाभिमुख्येन सर्वं प्रतीपं गृह्णन्ति । अन्तरस्वच्छवृत्तयः सलिलाशया इव गाढावगाहनेनैव कालुष्यमुपयान्ति । ये च स्निग्धेष्वपि रूक्षाः, ऋजुष्वपि वक्राः, साधुष्वप्यसाधवः, गुणवत्स्वपि दुष्टप्रकृतयः, भर्तर्यप्यभृत्यात्मानः, रागिष्वपि क्रुद्धाः, निरीहादप्यादित्सवः, मित्रेष्वपि द्रोहिणः, विश्वस्तानामपि घातकाः, भीतेष्वपि प्रहारिणः, प्रीतिपरेष्वपि द्वेषिणः, विनीतेष्वप्युद्धताः, दयापरेष्वपि निर्दयाः, स्त्रीष्वपि शूराः, भृत्येष्वपि क्रूराः, दीनेष्वपि दारुणाः । येषां च विपरीतानां गुरव एव लघवः, नीचा एवोच्चैः, अगम्या एव गम्याः, कुदृष्टिरेव सद्दर्शनम् , अकार्यमेव कार्यम्,

---

तयोः सादृश्यमत्रोपनिबध्यमानं बोध्यम् । निर्वर्तयः-दशया रहिताः । मणिप्रदीपाः-रत्नदीपाः । प्रसादेन-निर्मलतया अनुग्रहेण च । यथा वर्तिशून्या अपि मणिप्रदीपाः स्वयं प्रसादेन ज्वलन्ति तथैवामी दुष्टाः कृपायां क्रियमाणायामपि दह्यन्त इति तुलनाऽत्र कृता वेद्या । अङ्गलग्नाः-शरीरसंसक्ताः । भुजाः-बाहवः दाक्षिण्यपरिग्रहेण-दक्षिणभागेऽवस्थापनेन । इतरे-तदन्ये । वामताम्-कौटिल्यम् दक्षिणेतरतां च । (अयमाशयः-यथा शरीरसंसक्ता बाहवो दक्षिणतया गृह्यमाणे भुजान्तरे तदितरे वामाः संपद्यन्ते तथैवामी दुष्टा अपि शालीनतया व्यवहर्त्तरि पुरुषे कौटिल्यमाश्रयन्तीति शब्दसाम्यमूलकत्वमत्रोपमाया बोध्यम्, तदुक्तम्-'स्फुटमर्थालङ्कारावेतावुपमासमुच्चयौ किन्तु । आश्रित्य शब्दमात्रं सामान्यमिहापि सम्भवतः ।' इति, तदुदाहरणमपि तत्रैवोक्तम् :-'स्तोकेनोन्नतिमायाति स्तोकेनायात्यधोनतिम् । अहो सुसदृशी वृत्तिस्तुलाकोटेः खलस्य च ।' इति । गुणमुक्ताः-ज्यानिसृष्टाः । शौर्यौदार्यादिगुणविकलाश्च । सायकाः-बाणाः । सपक्षाश्रयेण-मित्राश्रयेण पक्षवद्बाणाश्रयेण च । फलेन-बाणाग्रभागेन । दूरं विक्षिप्यन्ते-विप्रकृष्टदेशे क्षिप्यन्ते । यथा प्रत्यञ्चानिसृष्टा बाणाः सपक्षाश्रयणात् दूरं क्षिप्यन्ते तद्वदमी दुष्टा गुणरहिता मित्राश्रयेण दूरगामिनश्च भवन्तीति बोध्यम् । सरागाः-मनोरागयुक्ताः रक्तवर्णाश्च । पल्लवाः-किसलयाः । दिवसारूढ्या-दिवसव्यतिगमेन । अपरज्यन्ते-विकृतिं भजन्ते रागं परिहरन्ति च । अयमुपमार्थः-यथा सरागाः पल्लवा दिवसेषु व्यतीतेषु वर्णविकृतिमापद्यन्ते यथैवामी दुष्टाः दिवसव्यतिगमे सति मनोविकृतिं गच्छन्तीति । भूतिपरामृष्टाः-धनशालिनः; विभूतिस्वच्छीकृताश्च । आभिमुख्येन-अनुकूलताप्रदर्शनेन; संमुखस्थापनेन च । सर्वं प्रतीपं गृह्णन्ति-सकलं विपरीतं विभावयन्ति विपरीतं मुखादि गृह्णन्ति च । अन्तरस्वच्छवृत्तयः-अभ्यन्तरभागे अस्वच्छानां मलिनानां पङ्कादीनां वृत्तिः सद्भावो येषु तादृशाः, मनसि मलिनाश्च । सलिलाशयाः-जलाशयाः । गाढावगाहनेन-निर्भरावगाहनेन, कालुष्यम्-मलिनताम् । यथाऽभ्यन्तरभागे पङ्कादिमलिनवस्तुजातं धारयन्तो जलाशया गाढावगाहने क्रियमाणे उद्रिक्तपङ्कतया मलिनाः सञ्जायन्ते तद्वदमी दुष्टा अपि मनसि मलिनं भावं धारयन्तः परस्वीये हृदये प्रवेशं प्राप्तैः सद्भिः स्वां मलिनतां व्यवहारेऽप्यवतारयन्तीत्यर्थः । स्निग्धेषु-प्रीतिपरेषु । ऋजुषु-सरलेषु । अभृत्यात्मानः-भृत्यस्वभावविरुद्धस्वभावाः । रागिषु-प्रियेषु । निरीहात्-निःस्वात् । आदित्सवः-आदातुमिच्छवः । प्रहारिणः-प्रहारकर्त्तारः । विपरीतानाम्-विपरीतमतीनाम् । लघवः-तुच्छाः । कुदृष्टिः-मिथ्यादृष्टिः । अस्थितिः-अमर्यादा । स्थितिः-मर्यादा । (विपरीतमतीनां विपरीतप्रका-

---

प्रज्वलित होते हैं । जैसे गोद रखे गये हाथ दक्षिण होकर भी वाम हो जाते हैं उसी तरह वे दाक्षिण्य व्यवहार से उलटे हो जाते हैं । प्रत्यञ्चा से छूटे बाणों की तरह वे सपक्षाश्रय फल से दूर भागते हैं । सरागपल्लवों की तरह दिन के बीतने पर अधिक रागयुक्त होते हैं । राख से साफ किये गये दर्पण की तरह सारी वस्तुओं को उलटे रूप में ही ग्रहण करते हैं । जो स्नेहीजन के लिये भी रूक्ष, सरलों के लिए भी वक्र, गुणवानों के साथ भी दुष्ट प्रकृति, स्वामी के लिए भी अभृत्य, प्रेमियों के प्रति भी कुपित, निरीहों से भी कुछ ऐंठने की इच्छा रखने वाले, मित्रों से भी द्रोहकारी, विश्वस्तों के भी घातक, भीतों पर भी प्रहार करने वाले, प्रीति करने वालों से भी द्वेष रखने वाले, विनीतों के लिये भी उद्धत, दयालुओं के लिए भी निर्दय, स्त्रियों के प्रति भी शूर, दीनों के प्रति भी क्रूर हैं, जिनकी उलटी बुद्धि में गुरु ही लघु, नीच ही उच्च, अगम्य ही गम्य, कुदृष्टि ही वास्तविक ज्ञान, अकार्य ही कार्य, अन्याय

अन्याय एव न्यायः, अस्थितिरेव स्थितिः, अनाचार एवाचारः, अयुक्तमेव युक्तम्, अविद्यैव विद्या, अविनय एव विनयः, दौःशील्यमेव सुशीलता, अधर्म एव धर्मः, अनृतमेव सत्यम्। येषां च क्षुद्राणां प्रज्ञा पराभिसंधानाय न ज्ञानाय, श्रुतमालजालाय नोपशमाय, पराक्रमः प्राणिनामुपघाताय नोपकाराय, उत्साहो धनार्जनाय न यशसे, स्थैर्यं व्यसनासङ्गाय न चिरसंगताय, धनपरित्यागः कामाय न धर्माय। किं बहुना। सर्वमेव येषां दोषाय न गुणाय। तदसावपीदृश एव कोऽप्यपुण्यवानुत्पन्नो यस्यैवं कुर्वतो मित्रमहं चन्द्रापीडस्य कथं तस्य द्रोहमाचरामीति नोत्पन्नं चेतसि। एवं कृते चलितवृत्तानां शासितावश्यं तारापीडो देवः पीडितान्तरात्मा मयि कोपं करिष्यतीत्येवमपि नाशङ्कितं मनसा। मातुरहमेवैको जीवितनिबन्धनं कथं मया विना वर्तिष्यत इत्येतस्य नृशंसस्य हृदये नापतितम्। पिण्डप्रदो वंशसंतानार्थमहमुत्पादितः पित्रा कथमननुज्ञातस्तेन सर्वपरित्यागं करोमीत्येतदपि यथाजातस्य न बुद्धौ संजातम्। तदेवमसत्पथप्रवृत्तेन नष्टात्मना सुदूरमुद्भ्रान्तेन दुर्दर्शम्[1]दृष्टं तावन्न नाम कुदृष्टिना दृष्टम्। दृष्टमपि येन न दृष्टं तस्याज्ञानतिमिरान्धस्य किं क्रियताम्। अपरमसौ तिर्यङ्महता यत्नेन शुक इव पाठितः पुष्टश्च देवेन। अथवा विनोददानात्तिरश्चामपि सफल एव शिक्षणायासो भवति। तेऽपि पोषिताः पोषितरि स्नेहमाबध्नन्ति। तेऽपि कृतं

रकज्ञानस्यौचित्येन गुरव एव लघव इत्यादिना तदुदाहरणानि वृत्तानि बोध्यानि) अनृतम्-सत्यम्, पराभिसन्धानाय-परदोषोद्भावनाय। आलजालाय-बन्धनाय। उपशमाय-शान्तये। प्राणिनामुपघाताय-जीववधाय। व्यसनासङ्गाय-व्यसने आसक्तये। चिरसङ्गताय-स्थिरमैत्र्यै। असौ-वैशम्पायनः। अपुण्यवान्-पापी। चलितवृत्तानाम्-दुराचारिणाम्। शासिता-निग्रहीता। पीडितान्तरात्मा-खिन्नहृदयः। जीवितनिबन्धनम्-प्राणधारणकारणम्। वर्तिष्यते-जीविष्यति। नृशंसस्य-क्रूरस्य। नापतितम्-नायातम्। पिण्डप्रदः-पितृपिण्डप्रदाता। वंशसन्तानार्थम्-वंशवृद्धये। अननुज्ञातः-अनाज्ञप्तः। यथाजातस्य-यथा कथञ्चिदुत्पन्नस्य नीचस्येत्यर्थः। असत्पथप्रवृत्तेन-नीचमार्गानुसारिणा। नष्टात्मना-निन्दितात्मना नीचेन। उद्भ्रान्तेन-मत्तेन। तिर्यक्-पशुः। तेऽपि-पशुपक्षिणोऽपि। पोषिताः-पुष्टि

ही न्याय, अस्थिति ही स्थिति, अनाचार ही आचार, अयुक्त ही युक्त, अविद्या ही विद्या, अविनय ही विनय, दुःशीलता ही सुशीलता, अधर्म ही धर्म एवं मिथ्या ही सत्य होता है। जिन क्षुद्रों का ज्ञान दूसरों को सताने के लिए होता है ज्ञान के लिए नहीं, शास्त्राध्ययन आडम्बर के लिए होता है शान्ति के लिये नहीं, पराक्रम प्राणियोंके संहार के लिए होता है उपकार के लिए नहीं, उत्साह धनार्जन के लिए होता है यश के लिए नहीं, स्थिरता व्यसनासक्ति के लिये होती है दृढ़मैत्री के लिये नहीं, धनत्याग काम के लिये होता है धर्म के लिये नहीं। और क्या कहा जाय, जिनके सारे आचरण दोष के लिये ही हुआ करते हैं गुण के लिए नहीं होते, यह पापी भी उन्हींमें से एक पैदा हुआ है जिसने इस प्रकार के आचरण को करने के पहले यह भी नहीं सोचा कि मैं तारापीड़ का मित्र होकर उनका इस प्रकार का द्रोह कैसे कर रहा हूँ। उसके मन में यह आशङ्का भी नहीं हुई कि मेरे इस आचरण से दुश्चरितों के शासक महाराज तारापीड़ के हृदय में कष्ट होगा और वह मेरे ऊपर क्रोध करेंगे। यह बात भी उसके क्रूर हृदय में नहीं आई कि अपनी माता का मैं ही जीवन-सहारा हूँ वह मेरे बिना कैसे रहेगी। उस बेवकूफ के मन में यह नहीं हुआ कि पिताजी ने मुझे वंश की अनुवृत्ति तथा पिण्ड के लिये पैदा किया है फिर मैं उनको आज्ञा के बिना ही सबका त्याग कैसे कर रहा हूँ। इस प्रकार उस असन्मार्गगामी नष्टात्मा तथा उद्भ्रान्त लड़के ने अदृष्ट का विचार नहीं किया। अथवा जिसने देखकर भी नहीं देखा उस अन्धे का क्या किया जाय। वह पशु बड़े प्रयत्न से महाराज द्वारा सुग्गे की तरह पढ़ाया तथा पाला गया था। विनोद प्रदान करने से पक्षियों का पढ़ाना भी सफल हो जाता है, पालतू पशु-पक्षी भी पोषक के प्रति स्नेह रखते हैं। वे भी कृतज्ञ होते हैं। वे भी परिचय

---

१. दुर्दर्शम्।

जानन्ति। तेपि परिचयमनुवर्तन्ते। तेषामपि सहजन्मस्नेहो मातापित्रोरुपरि दृश्यत एव। न पुनरस्य नष्टोभयलोकस्य पापकारिणो दुर्जातस्य यस्य सर्वमेवाधस्ताद्गतम्। अपि चेह शाचरितेन तेनाप्यवश्यमेव कस्यांचित्तिर्यग्योनौ पतितव्यं येन तावद् दुरात्मना जातेन केवलं सुखं न स्थापिताः सर्व एव वयम्। अपरमेवं दुःखार्णवे निपातिताः। सर्व एव ह्यनाक्षिप्तचेताः प्रवर्तते स्वहिताय परहिताय च। तस्य तु पुनरस्मानेवं दुःखं स्थापयतो न स्वहितं नापि च परहितम्। किमनेनैवमात्मद्रुहा कृतमिति मतिरेतावन्न बोधपदवीमवतरति। सर्वथा दुःखायैवास्माकं तस्य पापकर्मणो ग्रहोपसृष्टस्य जन्म।' इत्युक्त्वा हेमन्तकालोत्पलिनीमिवोद्बाष्पां दृष्टिमुद्वहन्नुद्वेपिताधरश्च बहिरलब्धनिर्गमेण स्फुटन्निवान्तर्मन्युपूरेण निश्वसन्नेवावतस्थे।

तदवस्थं च तं तारापीडः प्रत्युवाच। 'एतत्खलु प्रदीपेनाग्नेः प्रकाशनं वासरालोकेन भास्वतः समुद्भासनमवश्यायलेशैराह्लादनममृतांशोर्मेघाम्बुबिन्दुभिरापूरणं पयोधेर्व्यजनानिलैरतिवर्धनं प्रभञ्जनस्य यदस्माद्विधः परिबोधनमार्यस्य। तथापि प्राज्ञस्यापि बहुश्रुतस्यापि विवेकिनोपि धीरस्यापि सत्त्ववतोप्यवश्यं दुःखातिपातेन विशुद्धमपि वर्षसलिलेन सर इव

गमिताः। पोषितरि-पोषणकरे। आवध्नन्ति-धारयन्ति। सहजन्मस्नेहः-भ्रातृप्रीतिः। सहजस्नेह इति पाठो युक्तः, सहजस्नेह इत्यस्य स्वाभाविकं प्रेम इत्यर्थः। नष्टोभयलोकस्य-इहलोकं परलोकं च नाशितवतः। दुर्जातस्य-दुष्टस्य विपन्नस्य वा। तिर्यग्योनौ-पशुपक्षियोनौ। दुःखार्णवे-दुःखोदधौ। अनाक्षिप्तचेताः-अभ्रान्तमतिः। आत्मद्रुहा-स्वद्रुह्यता आत्मनोऽहितमाचरता। बोधपदवीमवतरति-बुद्धिमार्गं समायाति। ग्रहोपसृष्टस्य-ग्रहगृहीतस्य हेमन्तकालोत्पलिनीम्-हेमन्तर्तुकमलिनीम्। उद्वेपिताधरः-शोकावेगेन कम्पमानाधरः। अलब्धनिर्गमेन-अन्तरेव मूर्च्छता। मन्युपूरेण-दुःखभारेण। अवतस्थे-स्थितवान्।

तदवस्थम्-तस्यां स्थितौ वर्तमानम्। तम्-शुकनासम्। प्रकाशनम्-आलोकनम् (अग्नेः स्वतः प्रकाश इति यथा तस्य प्रदीपेन प्रकाशनं व्यर्थमेवं तथापि सततजाग्रत्प्रबोधतया मया प्रबोधनं न शक्यते कर्त्तुमिति तात्पर्यम्) वासरालोकेन-दैनिकप्रकाशेन। भास्वतः-सूर्यस्य। अवश्यायलेशैः-शीतबिन्दुभिः। आह्लादवर्धनम्-आनन्दवृद्धिः। अमृतांशोः-चन्द्रमसः। मेघाम्बुबिन्दुभिः-घनजलकणैः। आपूरणम्-पूर्तिः। प्रभञ्जनस्य-वायोः। प्राज्ञस्य-पण्डितस्य। बहुश्रुतस्य-अधीतविविधविषयस्य। विवेकिनः-विचारचतुरस्य। सत्त्ववतः-गभीरस्य। दुःखातिपातेन-दुःखाधिक्येन। विशुद्धम्-निर्मलम्।

का ख्याल रखते हैं। माता-पिता पर उनका भी स्वाभाविक स्नेह देखा जाता ही है। दोनों लोक का नाश करने वाले उस पापी ने इन सारी बातों का अनादर कर दिया। इस तरह के आचरण से वह दुष्ट भी अवश्य किसी पशु-पक्षियोनि में गिरेगा जिसने हम सभी को सुख से नहीं रहने दिया, प्रत्युत दुःख के सागर में गिरा दिया, होशहवाश में रहने वाले अपना तथा दूसरे का हित चाहते हैं, उसने तो हम लोगों को इस प्रकार के कष्ट में डालकर न अपना हित किया है न हमारा। उस आत्मद्रोही ने ऐसा क्यों किया यह बात अभी तक समझ में नहीं आ रही है। उस पापी तथा ग्रहगृहीत का जन्म सब प्रकार से हमलोगों को कष्ट प्रदान करने के लिये ही हुआ था। इस प्रकार कहते-कहते उनकी आँखें हेमन्त ऋतु की कमलिनी के सदृश हो गई। आँसू छलछला आये, ओठ हिलने लगे, दुःख बाहर निकल रहा था अतः अन्तर फटा जा रहा था, वह लम्बी सांस लेते बैठे ही रहे।

शुकनास की वैसी स्थिति देखकर तारापीड ने शुकनास से कहा—यह प्रदीप से अग्नि के प्रकाशन, दिन की रोशनी से सूर्य के प्रकाशन, ओस की बूँदों से चन्द्रमा के आह्लादन, मेघ के जल से समुद्र के पूरण और पंखे की हवा से वायु के अभिवर्द्धन के समान होगा कि हमारे ऐसा आदमी आपको समझावें। तथापि सभी प्राज्ञ, बहुश्रुत, विवेकी, गम्भीर, बलवान् व्यक्तियों के स्वच्छ भी अन्तःकरण दुःखाधिक्य से वर्षाजल से सरोवर की तरह

१. सहजस्नेहः।

मानसं कलुषीक्रियते सर्वस्य। कलुषीकृते च मानसे किमिदमिति सर्वमेव दर्शनं नश्यति। न चित्तमालोचयति। न बुद्धिर्बुध्यते। न विवेकोपि विविनक्ति। येन ब्रवीमि। अन्यदस्मत्तो लोकवृत्तमार्य एव सुतरां वेत्ति।

किमस्ति कश्चिदसावियति लोके यस्य निर्विकारं यौवनमतिक्रान्तम्। यौवनावतारे हि शैशवेनैव सह गलति गुरुजनस्नेहः। वयसैव सहारोहत्यभिनवा प्रीतिः। वक्षसैव सह विस्तीर्यते वाञ्छा। बलेनैव सहोपचीयते मदः। दोर्द्वयेनैव सह स्थूलतामापद्यते धीः। मध्येनैव सह कार्श्यमुपयाति श्रुतम्। ऊरुयुगलेनैव सहोपचीयते[1] हृदयमविनयैः। श्मश्रुभिरेव सहोज्जृम्भते मलिनताहेतुर्मोहः। आकारेणैव सहाविर्भवन्ति हृदयाद्विकाराः। तद्यथा धवलमपि सरागं सर्वथा दीर्घीभवदपि न दीर्घं पश्यति चक्षुः। अनुपहतेपि न प्रविशति गुरूप-

---

वर्षसलिलेन-वर्षाजलेन। कलुषीक्रियते-मालिन्यं प्राप्यते। (यथा निर्मलमपि सरोवरस्य जलं वर्षाजलेन मलिनतामानीयते तथैव निर्मलमपि विवेकिनो जनस्य हृदयं दुःखातिपातेन कालुष्यमुपयाति इति भावः) दर्शनम्-ज्ञानम्। विविनक्ति-विचारयति।

निर्विकारम्-विना कामपि विक्रियाम्। यौवनम्-युवावस्था। अतिक्रान्तम्-व्यतीतम्। यौवनावतारे-युवावस्थाया आगमे। (यौवने आगते सति यथा शैशवं पलायते तथैव गुरुजनस्नेहोऽप्यपसरतीति सहविवक्षा) वयसा-युवावस्थया। आरोहति-प्रकटीभवति। अभिनवा-नित्यनूतना। वक्षसा-उरोदेशेन। वाञ्छा-विषयाभिलाषः। (यौवनागमे येनैव क्रमेण वक्षोदेशो विस्तारं भजते तेनैव क्रमेण विषयाभिलाषोऽपि विस्तारं भजत इत्याशयः) बलेन-शारीरिकशक्त्या। उपचीयते-वर्द्धते। मदः-गर्वः। दोर्द्वयेन-बाहुयुगलेन। धीः-बुद्धिः। यथा यथा यौवने समायाते भुजद्वयं स्थूलं भवति तथा तथा धीरपि स्थूलतां प्रतिपद्यते इत्याशयः। मध्येन-कटिदेशेन। कार्श्यम्-कृशताम्। यथा यथा यौवनोदये मध्यभागः कृशो भवति तथा तथा शास्त्रज्ञानमपि कृशतां प्राप्नोतीत्यर्थः। ऊरुयुगलेन-जङ्घाद्वितयेन। उपचीयते-वर्द्धते। अविनयैः-विनयो नम्रता तदभावः। अविनयस्तैरौद्धत्यैः। यथा यथा यौवनोदये ऊरुयुगलं पृथुत्वमायाति तथा तथाऽविनया वर्द्धन्त इत्यर्थः। श्मश्रुभिः-मुखलोमभिः। उज्जृम्भते-प्रकटीभवति। मलिनताहेतुः-विकारकारणम्। मोहः-अज्ञानम्। आकारेण-शरीरकान्त्या। विकाराः-विषयसम्बन्धकारणीभूता मनोभावाः। धवलमपि श्वेतमपि सरागमिति यथाश्रुतार्थकत्वे विरोधः, सरागमित्यस्य प्रेमपूर्णमित्यर्थग्रहणे तु तत्परिहार इति आपाततो विरोधप्रतिभासेऽपि परमार्थतो विरोधाभावाद्विरोधाभासोऽलङ्कारः। दीर्घीभवत्-दीर्घाकारतामापद्यमानम्। दीर्घं न पश्यति दूरमवलोकते। अनुपहते-स्वस्थे। श्रोत्रे-कर्णविवरे। स्त्रीरागिणि-पत्नीप्रेमासक्ते। विद्यान्तरम्-अन्या विद्या।

कलुषित हो जाता ही है। कलुषित मन में यह क्या है इस प्रकार का ज्ञान ही नहीं होता है। न चित्त विचार करता है, न विवेक अपना कार्य करता है इसलिए कुछ कह रहा हूँ। अन्य लोकवृत्त तो हमसे अधिक आप ही जानते हैं।

क्या इस विशाल संसार में कोई ऐसा है जिसका यौवन निर्विकार बीत गया हो। जवानी के आने पर लड़कपन के साथ ही गुरुजन का स्नेह बह जाता है। नवीन वाणी के साथ नई प्रीति उगती है। छाती के साथ अभिलाषा चौड़ी होती जाती है। बल के ही साथ घमण्ड बढ़ता है। दोनों बाहुओं के साथ बुद्धि मोटी होती जाती है। मध्यभाग के साथ ही शास्त्रज्ञान कृश होता जाता है। जैसे-जैसे जांघें मोटी होती हैं वैसे-वैसे हृदय अविनय से पूर्ण होता जाता है। दाढ़ी-मूँछ के साथ ही मालिन्यजनक मोह बढ़ता है। आकार के साथ ही हृदय-विकार प्रकट होने लगते हैं। धवल होकर भी सराग नयन दीर्घ होकर भी दूर तक नहीं देख पाते हैं। कान के अक्षत रहने पर भी उनमें गुरूपदेश नहीं प्रवेश करता है। स्त्री से प्रेम करने वाले हृदय में दूसरी विद्यायें नहीं प्रवेश कर

---

१. उपचीयतेऽविनयैः।

देशः श्रोत्रे। स्त्रीरागिण्यपि न विद्यान्तरं विन्दति हृदये। स्थैर्यमस्थिरप्रकृतौ तरलतायाम्। परित्याज्येषु व्यसनेष्वासङ्गः।

विकाराणां च कारणं प्रायः सरसता। सा च सर्वमेव जलप्रायं कुर्वाणा वर्षातिवृद्धयेवोपजायते। अपि च दिवसो दोषागमाय, दोषागमो नालोकाय, अनालोकोऽसद्दर्शनार्थम्, असद्दर्शनमविवेकाय, अविवेकोऽसन्मार्गप्रवृत्तये, असन्मार्गप्रवृत्तं च मोहान्धं चेतो भ्राम्यदवश्यमेव स्खलति। स्खलिते चेतसि तल्लग्ना पतत्येव लज्जा। त्रपावरणशून्ये च हृदि प्रविश्य पदं कुर्वन् केन वा निवारितो दुर्निवारः सर्वाविनयहेतुः कुसुमधन्वा। विलसति च कुसुममार्गणे केन कार्येण छिद्रसहस्राणि न भवन्ति यैः सत्त्वमेवाधस्ताद् व्रजति। सत्त्वे चाधो गते किमाश्रित्य न गलति शीलम्। किमवलम्बनं विनयस्य। किं करोत्वनाधारं धैर्यम्। क पदमाधत्तां धीः। क समाधानमाबध्नात्ववष्टम्भः। केन वावष्टभ्य बलान्निश्चलीकृतं

अस्थैर्यप्रकृतौ-स्वभावतश्चञ्चलायाम्। तरलतायाम्-चञ्चलतायाम्। स्थैर्यम्-दृढता। (अयमर्थः-युवका अस्थिरतायामेव दृढभावेन स्थिरीभूयावतिष्ठन्ते) परित्याज्येषु-त्यक्तुं योग्येषु। व्यसनेषु-दोषेषु। आसङ्गः-आसक्तिः।

विकाराणाम्-यौवने संभवन्तीनां मनोविकृतीनाम्। सरसता-रसिकता। सा-सरसता। जलप्रायम्-जलार्द्रं सरसम्। वर्षातिवृद्धया-अवस्थाधिक्येन वृष्टिप्राचुर्येण च। यथा वृष्टिप्राचुर्येण सरसता वर्धते तथैवावस्थावृद्धया रसासक्तिर्वर्द्धत इत्याशयः। दोषागमाय-रात्रेरागमनाय दोषाणां कामादीनामुदयाय चेति व्यञ्जना। दोषागमो रात्रिसमागमनम् अनालोकाय अप्रकाशद्वारा दृढशक्तिप्रतिबन्धाय, दोषाणाम्मनोविकारस्वरूपाणां कामादीनामुदयोऽनालोकाय तत्त्वविचारप्रतिबन्धाय चेत्यर्थः। अनालोकः-दृष्टिप्रतिबन्धः विचारशक्तिविरहश्च। असद्दर्शनार्थम्-भ्रमोत्पादनाय कुप्रवृत्तये च। अविवेकः-विचारविरहः। असन्मार्गप्रवृत्तये-कुमार्गप्रवृत्तिजननाय। असन्मार्गप्रवृत्तम्-कुमार्गगामि। भ्राम्यत्-भ्रमारूढम्। स्खलति-पतति। कुमार्गप्रवृत्तस्य भ्राम्यतश्चान्धस्य जनस्य स्खलनं यथाऽवश्यंभावि तथैव तादृशस्य मनसोऽपि पतनमवश्यं भावीति श्लेषलभ्योऽर्थः। स्खलिते-पतिते मार्गादिति शेषः। तल्लग्ना हृदयस्थिता। यथा भवति पतिते भवदासक्तं किमपि वस्तु पतत्येव तथैव मनसि पतिते तदासक्ता लज्जाप्यवश्यं पतेदिति भावः। त्रपावरणशून्ये-लज्जास्वरूपस्यावरकस्य अभावे। (आवरणे विद्यमाने कस्यापि प्रवेशः कष्टसाध्यः स्यात्, आवरणे त्वपगते प्रवेशो वारयितुं न शक्यते, तेन लज्जारूपे आवरणेऽपगते सति हृदये प्रविशेदेव सर्वेषामविनयानां हेतुः कामदेवः, प्रविशतस्तस्य निवारणं न केनापि कर्तुं शक्यमित्यर्थः) कुसुमधन्वा-पुष्पचापः कामदेवः। कुसुममार्गणे-कामदेवे। छिद्रसहस्राणि-अनेके दोषाः। छिद्रेषु तु जातेषु सत्त्वस्य धैर्यस्य पतनं नितान्तस्वाभाविकं स्यादित्याशयः। शीलं-सच्चरितम्। अनाधारम्-निराश्रयम्। आधत्ताम्-धारयतु। समाधानम्-स्थितिम्। आबध्नातु-करोतु। अवष्टम्भः स्थिरता। विप्रतिपद्यमानानि-संशय-

---

पाती हैं। अस्थिर प्रकृति या अवस्था में स्थिरता तथा त्याग करने योग्य व्यसनों में आसक्ति उत्पन्न हो जाती है।

विकारों का कारण प्रायः सरसता ही हुआ करती है। वह सरसता वर्ष के बढ़ते जाने से सारी चीजों को गीली कर देती है और दिन दोष के आगमन का कारण बनते हैं, दोष के आगमन से आलोकन-शक्ति क्षीण होती है, आलोकन शक्ति के नाश से असद्दर्शन होता है, असद्दर्शन से अविवेक और अविवेक से असन्मार्ग में प्रवृत्ति होती है। असन्मार्ग-प्रवृत्त चित्त मोहान्ध होकर इधर-उधर भटकता हुआ अवश्य ही स्खलित होता है। चित्त के स्खलित होने पर उसमें लगी हुई लाज गिर जाती है। लज्जारूप आवरण से रहित हृदय में पैठते हुए सभी अविनयों के कारण दुर्निवार कामदेव को कौन रोक पाता है। कामदेव के हृदय में पैठ जाने पर उसमें हजार छिद्र हो जाते हैं जिनसे होकर सत्त्व नीचे गिर जाता है। सत्त्व के गिर जाने पर शील किस आधार पर टिका रहता है। विनय का क्या आश्रय रह जाता है, बिना आधार का धैर्य क्या करे? बुद्धि कहाँ टिके।

मनः। विप्रतिपद्यमानानि केन नियन्त्रितानीन्द्रियाणि। जगन्निन्द्यानि केन निवारितानि दुश्चरितानि। केन वाऽऽलोकभूतेन तमोभिवृद्धिहेतुरुत्सारितो दोषाभिषङ्गो दृष्टेरुपहन्ता। किं वा दृश्यतामसति बहुदर्शित्वे। बहुदर्शित्वं च तावत् कालस्यैवासंभवात् कुतः भवतु प्रथमे वयसि। येनान्वयव्यतिरेकाभ्यां निश्चित्य वर्ज्यतां[1] मलिनता। अपि च परिणामेपि पुण्यवतां केषांचिदेव हि केशैः सह धवलिमानमापद्यन्ते चरितानि। तन्मोहविषमहाहौ मदविकारगन्धमातङ्गे दुर्विलसितैकराज्ये रतिनिद्राविलासवेश्मनि नवरागपल्लवोद्गमलीलान्तविशेषदुश्चरितचक्रवर्तिनि तारुण्यावतारे सर्वस्यैव विषमतरविषयमार्गपतितस्य स्खलितमापतति। किमेवमार्येण लालनीयस्य पालनीयस्य शिशुजनस्योपर्यावेशो गरीयान् गृहीतो यदनुचितमपत्यस्नेहस्याक्रोशगर्भमेवमुक्तम्। स्वप्नायमानानामपि यद् गुरूणां मुखेभ्यो निष्क्रामति शुभ-

---

निमग्नानि। नियन्त्रितानि–वशीकृतानि। आलोकभूतेन–प्रकाशस्वरूपतां गतेन। तमोवृद्धिहेतुः–अज्ञानवृद्धेः कारणम्। दोषाभिषङ्गः–दोषेष्वासक्तिः। उपहन्ता–घातकः। आलोको हि तमोवृद्धिं निरुन्धन् दृष्ट्युपघातं प्रतिबध्नीयात्तदभावे तु तमोवृद्धिजन्यो दृगुपघातोऽवश्यमापतेदिति भावः। बहुदर्शित्वं यौवनेऽसंभवम्, कालसाध्यत्वात् तस्येत्याशयेनोक्तम्–बहुदर्शित्वमिति। येन–बहुदर्शित्वेन। अन्वयव्यतिरेकाभ्याम्–तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम्, तदभावे तदभाव इत्यन्वयव्यतिरेकौ, हार्दिकमलिनतासत्त्वेनैते दोषाः, हार्दिकमलिनताभावे च तद्दोषाभाव इति विभाव्य बहुदर्शित्वं हृदयमलिनतां वर्जयितुं शक्नोति, प्रथमे हि वयसि बहुदर्शित्वस्य कालसाध्यस्याशक्योत्पत्तिकतया प्रथमं वयो विकारपूर्णं जायेतैवेति भावः। परिणामे–वयःपरिणामे वार्धक्ये। केषांचिदेव पुण्यवताम्–पुण्यातिशयशालिनां केषांचिदेव न तु सर्वेषां वृद्धमात्राणाम्। सर्वेषां वृद्धानां केशाः कामं धवलीभवन्तु, चरितानि तु पुण्यातिशयशालिनां केषांचिदेव धवलानि जायन्त इत्याशयः। 'मोहविषमहाहौ' इत्यारभ्य तारुण्यावतारे इत्येतत्पर्यन्तं पञ्च परम्परितरूपकाणि बोध्यानि। मोहोऽज्ञानमेव विषं तत्र महाहौ महासर्पस्वरूपे। मदविकारः चित्तविकृतिरेव मदविकारो दानवार्युदयस्तत्र विषये गन्धमातङ्गे महागजस्वरूपे। दुर्विलसितानां दुराचाराणाम् एकराज्ये एकच्छत्रसाम्राज्यस्वरूपे। रतिनिद्रायाः रतिक्रीडापरतो भाविन्याः विलासवेश्मनि क्रीडाभवनस्वरूपे। नवो नूतनो रागः प्रेमा एव पल्लवः किसलयस्तस्योद्गमलीला अभ्युद्गमस्तदन्तविशेषा एव दुश्चरितानि दुराचारास्तेषां चक्रवर्तिनि सम्राजि। तारुण्यावतारे–यौवनोदये। विषमतरविषयमार्गपतितस्य–अतिभयङ्करविषयपथमारूढस्य। स्खलितम्–पतनम्। आपतति–संभाव्यते। लालनीयस्य–स्नेहप्रदानयोग्यस्य। शिशुजनस्य–बालकस्य। आवेशः–क्रोधः। गरीयान्–महान्। गृहीतः–अवलम्बितः। आक्रोशगर्भम्–शापपूर्णाक्षरयुतम्। एवम्–पूर्वोक्तरूपम् स्वप्नायमानानाम्–निद्राकाले स्वप्नं पश्यताम्। गुरूणाम्–मातापित्रादीनाम्। निष्क्रामति–बहिर्भवति। दैवतम्–मान्यो देवः। गुरुजनवितीर्णाः–मातापि-

---

गम्भीरता कहाँ आश्रय बनावे? मन को कौन पकड़कर स्थिर रखे? परस्पर विवदमान इन्द्रियों का नियन्त्रण कौन कर सका है? जगत् में निन्दनीय दुश्चरितों को कौन रोक सका है? किसने प्रकाश बनकर आँखों को अन्धी बनाने वाले तथा तम को बढ़ावा देने वाले दोषाभिषङ्ग को रोका है? बहुदर्शिता के नहीं रहते क्या देखा जाय? जवानी में इतने समय के नहीं बीतने के कारण बहुदर्शिता कहाँ से आवे? बहुदर्शिता रहे तब न अन्वय-व्यतिरेक के सहारे मलिनता का त्याग किया जा सके।

बुढ़ापे में भी कुछ ही ऐसे पुण्यशाली होते हैं जिनके केशों के साथ चरित भी धवल हुआ करते हैं।—मोह तथा विषयरूप सर्प से युक्त, मदविकाररूप हाथियों से घिरे, रतिनिद्रा के विलासगृह, नये प्रेम के उद्गम तथा लीलाविशेष से दुश्चरित-चक्रवर्ती तारुण्यावतार रूप दुर्विलसित के एकच्छत्र साम्राज्य में विषमतर विषयमार्ग में सभी का स्खलन हो ही जाता है। आपने अपने द्वारा लालित-पालित शिशुजन पर क्यों इस प्रकार क्रोध कर लिया है जिससे अपत्य-स्नेह के अनुपयुक्त इस प्रकार आक्रोशपूर्ण बातें कह डाली हैं। सपने में भी गुरुजनों के

---

[1] वर्जयति मलिनताम्।

मशुभं वा शिशुषु तदवश्यं फलति । गुरवो हि दैवतं बालानाम् । यथैवाशिषो गुरुजनवितीर्णा वरतामापद्यन्ते तथैवाक्रोशाः शापताम् । तद्वैशम्पायनमुद्दिश्य कोपावेशादेवमतिपरुषमभिदधत्यार्ये महती मे चेतसः पीडा समुत्पन्ना । स्वयमारोपितेषु तरुषु यावदुत्पद्यते स्नेहः । किं पुनरङ्गसंभवेष्वपत्येषु । तदुत्सृज्यतामयममर्षवेगो वैशम्पायनस्योपरि । विरूपकं तु तेन न किंचिदप्याचरितम् । सर्वपरित्यागं कृत्वा स्थित इत्येतदपि कारणमविज्ञाय किमेवं दोषपक्षे निक्षिपामः । कदाचिद् गुणीभवत्येवमयमविनयनिष्पन्नो दोष एव । आनीयतां तावदसौ । बुध्यामहे किमर्थमयमेवंविधस्तस्य वयसोनुचितोपि संवेग उत्पन्नः । ततो यथा युक्तं विधास्यामः ।'

इत्युक्तवति तारापीडे पुनः शुकनासोऽभ्यधात् । 'अत्युदारतया वत्सलत्वाच्चैवमादिशति देवः । अन्यदतःपरं भवदपि किमिवास्य विरूपकं भवेद्यद्युवराजमुत्सृज्य क्षणमन्यत्रावस्थानमात्मेच्छया चेष्टितम् ।' इत्युक्तवति शुकनासे कशयेवान्तस्ताडितो दोषसंभावनयानया पितुरुद्बाष्पदृष्टिरुपविष्ट एवोपसृत्य चन्द्रापीडः शनैः शनैः शुकनासमवादीत् । 'आर्य, यद्यपि

तृप्रवृत्ताः । वरतामापद्यन्ते–वरदानरूपतया परिणमन्ति । आक्रोशाः–अनिष्टार्थगर्भा उक्तयः । कोपावेशात्–क्रोधवेगात् । अतिपरुषम्–अत्यन्तकठोरशब्दम् । अभिदधति–कथयति सति । आर्ये–पूज्ये त्वयि शुकनासे । पीडा–व्यथा । गुरवो हि शिशूनां देवतारूपास्ते तेषां कृते यद्वा शंसन्ति तदवश्यं फलति, अस्यां स्थितौ त्वां वैशम्पायनस्योपरि क्रोधवेगेन यदाक्रोशगर्भं वचनमुच्चारयन्तमालोक्य मदीयं चित्तं भृशमव्यथतेत्याशयः । आरोपितेषु–रोपितेषु । तरुषु–वृक्षेषु । अङ्गसंभवेषु–शरीरादुत्पन्नेषु । अपत्येषु–पुत्रप्रभृतिषु सन्ततिषु । उत्सृज्यताम्–त्यज्यताम् । अमर्षवेगः–क्रोधावेगः । विरूपकम्–अत्यन्तासदृशम् । कारणमविज्ञाय–सर्वपरित्यागे तेन कृते संभविनं हेतुमज्ञात्वा । दोषपक्षे निक्षिपामः–तदीयं दोषं संभावयामः । अविनयनिष्पन्नः–औद्धत्यसंजातः । आनीयताम्–केनापि प्रकारेण गृहं प्राप्यताम् । बुध्यामहे–जानीमः । तस्य–वैशम्पायनस्य । वयसोऽनुचितः–यौवनस्यायोग्यः । संवेगः–सर्वपरित्यागावेशः ।

अत्युदारतया–सातिशयमहाशयत्वेन । वत्सलत्वात्–वैशम्पायनस्योपरि प्रीत्यतिशयशालित्वाच्च । एवम्–पूर्वोक्तरूपेण । आदिशति–आज्ञापयति । देवः–भवान् । विरूपकम्–अत्यन्तासदृशमाचरणम् । उत्सृज्य–विहाय । अवस्थानम्–स्थितिः । चेष्टितम्–कृतम् । कशया–अश्वदमकेन चर्मादिनिर्मितेनाघातसाधनेन । दोषसंभावनया–वैशम्पायनस्यैतादृशे निभृतपलायने भवतोऽपि दोष इति राज्ञा कृतयाऽऽशङ्कया । अन्तस्ताडितः–मर्मण्याहतः । उद्बाष्पदृष्टिः–अश्रुपूर्णनयनः । उपसृत्य–शुकनाससमीपमागत्य । विर

मुखों से जो शुभ या अशुभ निकलता है बच्चों पर वह अवश्य फलित होता है । गुरुजन बच्चों के देवता होते हैं । जिस प्रकार गुरुजनों के आशीर्वाद वरदान होते हैं उसी तरह उनके आक्रोश भी शाप होते हैं । आपने वैशम्पायन को उद्देश्य करके क्रोध के आवेश में जो कुछ कहा है उससे मुझे बड़ी चोट लगी है । जब स्वयं रोपे गये वृक्षों पर भी स्नेह उत्पन्न हो जाता है तब अङ्गों से पैदा होने वाले बच्चे की क्या बात । आप वैशम्पायन के ऊपर उत्पन्न अपने क्रोध का त्याग करें । उसने कुछ अनुचित तो नहीं किया । सबको छोड़ बैठा है इस बात को भी तबतक दोषकोटि में नहीं माना जा सकता है जबतक कारण का ज्ञान नहीं हो जाय । कभी-कभी इस प्रकार का अविनय दोष भी गुण बन जाता है । पहले उसे बुला लिया जाय, हम यह समझें कि उसे इस प्रकार का अवस्था के अनुचित उद्वेग क्यों हुआ, पीछे यथोचित उपाय करेंगे ।

तारापीड़ के इस प्रकार कहने पर पुनः शुकनास ने कहा—आप अति उदार हैं अतः स्नेहवश इस तरह कहते हैं । इससे अधिक उसके लिये अनुचित क्या होगा कि उसने युवराज को छोड़ कर क्षण भर भी दूसरी जगह रहने की सोची । शुकनास के इस प्रकार कहने पर चन्द्रापीड़ को इस प्रकार लगा मानो किसी ने उसे चाबुक मारी हो । वैशम्पायन पर किये गये दोषारोप से वह तिलमिला उठा, धीरे-धीरे पास आकर उसने कहा—

निरुक्तितो वेद्मि न मदीयेन दोषेण नागतो वैशम्पायन इति तथापि तातेन सम्भावितमेव कस्य वापरस्य सम्भावना नोत्पन्ना। मिथ्यापि तत्तथा यथा गृहीतं लोकेन विशेषतो गुरुणा। प्रसिद्धिरत्रायशसे यशसे वा दोषगुणाश्रया वा फलवती। परत्र फलदायी कुत्रोपयुज्यते परमार्थः। तदस्या दोषसम्भावनायाः प्रायश्चित्तमार्यो दापयतु मे वैशम्पायनानयनाय गमनाभ्यनुज्ञां तातेन। नान्यथा मे दोषशुद्धिर्भवति। किं कारणम्। अनागते तु वैशम्पायने तातस्यानया संभावनया नापगन्तव्यम्। अगते च मयि वैशम्पायनेन नागन्तव्यम्। यद्यसावन्येनानेतुमेव पार्येत तदा तातस्याप्यनुल्लङ्घनीयवचनैरेभिरवनिपतिसहस्रैरानीत एव स्यात्। तदार्यः कारयतु मे गमनाभ्यनुज्ञया प्रसादम्। न च तुरङ्गमैर्गच्छतो मे दृष्टायां भूमौ स्वल्पोपि गमनपरिक्लेशः। वैशम्पायनमादायागतमेव मामवधारयत्वार्यः। अपि च बाह्यखेदादसह्योन्तःखेद एव मे तद्वियोगजन्मा। अनुपदमेव स्कन्धावारमादाय गच्छतीत्यमुना

क्तितः–विचारपूर्वकम्। तातेन संभावितमेव–मम पित्रा शङ्कितमेव यन्ममैव दोषेण वैशम्पायनो नागत इति। कस्य वापरस्य संभावना नोत्पन्ना–कोऽस्त्येतादृशो यो वैशम्पायनस्य पलाय्य गमने मम दोषं नाशङ्कत इत्यर्थः। तत्तथा–सत्यम्। यथागृहीतम्–येन प्रकारेण ज्ञातम्। मिथ्यापि किमपि चरितगतं दूषणादिकं यदि लोको विशिष्य गुरुः सत्यत्वेन जानाति तदा तत्सत्यमेव मन्तव्यमित्यर्थः। प्रसिद्धिरित्यादेः फलवतीत्यन्तस्य च ग्रन्थस्य प्रसिद्धिरेव यशस्ययशसि च दोषे गुणे वा कारणीभूता, न तु दोषगुणयोः परमार्थसत्तेति। परमार्थः सत्यता तु परत्र फलदायी लोकान्तरे फलप्रदः, कुत्र युज्यते कुत्रापि नोपयुज्यत इत्यर्थः। दोषसंभावनायाः–ममैव दोषेण वैशम्पायनो नायात इति शङ्कायाः। प्रायश्चित्तम्–प्रक्षालनोपायम्। दापयतु–यथा पिताऽस्य दोषस्य क्षालनार्थं गन्तुं मामाज्ञापयेत्तथा मम पितरमार्यः प्रेरयत्वित्यर्थः। दोषशुद्धिः–दोषप्रक्षालनम्। अपगन्तव्यम्–दूरीभवितव्यम्। असौ–वैशम्पायनः। अन्येन–मदितरेण येन केनचित्। पार्येत–शक्येत। अनुल्लङ्घनीयवचनैः–अनतिक्रम्यभाषितैः (मम तातोऽपि येषां वचनानि नातिवर्त्तते तादृशैः अतिविश्वस्तैरित्यर्थः) नरपतिसहस्रैः–स्कन्धावारस्थैरनेकै राजभिः। गमनाभ्यनुज्ञया–गन्तुमादेशेन। प्रसादम् अनुग्रहम्। तुरङ्गमैः–अश्वैः। दृष्टायाम्–पूर्वं दृष्टायामत एव च परिचितायाम्। पूर्वपरिचितः कष्टोऽपि मार्गः सुगमो भवतीति मम यात्राक्लेशो नाशङ्कनीय इत्यर्थः। अवधारयतु–निश्चित्य जानातु बाह्यखेदात्–शारीरिकक्लेशात्। असह्यः–सोढुमशक्यः। अन्तःखेदः–मानसं कष्टम्। अनुपदम्–अतिशीघ्रम्। स्कन्धावारम्–सैन्यसमुदायम्। अमुना हेतुना–अनेन कारणेन। तेन–वैशम्पायनेन। श्रुत्वा वैशम्पायनो नागत इति सेनामुखादाकर्ण्य, तेनैव तुल्यः–वैशम्पायनेन सदृशः। यदि तस्मादेव स्थानादहमपि वैशम्पायनानयनार्थं गतोऽभविष्यं तदा लोको मामपि

आर्य, यद्यपि, सोचने से मालूम पड़ता है मेरे किसी दोष से वैशम्पायन नहीं आया है ऐसी बात नहीं है, तथापि आपकी सम्भावना भी ठीक ही है, किसको इस प्रकार की संभावना नहीं होगी। झूठी बात भी लोक मान लें—विशेषतः गुरुजन तो वह सत्य सिद्ध हो जाती है। दोष अथवा गुण के आधार पर फैलने वाली प्रसिद्धि ही यश अथवा अयश की जननी होती है। परलोक में फल देने वाले परमार्थ का उपयोग कहाँ होता है। इसलिये मुझ पर की गई दोष-संभावना के प्रायश्चित्त में आप मुझे वैशम्पायन को बुला लाने के लिये जाने की आज्ञा पिता जी से दिलवा दें। दूसरी तरह से मेरे दोष की शुद्धि नहीं होगी। क्योंकि जब तक वैशम्पायन नहीं आ लेगा तबतक पिता जी के हृदय से यह संभावना दूर नहीं होगी। मेरे गये बिना वैशम्पायन भी नहीं आवेगा। यदि उसे दूसरे भी ला सकते तब तो पिता जी की आज्ञा को नहीं टालने वाले यह सहस्रसंख्यक राजकुमार ही ले आये होते। अतः आप पिता जी से अनुमति दिला देने की कृपा करें। घोड़े पर जाने में मुझे कष्ट नहीं होगा, भूमि मेरी देखी है, आप मुझे वैशम्पायन को लेकर आया हुआ ही समझें। बाह्यकष्ट की अपेक्षा मुझे वैशम्पायन के वियोग से उत्पन्न मानसिक खेद ही अधिक है। अभी सेना को लेकर आ रहा है यही सोच कर मैं उसके बिना ही चला

हेतुना विना तेनागतोहम् । अन्यदा जन्मनः प्रभृति कदा मया गतं स्थितं क्रीडितं हसितं पीतमशितं सुप्तं प्रबुद्धमुच्छ्वसितं वा विना वैशम्पायनेन । यच्च श्रुत्वा तस्मादेव प्रदेशान्न गतोस्मि तन्मा तेनैव तुल्योऽभूवमिति । तदप्रतिगमनदोषाद्रक्षतु मामार्यः ।'

इत्यभिहितवति चन्द्रापीडेन्तःपीडोपरागरक्ते रक्ततामरसानुकारिणि मुखे सपक्षपातां षट्पदावलीमिव दृष्टिं निवेश्यैव 'गमनाय विज्ञापयति युवराजः, किमाज्ञापयति देवः' इति शनैः शनैः शुकनासो राजानमप्राक्षीत् । तथा पृष्टश्च शुकनासेन किंचिदिव ध्यात्वा तारापीडः प्रत्यवादीत् । 'आर्य मया ज्ञातमेतेष्वेव दिवसेषु संपूर्णमण्डलस्येन्दोर्ज्योत्स्नामिव करावलम्बिनीं वत्सस्य वधूं द्रक्ष्यामीति यावदयमपरोन्तर्हिताशापथो जलदकाल इव प्रत्यूहकारी वैशम्पायनवृत्तान्तो विलोमप्रकृतिना विधात्रान्तरा पातितः । यथा चायुष्मताभिहितमेवैतत् । न तमन्यः शक्नोत्यानेतुम् । न हि च तेन विनायमत्र स्थातुम् । तदवश्यमेव तावन्निस्तरितव्यो व्यसनार्णवोमुना पोतेन । वैशम्पायनप्रत्यानयनाय चावश्यं देव्यपि विलासवती

वैशम्पायनमिव विनैव सूचनां गतत्वेनानुचितकारिणमज्ञास्यदिति भावः । अप्रतिगमनदोषात्-वैशम्पायनान्वेषणाय चन्द्रापीडो न गत इति कलङ्कात् ।

इत्यभिहितवति-एवमुक्तवति । अन्तःपीडोपरागरक्ते-मानसिकखेदेन रक्तवर्णे । रक्ततामरसानुकारिणि रक्तकमलसमाने । सपक्षपाताम्-सस्नेहाम् (पक्षतिकृतगमनशक्तिसहिताञ्च) षट्पदावलीम्-भ्रमरमालाम् । निवेश्य-स्थापयित्वा । (कमले रक्तवर्णे यथा पक्षाभ्यां पतनशीला भ्रमरावली निविशते तथा चन्द्रापीडस्य पीडया रक्तवर्णे मुखे सस्नेहां दृशं शुकनासो न्यवेशयदित्याशयः) विज्ञापयति-स्वाशयं प्रकाशयति । प्रत्यवादीत्-प्रत्युत्तरं दत्तवान् । एतेष्वेव दिवसेषु-एष्वेव दिनेषु । सम्पूर्णमण्डलस्य-पूर्णबिम्बस्य समृद्धप्रजस्य च । ज्योत्स्नाम्-कौमुदीम् । करावलम्बिनीम् हस्तधारिणीम् किरणावलम्बनपराञ्च । अन्तर्हिताशापथः-तिरोहिताशामार्गः । जलदकालः-वर्षासमयः । प्रत्यूहकारी-मनोरथसिद्धौ विघ्नाधायकः । विलोमप्रकृतिना-विपरीतस्वभावेन । विधात्रा-ब्रह्मणा । अन्तरा पातितः-मध्ये स्थापितः । यथा कौमुदीं पूर्णबिम्बस्य चन्द्रस्य किरणानाश्रयन्तीं द्रष्टुं कामयमानस्य जनस्य विरोधी ब्रह्मा यथा विघ्नकरं जलदसमयं समुपस्थाप्य तदीयामाशां चूर्णयति तथैव अनुरञ्जितप्रजस्य चन्द्रापीडस्य करमाश्रयन्तीं वधूमहं द्रक्ष्यामीति संभावयतो मम विरोधी ब्रह्मा मध्ये वैशम्पायनवृत्तान्तमुपस्थाप्य मदीयामाशां प्रत्यवधनादिति भावः । आयुष्मता-चिरायुषा चन्द्रापीडेन । तेन-वैशम्पायनेन विना । अयम्-चन्द्रापीडोपि । निस्तरितव्यः-उत्तरणीयः । व्यसनार्णवः-दुःखसागरः । अमुना-चन्द्रापीडगमनेन । पोतेन-जलयानेन । वैशम्पायनप्रत्यानयनाय-वैशम्पायनं परावर्त्यानेतुम् । विसर्जयिष्यति-

---

आया था । जन्म से लेकर मैंने कब, इसके अलावा, उसके बिना कहीं गया, ठहरा, खेला, हँसा, पीया, खाया, सोया, अथवा जगा हूँ । सुनते ही वहाँ से मैं नहीं लौट गया इसका कारण यही था कि मैं भी कहीं वैसा ही न समझ लिया जाऊँ ? इसलिये मुझे आप अप्रतिगमन दोष से बचाइये ।

चन्द्रापीड़ का मुख आन्तरिक पीड़ा के राग से उपरक्त हो गया, अतः रक्त कमल के समान लगने वाले उसके मुँह पर भ्रमर सरीखी अपनी दृष्टि डालते हुए शुकनास ने धीरे से राजा से पूछा—युवराज जाना चाहते हैं आपकी क्या आज्ञा है ? शुकनास के इस प्रकार पूछने पर थोड़ा सोचकर तारापीड़ ने कहा—आर्य, मैंने सोचा था कि इसी बीच में पूर्णचन्द्र के पीछे चलने वाली चन्द्रिका की तरह पुत्र की करावलम्बिनी बहू को देखूँगा, परन्तु उलटी प्रकृति वाले ब्रह्मा ने आशापथ को अन्तर्हित कर देने वाले जलद-काल की तरह विघ्नकारी इस वैशम्पायन-वृत्तान्त को बीच में लाकर खड़ा कर दिया है । जैसा कि चन्द्रापीड़ने कहा है दूसरा उसे नहीं ला सकता है । उसके बिना यह भी यहाँ नहीं रह सकता है । इसलिये इसी नाव के सहारे इस दुःखसागर को पार करना होगा । मुझे निश्चय है कि वैशम्पायन को लाने के लिये देवी विलासवती भी इसे जाने की अनुमति देंगी

विसर्जयिष्यत्येवैनमिति निश्चयो मे। तद्यातु। किंत्वतिदूरं वत्सेन गन्तव्यम्। [तद्गणकैः सहादरादार्यो दिवसं लग्नं च गमनायास्य निरूपयतु संविधानं च कारयतु' इति। एतदभिधाय शुकनासमुद्बाष्पलोचनश्चिरमिव चन्द्रापीडमालोक्याहूय च विनयावनम्रमंसदेशे शिरसि बाह्वोश्च पाणिना स्पृशन्नादिशत्। 'वत्स गच्छ त्वमेव प्रविश्याभ्यन्तरं मनोरमासहिताया मातुरावेदयात्मगमनवृत्तान्तम्।' इत्यादिश्य चन्द्रापीडमात्मना शुकनासमादाय स्वभवनमयासीत्। चन्द्रापीडस्तु तामक्लिष्टवर्णां कादम्बरीवरणस्रजमिव गमनाभ्यनुज्ञां हृदयेनोद्वहन्प्रहृष्टान्तरात्माप्यपहर्षदृष्टिः प्रविश्य कृतनमस्कारो मातुः समीपे समुपविश्यात्मदर्शनद्विगुणीभूतवैशम्पायनविरहशोकविह्वलां मनोरमामाश्वास्यावादीत्।

'अम्ब समाश्वसिहि। वैशम्पायनानयनाय तातेन मे गमनमादिष्टम्। तत्कतिपयदिवसान्तरितं वैशम्पायनाननदर्शनोत्सुकं माम[1]विकल्पं विसर्जय त्वम्।' सा त्वेवमभिहिता प्रत्युवाच। 'तात, किमात्मगमनवचसा मां समाश्वासयति। कः खलु मे त्वयि तस्मिंश्च

गन्तुमाज्ञापयिष्यति। गणकैः-ज्यौतिषविद्यां जानद्भिः। आदरात्—यत्नातिशयात्। दिवसम्-यात्रानुकूलं दिनम्। लग्नम्-यात्रानुकूलं समयं च। निरूपयतु-निर्णयतु। संविधानम्-यात्रोपयुक्तं सन्नाहम्। उद्बाष्पलोचनः-साश्रुदृष्टिः। आहूय-समीपे आकार्य। विनयावनम्रम्-विनयाधिक्येन नमन्तम्। अंसदेशे-स्कन्धभागे। आदिशत्-आज्ञापितवान्। अभ्यन्तरं प्रविश्य-मातुरन्तःपुरे गत्वा। आवेदय-सूचय। अक्लिष्टवर्णाम्-स्फुटाक्षराम्, स्रक्पक्षे अनुपहतरक्तादिरागाम्चेत्यर्थः। कादम्बरीवरणस्रजम्-कादम्बर्या न्यस्तां स्वयंवरमालाम्। हृदयेन-मनसा उरोदेशेन च। प्रहृष्टान्तरात्मा-मनसा प्रसन्नः। अपहर्षदृष्टिः-विषण्णनयनः। कृतनमस्कारः-मातुश्चरणयोः प्रणतः। आत्मदर्शनेति। आत्मनश्चन्द्रापीडस्य दर्शनेन (उद्बोधकतां गतेन) द्विगुणीभूतः वर्धितः वैशम्पायनविरहशोकः वैशम्पायनवियोगजन्मा क्लेशस्तेन विह्वलाम् खिन्नाम्। मनोरमां नाम वैशम्पायनस्य मातरम्। आश्वास्य धैर्यं धारयित्वा।

अम्ब-मातः। समाश्वसिहि-धैर्यमवलम्बस्व। आदिष्टम्-आज्ञप्तम्। कतिपयदिवसान्तरितम्-कियद्भिर्दिनैर्विलम्बितम् (अनतिचिरमागामिनम्) अविकल्पम्-विना किमपि विचारान्तरम्। आत्मगमनवचसा-स्वयात्रासूचकवचनेन। समाश्वासयसि-धैर्यं धारयसि। तस्मिन् वैशम्पायने। विशेषः-अन्तरम्। मम दृष्टौ एवं वैशम्पायनश्चाभिन्न एवास्यां स्थितौ वैशम्पायनविरहखिन्नाया मम स्वयात्रासूचकवचसा समाश्वासः कथं भवेदिति कृतं तव मत्समाश्वासनप्रयासेनेति भावः। कठिनहृदयम्-कठोर-

---

इसे बहुत दूर जाना है अतः आप गणकों को पूछकर इसके जाने का दिन तथा लग्न स्थिर कर दें और जाने की तैयारी भी कर दें। इस प्रकार शुकनास से कह कर तारापीड़ ने आँखों में आँसू भर कर देर तक देखा, कंधे तथा सिर छूआ और समीप बुलाकर कहा—बेटा, तुम स्वयं भीतर जाकर मनोरमा तथा अपनी माता से जाने की आज्ञा माँग लो। चन्द्रापीड़ से इस प्रकार कहकर तारापीड़ शुकनास के साथ अपने वासभवन को चले गये। चन्द्रापीड़ को जाने की आज्ञा क्या मिली सदा प्रफुल्ल कादम्बरी की वरमाला ही मिल गई, उसको उसने हृदय में धारण किया, भीतर से प्रसन्न होकर भी उसने आँखों में हर्ष की झलक नहीं आने दी भीतर जाकर उसने माता को नमस्कार किया, उसके पास बैठ गया। उसे देखकर मनोरमा के हृदय में वैशम्पायन के विरह का शोक दुगुना हो गया चन्द्रापीड़ ने मनोरमा को आश्वासन देकर कहा। मातः, धैर्य धारण कीजिये, वैशम्पायन को बुलाने जाने के लिये पिताजी ने मुझे आज्ञा दे दी है। मैंने कितने दिनों से वैशम्पायन का मुख भी नहीं देखा है मैं स्वयं बड़ा उत्कण्ठित हूँ, मुझे आप बिना किसी हिचकिचाहट के जाने दें। इस प्रकार कही गई मनोरमा ने कहा—अपने जाने की बात कह कर मुझे क्यों धीरज बंधा रहे हो बेटा, मेरे लिए तुममें और वैशम्पायन में क्या भेद है ? इस

---

१. वत्सयै दर्शनोत्सवम्।

विशेषः। तदेकधा तमेकं न पश्यामि कठिनहृदयम्[1]। त्वयि पुनर्गते यदपि तस्यादर्शने जीवितप्रतिबन्धहेतुभूतं त्वद्दर्शनं तदपि दूरीभवति। तन्न गन्तव्यं वत्सेन। एकेनापि हि युवयोरावां पुत्रवत्यौ। अपि नागतो नामासौ निष्ठुरात्मा।' इत्युक्तवत्यां मनोरमायां विलासवती धीरमुवाच। 'प्रियसखि, तव मम चैवमेतद्यथा त्वयोक्तम्। अयं पुनर्वैशम्पायनेन विना कं पश्यतु। तदास्ताम्। किमेतन्निवारयसि। वारितेनाप्यनेन नैव स्थातव्यम्। मन्ये च पित्राप्ययमेतदेवाकलय्य गमनायानुमोदितः। तद्यातु। वरमावाभ्यां कतिपयदिवसाननयोरप्यदर्शनकृतान्क्लेशाननुभूतान्न पुनरस्य वैशम्पायनाननानवलोकनदुःखदीनं दिने दिने वदनमीक्षितुम्। तदुत्तिष्ठ गच्छावो गमनसंविधानाय वत्सस्य[2] चन्द्रापीडस्य।'

इत्यभिदधत्येव मनोरमां हस्ते गृहीत्वोत्थाय चन्द्रापीडेनानुगम्यमाना निजावासमयासीत्। चन्द्रापीडोपि मातुः समीपे गमनालापेनैव क्षणमिव स्थित्वा गृहमगात्। तत्र चापनीतसमायोगो गमनायोत्ताम्यता हृदयेन गणकानाहूय रहस्याज्ञापितवान्। 'यथा विना परिलम्बेन मे गमनं भवति तथा भवद्भिरार्यशुकनासाय पृच्छते ताताय वा दिनमा-

---

चित्तम्। जीवितप्रतिबन्धहेतुभूतम्-प्राणधारणकारणतां गतम्। दूरीभवति-अपयाति। युवयोरेकेन-तव वैशम्पायनस्य च मध्ये एकतरेण। आवाम्-अहं मनोरमा विलासवती च। निष्ठुरात्मा-क्रूरहृदयः। अयम्-चन्द्रापीडः। (अहं त्वञ्च चन्द्रापीडं दृष्ट्वा वैशम्पायनविरहक्लेशं न्यूनीकर्त्तुं शक्नुवः, परन्त्वयं चन्द्रापीडः कं दृष्ट्वा स्वक्लेशं दूरीकरोत्विति भावः) निवारयसि-गमनादिति शेषः। वारितेन-निषिद्धेन। एतद्-वारणे कृतेऽप्यवश्यावस्थानरथम्। आकलय्य-विचार्य। अनुमोदितः-आज्ञापितः। कतिपयदिवसान्-कतिचन दिनानि। अनयोः-द्वयोरपि चन्द्रापीडवैशम्पायनयोः। वैशम्पायनवदनानवलोकनदुःखदीनम्-वैशम्पायनस्य मुखमदृष्ट्वा खिन्नम्। चिरकालपर्यन्तमस्य वैशम्पायनवियोगेन खिन्नं मुखं पश्यावेत्यतः कियन्ति दिनानि चन्द्रापीडवैशम्पायनयोर्द्वयोरपि मुखमावां न पश्यावेत्येतदेव सुखं दुःखमिति भावः। गमनसंविधानाय-यात्राप्रबन्धं कर्त्तुम्।

इति अभिदधती-इत्थं कथयन्ती। मनोरमां हस्ते गृहीत्वा-हस्तावच्छेदेन मनोरमामवलम्ब्य, हस्ते इत्यत्र सप्तम्यर्थोऽवच्छेदकत्वम्, गले कलितकालिमप्रकटितेन्दुभालस्थले इत्यत्र यथा, मनोरमाया हस्तं गृहीत्वेति तु परमार्थः। गमनालापेन-यात्रावार्त्तया। अपनीतसमायोगः-त्यक्तवसनाभरणादिः। उत्ताम्यता-उत्कण्ठमानेन। रहसि-एकान्तदेशे। विना परिलम्बेन-विनैव विलम्बम्। अःवेदनीयम्-

---

तरह उसी एक निठुर को नहीं देख रही हूँ। तुम्हारे चले जाने पर तो उसके विरह में प्राणों को जाने से रोकने वाला तुम्हारा यह दर्शन भी छूट जायगा। अतः तुम मत जाओ, एक तुमसे ही हम दोनों पुत्रवती रहेंगी। अभी भी वह निर्दयी नहीं न आया। मनोरमा के इस प्रकार कहने पर विलासवती ने धीरे से कहा—प्रिय सखि तुमको तथा हमको जो कहना चाहिए सो तुमने कहा। यह वैशम्पायन के बिना किसे देखेगा। इसलिए इसे क्यों रोकती हो? रोकने पर भी यह नहीं रुक सकेगा। मैं समझती हूँ बाप ने भी यही समझ कर इसे जाने की अनुमति प्रदान की है। अतः जाये। यह अच्छा है कि हम दोनों कुछ दिनों तक इन दोनों में से किसी का भी मुँह नहीं देखने का कष्ट भुगतें, किन्तु यह अच्छा नहीं है कि वैशम्पायन को नहीं देख सकने के कारण दुःखी चन्द्रापीड़ का मुँह हम रोज देखा करें। अतः चलो वत्स चन्द्रापीड़ के जाने की तैयारी करें।

इस प्रकार कहती हुई विलासवती ने मनोरमा का हाथ पकड़कर उसके तथा चन्द्रापीड़ के साथ अपने वासभवन की यात्रा की। चन्द्रापीड़ कुछ देर तक माता के साथ जाने के सम्बन्ध में बातें करके अपने वासभवन को गया। वहाँ पहुँचकर कपड़े उतार कर उसने जाने के लिये उतावले हृदय से गणकों को बुलाकर कहा—जिस तरह बिना विलंब के मेरी यात्रा हो सके, उस तरह पूछने पर पिताजी तथा आर्य शुकनास से आप कहें। इस

---

१. कठिनहृदया। २. दयितस्या।

वेदनीयम् ।' इत्येवमादिष्टास्ते व्यज्ञापयन् । 'देव, यथा सर्व एव ग्रहाः स्थितास्तथास्मन्मतेन देवस्य गमनमेव वर्तमाने न शस्यते । अपरमपि कर्मानुरोधाद्राजेच्छैव कालः । तत्रापि न कार्यमेवाहर्निरूपणया । राजा कालस्य कारणम् । यस्यामेव वेलायां चित्तवृत्तिः सैव वेला सर्वकार्येषु ।' इति विज्ञापिते मौहूर्तिकैः पुनस्तानब्रवीत् । 'तातेनैवमादिष्टमिति ब्रवीमि । अन्यदा[1]त्ययिकेषु कार्येषु कार्यपराणां प्रतिक्षणोत्पादिषु च दिवसनिरूपणैव कीदृशी । तत्तथा कथयिष्यथ यथा श्व एव गमनं भवेत्' इति । देवः प्रमाणमित्यभिधाय गतेषु च तेषु शरीरस्थितिकरणायोदतिष्ठत् । निर्वतितशरीरस्थितिं च मौहूर्तिकास्ते पुनः प्रविश्य शनैर्न्यवेदयन् । 'कृतोऽस्माभिर्देवादेशः । सिद्धश्च तनयविरहविक्लवतयार्यशुकनासस्य । तदतिक्रान्ते श्वस्तनेऽहनि रात्रावितः प्रस्थातव्यं देवेन ।' इत्यावेदिते तैः साधु कृतमिति मुदितचेतास्तानभिष्टुत्य दृष्टिविषयवर्तिनीमेव कादम्बरीं वैशम्पायनं च मन्यमानोऽप्रविष्टायामेव पत्रलेखायां परापतामीत्यग्रप्रधावितेनावधारयँश्चेतसा चतुःसमुद्रसारभूतानिन्द्रायुधरयानुगामिन-

---

कथनीयम् । सर्वे एव ग्रहाः स्थिताः-सर्वेषां ग्रहाणां स्थितिः । अस्मन्मतेन-अस्माकं विचारेण । शस्यते-युज्यते । अपरमपि-परन्तु । कर्मानुरोधात्-आतिपातिककर्मानुरोधात् । अहर्निरूपणया-दिवसविचारेण । चित्तवृत्तिः-मानसिकी यात्राप्रवृत्तिः । मौहूर्त्तिकैः-ज्यौतिषविद्याविद्भिः । आत्ययिकेषु-कालक्षेपासहिष्णुषु । कार्यपराणाम्-कार्यं सम्पादयितुं व्यग्राणाम् । देवः-प्रमाणम्-यादृशी भवत आज्ञा । शरीरस्थितिकरणाय-स्नानाहारादि कर्त्तुम् । निर्वर्त्तितशरीरस्थितिम्-कृतस्नानाहारादिशरीरकार्यम् । कृतः-पालितः । देवादेशः-भवदाज्ञा । सिद्धः-सफलश्चास्माकं प्रयासः । प्रयाससाफल्ये कारणं तनयविरहविक्लवतयेति, यदि शुकनासः पुत्रवियोगेन विमना नाभविष्यत्तदाऽसौ अस्माभिर्भवदादेशमनुसृत्य राजनि प्रतार्यमाणे स्वयं गणनां कृत्वा अवदीर्घां यात्रां विलम्बयेत्परन्तु तथा न जातं, शुकनासस्य पुत्रविरहक्लेशव्याक्षिप्तचित्तत्वादिति भावः । श्वस्तने-अग्रिमे । अहनि-दिवसे । अतिक्रान्ते-व्यतीते सति । प्रस्थातव्यम्-चलितव्यम् । देवेन-भवता । इत्यावेदिते-इत्थमुक्ते । तैः-मौहूर्त्तिकैः । मुदितचेताः-प्रसन्नहृदयः । तान्-मौहूर्त्तिकान् । अभिष्टुत्य-प्रशस्य । दृष्टिविषयवर्त्तिनीम्-प्रत्यक्षस्थिताम् । मन्यमानः-हृदये भावयन् । अप्रविष्टायाम्-अप्राप्तकादम्बरीनिवासस्थानायाम् । परापतामि-स्वयमहमुपस्थितो भवामि । अग्रप्रधावितेन-पुरश्चलितेन । चेतसा-हृदयेन । अवधारयन्-मन्यमानः । चतुःसमुद्रसारभूतान्-सागरचतुष्टयश्रेष्ठांशस्वरूपान् । इन्द्रायुधरयानुगामिनः-इन्द्रायुधनामकं स्वीयमश्वमनुगन्तुं शक्तान् । तुरंगमान्-

---

प्रकार कहने पर गणकों ने कहा—'देव, जैसी भी सारे ग्रहों की स्थिति है, हमारे विचार से इस समय आपका नहीं जाना ही ठीक है । कार्य के अनुरोध से राजा की इच्छा ही काल है उसमें दिन देखने की आवश्यकता ही नहीं है । राजा काल का कारण होता है । जिस समय हृदय चाहे उसी समय सभी कार्य किये जा सकते हैं । प्रतिक्षण गणकों द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर चन्द्रापीड ने कहा—पिताजी ने कहा है इसलिए ऐसा कह रहा हूँ । प्रतिक्षण होने वाले आवश्यक कार्यों में कार्यार्थी जन के लिए दिन क्या देखना है । अतः आप लोग इस प्रकार कहें जिससे कल जाना हो सके । 'आपकी जैसी इच्छा' यह कहकर गणकों के चले जाने के बाद चन्द्रापीड शरीर-कार्य करने को चले गये । शरीर-कार्य करके लौटने पर गणकों ने चन्द्रापीड से कहा-हमने आपकी आज्ञा का पालन कर दिया यह कार्य आर्य शुकनास के पुत्र-विरह से दुःखी होने के कारण सिद्ध हो गया । अतः आप कल के दिन बीत जाने पर रात में यहाँ से प्रस्थान करें । गणकों के इस प्रकार कहने पर चन्द्रापीड ने उनकी तारीफ की और कादम्बरी तथा वैशम्पायन को आँखों के सामने समझा, पत्रलेखा के आने से पहले ही चला जाऊँगा ऐसा सोचकर आगे जाने वाले हृदय से चारों समुद्रों के सारभूत इन्द्रायुध-समान वेगशाली अगणित अश्व तथा घुड़सवारों के कर्मों को

---

१. अत्यन्तुकेषु ।

स्तुरंगमानगणेयानविगणिततुरंगगमनखेदानुत्साहिनो राजपुत्रांश्च निरूपयन्ननन्यकर्मा तं दिवसमेकां च यामिनीं कथं कथमप्यस्थात्।

अथानुरक्तकमलिनीसमागमाप्राप्तिसंतापादिव समं दिवसेनास्तमुपगतवति तेजसां पत्यौ, तेजःपतिपतनाच्चितानलमिव संध्यारागमपराशया सह विशति पश्चिमे गगनभागे, संध्यानलस्फुलिङ्गनिकर इव स्फुरति तारागणे, दिवसविरामान्मूर्च्छागमेनेव तमसा निमील्यमानेषु दिङ्मुखेषु, निवासाभिमुखमुखरेषु वियद्वियोगदुःखादिव कृतार्तप्रलापेषु वयःसमूहेषु, जनितप्रकाशं जन्मेव समालोक्य दोषागमं निरालोकं गर्भमिव तमःप्रविष्टे पुनर्जीवलोके, निजालोकाद्विकासितपूर्वदिग्वधूवदने जन्मान्तरागत इवोदयगिरिवर्तिनि नक्षत्रसमागमसुखमनुभवति भगवति भूयो भूयः स्वकान्तिनिर्भरान्निष्कलङ्क इव नक्षत्रनाथे, विस्पष्टायां

अश्वान्। अगणेयान्-असंख्यान्। अविगणिततुरङ्गमगमनखेदान्-अध्याताश्वयात्राक्लेशान्। उत्साहिनः-गमनविषयकोत्साहयुक्तान्। निरूपयन्-चिन्वन्। (केऽस्मा इन्द्रायुधमनुसर्तुं क्षमाः, के च राजानस्तुरगयात्रायां क्लेशं न मन्तुमुत्साहं बिभ्रतीति च निरूपयन् इत्यर्थः) अनन्यकर्मा-त्यक्तसकलान्यकार्यः। यामिनीम्-रात्रिम्। अस्थात्-स्थितवान्।

अनुरक्तेति। अनुरक्तायाः प्रेमपरायणायाः कमलिन्या नलिन्याः कमलिनीप्रभेदाया नायिकाया इति ध्वन्यते। समागमस्य मिलनस्य अप्राप्तेः अभावाद्यः सन्तापः क्लेशस्तस्मात् (इवेति हेतूत्प्रेक्षा) दिवसेन समम्-दिनेन सह अस्तमुपगतवति-अस्तंगते। तेजसांपत्यौ-सूर्ये। तेजःपतिपतनात्-सूर्यस्य अस्ताचले निपातरूपात्कारणात्। चितानलम्-चितावह्निसदृशम्। सन्ध्यारागम्-सन्ध्याकालिकम् रक्तिमानम्। अपराशया-पश्चिमदिशया। सह-सार्धम्। पश्चिमे गगनभागे-आकाशस्य पाश्चात्यभागे। विशति-प्रविशति सति। सन्ध्यानलस्फुलिङ्गनिकर इव-सान्ध्यवह्निकणसमे। तारागणे-नक्षत्रसमूहे। स्फुरति-दीप्यमाने सति। दिवसविरामात्-दिनसमाप्तेर्हेतोः। मूर्च्छागमेन इव-मूर्च्छागमसमानेन। तमसा-अन्धकारेण। निमील्यमानेषु-सङ्कोचमापाद्यमानेषु। दिङ्मुखेषु-दिशावकाशेषु। निवासाभिमुखमुखरेषु-निवासाय वासभूताय तरवेऽभिमुखाः संमुखाः मुखराः सचुकूजितिशब्दाश्च तादृशेषु। वियद्वियोगदुःखात्-आकाशवियोगजन्यक्लेशात् इवेति हेतूत्प्रेक्षा। कृतार्त्तप्रलापेषु-करुणक्रन्दनपरेषु। वयःसमूहेषु-पक्षिनिवहेषु। जनितप्रकाशम्-प्रकटीकृतालोकम्। जन्मेव जन्मसमानम्। दोषागमम्-रात्रिसमुद्भवम्। निरालोकम्-अप्रकाशम्। गर्भम् इव तमः-गर्भसमानमन्धकारम् प्रविष्टे निलीने जीवलोके संसारे। यथा जीवलोको जन्मप्रकाशमनुभूय गर्भं विशति तथैव सायंकाले जीवलोके दिनं यावत्प्रकाशमनुभूय सायं रात्र्यागमकृतं तमः प्रविशति सतीत्यर्थः। निजालोकात्-स्वीयप्रकाशात्। विकासितपूर्वदिग्वधूवदने-विभासितप्राचीदिशानने। जन्मान्तरागते-जनुरन्तरमापन्ने। (इव) उदयगिरिवर्तिनि-उदयाचलारूढे। नक्षत्रसमागमसुखमनुभवति-नक्षत्रमिलनानन्दमुपभुञ्जाने। स्वकान्तिनिर्भरात्-प्रभातिशयबलात्। निष्कलङ्क इव कलङ्करहितमुखे। नक्षत्रनाथे-चन्द्रमसि। सन्ध्याकाले उदयाचलारूढस्य प्रथम

नहीं गिनने वाले उत्साही सहगामी राजपुत्रों का निश्चय करते हुए दूसरे कार्यों को छोड़कर उस दिन तथा रात को किसी प्रकार बिता दिया।

इसके बाद प्रीतिपरायण कमलिनी के विरहकृत सन्ताप से दिन के साथ दिनकर भी अस्त हुए, सूर्य के पतन से दुःखी होकर पश्चिमा के साथ पश्चिमगगनभाग भी सन्ध्यारागरूप चितानल में पैठ गया, सन्ध्यारूप अनल के स्फुलिङ्गसदृश तारागण आकाश में चमकने लगे, दिशाओं में अन्धकार भर गया मानों दिन के बीत जाने पर उन्हें मूर्च्छा हो आई हो, आकाश से वियुक्त आर्त्त प्रलाप करते हुए पक्षिगण अपने वास को चल पड़े, प्रकाशरूप जन्म को व्यतीत कर अन्धकारपूर्ण रात्रिस्वरूप गर्भ में जीवलोक पुनः प्रविष्ट हुआ, जन्मान्तर से लौटे हुए उदयाचलवर्त्ती चन्द्रमा अपने प्रकाश से प्राचीदिशारूप नायिका के मुख को प्रकाशित करने लगे, उस समय वह चन्द्रमा अपने प्रकाशपुञ्ज से निष्कलङ्क प्रतीत होने लगे, रात प्रकट हो आई, तब चन्द्रापीड़ यात्राकालिक मङ्गल के लिए

निशीथिन्याम्, प्रस्थानमङ्गले प्रणामायोपगतं चन्द्रापीडं पीडयान्तर्विलीयमानेन बाष्पोत्पीडमपारयन्ती पातुमत्यायताभ्यामपि नेत्राभ्यां कृतप्रयत्नाप्यमङ्गलशङ्कया विलासवती मन्युरागावेगगद्गदिकोपरुध्यमानाक्षरमवादीत्।

'तात, युज्यते ह्यङ्कलालितस्य गर्भरूपस्य प्रथमगमने गरीयसी हृदयपीडा यस्मिन्प्रथममेवाङ्कादपैति। मम पुनर्नेदृशी प्रथमगमनेपि ते पीडा समुत्पन्ना यादृशी तव गमनेऽधुना। दीर्यत इव मे हृदयम्। समुत्पाट्यन्त इव मर्माणि। उत्क्वथ्यत इव शरीरम्। उत्प्लवत इव चेतः। विघटन्त इव संधिबन्धनानि। निर्यान्तीव प्राणाः। न किंचित्समादधाति धीः सर्वमेव शून्यं पश्यामि। न पारयाम्यात्मानमिव हृदयं धारयितुम्[1]। धृतोपि बलादागच्छति मे बाष्पोत्पीडः। मुहुर्मुहुः समाहितापि मङ्गलसंपादनाय ते चलति मतिः। न जानाम्येव किमुत्पश्यामीति। किंनिमित्तं चेयमीदृशी मे हृदयपीडेत्येतदपि न वेद्मि। किं बहुभ्यो दिवसेभ्यः कथमप्यागतो मे वत्सो झटित्येव पुनर्गच्छति। किं वैशम्पायन-

---

विकासितपूर्वदिशामुखश्चन्द्रमाः जन्मान्तरात्परागत इव नक्षत्रसमागमसुखमनुभवन् प्रभातिशयाद्विकलङ्क इव प्रतिभासत इत्यर्थः। विरपष्टायाम्-गाढायाम्। निशीथिन्याम्-रात्रौ। प्रस्थानमङ्गले-यात्राकालिकमङ्गलसम्पादनस्वरूपे। प्रणामायोपगतम्-प्रणन्तुमायातम्। पीडयाऽन्तर्विलीयमाना इव-मनोव्यथया निह्नुवानेवात्मानम्। अत्यायताभ्याम्-अतिविशालाभ्याम्। नेत्राभ्याम् (अपि) बाष्पोत्पीडम्-अश्रुप्रवाहम्। पातुमपारयन्ती-रोद्धुमसमर्था। अमङ्गलाशङ्कया-रोदनेन यात्रायाममङ्गलं स्यादिति संभावनया। कृतप्रयत्नापि-कृतायासापि। मन्युना दुःखेन, रागेण सुतस्नेहेन, आवेगेन-भावावेशेन च या गद्गदिका कण्ठावरोधस्तया उपरुध्यमानाक्षरम्-व्याहतवर्णोच्चारणम्। अवादीत्-उक्तवती।

अङ्कलालितस्य-क्रोडे कृतस्य। गर्भरूपस्य-अतिशिशोः। प्रथमगमने-आद्ये वियोगजनके प्रस्थाने। यस्मिन् प्रथमगमने। प्रथमम्-पूर्वम्। अङ्कादपैति-समीपाद् दूरं गच्छति। अतिप्रियस्यातिशिशोश्च तव प्रथमप्रयाणे समधिका पीडा मम युक्ताऽऽसीदित्यर्थः। मम तु तव प्रथमगमने यादृशी पीडाऽजायत ततोऽधिका पीडाऽस्मिन् द्वितीयप्रस्थाने जायते इति भावः। दीर्यते-द्विधा भवति। समुत्पाट्यन्ते-विदार्यन्ते। उत्क्वथ्यते-सन्ताप्यते। उत्प्लवते-वियोगव्यथावारिधौ तरति। विघटन्ते-त्रुट्यन्ति। निर्यान्ति-बहिर्भवन्ति। समादधाति-चेतयते। न पारयामीति—यथाहमात्मानं स्थिरतया धारयितुं न शक्नोमि तथैव हृदयमपि स्थिरतया स्थापयितुं न शक्नोमीत्याशयः। धृतोऽपि-बलान्निरुद्धोऽपि। बाष्पोत्पीडः-अश्रुप्रवाहः। समाहिता-स्थिरीकृता। मङ्गलसम्पादनाय-शुभौपयिकविधिसम्पादनाय।

प्रणाम करने को माता के पास पहुंचे, उस समय उनकी माता विलासवती पीड़ा से भीतर-भीतर घुल रही थी, उसके आँसू नहीं रुकते थे, अपने विशाल नयनों से वह पुत्र को बड़े यत्न से देख रही थी, दुःख के वेग से उसका कण्ठ रुद्ध हो रहा था, उसने उसी गद्गद स्वर में कहा—

"बेटा, अङ्कलालित अतिप्रिय पुत्र की प्रथम यात्रा में अधिक कष्ट का होना उपयुक्त है क्योंकि वह पहली बार बिछुड़ रहा है, परन्तु आज तुम्हारे जाने के समय जैसी पीड़ा हो रही है वैसी पीड़ा तुम्हारी पहली यात्रा में नहीं हुई थी। मेरा हृदय फटा जा रहा है, मेरे मर्म भिन्न हुए जा रहे हैं। शरीर सन्तप्त हो रहा है। हृदय बहा जा रहा है। शरीर के जोड़ टूट रहे हैं। प्राण निकल रहे हैं। बुद्धि कुछ नहीं समझ रही है। सारा शून्य दीख रहा है। अपनी आत्मा की तरह हृदय को नहीं संभाल पा रही हूँ, रोकने पर भी बरबश मेरे आँसू निकल पड़ते हैं। बारबार स्थिर करने पर ही मेरी बुद्धि तुम्हारे मङ्गल की तैयारी करने को प्रस्तुत होती है। मैं नहीं समझ पाती हूँ कि क्या सोच रही हूँ कि मेरे हृदय में क्यों इतनी पीड़ा हो रही है। क्या इसलिए इतनी पीड़ा हो रही है कि बहुत दिनों के बाद लौटा हुआ मेरा बेटा शीघ्र ही फिर जा रहा है? या यह सोचकर अधिक पीड़ा हो रही है

---

१. निवारयितुम्।

वियोगादुद्विग्नस्य गमनमेकाकिनस्ते समुत्प्रेक्ष्येति । न पुनर्वैशम्पायनवृत्तान्तादात्मन एव दुःखिततयेति । न चैवंविधया पीडया वैशम्पायनानयनाय गच्छतस्ते गमनं निवारयितुं पारयति वाणी । हृदयं पुनर्नेच्छत्येव त्वदीयं गमनम् । तदीदृशीं मे पीडां विज्ञाय यथा पुरा स्थितं न तथा क्वचिदासङ्गमाबध्यातिदीर्घकालमायुष्मता स्थातव्यम् । अस्य चार्थस्य कृते साञ्जलिबन्धेन शिरसाभ्यर्थये वत्सम् ।' इत्यादिशन्तीं स्वमातरं सुदूरं प्रसारितावनम्रमूर्तिश्चन्द्रापीडो व्यजिज्ञपत् । 'अम्ब तदा दिग्विजयप्रसङ्गात् स्थितम् । अधुना पुनरयमेव कालक्षेपो यावत्तमुद्देशं परापतामि । तत्पुनश्चिरागमनकृता न भावनीया मनागपि हृदये पीडा त्वया ।' इत्येवं विज्ञप्ता चन्द्रापीडेन संनिरुध्य बाष्पवेगान्कथं कथमपि संस्तभ्यात्मानं निर्वर्तितगमनमङ्गला गलता प्रस्नवेण सिञ्चन्ती शिरसि चोपाघ्राय गाढं सुचिरमालिङ्ग्य गच्छद्भिरिव प्राणैः कृच्छ्रान्मुमोच तं माता ।

मुक्तश्च मात्रा पितुः प्रणतये वासभवनमगमत् । तत्र च 'देव गमनाय नमस्करोति युवराजः' इत्यावेदिते द्वाररक्षिणा प्रविश्य क्षोणीतलनिवेशितशिरसा शयनवर्तिनो ननाम

उत्पश्यामि-उत्प्रेक्षे संभावयामि । समुत्प्रेक्ष्य-तर्कयित्वा । आत्मनः-स्वस्य । दुःखिततया-खिन्नतया । पुरा स्थितम्-इतः पूर्वं वृत्तायां निजायां यात्रायाम् । आसङ्गम्-आसक्तिं गाढं प्रेम । आबध्य-कृत्वा । अतिदीर्घकालम्-बहुकालपर्यन्तम् । आयुष्मता-चिरजीविना त्वया । अस्य चार्थस्य कृते-अस्मिन् विषये । साञ्जलिबन्धेन शिरसा-कृताञ्जलिपुटेन मस्तकेन । इत्यादिशन्तीम्-इत्थमाज्ञापयन्तीम् । प्रसारितावनम्रमूर्त्तिः-साष्टाङ्गप्रणिपातमुद्रया समस्तमपि देहं प्रसार्य । व्यजिज्ञपत्-निवेदितवान् । तदा-तस्मिन्काले प्राक्तनयात्रायाम् । दिग्विजयप्रसङ्गात् स्थितम्-दिग्विजयानुरोधाद्विलम्बः कृतः । कालक्षेपः-विलम्बः । यावत्तमुद्देशं परापतामि-वैशम्पायनाध्युषितस्थानप्राप्तिरेव विलम्बः, तदनन्तरं तु विलम्बस्य कारणं न पश्यामीत्यर्थः । चिरागमनकृता-विलम्बजनिता । मनागपि-अल्पमात्रयापि । पीडा-दुःखम् । विज्ञप्ता-सूचनीया । बाष्पवेगान्-अश्रुप्रवाहान् । आत्मानं संस्तभ्य-स्वं स्थिरीकृत्य । निर्वर्तितगमनमङ्गला-कृतस्वस्त्ययना । गलता-स्रवता । प्रस्नवेण-स्तन्यप्रवाहेण । गच्छद्भिः-बहिर्भवद्भिः । कृच्छ्रात्-कष्टात् । मुमोच-विसर्जयामास ।

मात्रा-विलासवत्या । मुक्तः-गन्तुमादिष्टः । प्रणतये-नमस्कारं कर्त्तुम् । वासभवनम्-राज्ञो निवासगृहम् । आवेदिते-कथिते । द्वाररक्षिणा-द्वारपालेन । क्षोणीतलनिवेशितशिराः-पृथिव्यां स्थापित·

कि वैशम्पायन के दुःख से दुःखी तुम अकेले जा रहे हो ? इस तरह की पीड़ा के होने पर भी वैशम्पायन को बुलाने के लिये जाने से तुझे हमारी वाणी नहीं रोक सकती है । फिर भी हृदय तुम्हें जाने देना नहीं चाहता है । इसलिए तुम जैसे पहली बार रुक गये थे उसी तरह इस बार भी किसी विषय में हृदय को उलझाकर अधिक दिनों तक मत रुक जाना, क्योंकि तुम हमारी पीड़ा देख ही रहे हो । इस सम्बन्ध में मैं तुम्हारे आगे हाथ जोड़ती हूँ ।" इस तरह कहती हुई माता के आगे पृथ्वी पर झुककर चन्द्रापीड़ ने कहा—मातः उस बार दिग्विजय के प्रसङ्ग में देर हो गई थी, इस बार तो उतनी ही देर है जितनी देर में मैं वहाँ पहुंचता हूँ । अतः मेरे विलम्ब से लौटने के सम्बन्ध में तुम्हें पीड़ा नहीं करना चाहिए । चन्द्रापीड़ के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर आँसुओं को रोककर तथा किसी प्रकार कलेजे को कड़ा करके विलासवती ने मङ्गलाचार किए, उसके स्तन से दूध चू रहा था, उसने चन्द्रापीड़ का माथा सूँघा, देर तक गले लगाया, और निकलते हुए प्राणों से किसी तरह चन्द्रापीड़ को छुट्टी दी।

माता से छुट्टी पाकर तारापीड़ पिता को प्रणाम करने के लिए उनके वासभवन गया । उसके वहाँ पहुँचने पर द्वारपाल ने जाकर राजा से कहा—'देव, युवराज जाने के लिए प्रणाम निवेदित कर रहे हैं ।" इस तरह

दूरस्थित एव पितुः पादौ। अथ तथा प्रणतमालोक्य किंचिदुन्नमितपूर्वकायः शयनगत एवाहूय तं पिता चक्षुषा पिबन्निव प्रेम्णा परिष्वज्य गाढमप्रौढ इव[1] सहसोद्गताविरलबाष्परयपर्याकुलाक्षोऽन्तःक्षोभावेगविक्षिप्ताक्षरमवादीत्। 'वत्स, पित्राऽहं दोषेषु संभावित इत्येषा मनागपि मनसि वत्सेन दुःखासिका न कार्या। विनयाधानात् प्रभृति सम्यक्परीक्षितोऽस्यस्माभिः। परीक्ष्य च गुणगणैरेवाधिगम्यो राज्यभारस्त्वय्यारोपितो न तनयस्नेहादेव। राज्यं हि नामैतत् पृथ्वीभारेणैवातिदुरुद्वहम्, महीभृत्संबाधतयैवातिसंकटम्, कुटिलनीतिप्रचारेणैवातिदुःसंचरम्, चतुःसमुद्रपर्यन्तभुवनव्याप्त्यैवातिमहत्, महासाधनप्रसाध्यतयैवातिदुःसाधनम्[2], अपर्यवसानकार्यतन्त्रजालेनैवातिगहनम्, उत्तुङ्गवंशप्रतिष्ठिततयैवातिदुरारोहम्, अहितसहस्रोद्धरणेनैवातिदुर्धरम्। अपि च समवृत्तितयैवातिविषममनेकतीर्थकल्पनयैव

मस्तकः। शयनवर्तिनः-शयनगतस्य। पादौ-चरणौ। प्रणतम्-कृतप्रणामम्। किञ्चिदुन्नमितपूर्वकायः-ईषदुत्थापितशरीरपूर्वभागः। प्रेम्णा चक्षुषा पिबन्-स्नेहेन सादरं पश्यन्। गाढं परिष्वज्य-दृढमालिङ्ग्य। उद्गताविरलबाष्परयपर्याकुलाक्षः-उद्गतेन प्रकटितेन, अविरलेन व्याप्तेन बाष्परयेण अश्रुवेगेन पर्याकुले व्यस्ते अक्षिणी यस्य तादृशः। अन्तःक्षोभावेगविक्षिप्ताक्षरम्-मानसिकदुःखस्यावेगेन स्खलद्वर्णम्। दोषेषु संभावितः-दोषवत्तया शङ्कितः। एषा-एतादृशी, दुःखासिका-दुःखमयी वृत्तिः। विनयाधानात्प्रभृति-शिक्षाकालादारभ्य। गुणगणैः-त्वयि वर्तमानैः शौर्यौदार्यादिगुणैः। अधिगम्यः-प्राप्तव्यः। आरोपितः-यौवराज्यप्रदानद्वारा स्थापितः। त्वयि यदस्माभिर्यौवराज्यप्रदानद्वारा राज्यभार आरोपितस्तत्र तनयस्नेहमात्रं न कारणमपि तु परीक्षया ज्ञातास्तव गुणा एव तथेति भावः। पृथ्वीभारेण-धराभरेण। दुरुद्वहम्-कष्टधार्यम्। महीभृत्संबाधतया-अनेकपर्वतयुक्ततया विविधपर्वतसङ्कुलतया च। अतिसंकटम्-अतिसंकीर्णम्। कुटिलनीतिप्रचारेण-कूटनीतिव्यवहारेण। अतिदुःसञ्चरम्-कष्टसञ्चारम्। चतुःसमुद्रपर्यन्तभुवनव्याप्त्या-सागरपर्यन्तविस्तृतया। अतिमहत्-विशालम्। महासाधनप्रसाध्यतया-महतां कष्टसम्पाद्यानां साधनानां सैन्यकोषादीनां प्रसाध्यतया रचयतया। अतिदुःसाधनम्-नितान्तकठिनसिद्धिः। अपर्यवसानकार्यतन्त्रजालेन-अनन्तकरणीयव्याप्ततया। अतिगहनम्-कठिनम्। उत्तुङ्गवंशप्रतिष्ठिततया-अत्युच्चकुलमर्यादाश्रितत्वेन। दुरारोहम्-दुरासदम्। अहितसहस्रोद्धरणेन-सहस्रसंख्यकशत्रुनिपातनेन। अतिदुर्धरम्-कष्टधार्यम्। समवृत्तितया-समानव्यवहारस्य कर्तव्यतया। अतिविषमम्-नितान्तविषमतापूर्णम्। अनेकतीर्थकल्पनया-नानाप्रकारकोपायानां कल्पनया। दुरवतारम्-दुष्प्रवेशम्। (यत्र जलाशयेऽनेकानि तीर्थानि भवन्ति तत्र प्रवेशः सुकरो भवति राज्यं तु नानातीर्थकल्पनयैव दुरवतारतामापद्यत इत्यस्य जलाशयान्तरेभ्यो व्यतिरेकः। 'तीर्थं शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायोपाध्यायमन्त्रिषु। योनौ जलावतारे

निवेदित होने पर चन्द्रापीड ने भीतर जाकर शयनवर्ती पिता को पृथ्वी पर माथा टेककर प्रणाम किया पुत्र को उस तरह प्रणाम करते देखकर थोड़ा उठकर पिता ने पुत्र को पास बुलाकर तथा सप्रेम देखकर भोले बच्चे की तरह गले से लिपटकर सहसा आँखों में आँसू भरकर मानसिक खेद से गद्गद स्वर में कहा—'बेटा, बाप ने मुझे दोषी ठहराया है इस प्रकार का दुःख मन में कभी मत करना। शिक्षा के समय से ही हमने भली भाँति तुम्हारी परीक्षा की है। परीक्षा कर लेने के बाद तुम्हारे गुणोंसे प्राप्य मानकर ही तुम्हें राज्य का भार दिया गया है पुत्रस्नेहमात्र से नहीं। राज्य पृथ्वी के भार से बोझिल, राजाओं से संकुल होने के कारण संकटाकीर्ण, कुटिलनीति के संचार से दुर्गम, चारो समुद्रों से घिरी पृथ्वी के सम्बन्ध से विशाल, महान् साधनों की अपेक्षा करने के कारण दुःसाध्य, अनन्तकार्यजाल से अतिगहन तथा उच्चवंश पर प्रतिष्ठित होने के कारण दुरारोह एवं हजारों दुश्मनों के होने से दुरुद्धर हुआ करता है। यह राज्य समवृत्तिता के कारण अतिविषम, अनेकतीर्थकल्पना से दुरवतार,

---

१. 'अप्रौढ इव' नास्ति। २. दुःसाध्यम्।

दुरवतारं कण्टकशोधनेनेव दुर्ग्रहमखिलप्रजापालनव्यवहारेणैव दु[1]ष्पारं स[2]र्वाशाप्राप्त्यैव च दुष्प्रापम्। नामहासत्त्वे नास्थिरप्रकृतौ नादातरि नास्थूललक्ष्ये नाशुचौ नाविक्रान्ते नामहोत्साहे नाप्रियवादिनि नासत्यसंधे नाप्राज्ञे नाविवेकिनि नाकृतज्ञे नानुदारव्यवहृतौ नासंविभागशीले नान्यायवर्तिनि नाधर्मरुचौ नाशास्त्रव्यवहारिणि नाशरण्ये नाब्रह्मण्ये नाकृपालौ नामित्रवत्सले नावश्यात्मनि नानिर्जितेन्द्रिये नासेवके पदमेवादधाति। यः खलु समग्रैर्गुणैराकृष्य बलात् प्रतिबन्धमस्य चञ्चलप्रकृतेः कर्तुं समर्थस्तत्रास्ते। गुरवोऽप्यपगतस्खलितभीतयस्तत्रैव समारोपयन्त्येतदालोचितपरावराः। तदनेनैव बोद्धव्यमिदं वत्सेन नास्ति मयि दोष इति। अपि च संप्रति कस्मिन् भारमवक्षिप्याणुमपि दोषमाचरसि।

च' इति विश्वकोषः। कण्टकशोधनेन–शत्रुसमुद्धरणेन। दुर्ग्रहम्–कष्टग्राह्यम्। कण्टककीर्णमन्यत्पुष्पादि कण्टकशोधनद्वारा सुग्रहं जायते, राज्यं तु सदा शत्रुशोधनसमासक्त्या दुर्ग्रहमिति व्यतिरेको बोध्यः। अखिलप्रजापालनव्यवहारेण–समस्तप्रजाजनपालनभारेण। दुष्पारम्–अनन्तम्। सर्वाशाप्राप्त्या–निखिलमनोरथपूर्तिद्वारा, सकलदिशाधिकारप्राप्तिद्वारेति वा। अमहासत्त्वे राज्यं न पदमादधातीत्यन्वयः, एवमग्रेतनवाक्येष्वपि बोध्यम्। अमहासत्त्वे–लघुप्राणे असाहसिके इत्यर्थः। अस्थिरप्रकृतौ–चञ्चलस्वभावे। अदातरि–कृपणे। अस्थूललक्ष्ये–अविशालोद्देश्ये। अशुचौ–विचारतः संस्कारतश्चापवित्रे। अविक्रान्ते–अवीरे। अमहोत्साहे–महतोत्साहेन शून्ये। अप्रियवादिनि–कठोरवचने। असत्यसंधे–मिथ्याप्रतिज्ञे। अप्राज्ञे–मूर्खे। अविवेकिनि–विचारशक्तिरहिते। अकृतज्ञे–कृतज्ञतारहिते। अनुदारव्यवहृतौ–उदारव्यवहारानभिज्ञे। असंविभागशीले–जितेभ्यो नृपेभ्यो लब्धस्य धनस्य स्वानुजीविषु विभागपूर्वकमुपभोगं कर्तुमनिच्छति। अन्यायवर्त्तिनि–न्यायपथे स्थातुमशक्ते। अधर्मरुचौ–अधार्मिके। अशास्त्रव्यवहारिणि–शास्त्रविरुद्धाचरणपरायणे। अशरण्ये–शरणागतरक्षां कर्तुमक्षमे। अब्रह्मण्ये ब्राह्मणानामरक्षके। अकृपालौ–अदये। अमित्रवत्सले–सुहृत्स्नेहशून्ये। अवश्यात्मनि–आत्मानं वशे स्थापयितुमशक्ते। अनिर्जितेन्द्रिये–अवशकरणगणे। असेवके–सेवां कर्तुमक्षमे। 'अमहासत्त्वे' इत्यारभ्य 'राज्यं न पदमादधाती'त्यन्तेन ग्रन्थेन राज्यस्थितिविरहकारणमुपन्यस्य सम्प्रति 'यः खलु' इत्यादिकेनैकेन वाक्येन राज्यस्थितिकारणमुपन्यस्यति—समग्रैः समस्तैः शौर्यौदार्यादिनामकैर्गुणैः। आकृष्य–स्वाभिमुखीकृत्य। चञ्चलप्रकृतेः–स्वभावतश्चञ्चलस्य। अस्य–राज्यस्य। प्रतिबन्धम्–गतिनिरोधम्। तत्रास्ते–तस्मिंस्तिष्ठति राज्यमिति शेषः। गुरवः–मातापित्रादयः अपगतस्खलितभीतयः–दूरीभूतस्खलनभयाः, यस्मिन् राज्यभारो न्यस्यते स स्वीयकर्त्तव्यतः कदाचित्स्खलेदिति भीत्या रहिताः सन्त इत्यर्थः। तत्र–पूर्वोक्तगुणगणशालिनि। समारोपयन्ति–स्थापयन्ति। एतत्–राज्यम्। आलोचितपरावराः–पूर्वापरविचारवन्तः गुरव इति पूर्वोक्तमत्र विशेष्यं बोध्यम्। राज्यं त्वय्यारोपितं, गुणवत्येव यदारोप्यते, एतेन तव गुणवत्ता सिद्धा सती तव दोषमुक्ततां प्रमापयतीत्येतदाह–तदनेनैवेति। अवक्षिप्य–स्थापयित्वा। अणुम्–स्वल्पम्। सकललोकानुरञ्जने–समस्तजनप्रसादने। यतितव्यम्–चेष्टनीयम्। कालः–कर्त्तव्यपालन-

---

कण्टकशोधन से दुर्ग्रह, अखिल प्रजापालन से दुष्पार, तथा सर्वाशाप्राप्ति से भी दुष्पार हुआ करता है। यह राज्य-अमहासत्त्व, अस्थिरप्रकृति, अदाता, सूक्ष्म लक्ष्य नहीं रखने वाले, अशुचि, अपराक्रमी, अविवेकी, अकृतज्ञ, अनुदारव्यवहारशाली, असत्यप्रतिज्ञ, अपण्डित, अप्रियवादी, संविभाग के अज्ञाता, अन्यायवर्त्ती, अधर्मरुचि, अमित्रवत्सल, शास्त्रमर्यादा-लङ्घन करने वाले, अशरणागतवत्सल, अब्राह्मणप्रेमी, अजितेन्द्रिय और असेवक को नहीं दिया जाता है। जो अपने सारे गुणों से आकृष्ट करके इस चञ्चलप्रकृति लक्ष्मी को रोककर अपने पास रख सकता है वही राजा होता है। आगे-पीछे सोचनेवाले गुरुजन भी स्खलन के भय से ऐसे लड़कों पर राज्य का भार डालते हैं। इसीसे तुमको समझ लेना चाहिए कि तुम्हारा दोष नहीं है। तुम किस पर भार रखकर थोड़ी भी

---

१. दुःपाकम्। २. 'सर्वाशा''''नाशुचौ' इति नास्ति।

त्वयैव सकललोकानुरञ्जने यतितव्यम्। गतः खलु कालोऽस्माकम्। अस्माभिरस्खलितैश्चिरं पदे स्थितम्। न पीडिताः प्रजा लोभेन। नोद्वेजिता गुरवो मानेन। न विमुखिताः सन्तो मदेन। नोत्त्रासिताः प्राणिनः क्रोधेन। न हासित आत्मा हर्षेण। न हतः परलोकः कामेन। राजधर्मोऽनुरुद्धो न स्वरुचिः[1]। वृद्धाः समासेविता न व्यसनानि। सतां चरितान्यनुवर्तितानि नेन्द्रियाणि। धनुरुन्नमितं[2] न मनः। वृत्तं रक्षितं न शरीरम्। वाच्याद्भीतं न मरणात्। उपभुक्तानि सुरलोकदुर्लभानि सर्वविषयोपभोगसुखानि। यौवनेच्छया पर्याप्तमकार्यपरिहारात्। कार्यानुष्ठानाच्चोपार्जितः परोऽपि लोकः। इति चेतसि मे। त्वज्जन्मना च कृतार्थ एवास्मि। तदयमेव मे मनोरथः, दारपरिग्रहात् प्रतिष्ठिते त्वयि सकलमेव मे राज्यभारमारोप्य जन्मनिर्वाहलघुना हृदयेन पूर्वराजर्षिगतं पन्थानमनुयास्यामीति। अस्य च मेऽतर्कित एवायमग्रतः प्रतिरोधको वैशम्पायनवृत्तान्तः स्थितः। मन्ये च न संपत्तव्यमेवानेन। अन्यथा क्व वैशम्पायनः। क्व चैवंविधमस्य स्वप्नेऽप्यसंभावनीयं समाचेष्टितम्। तद्गते-

---

समयः। गतः-व्यतीतः। अस्खलितैः-कर्त्तव्यादच्युतैः। चिरम्-बहुकालपर्यन्तम्। पदे-राजपदे। उद्वेजिताः-कष्टं गमिताः। मानेन-अभिमानेन। विमुखिताः-पराङ्मुखीकृताः। मदेन-गर्वेण। उत्त्रासिताः-भयं प्रापिताः। हासितः-उपहासपात्रतां नीतः। हतः-विनाशितः। परलोकः-परलोकोपयिको धर्मः। अनुरुद्धः-पालितः। स्वरुचिः-स्वेच्छा न पालितेति शेषः, राजधर्ममनुसृत्यैव व्यवहृतं न स्वेच्छयेति भावः। व्यसनानि-विषयसुखासक्तयः। अनुवर्तितानि-अनुसृतानि। उन्नमितम्-उत्थापितम्। मनो नोन्नमितम् गौरवाभिरुचि मनो न कृतम्। वृत्तम्-सच्चरितम्। वाच्यात्-निन्दातः। भीतम्-भयं कृतम्। उपभुक्तानि-सेवितानि। यौवनेच्छया-यौवनकालसंभवेन विषयसुखाभिलाषेण। पर्याप्तम्-पूर्णता प्राप्ता। अकार्यपरिहारात्-अकर्त्तव्यकार्यनिवृत्तिं कृत्वा (पूरिता यौवनेच्छेत्याशयः) कार्यानुष्ठानात्-कर्त्तव्यस्य यागादेः साधनात्। उपार्जितः-साधितः। परो लोकः-स्वर्गः। इति चेतसि मे-एतादृशो मम विश्वासः। दारपरिग्रहात्-विवाहात्। प्रतिष्ठिते-प्राप्तप्रतिष्ठे पूर्णरूपे। आरोप्य-न्यस्य। जन्मनिर्वाहलघुना-राज्यभारापगमे स्वीयजीवननिर्वाहमात्रभारभाजा लघूभूतेन। पूर्वराजर्षिगतम्-प्राचीनै राजभिरनुसृतम्। पन्थानम्-वनगमनरूपमध्वानम्। अनुयास्यामि-प्रतिपत्स्ये। अस्य च मे-एवं चिन्तयतो मम। अतर्कितः-पूर्वतोऽज्ञातः। प्रतिरोधकः-प्रतिबन्धकः। स्थितः-उपस्थितः। न संपत्तव्यम्-न सिद्धिः प्राप्या। अनेन-पूर्वोक्तरूपेण मम मनोरथेन। अन्यथा-यदि मम मनोरथस्य सिद्धिर्भाग्यस्याभिमताऽभविष्यत्तदा वैशम्पायनो नेत्थमाचरिष्यदिति प्रकरणार्थः। असंभावनीयम्-

---

गलती करोगे? तुमको ही सभी लोगों को खुश रखने का प्रयत्न करना है। हमारा समय तो बीत गया। हमने दृढ़ता से अपने पद की रक्षा की। हमने लोभ से प्रजा का पीड़न नहीं किया। अभिमान से गुरुओं को उद्विग्न नहीं किया। घमण्ड से सज्जनों को विमुख नहीं किया। क्रोध से प्राणियों को नहीं डराया। काम के चलते परलोक नहीं बिगाड़ा। हर्ष से अपनी हँसी नहीं करायी। हमने राजधर्म का अनुरोध किया, अपनी रुचि का नहीं। वृद्धों की सेवा की, व्यसनों की नहीं। सज्जनों के चरितों का अनुसरण किया, हृदय का नहीं। धनुष उठाया, मन को नहीं उठाया। चरित्र की रक्षा की, शरीर की नहीं। निन्दा से डरते रहे, मरण से नहीं। सुरलोक-दुर्लभ सारे विषयसुख का उपभोग किया। अकर्त्तव्य छोड़कर जवानी के मनोरथ पूरे किए। कर्त्तव्य पूरा करके परलोक का भी अर्जन किया। यही बात मेरे हृदय में है। तुम्हारे जन्म से मैं कृतार्थ हो गया हूं। इतना ही मनोरथ मेरे हृदय में रह गया है कि तुम्हें विवाह से प्रतिष्ठित करके तुम्हारे ऊपर समस्त राज्यभार को अर्पित कर जन्मनिर्वाह से हल्के हृदय से प्राचीन राजर्षियों द्वारा अनुगत रास्ता अपना लूँ। मेरे इस मनोरथ का प्रतिबन्धक यह वैशम्पायन-वृत्तान्त आगे में आकर खड़ा हो गया है। मालूम होता है अब यह मनोरथ अपूर्ण ही रह जायगा। नहीं तो कहाँ वैशम्पायन और कहाँ यह स्वप्न में भी असंभावित उसका व्यवहार। अतः

---

१. स्वरुच्या। २. धनुरवनामितम्।

नापि तथा कर्तव्यं वत्सेन यथा न चिरकालमेष मे मनोरथोऽन्तर्हृदय एव विपरिवर्तते।' इत्यभिधाय किंचिदुत्तानितेन मुखेनैव संपीडितं हृदयमिव ताम्बूलमर्पयित्वा व्यसर्जयत्।

चन्द्रापीडस्तु तया पितुः संभावनया सुदूरमुन्नमितोऽप्यवनम्रतरमूर्तिरुपसृत्य पुनः प्रणामेनोन्नमितात्मा निर्ययौ। निर्गत्य च शुकनासभवनमयासीत्। तत्र च तनयचिन्तापरीतमुन्मुक्तमिवेन्द्रियैः शून्यशरीरं शुकनासमविरताश्रुपातोपहतमुखीं च मनोरमां प्रणम्य तादृशाभ्यामेव ताभ्यां संभाव्याशिषा समारोपयद्भ्यामिव स्वदुःखभारमनुगतो निवर्तनाय तयोर्निवर्तिताननो मुहुरा द्वारनिर्गतेर्गत्वाग्रतो ढौकितमपि कृतापसर्पणमप्रकृतहेषारमनुत्कर्णकोशमसुखस्वनममनस्कमनाविष्कृतगमनोत्साहं दीनमिन्द्रायुधमालोक्यापि पुनर्निवारणाशङ्कया वैशम्पायनावलोकनत्वरया कादम्बरीसमागमौत्सुक्येन चाकृतपरिलम्बो मनागप्यारुह्य रयेणैव निरगान्नगर्याः।

अचिन्तितम्। समाचेष्टितम्—व्यवहारः। चिरकालम्—बहुदिवसपर्यन्तम् विपरिवर्त्तते—तिष्ठति। उत्तानितेन—ऊर्ध्वंप्रसारितेन। संपीडितम्—निष्पीड्य ताम्बूलरूपतां गमितम्। अर्पयित्वा—चन्द्रापीडाय दत्त्वा। व्यसर्जयत्—गन्तुमाज्ञापितवान्॥

सम्भावनया तया—चन्द्रापीडस्तस्य मनोरथं पूरयिष्यतीत्याशया। सुदूरमुन्नमितः—अत्यर्थं गौरवं प्रापितः। अवनम्रतरमूर्त्तिः—अत्यन्तनम्रशरीरः। उपसृत्य पितुः—पितुः समीपमुपेत्य। उन्नमितात्मा—उन्नतीकृतहृदयः। निर्ययौ—वासभवनान्निर्गतः। निर्गत्य—पितुर्वासभवनाद् बहिर्भूय। अयासीत्—गतवान्। तनयचिन्तापरीतम्—पुत्रशोकव्याकुलम्। इन्द्रियैः उन्मुक्तमिव अभिघ्राणादिज्ञानेन्द्रियैः करचरणादिभिः कर्मेन्द्रियैश्च निर्व्यापारैः सन्निरचेतयन्तमिवेत्यर्थः। अविरताश्रुपातोपहतमुखीम्—सततताश्रुप्रवाहदीनवदनाम्। तादृशाभ्याम्—पूर्ववर्णितस्थितेरपरिवर्त्तितस्थितिकाभ्याम् शुकनासमनोरमाभ्याम्। आशिषा संभाव्य—आशीर्वचसाऽभिवर्ध्य। स्वदुःखभारम्—स्वीयदुःखस्य प्रियपुत्रवियोगजन्मनोऽशम्। आरोपयद्भ्याम्—प्रापयद्भ्याम्। तयोः—शुकनासमनोरमयोः। निवर्त्तनाय—परावर्त्तनाय, अनुगतः—तयोः पश्चाच्चलन्। निवर्त्तिताननः—परावर्त्तितमुखः। आ द्वारनिर्गते—द्वारदेशाद् बहिर्निर्गमकालं यावत्। अग्रतो ढौकितम्—आरोहणायावनमितम्। कृतापसर्पणम्—स्थानादपसृतम्। अप्रकृतहेषारवम्[1]—अस्वाभाविकरूपेण शब्दं कुर्वन्तम्। उत्कर्णकोशम्—कर्णमुत्थाप्य स्थितम्। असुखस्वनम्—अप्रियशब्दकरम्। अमनस्कम्—खिन्नहृदयम्। अनाविष्कृतगमनोत्साहम्—गमनविषये उत्साहमप्रकटयन्तम्। दीनम्—विषादग्रस्तम्। इन्द्रायुधम्—तन्नामकं स्वस्याश्वम्। पुनर्निवारणाशङ्कया—आरोहन्तं मां कदाचिदयमिन्द्रायुधोऽपसृत्य स्थानान्निवारयेदिति शङ्कया। वैशम्पायनावलोकनत्वरया—वैशम्पायनदर्शने शीघ्रतया। कादम्बरीसमागमौत्सुक्येन—कादम्बरीमिलनोत्कण्ठया। अकृतपरिलम्बः—अविहितविलम्बः। मनाक्—ईषत्—असर्वतो भावेन। रयेण—वेगेन। नगर्याः—स्वराजधानीपुर्याः। निरगात्—बहिरासीत्।

जाकर भी तुम ऐसा करना जिससे मेरा यह मनोरथ चिरकाल तक मेरे हृदय में ही न पलता रह जाय। इस तरह कहकर तथा थोड़ा मुख उठाकर तारापीड़ ने पीड़ित हृदय की तरह ताम्बूल दिया।

पिता के द्वारा किये आदर से ऊँचा उठाया गया फिर नम्रमूर्त्ति चन्द्रापीड़ पुनः पिता के पास जाकर उन्हें प्रणाम करके अपने को ऊँचा उठाया और वहाँ से चलकर वह शुकनास के भवन में गये। पुत्र की चिन्ता से युक्त, इन्द्रियों से परित्यक्त, शून्यशरीर शुकनास तथा बराबर रोती हुई मनोरमा को प्रणाम करके उस स्थिति में उनके द्वारा प्रदत्त आशीर्वाद से समादृत होकर उनके दुःख का भार अपने ऊपर लेते हुए उनकी ओर से मुँह फिरा लिया, तदनन्तर आगे लाये जाने पर भी पीछे की ओर हटने वाले, अस्वाभाविक शब्दयुक्त, कान झुकाये, अप्रिय शब्द करने वाले, गमनोत्साहरहित, तथा दीन प्रतीत होने वाले इन्द्रायुध पर चढ़कर पुनः पिता द्वारा रोक दिए जाने की आशङ्का, वैशम्पायन को देखने की जल्दबाजी, तथा कादम्बरी से मिलने की उत्सुकता से चन्द्रापीड़ ने वेग से नगरी के बाहर निकल जाना चाहा।

---

१. अकृतहर्षहेषारवं; अकृतहेषारवम्।

निर्गत्य च सिप्रातटे तत्प्रस्थानमङ्गलावस्थानायोपकल्पितं कायमानमप्रविश्य बहिरेव गतो युवराज इति जनितकलकलेनातर्किततत्कालगमनसंभ्रान्तेन परिजनेन राजपुत्रालोकेन चेतस्ततो धावतानुगम्यमानो गव्यूतित्रितयमिव गत्वा सुलभपयोयवसे प्रदेशे निवासमकल्पयत्। उत्ताम्यता हृदयेनाप्रभातायामेव यामिन्यामुत्थाय पुनरवहत्। वहंश्च तस्मादेव वासरादारभ्यैवमचेतित एव परापत्य कृतापक्रान्तेस्त्रपया पृष्ठतोनुगम्य बलाद् दत्तकण्ठग्रहः क्व परं पलाय्यत इति वैशम्पायनस्य वैलक्ष्यमपनयामि; एवं तत्समागमसुखमनुभूय निष्कारणप्रसन्नामनघामतर्कितोपनतमदवलोकनोपजातहर्षविशेषां पुरस्ताद्गमनसिद्धये पुनर्महाश्वेतां पश्यामि' एवं महाश्वेताश्रमसमीपे पुनः स्थापिताशेषतुरगसैन्यस्तया सहैव हेमकूटं गच्छामि; एवं तत्र मत्प्रत्यभिज्ञानसंभ्रमप्रधावितेनेतस्ततः कादम्बरीपरिजनेन प्रणम्यमानः प्रविश्य मदागमननिवेदनोत्फुल्लनयनेन सखीजनेनापह्रियमाणपूर्णपात्राम्, क्वासौ केन

निर्गत्य–नगराद् बहिरागत्य। शिप्रातटे–शिप्रानामकनदीतीरे। तत्प्रस्थानमङ्गलावस्थानाय–चन्द्रापीडस्य यात्राकाले मङ्गलानि शुभावहानि कर्माणि कर्तुं स्थितये। उपकल्पितम्–निर्मितम्। कायमानम्–पटमण्डपम्। अप्रविश्य–अगत्वा। जनितकलकलेन–कृतशब्देन। अतर्किततत्कालगमनसंभ्रान्तेन–असंभावितत्समयचन्द्रापीडप्रस्थानतया चकितेन। परिजनेन–भृत्यवर्गेण। इतस्ततो धावता–यत्र तत्र भ्राम्यता। अनुगम्यमानः–अनुस्रियमाणः। गव्यूतित्रयम्–क्रोशषट्कमितं मार्गम्। सुलभपयोयवसे–सुखप्राप्यजलहरितशाद्वले। प्रदेशे–स्थाने। वासम्–अवस्थानम्। अकल्पयत्–कृतवान्। उत्ताम्यता–उत्कण्ठापूर्णेन। अप्रभातायाम्–सावशेषायाम्। यामिन्याम्–रात्रौ। अवहत्–मार्गमलङ्घयत्। वहन्–मार्गं लङ्घयन्। तस्मादेव वासरादारभ्य–तस्मादेव यात्रादिनात् प्रभृति। अचेतितः–अविभावितागमनः। परापत्य–समीपं गत्वा। त्रपया–कृतापक्रान्तेः–लज्जया पलायितस्य। पृष्ठतोऽनुगम्य–पश्चाद्देशतः समीपं गत्वा। बलाद्दत्तकण्ठग्रहः–बलपूर्वकं कण्ठे आलिङ्ग्य। इति–एवम्। वैलक्ष्यमपनयामि–लज्जां दूरीकरोमि। एवम्–अनेन प्रकारेण। तत्समागमसुखमनुभूय–वैशम्पायनमिलनजन्यमानन्दं लब्ध्वा। निष्कारणप्रसन्नाम्–सदा प्रसन्नवदनाम्। अनघाम्–कलङ्करहिताम्। अतर्कितोपनतमदवलोकनेन–असंभावितरूपेणोपस्थितस्य मम दर्शनेन। उपजातहर्षविशेषाम्–सञ्जातसातिशयानन्दाम्। पुरस्तात् गमनसिद्धये–कादम्बरीगृहाभिमुखस्य अग्रतः प्रस्थानस्य कृते। पुनः स्थापिताशेषतुरगसैन्यः–भूयोऽपि तुरगान् सैनिकाँश्च स्थापयित्वा। तया–महाश्वेतया। हेमकूटम्–तन्नामकं कादम्बरीनिवासपर्वतम्। मत्प्रत्यभिज्ञानसंभ्रमप्रधावितेन–मां परिचित्य सचकितं चलितेन। कादम्बरीपरिजनेन–कादम्बर्या भृत्यवर्गेण। प्रणम्यमानः–नमस्क्रियमाणः, मदागमननिवेदनोत्फुल्लनयनेन–मदीयागमनस्य सूचनया प्राप्तया विकसितनेत्रेण, सखीजनेन–कादम्बरीसखीनिवहेन। अपह्रियमाणपूर्णपात्राम्–अपनीयमानपूर्ण-

---

नगरी से निकलकर सिप्रानदी के तट पर उनके प्रस्थान-मङ्गल के लिए बनाये गये खीमे में बिना गए ही युवराज अलग से निकल गये, अतर्कित रूप में उनके निकल जाने से उनके परिजन घबड़ा उठे, उनका कलकल बढ़ता गया, उन्होंने दूर तक युवराज का अनुगमन किया, इस प्रकार तीन गव्यूति (छः कोश) पार करके युवराज ने ऐसे प्रदेश में डेरा डाला जहाँ पानी तथा चारे की सुविधा थी। उत्कण्ठितहृदय युवराज कुछ रात रहते ही उठकर चल पड़े। चलते-चलते उसी दिन से सोचने लगे कि अनजाने जाकर भागकर आये हुए वैशम्पायन के गले से लिपट जाऊंगा और यह कहकर उसका संकोच दूर कर दूँगा कि अब भागकर कहाँ जाओगे? इस प्रकार वैशम्पायन से मिलने के सुख का अनुभव करके अकारणप्रसन्ना, अकलङ्का, अचानक मेरे दर्शनों से हृष्टा महाश्वेता से मिलूँगा जिससे आगे जाना सिद्ध हो। इस तरह महाश्वेता के आश्रम के पास घोड़े तथा सैन्यों को रखकर महाश्वेता के साथ हेमकूट जाऊंगा। वहाँ मुझे पहचानने वाले दौड़कर आए हुए कादम्बरी के परिजन मुझे प्रणाम करेंगे, मेरे वहाँ पहुँचने पर मेरे आने की सूचना मिलने से उत्फुल्लनयन कादम्बरी का परिजन कादम्बरी के हाथ से पूर्णपात्र ले लेगा, कादम्बरी पूछने लगेगी कि वह कहाँ हैं, किसने कहा है? कितनी दूर पर है? तत्काल उत्पन्न

कथितं कियद्दूरे वर्तत इति तत्प्रश्नोन्मुखीम्, तत्क्षणोत्पन्नया तापोपशान्त्या त्रपया च युगपदुरसि निहितं पद्मिनीपत्रमपनीयोत्तरीयांशुकाञ्चलं कुचावरणतामुपनयन्तीम्, आभरणतां नीतानि मृणालान्यपास्य भूषणेभ्योधिकां स्वशरीरशोभामेव सर्वाभरणस्थानेषु धारयन्तीम्, तापोपशमार्पितहारमात्राभरणाम्, अत्युल्बणहरिचन्दनचर्चान्तरितलावण्यशोभान्यङ्गानि करपरामर्शप्रयत्नेन दर्शनीयतरतां नयन्तीम्, अङ्गलग्नानि शयनीकृतकमलकुमुदकुवलयदलकिञ्जल्कशकलानि पुलकोद्गमेनैवापास्यन्तीम्, कपोलसङ्गिनीं च मणिदर्पणे विलोक्यायथास्थितां करेण कबरीसंसदेशे विनिवेशयन्तीम्, आनन्दजन्मना नेत्रपुटावर्जितेन बाष्पसलिलेनैव मकरध्वजानलसंतापाय जलाञ्जलिमिव प्रयच्छन्तीम्, उत्सृष्टशेषेणाश्यानमलयजरसेनैवाङ्गलग्नेन भस्मनेव मदनहुतभुजो निवृत्तिमावेदयन्तीम्, अभ्युत्थान-

---

पात्राम्। (पुरा काले स्त्रियो वियुक्तस्य प्रियतमस्य मङ्गलाय पूर्णपात्रमेकं स्वकरे स्थापयन्ति स्म, आगते च प्रियतमे तदपनीयते स्म, तामेव रीतिमनुसृत्येयमुक्तिः, आगतं चन्द्रापीडं श्रुत्वा सख्यः कादम्बरीहस्तात् पूर्णपात्रमपासयन्निति भावः) क्वासौ–कुत्र देशे चन्द्रापीडः?। तत्क्षणोत्पन्नया–मदागमवार्त्ताश्रवणसमकालोत्पन्नया। तापोपशान्त्या–विरहसन्तापनिवृत्त्या। त्रपया–चन्द्रापीडो ममेमां स्थितिं दृष्ट्वा किं भावयेदिति लज्जया। युगपत्–समकालम्, उरसि निहितम्–हृदयदेशे स्थापितम्। पद्मिनीपत्रम्–कमलिनीदलम्। अपनीय–दूरीकृत्य। अंशुकाञ्चलम्–परिधानवस्त्राञ्चलम्। कुचावरणतामुपनयन्तीम्–स्तनावरणसाधनतयोपयुञ्जानाम्। आभरणतां नीतानि–भूषणरूपेणोपयुज्यमानानि। मृणालानि–कमलनालानि। अपास्य–दूरीकृत्य। स्वशरीरशोभाम्–स्वीयदेहच्छविम्। (केवलया देहकान्त्यैव सर्वेषामाभरणानामभावं पूरयन्तीम्) तापोपशमार्पितहारमात्राभरणाम्–संतापनिवृत्तये धार्यमाणां मुक्तामालामेव केवलामलङ्कारस्थाने बिभ्रतीम्। अत्युल्बणया–अतिगाढया। हरिचन्दनचर्चया चन्दनलेपेन अन्तरिता छन्ना लावण्यशोभा। सौन्दर्यच्छविर्येषां तादृशानि अङ्गानि शरीरावयवान् करपरामर्शप्रयत्नेन–हस्तद्वारामर्शनद्वारा। दर्शनीयतरतां नयन्तीम्–शोभातिशयशालितां प्रापयन्तीम्। अङ्गलग्नानि–शरीरसंसक्तानि। शयनीकृतानाम् शय्याभावेनोपयुक्तानाम् कमलानाम् कुमुदानाम् कुवलयानाञ्च नीलकमलानाञ्च दलानि पत्राणि किञ्जल्काश्च तेषां शकलानि खण्डानि पुलकोद्गमेन रोमाञ्चोदयद्वारा। अपास्यन्तीम्–दूरं नयन्तीम् (शय्योपयुक्तानां कमलादीनां पत्रकिञ्जल्कखण्डानि यानि कादम्बर्याः शरीरे लग्नान्यासंस्तानि जायमाने चन्द्रापीडागमवार्त्ताश्रवणजन्यहर्षोद्भवे रोमाञ्चे तेनैव दूरमवसारितान्यभूवन्निति भावः) कपोलसङ्गिनीम्–गण्डदेशागताम्। अयथास्थिताम्–अनुपयुक्तस्थाने वर्त्तमानाम्। कबरीम्–केशपाशम्। मणिदर्पणे–मणिमये मुकुरे। करेण–हस्तेन। विनिवेशयन्तीम्–उपयुक्ते स्थाने स्थापयन्तीम्। आनन्दजन्मना–हर्षोत्पन्नेन। नेत्रपुटावर्जितेन–नयनस्वरूपपात्रेणोपहृतेन। बाष्पसलिलेन–अश्रुजलेन। मकरध्वजानलसन्तापाय–कामवह्निकृतपरितापाय। जलाञ्जलिम्–तोयाञ्जलिम्। प्रयच्छन्तीम्–ददतीम्। (मृताय जनाय पुटावर्जितस्तोयाञ्जलिर्दीयते–आगते चन्द्रापीडे कामवह्निपरितापः समाप्त इति तस्मै कादम्बरी नेत्रपुटावर्जितहर्षाश्रुतोयाञ्जलिं ददाविति हृदयम्) उत्सृष्टशेषेण–दूरीकृतावशिष्टेन। आश्यानमलयजरसेन–अर्धशुष्कीभूतेन चन्दनद्रवेण। अङ्गलग्नेन–शरीरसंसक्तेन। भस्मना–विभूत्या। मदनहुतभुजः–कामाग्नेः। निवृत्तिम्–अवसानम्।

सन्तापशान्ति तथा लज्जा से हृदय पर रखे गये कमलपत्र को हटाकर कादम्बरी अपने वस्त्र के आंचल से स्तनों को ढँकने लगेगी, गहना के रूप में धारण किए गये मृणालों को दूर करके भूषणों से अधिक सुंदर शरीरशोभा को ही भूषण बनायेगी, तापशान्ति के लिए धारण किया गया हारमात्र उसका आभरण होगा, गाढ़े हरिचन्दन के लेप से आवृत सौन्दर्यशोभी अङ्गों पर हाथ फेरकर अधिक सुन्दरता प्राप्त करायेगी। बिछावन बनाये गये कमल के अङ्गलग्न पत्ते किञ्जल्क उसके रोमाञ्च से ही गिरने लगेंगे, गाल पर आये हुए केशों को वह मणिदर्पण में देखकर कंधों पर डालेगी, नेत्ररूप पात्र में रखे गये आँसू से वह कामसन्ताप को जलाञ्जलि प्रदान करेगी, त्याग कर देने के बाद

प्रसङ्गेनैव कुसुमशय्यां दूरीकुर्वन्तीं कादम्बरीमालोकयन्दर्शनीयावलोकनफलेन चक्षुषी कृतार्थतां नयामि; एवं मदलेखां साञ्जलिप्रणामेन कण्ठग्रहेण संभाव्य चरणपतितां पत्रलेखामुत्थाप्य केयूरकं पुनः पुनः परिष्वज्य निर्भरमेवं महाश्वेतोपपादितोद्वाहमङ्गलस्त्वरितसखीवृन्दनिर्वर्तितवैवाहिकस्नानमङ्गलविधेर्भुव इव वर्षाभिषिक्तायाः करग्रहणं देव्या निर्वर्तयामि; एवमतिबहलकुङ्कुमकुसुमधूपानुलेपनामोदोद्दीपितहृदयजन्मनि वासभवने शयनवर्तिनो मम समीपमुपविश्य क्षणमपि कृतनर्मालापायां निर्गतायां मदलेखायां त्रपावनम्रमुखीमनिच्छन्तीं किल बलाद्दोर्भ्यामादाय शयनीयं शयनीयादङ्कमङ्काच्च हृदयं देवीं कादम्बरीमारोपयामि; एवमुद्गाढनीवीग्रन्थिदृढतरार्पितपाणिद्वयायास्त्रपानिमीलितलोचने चुम्बन्नवाञ्छितात्मा चिराद्भवामि; एवं सुरैरपि दुर्लभं तदधरामृतमा तृप्तेर्निपीय सुजीवितमात्मानं करोमि;

आवेदयन्तीम्–सूचयन्तीम्। (शरीरसंसक्तो शुष्कावशेषश्चन्दनरसो भस्मेव कामाग्नेरवसानं सूचयतिस्म, भस्मस्वरूपतैव हि वह्नेरवसानदशेति स्थितिमनुरुध्येदमुक्तम्) अभ्युत्थानप्रसङ्गेन–चन्द्रापीडसत्कारार्थमुत्थानेन। कुसुमशय्याम्–पुष्परचितं शयनीयम्। दूरीकुर्वन्तीम्–क्षिपन्तीम्। दर्शनीयावलोकनफलेन–द्रष्टव्यदर्शनद्वारा। चक्षुषी–स्वीये नयने। कृतार्थतां नयामि–सार्थकीकरोमि। साञ्जलिप्रणामेन–मिलिताभ्यां कराभ्यां नमस्कारद्वारा। कण्ठग्रहेण–कण्ठाश्लेषेण। संभाव्य–सत्कृत्य। चरणपतिताम्–पादयोः प्रणमन्तीम्। उत्थाप्य–उपरि नीत्वा। परिष्वज्य–आलिङ्ग्य। निर्भरम्–गाढम्। महाश्वेतोपपादितोद्वाहमङ्गलः–महाश्वेतया सम्पादितवैवाहिकसमुदाचारोऽहम्। त्वरितैः शीघ्रकारितापरायणैः सखीवृन्दैः आलीजनैः निर्वर्त्तितः अनुष्ठितः वैवाहिकस्नानमङ्गलविधिः विवाहावसरसम्पाद्यस्नानरूपमङ्गलकार्यं यस्याः (विवाहतः पूर्वं सखीभिर्मङ्गलद्रव्यैः स्नपितायाः) वर्षाभिषिक्तायाः जलवृष्टिसिक्तायाः। भुवः–पृथिव्याः। देव्याः–कादम्बर्याः। करग्रहणम्–पाणिपीडनम्। निर्वर्त्तयामि–अनुतिष्ठामि। (यथा राजा वर्षासिक्ताया भुवः राजभागं गृह्णाति तथैवाहं सद्यःस्नपितायाः कादम्बर्याः पाणिं गृह्णामीत्युपमा) अतिबहलेति–। अतिबहलैः अधिकैः कुङ्कुमः पटवासः, कुसुमम् पुष्पम्, धूपः, अनुलेपनं चन्दनञ्च तेषाम् आमोदैः सुगन्धैरुद्दीपितो वृद्धिं नीतः हृदयजन्मा कामो यत्र तादृशे, वासभवने–क्रीडागृहे। शयनवर्तिनः–शयनीयस्थितस्य। मम–चन्द्रापीडस्य। समीपमुपविश्य–पार्श्वे स्थित्वा। कृतनर्मप्रलापायाम्–विहितपरिहासायाम्। निर्गतायाम्–यातवत्याम्। त्रपावनम्रमुखीम्–लज्जयानतवदनाम्। अनिच्छन्तीम्–शयनीयमारोढुमनीहमानाम्। दोर्भ्यामादाय–बाहुभ्यामवलम्ब्य। शयनीयम्–शय्याम् 'आरोपयामि' इति वक्ष्यमाणेनान्वयः। शयनीयादङ्कम् स्वं क्रोडदेशम्। (आरोपयामि) अङ्काच्च हृदयमारोपयामि–वक्षसि धारयामि। उद्गाढेति–उद्गाढायां दृढबद्धायां नीविग्रन्थौ परिधानीयवस्त्रबन्धने दृढतरम् सावधानभावेन अर्पितं स्थापितं पाणिद्वयं करयुगलं यया तादृश्याः–दृढकरयुगलेन नीविग्रन्थिमोचनाय प्रवर्त्तमानं मम हस्तं वारयन्त्या इत्याशयः। त्रपानिमीलितलोचने लज्जया मुद्रिते नयने। अवाञ्छितात्मा–सफलमनोरथतया प्रसन्नः। सुरैरपि दुर्लभम्–देवैरपि दुरापम्। तदधरामृतम्–कादम्बर्या ओष्ठसुधाम्। आतृप्तेः–यावत्तृप्ति।

बचे हुए सूखे अङ्गलग्न भस्मोपम मलयज रस से कामाग्नि की निवृत्ति की सूचना देगी, उठकर स्वागत करने के
छल से कादम्बरी कुसुमशयन को दूर करती रहेगी। कब मैं ऐसी कादम्बरी को देखकर दर्शनीय वस्तु को देख
अपनी आँखों को कृतार्थ करूँगा। कण्ठग्रहणपूर्वक प्रणाम से मदलेखा का सत्कार करके चरणपतिता चन्द्रलेखा
को उठाकर केयूरक का गाढ़ालिङ्गन करूँगा। उसी बीच महाश्वेता हमारे विवाह की तैयारी करती रहेगी, शीघ्र ही
सखियों द्वारा वैवाहिक स्नान-मङ्गल के कराये जाने पर वर्षाभिषिक्त वसुधा की तरह लगने वाली कादम्बरी का
पाणिग्रहण करूँगा। इस प्रकार अधिक मात्रा में उपयुक्त कुङ्कुम, धूप, फूल, चन्दन-माला आदि की सुगन्धि से काम
को उद्दीपित करने वाले शयनगृह में शय्या पर बैठे हुए मेरे थोड़ी देर बैठकर हास-परिहास करके मदलेखा
खिसक जायगी, मैं लज्जा से नम्रमुखी नहीं चाहती हुई कादम्बरी को बलपूर्वक बाहुओं में भरकर शय्या पर ले
जाऊँगा, अनन्तर मैं उसे शय्यापर से गोद में और गोद में से हृदय में बिठा लूँगा। इस प्रकार कादम्बरी अपनी

---

१. स्नानविधिः ।

एवमतिकोमलतयान्तर्विलीय विशन्त्या इवाङ्गं गाढालिङ्गनसुखरसभरेण मकरध्वजानलदग्धशेषं निर्वापयामि शरीरम् ; एवं परवत्यापि स्वेच्छाप्रवृत्तयेव निष्प्रयत्नयाप्यभियुञ्जानयेवापसर्पन्त्यापि कृतापसर्पणयेव संगोपितसर्वाङ्ग्याप्युपदर्शितभावयेव देव्या कादम्बर्या सह तत्किमपि सर्वजनसुलभमपि योगैकगम्यं स्पर्शविषयमपि हृदयग्राहि मोहनमपि प्रसादनमिन्द्रियाणामुद्दीपनमपि मदनहुतभुजो निर्वृतिकरमुपाहितसर्वाङ्गखेदमप्याह्लादकरमुपजनितविषमोच्छ्वासश्रमस्वेदमपि ससीत्कारपुलकजननमनुभूयमानमप्युत्पादितानुभवनस्पृहं सहस्रवारानुभूतमप्यपुनरुक्तमतिस्पष्टमप्यनिर्देश्यस्वरूपमचिन्त्यसमासङ्गमतुलस्पर्शमनुपमरसमनाख्येयप्रीतिकरं परमध्यानसहस्राधिगतं निर्वाणमिवापरप्रकारं सुरताख्यं सुखान्तरमनुभूय निमेषमप्यकृतविरहस्तया सह तेषु तेषु रम्येषूद्देशेषु रममाणः स्वभावरम्यमपि

निपीय-पीत्वा। आत्मानं सुजीवितं करोमि-स्वं जीवनं सार्थकतां नयामि। अन्तर्विलीय विशन्त्याः-लीनतामासाद्येव हृदयं प्रविशन्त्याः। गाढालिङ्गनसुखरसभरेण-गाढालिङ्गनजन्यप्रमोदेन। मकरध्वजानलदग्धशेषम्-कामाग्निना भस्मावशेषीकृतम्। निर्वापयामि-शिशिरीकरोमि। परवत्या-पराधीनया। स्वेच्छाप्रवृत्तया-स्वतो रतितत्परया। निष्प्रयत्नया-सुरतविषयकचेष्टारहितया। अभियुञ्जानया-कृतरतिप्रयासया। अपसर्पन्त्या-दूरीभवन्त्या। कृतोपसर्पणया-समीपमागतया। संगोपितसर्वाङ्ग्या-आच्छादितसमस्तशरीरावयवया। उपदर्शितभावया-प्रकटीकृतरतीच्छया। तत्-अनुभवैकवेद्यम्। योगैकगम्यम्-ध्यानमात्रवेद्यम्। हृदयग्राहि-मनोहरम्। मोहनम्-मोहजनकम्। इन्द्रियाणां प्रसादनम्-इन्द्रियाणां प्रसन्नतायाः कारणभूतम्। उद्दीपनम्-हृदयस्योद्दीपने हेतुभूतम्। मदनहुतभुजः-कामाग्नेः। निर्वृतिकरम्-शमकम्। उपाहितसर्वाङ्गखेदम्-जनितसमस्तशरीरश्रमम्। आह्लादकरम्-आनन्दप्रदम्। ससीत्कारपुलकजननम्-सीत्कारशब्दयुक्तस्य रोमाञ्चस्य कारणम्। उपजनितविषमोच्छ्वासश्रमस्वेदम्-दीर्घनिश्वासस्य श्रमजन्यस्वेदबिन्दोश्च उत्पादकम्। अनुभूयमानम्-भुज्यमानम्। उत्पादितानुभवनस्पृहम्-पुनरनुभवस्येच्छाया जनकम्। अपुनरुक्तम्-नित्यनूतनम्। स्पष्टम्-अनुभवगोचरम्। अनिर्देश्यस्वरूपम्-अवर्णनीयम्। अचिन्त्यसमासङ्गम्-अवर्णनीयसंयोगम्। अतुलस्पर्शम्-अनुपमस्पर्शसुखम्। अनाख्येयम्-वाचा वक्तुमशक्यम्। प्रीतिकरम्-आनन्दजननम्। निर्वाणम्-एकप्रकारकं मोक्षम्। सुरताख्यम्-संभोगनामकम्। निमेषम्-एकस्यापि क्षणस्य कृते। अकृतविरहः-अवियुक्तः। तया-कादम्बर्या। उद्देशेषु-स्थानेषु। रममाणः-विहरमाणः। स्वभावरमणीयम्-प्रकृतिसुन्दरम्। रमणीयतरताम्-अत्यन्तरम्यभावम्। उत्पन्नविस्रम्भाम्-सञ्जातविशेषपरिचयाम्। अभ्यर्थ्य प्रार्थनयाऽनुकूलां कृत्वा। घटनाम्-विवाहसम्बन्धम्। एतानि-पूर्वोक्तरूपाणि भावान्तराणि। अन्यानि-प्रोक्तभिन्नानि। अचेतिताः मनसाऽध्याताः क्षुधो बुभुक्षायाः, पिपासायाः तृषः, आतपस्य रौद्रस्य, श्रमस्य, मार्गलङ्घनश्रान्तेः, उज्जागरस्य रात्रिजागरणस्य

नीवी को दृढ़ हाथों से पकड़ेगी, मैं उसके लज्जानिमीलित नयनों को चूमकर अपने को कृतार्थ करूँगा। कामदेव के सन्ताप से दग्ध इस शरीर को अति कोमलतावश घुलकर मेरे अङ्गों में प्रवेश सी करती हुई कादम्बरी के गाढ़ालिङ्गन रस से शीतलता प्रदान करूँगा। विवश होने पर भी स्वेच्छाप्रवृत्त सी, निष्प्रयत्न होकर भी उद्योग करती हुई सी, दूर भागती हुई भी समीप आती हुई सी, सारे अङ्गों को छिपा करके भी प्रदर्शित करती हुई सी, देवी कादम्बरी के सुरतसुख का उपभोग करूँगा जो सुरतसुख सर्वजनसुलभ होकर भी योगैकगम्य, स्पर्शविषय होकर भी हृदयग्राही, मोहक होकर भी प्रसन्नता प्रदान करने वाला, इन्द्रियों को उद्दीपित करने वाला होकर भी कामाग्नि को बुझाने वाला, सारे अङ्गों का थकाने वाला होकर भी आनन्द देने वाला, लम्बी साँस तथा श्रमस्वेद का पैदा करने वाला होकर भी सीत्कार तथा रोमाञ्च उत्पन्न करने वाला, अनुभूत होकर भी पुनः अनुभव की स्पृहा पैदा करने वाला, सहस्र बार अनुभूत होकर भी अपुनरुक्त, अति स्पष्ट होकर भी अनिर्देश्य, अद्वितीय, अतुल्यस्पर्श, अवर्णनीय, प्रीतिकर, हजार बार ध्यान के बाद प्राप्त, एक प्रकार का मोक्ष ही होगा। एक क्षण के लिए भी उससे बिना बिछुड़े रम्यप्रदेशों में विहार करके इस स्वभावसुन्दर यौवन को और सुन्दर बनाऊँगा। इसके बाद विश्वास उत्पन्न

रमणीयतरतां यौवनमुपनयामि; एवमुत्पन्नविश्रम्भां देवीमेवाभ्यर्थ्य वैशम्पायनस्यापि मदलेखया सह घटनां कारयामीत्येतानि चान्यानि च चिन्तयन्नचेतितक्षुत्पिपासातपश्रमो जागरश्चाथो दिवा रात्रौ चावहत्।

एवं च वहतोऽप्यस्य दवीयस्तयाध्वनोऽर्धपथ एव कालसर्पो वर्त्मनः, प्रबलपङ्को ग्रीष्मस्य, निशागमो गभस्तिमतः, स्वर्भानुरमृतदीधितेः, धूमोद्गमो वज्रानलस्फुरितानाम्, मदागमो मकरध्वजकुञ्जरस्य, मरणान्धतमसप्रवेशो विरहातुराणाम्, अमोघकालपाशवागुरोत्कण्ठितकामिहरिणानाम्, अभेद्यलोहार्गलदण्डो दिग्वारणानाम्, अच्छेद्यहिञ्जीरशृङ्खला वाहानाम्, अनुन्मोच्यनिगडबन्धोऽध्वगानाम्, अलङ्घ्यकान्तारलेखा प्रोषितानाम्,

---

च व्यथाः कष्टानि येन तादृशः, मनसापि क्षुत्पिपासातपश्रमजागरणजन्यानि कष्टान्यननुध्यायन्नित्यर्थः। दिवा रात्रौ च–अहर्निशम्। अवहत्–मार्गमत्यक्रामत्।

वहतः–सततमग्रे चलतः। अध्वनो दवीयस्तया–मार्गस्य दूरगामितया। अर्धपथे–मध्यमार्गे। वर्त्मनः–मार्गस्य। कालसर्पः–सर्पः। (यथा मार्गे समापतितः सर्पो मार्गं रुणद्धि तथैव वर्षाकालोऽपि मार्गं रुणद्धीत्यभिप्रायेणेयमुत्प्रेक्षा) ग्रीष्मस्य–ग्रीष्मर्त्तोः। प्रबलपङ्कः–गाढः कर्दमः। गभस्तिमतः–सूर्यस्य। निशागमः–रात्रिप्रारम्भः (यथा रात्रौ सूर्यो न दृश्यते तथैव वर्षाकालेऽपीति वर्षाकालस्यात्र रात्रिरूपतोक्ता) अमृतदीधितेः–चन्द्रमसः। स्वर्भानुः–राहुः (राहुरपि चन्द्रं ग्रसति, वर्षाकालोऽपि तथेति तयोस्तुलना) धूमोद्गमः–धूमप्रारम्भः। वज्रानलस्फुरितानाम्–वज्ररूपस्य वह्नेः प्रकाशानाम्। यथा धूमप्रारम्भे सति तदनन्तरं धूमध्वजः स्फुरति, तथैव वर्षर्त्तावागते सति वज्राणि स्फुरन्ति, तदयं साम्यहेतुः। मकरध्वजः कामदेव एव कुञ्जरः करी तस्य मदागमः दानप्रारम्भः, दानवारिप्रकाशारम्भे सति यथा गज उद्दामो जायते तथा वर्षाकाले काम उद्दामो भवतीति वर्षाकालस्य मदोदयरूपतोक्ता। विरहातुराणाम्–प्रियतमवियोगपीडितानाम्। मरणमेवान्धतमसं गाढध्वान्तम् तत्र प्रवेशः, यथा म्रियमाणो गाढेऽन्धतमसे प्रविशति तथैव वर्षाकालेऽपि इति विरहिणां कृते वर्षाकालोऽयं मरणान्धतमसप्रवेशरूपतया वर्णितः। उत्कण्ठितकामिहरिणानाम्–प्रियामिलनार्थमुत्सुकानां कामिजनानां मृगाणां कृते। अमोघकालपाशवागुरा–अभेद्या मृगबन्धनी। (यथा मृगबन्धन्यां बद्धो हरिणः किमपि कर्त्तुं न शक्तस्तथैवात्र वर्षाकाले प्रियमिलनोत्का अपि किमपि कर्त्तुं न क्षमन्त इति परम्परितरूपकस्यास्यार्थः)। दिग्वारणानाम्–दिशारूपाणां गजानाम्। अभेद्यलोहार्गलदण्डः–अत्रोटनीयलोहार्गलरूपः (यथा लोहार्गलनिरुद्धा गजा अनिच्छन्तोपि न पृथग्भवितुमीशते तथैव वर्षाकाले दिशोऽपि न पृथगवभासन्ते, दिग्भेदजनकस्य सूर्यप्रकाशस्यैवानुपलब्धेरिति भावः) अच्छेद्या अखण्डनीया हिञ्जीरशृङ्खला पादबन्धननिगडः, वाहानाम्–अश्वानाम्। यथाऽच्छेद्यशृङ्खलानिगडितचरणा अश्वाः पुरस्सर्तुं न प्रभवन्ति तथैव वर्षर्तुनापि पुरोगमनप्रतिबन्ध आधीयत इति तथारूपणम्। असुन्मोच्यनिगडबन्धः–अभेद्यशृङ्खलाबन्धनम्। अध्वन्यानाम्–पान्थानाम्। (यथा निगडितचरणाः पान्था अग्रे सर्त्तुं नेशते तथैव वर्षर्त्तुनाऽपि प्रतिबद्धास्ते पुरःसर्त्तुमक्षमा जायन्त इति तात्पर्यम्) अलङ्घ्यकान्तारलेखा–दुस्तरवनमाला। प्रोषितानाम्–परदेशंगतानाम्। (यथा परदेशं गता

हो जाने पर कादम्बरी से कहकर वैशम्पायन के साथ मदलेखा का भी विवाह करवा दूँगा, इस प्रकार की तथा अन्यान्य चिन्ताओं में भूख, प्यास, धूप, जागरण, श्रम आदि के कष्टों को भूलकर चन्द्रापीड़ अहर्निश चलते ही रहे।

इस प्रकार चलते रहने पर भी मार्ग के लम्बापन के कारण आधे रास्ते में ही बरसात आ गई, जो बरसात रास्ते का कालसर्प, ग्रीष्म का प्रबलपङ्क, सूर्य के लिए रात्रि का आगमन, चन्द्रमा के लिए राहु, वज्रपतनरूप अग्नि के प्रज्वलित होने का धूम, कामरूप हस्ती का मदागम, विरहातुरजनों का मरणरूप अन्धकार में प्रवेश, उत्कण्ठित कामिरूप हरिणों के लिए अभेद्य जाल, दिशारूप हस्तियों के लिए अभेद्य लौहशृङ्खला, घोड़ों के लिये नहीं टूटने वाली जंजीर, पथिकोंके लिये नहीं टूटने वाली बेड़ी, प्रवासियों के लिये दुर्लङ्घ्य वनमाला, जीवलोक के लिए काले लोहे के पिंजड़े में बन्धन के समान थी। काले भ्रमरों की तरह श्याम मेघघटा से भीषण, भयंकर वज्रनिर्घोष की

कालायसपञ्जरोपरोधो जीवलोकस्य, उद्गर्जन्नलिकुलगवलमलिनघनघटाभोगभीषणो विषम-विस्फूर्जितध्वनिर्विषमतरतडिद्गुणाकर्षी मण्डलितविकटशक्रकार्मुकोनवरतधाराशरासारवर्षी प्रहारी पुरोमार्गमवरुन्धन्विरुद्ध इवान्धकारितमुखो निस्त्रिंशशतसहस्रसंपातदुष्प्रेक्ष्योऽक्षिणी प्रतिघ्नन्निवाशुगमनविघ्नकारी बभूव जलदकालः।

तत्र च प्रथममस्य चेतोहारिभिर्मूर्च्छावेगैरन्धकारतामनीयन्त दशदिशस्ततो जलधरैः। अग्रतः समुत्प्लुतेन चेतसा क्वाप्यगम्यत पृष्ठतो हंसैः। पुरस्तात्परिमलिनोऽस्य निश्वासमरुतः प्रावर्तन्त पश्चात्कदम्बवाताः। पूर्वं तुलितनीलोत्पलवनकान्ति नयनयुगलमस्य सलिलं समुत्ससर्ज चरममम्भोमुचां वृन्दम्। आदावापूर्यमाणमुद्वेगेनोत्कलिकासहस्र-

---

मध्ये पतितया वनमालया निरुद्धगमना जायन्ते तथैव वर्षयापीति तुलना) कालायसपञ्जरोपरोधः-कालस्वरूपलोहपञ्जरबन्धः-। (यथा काललौहपञ्जरबद्धः पुरुषो निष्क्रियो जायते तथैव वर्षर्त्तावपि निष्क्रियो जायत इति सादृश्यम्) उद्गर्जन्-शब्दायमानः। अलिकुलं भ्रमरसमुदायः, गवलाः वन-महिषाः, तेषां घटाभोगः दलम् तद्वद् भीषणः श्यामवर्णतया भयजनकः, विषमविस्फूर्जितध्वनिः-भयंकर-शब्दकरः, तडिद्गुणाकर्षी-विद्युच्चापज्याधरः, मण्डलितं गोलाकारीकृतं यद्विकटं भीषणं शक्रकार्मुकम् इन्द्रधनुस्तस्य धरो धारयिता, अनवरतम् सततम् धारा जलधारा एव शरासारः बाणपरम्परा तस्य वर्षी वर्षणशीलः, पुरोमार्गम् ग्रामस्य पन्थानम् अग्रे गामिनमध्वानञ्च। रुन्धन्-अवरुध्य तिष्ठन्। विरुद्धः-शत्रुः। यथा विरोधी शब्दायते, श्यामवर्णतया भीषणो भवति, भयजनकं शब्दं करोति, चापज्यामामृशति, कार्मुकं मण्डलीकुरुते, अनवरतं बाणान् वर्षति, ग्रामपथं च निरुणद्धि, तथैवायं वर्षाकालोऽपि भ्रमरवनमहिषश्यामलघटाशालितया भयङ्करः, शब्दायमानः, तडितं ज्यां परामृशन्, जलधारारूप-बाणावलीवर्षी, मण्डलीकृतेन्द्रचापोऽग्रेयायिमार्गप्रतिबन्धकश्च भवतीति वर्षर्त्तोरत्र विरोधिरूपतोक्ता। अन्धकारितमुखः-अन्धकारपूर्णवदनः निस्त्रिंशशतशहस्रसंपातदुष्प्रेक्ष्यः-शतसहस्रसंख्यकखड्गपातवद्-द्रष्टुमशक्यः। अक्षिणी प्रतिघ्नन्-दृक्शक्तिप्रतिघातं कुर्वन्। आशुगमनविघ्नकारी-शीघ्रगमनप्रतिबन्धकः। जलदकालः-वर्षासमयः। वर्षासमयेन तस्य गतिः प्रतिबद्धा जातेत्यर्थः।

तत्र-वर्षासमये। प्रथमम्-पूर्वम्। अस्य चन्द्रापीडस्य। चेतोहारिभिः-मानसज्ञानापहरणशीलैः मनोहरैरिति च। मूर्च्छावेगैः-मूर्च्छासमागमरयैः। अन्धकारतामनीयन्त-अन्धकाररूपतां प्राप्यन्ते। ततः-तदनन्तरम्। जलधरैः-मेघैः, वर्षासमये समायाते पूर्वमूर्च्छयैव तस्य दशापि दिशोऽन्धकारतां गमिताः पश्चान्मेघास्ता अंधकारपूर्णाश्चक्रुरित्यर्थः। एवमग्रेपि। अत्र सर्वत्र कार्यकारणपौर्वापर्यविपर्ययमूल-कातिशयोक्तिपरम्परा बोध्या। अग्रतः समुत्प्लुतेन-उत्प्लुत्याग्रतो गतेन। चेतसा हृदयेन। क्वापि-अनि-श्चितस्थले। हंसा वर्षर्तुप्रारम्भे भौमं जलं पङ्काविलं सम्भावयन्तः क्वाप्युच्चे स्थाने गच्छन्ति, चन्द्रापीडस्य हृदयमपि पलाय्य क्वापि गतमिति तात्पर्यम्। पुरस्तात्-पूर्वम्। परिमलिनः-सुगन्धपूर्णाः। निश्वासमरुतः-श्वासवायवः। प्रावर्त्तन्त-जाताः, पश्चात्-निश्वासप्रवृत्त्यनन्तरम् कदम्बवाताः परिमलिनः प्रावर्त्तन्तेत्य-त्रापि योजनीयम्। तुलितनीलोत्पलकान्ति-कान्तौ नीलकमलसमानम् 'सलिलं समुत्ससर्ज-अश्रुजलं मुमोच, चरमम्-पश्चात्। (तुलितनीलोत्पलकान्ति) अम्भोमुचां मेघानां वृन्दम् समूहः सलिलं समुत्ससर्ज-ववर्ष। आदौ-प्रथमम् अस्य-चन्द्रापीडस्य। मनः-चित्तम्। उद्वेगेन-व्यग्रतया आपूर्यमाणम्-भृतम्

ध्वनि करने वाला, बिजलीस्वरूप धनुष की प्रत्यञ्चा खींचने वाला, इन्द्रधनुष को मण्डलाकार बनाकर धारारूप बाणों को बरसाने वाला, आगे के मार्ग को रोककर, दिशाओं को अन्धकारावृत बनाकर यह जलदकाल शत्रु की तरह आगे बढ़ने में विघ्न करता हुआ आकर खड़ा हो गया।

बरसात के आने पर पहले हृदय-हरण करने वाले मूर्च्छा के वेग ने दश दिशाओं को अन्धकारपूर्ण बनाया, बाद में मेघों ने। पहले सुगन्धपूर्ण निश्वास-पवन प्रादुर्भूत हुए बाद में कदम्बवनवात। पहले हृदय उड़कर कहीं चला गया बाद में हंस गये। नील कमल समानकान्ति चन्द्रापीड़ के नयनों ने पहले वारिवर्षा की बाद में

पर्याकुलं मनोऽस्याभयदवसाने स्रोतस्विनीनां पात्रम्, अपि च दुस्तरैर्नदीपूरैरेव सहावर्धन्त मन्मथोन्माथाः। वर्षजलविलुलितैः कमलाकरैरेव सह निममज्ज कादम्बरीसमागमप्रत्याशा। धारारयासहैः कन्दलैरेव सहाभिद्यत हृदयम्। अम्भोदवाताहतैः कदम्बकुड्मलैरेव सहाकम्पतोत्कण्टकिता तनुः। अनवरतजलपतनजर्जरितपक्ष्मभिः शिलीन्ध्रैरेव सह ताम्रतामधत्त नयनयुगलम्। उत्कूलसलिलोत्खन्यमानमूलैः सरित्तटैरेव सहापतन्प्राणाः। परिमलमयैर्मालतीकुसुमैरेव सहाजृम्भत रणरणकः। तथातिगुरुनिर्घातैरेवाभज्यन्त मनोरथाः। तीक्ष्णतरकोटिभिः केतकीसूचिभिरेवात्रुट्यन्त मर्माणि। उच्छिखैः शिखिभिरेवादह्यन्त गात्राणि। अन्धकारितदिशा मेघतमसैवावर्धत मोहान्धकारः। तिरस्कृत-

---

उत्कलिकासहस्रपर्याकुलम्—नानाविधोत्कण्ठायुक्तम्। अवसाने—तदन्ते। पश्चादिति भावः। स्रोतस्विनीनाम्—नदीनाम्। पात्रम्—स्रोतः। वेगपूर्णं तरङ्गाकुलञ्चाजायतेत्यर्थः। दुस्तरैः—कष्टं तरणीयैः। नदीपूरैः—नदीप्रवाहैः। अवर्धन्त—प्रवृद्धाः। मन्मथोन्माथाः—कामव्यथाः। (यथा यथा वृष्टौ जातायां नदीपूरा दुस्तरा अवर्धन्त तथा तथा चन्द्रापीडस्य मन्मथोन्माथा अपि दुस्तराः सन्तोऽवर्धन्त इत्याशयः) वर्षजललुलितैः—वर्षावारिविचलितैः। कमलाकरैः—कमलवनैः कादम्बरीसमागमप्रत्याशा—कादम्बर्या मिलनस्य संभावना। निममज्ज—निमग्ना। (यथा यथा कमलवनानि वर्षजललुलितानि सन्ति जले न्यमजँस्तथा तथा चन्द्रापीडस्य हृदये स्थिता कादम्बरीसमागमप्रत्याशाऽक्षीयतेत्यर्थः) धारारयासहैः—पानीयविन्दुनिपातासहिष्णुभिः। कन्दलैः—कदलीदलैः। अभिद्यत—अदीर्यत। यथा जलविन्दुनिपातकृताघातान् सोढुमशक्तानि कदलीपत्राणि तैर्भिद्यन्ते तथैव तदीयं हृदयमप्यभिद्यतेत्यर्थः। अम्भोदवाताहतैः वर्षावायुचलितैः कदम्बकुड्मलैः—नीपकोरकैः। अकम्पत—चेपतेस्म। यथा यथा कदम्बकोरकावली वर्षावाताहता सती चकम्पे तथा तथेदमीया—उत्कण्टकिता समुद्भूतरोमाञ्चा तनुरपि चकम्पे इत्यर्थः। अनवरतं सततं जलस्य पतनेन धारापातेन जर्जरितानि विचलितानि पक्ष्माणि लोमाकारा अवयवा येषां तादृशैः (इदं विभक्तिविपरिणामेनाक्ष्णोऽपि विशेषणतया सुयोजम्) शिलीन्ध्रैः—कदलीपुष्पैः। (शिलीन्ध्रशब्दस्य कदलीपुष्पार्थकता यथा—'नवकदम्बरजोऽरुणिताम्बरैरधिपुरन्ध्रि शिलीन्ध्रसुगन्धिभिः' इति माघः। नयनयुगलम्—नेत्रद्वयम्। ताम्रताम्—रक्तवर्णताम्। अधत्त—अधारयत्। उत्कूलानि तटव्यापीनि यानि सलिलानि जलानि तैः खन्यमानम् भूमिसम्बन्धहीनतां प्राप्यमाणं मूलं येषां तादृशैः। सरित्तटैः—नदीतीरैः। प्राणाः—जीवनाधायका वायवः। परिमलमयैः—सुगन्धपूर्णैः। मालतीकुसुमैः मालत्याख्यलतापुष्पैः। अजृम्भत—अवर्धत। रणरणकः—किमपि विचित्रप्रकारकं मानसिकं चाञ्चल्यम्। अतिगुरुनिर्घातैः—महावातैः। अभज्यन्त—अत्रोटयन्त। तीक्ष्णतरकोटिभिः—अतितीव्रमुखीभिः। केतकीसूचीभिः—केतकपुष्पैः। अत्रुट्यन्त—अखण्ड्यन्त। मर्माणि—हृदयानि। उच्छिखैः उन्नतचूडैः, उद्गतज्वालैश्च शिखिभिर्मयूरैः वह्निभिश्च। गात्राणि—अङ्गानि। अदाह्यन्त—समताप्यन्त। अन्धकारितदिशा—दिगवकाशानन्धकारपूर्णान्कुर्वता। मेघतमसा—वर्षान्धकारेण। मोहान्धकारः—अज्ञानतमः (अवर्धत) तिरस्कृतध्वान्तेन—दूरीकृततमसा।

मेघों ने। उद्वेग से पूर्ण तथा अनेक उत्कण्ठाओं से भरा पहले उसका मन हुआ बाद में नदियों के स्थान। नदियों के दुस्तर प्रवाहों के साथ ही कामसन्ताप बढ़ गये। वर्षा की जलराशि से अस्त-व्यस्त कमलाकर के साथ ही कादम्बरी से मिलने की आशा डूब गई। वर्षा की बूंदों को नहीं सह सकने वाले कन्दलों के साथ ही हृदय विदीर्ण हो गया। बरसाती हवा से कम्पित कदम्ब की तरह रोमाञ्चपूर्ण शरीर काँप उठा। अनवरत जलवृष्टि से जर्जर शिलीन्ध्रों के साथ नयन लाल हो गये। तटतक पहुँचे सलिल से मूल के खने जाने पर गिरते हुए तटों के साथ ही प्राण गिरने लगे। परिमलयुक्त मालतीपुष्पके साथ रणरणक बढ़ने लगा। झञ्झावात से मनोरथ चूर हो गये, तीक्ष्ण अग्र भाग वाले केतकीपुष्प की सूची से मर्म बिंध गया। उच्छिख मयूरस्वरूप वह्नि से अङ्ग जल गया। दिशाओं को अन्धकारित करने वाले मेघकृत अन्धकार के साथ मोहान्धकार बढ़ने लगा। अन्धकार को परास्त

श्रान्तेन तडिदातपेनैवातन्यत संतापः। भरेणैव गम्भीरगर्जितैकसंतानोत्कम्पित-धरापीठबन्धैर्नभसि नवघनैः, घनजलधारातिपातवाचालितचञ्चुभिरन्तराले चातकैः, उद्दाममहारावराविभिरवनिमूले दर्दुरैः, अनवरतझांकाररवजर्जरितधाराम्बुभिराशासु जलदानिलैः, उन्मुक्तमदकलकेकाकोलाहलैः काननेषु कलापिभिः असमशिखरोपलस्खलनकलकलमुखरैर्गिरिषु निर्झरैः, उल्लोलकल्लोलास्फालविस्फारितविषमनिर्घोषझात्कारिभिः सरित्सु पूरैः, सर्वतश्च विततेन स्थलीषु संहतेन कन्दरेषूच्चण्डेन शिखरिषु कलकलेनाम्बुषु पटुना पर्वततटेषु मृदुना शाद्वलेषु चारुणा पल्वलेषु सान्द्रेण शाखिषु तनुना तृणोलपेषूल्बणेन तालीवनेषु यथाधारापतनमाकर्ण्यमानेन सर्वप्रकारमधुरेण हृदयप्रवेशिना धारारवेणोत्कलिकाकलितो न रात्रौ न दिवा न ग्रामे नारण्ये नान्तर्न बहिर्न वने नोपवने

तडिदाततेन–विद्युत्प्रकाशेन। सन्तापः–ऊष्मा। अतन्यत–क्रियतेस्म। गम्भीरगर्जितस्य मन्द्रस्तनितस्य य एकसन्तानः अविच्छिन्नः प्रवाहस्तेन उत्कम्पितः चालितो धरापीठबन्धः पृथिव्याः सन्धिबन्धनं यैस्तादृशैः। नवघनैः–सद्यःसंभृतसलिलैर्मेघैः। नभसि–आकाशे। (निर्वृतिं नाध्यगच्छदिति वक्ष्यमाणक्रियया वाक्यपूर्त्तिः, एवमग्रेऽपि) घनजलधाराणाम् वर्षाजलासाराणाम् अतिपातेन सातिशयनिपतनेन वाचालिताः शब्दायमानतां गताश्चञ्चवो येषां तादृशैः चातकैः अन्तराले द्यावापृथिव्योर्मध्यभागे। (निर्वृतिं नाध्यगच्छदिति) अवनिमूले–भूतले उद्दामेन भीषणेन महारावेण दीर्घशब्देन राविभिः शब्दायमानैः दर्दुरैः मेकैः। आशासु–दिशासु। अनवरतं सततं यो झांकाररवस्तेन जर्जरितानि छिन्नभिन्नानि धाराम्बूनि यैस्तथोक्तैः। जलदानिलैः–वर्षासमयवायुभिः। उन्मुक्तमदकलकेकाकोलाहलैः–मदकलं केकाकोलाहलं कुर्वद्भिः कलापिभिः मयूरैः काननेषु–वनेषु। असमेषु निम्नोन्नतेषु शिखरोपलेषु शृङ्गपाषाणेषु स्खलनेन निपातेन यः कलकलस्तेन मुखरैः सशब्दैः निर्झरैः पर्वतपातिभिः स्रोतोभिः। गिरिषु–पर्वतेषु। उल्लोलाः चपला ये कल्लोलास्तरङ्गास्तेषामास्फालेन गर्जनेन विस्फारिता दीर्घीकृता ये विषमा भयजनका निर्घोषाः शब्दास्तैर्झात्कारिभिः तदनुकारिशब्दकारकैः पूरैर्जलराशिभिः सरित्सु नदीषु, सर्वतः समन्तात् स्थलीषु–अकृत्रिमभूमिषु। विततेन प्रसारितेन, कन्दरेषु गिरिगह्वरेषु संहतेन एकत्रीभूतेन पिण्डितेन, शिखरेषु पर्वतेषु उच्चण्डेन भीतिजनकेन, अम्बुषु कलकलेन अव्यक्तमधुरेण, पर्वततटेषु गिरिनितम्बेषु पटुना निपुणं श्रूयमाणेन, शाद्वलेषु अल्पतृणेषु मृदुना, पल्वलेषु अल्पजलाशयेषु चारुणा हृद्येन, शाखिषु वृक्षेषु सान्द्रेण घनीभावमापन्नेन, तृणोलपेषु तृणेषु लतासु च तनुना कृशीभूतेन, तालीवनेषु तालतरुकाननेषु उल्बणेन प्रखरेण, यथा धारापतनम् (यत्र पूर्वोक्तेषु स्थानभेदेषु येन प्रकारेण यावता वेगेन येन वेगेन च धारा पतति तदनुसारेण) आकर्ण्यमानेन श्रूयमाणेन सर्वप्रकारमधुरेण सर्वेष्वपि स्वरूपेषु हृद्येन हृदयप्रवेशिना मनोऽनुकूलेन धारारवेण जलधारापातशब्देन उत्कलिकाकलितः उत्कण्ठायुक्त

करने वाले विद्युत् के प्रकाश से सन्ताप बढ़ा। गम्भीर गर्जन से पृथ्वी को कम्पित कर देने वाले मेघों ने आकाश में, मेघ की जलधारा के बरसते रहने से मुखरित चातकों ने आकाश में, उद्दाम शब्द करने वाले दर्दुरों ने महीतल में, अनवरत झंकार शब्द से जलधारा को जर्जर बनाने वाली बरसाती वायु से दिशाओं में, मदकल केका शब्द करने वाले मयूरों से जङ्गलों में, निम्नोन्नत शिखर पर से गिर कर कलकल नाद करने वाले निर्झरों से पर्वतों पर, चञ्चल तरङ्गों के परस्पर टकराने से उत्पन्न झंकारशाली जलप्रवाह से तालावों में, चारों ओर स्थली में एकत्रित, कन्दरों में भीषण, पानी में कलकल, पर्वत तट में मृदु, शाद्वल में रमणीय, पल्लव में घने, वृक्षों पर कृश, तृणों पर उत्कट, धारापतन के अनुसार सुने जाते हुए सर्वथा मनोहर शब्द से उत्कण्ठित होकर न रात में न दिन में, न गाँव में न वन में, न भीतर न बाहर, न वन में न उपवन में, न राह में न घर में, न जाते हुए न ठहरते हुए, न

---

१. धाराश्मपतनम्।

न वर्त्मनि नावासे न वहन्न तिष्ठन्न वैशम्पायनस्मरणे न कादम्बरीसमागमानुध्याने न कथंचिदपि न क्वचिदपि निर्वृतिमेवाध्यगच्छत्।

अनधिगतनिर्वृतिश्चातिकष्टतया वज्रानलस्येव जलदसमयेन्धनस्य मदनहुतभुजो भस्मसात्कर्तुमिवोद्यतस्य धीरस्वभावोपि प्रकृतिमेवोत्ससर्ज। प्लावितसकलधरातलैर्धाराजलैरप्यशोष्यत। द्योतितदशदिशा शतह्रदालोकेनापि मूर्च्छान्धकारेऽक्षिप्यत। आह्लादितजीवलोकैर्जलदानिलैरप्यदह्यत। पयोभारमेदुरैर्घनैरपि तनुतामनीयत। पाटलितशाद्वलैः शक्रगोपकैरपि पाण्डुतां प्रत्यपद्यत। कुसुमधवलैः कुटजैरपि रागपरवशोऽक्रियत। तथापि सकलजगज्जीवनहेतुनापि जीवितसन्देहदोलामारोपितो जलदकालेन, उत्कूलगामिषु विधिविलसितेषु सरित्पूरेषु चोत्प्लवमानः, अनवरतवर्षाजलजनितेषु मूर्च्छागमेषु पङ्कपटलेषु

(चन्द्रापीडः) अरण्ये-वने। उपवने-उद्याने। वर्त्मनि-मार्गे। आवासे-निवासस्थाने। वहन्-चलन्। कादम्बरीसमागमानुध्याने-कादम्बर्या सह मिलनस्य चिन्तायाम्। निर्वृतिम्-मानसीं शान्तिम्। अध्यगच्छत्-प्राप्तवान्।

अनधिगतनिर्वृतिः-अप्राप्तशान्तिः। वज्रानलस्य इव वज्रानलसमानस्य जलदसमयः वर्षाकाल एव इन्धनं प्रज्वलनसाधनं यस्य तादृशस्य वर्षाकालप्राप्तौ प्रकामं दीप्यमानस्य, भस्मसात्कर्तुमुद्यतस्य लोकान् भस्मभावं प्रापयितुं तत्परस्य मदनहुतभुजः कामाग्नेः अतिकष्टतया नितान्तकष्टप्रदतया (चन्द्रापीडः) धीरस्वभावो गभीरप्रकृतिः सन्नपि प्रकृतिमेव स्वभावमेव उत्ससर्ज तत्याज (विपरीतप्रकृतिरजायतेत्यर्थः)। प्रकृतिविपर्ययमेव प्रपञ्चयति—प्लावितेत्यादिना। प्लावितसकलधरातलैः पूरितसमस्तपृथ्वीतलैः धाराजलैः वर्षावारिभिः अशोष्यत-शुष्कतामापेदे। जलधारा सामान्यतः सर्वेषामेव क्लिन्नतां सृजति परमस्य शतह्रदालोकेन-विद्युत्प्रकाशेन। मूर्च्छान्धकारे-मोहतमसि। अक्षिप्यत-पात्यतेस्म (सामान्यतो लोको विद्युदालोकेन प्रकाशे पतति, अयं तेनापि मूर्च्छातमसि पततीति प्रकृतिविपर्ययो बोध्यः) आह्लादितजीवलोकैः सकलमपि प्राणिवर्गं प्रसन्नतां प्रापयद्भिः। जलदानिलैः वर्षावायुभिः। अदह्यत-दाहमन्वभवत्। पयोभारमेदुरैः-जलराशिस्निग्धैः। घनैः-मेघैः। तनुतामनीयत-कार्श्यं प्राप्यतेस्म। पाटलितशाद्वलैः-अल्पतृणानि रञ्जयद्भिः। शक्रगोपकैः वर्षाकालभाविरक्तवर्णकीटभेदैः 'वीरवहूटी' इति नाम्ना ख्यातैः। पाण्डुताम्-श्वेतवर्णताम् (दौर्बल्यकृतं पाण्डुभावम्) प्रत्यपद्यत-प्राप्तवान्। कुसुमधवलैः पुष्पस्वच्छैः। कुटजैः-गिरिमल्लिकाभिः। रागपरवशः-कादम्बरीविषयानुरागाधीनः। (स्वच्छैः कुटजैः रागपरवशः कृत इति प्रकृतिविपर्ययः) सकलजगज्जीवनहेतुना-सकललोकजीवनाधायकेन। जलकालेन-वर्षासमयेन। जीवितसंदेहदोलाम्-प्राणसंशयम्। आरोपितः-प्रापितः। उत्कूलगामिषु-तटमतिक्रम्य चलत्सु प्रतिकूलेषु च। विधिविलसितेषु-भाग्यस्य विधानेषु। सरित्पूरेषु-नदीप्रवाहेषु। उत्प्लवमानः-तरन्। अनवरतवर्षाजलजनितेषु-सततवृष्टिप्रभवेषु। मूर्च्छागमेषु-मूर्च्छोदयेषु। पङ्कपटलेषु-कर्दमसमूहेषु च। निमज्जन्-मग्नतां प्राप्नुवन्। जलभरस्थगिते-वारिपूरिते। वर्त्मनि-मार्गे। विलोचने-नयने। (यथा चन्द्रापीडो

वैशम्पायन के स्मरण में, न कादम्बरी-समागम के ध्यान में, न किसी तरह, न कहीं चन्द्रापीड़ को शान्ति मिली।

चन्द्रापीड़ को शान्ति नहीं मिल रही थी, बरसातरूपी इन्धन से प्रज्वलित वज्रानलस्वरूप कामाग्नि उसे भस्म करने को उद्यत थी, धीर स्वभाव होने पर भी उसकी प्रकृति बदल गई थी। पृथ्वी को जल से प्लावित करने वाली मूसलधार वृष्टि में भी वह सूखने लगा। दश दिशाओं को आलोकित करने वाले बिजली के प्रकाश में भी मूर्च्छा के अन्धकार में पड़ गया। जलराशि से भरे मेघों से भी वह दुर्बलता को प्राप्त होने लगा। घास को रक्त बना देने वाली वीरवहूटियों से भी वह पीला पड़ता जा रहा था। कुसुमों से धवल कुटज भी उसे रक्त बना रहे थे। संसार को जीवित करने वाले जलदकाल से भी उसका जीवन संशयापन्न हो रहा था, वह तटव्यापी भाग्य के विधान तथा जलप्लव में तैर रहा था, अनवरत वृष्टि से उत्पन्न मूर्च्छागम तथा पङ्क में वह

च निमज्जन्, जलभरस्थगिते वर्त्मनि विलोचने च स्खलन्, विकासिनीषु कादम्बरीप्राप्तिचिन्तासु धाराकदम्बरजोवृष्टिषु चामीलयन्, अनुबन्धिषु गमनविघ्नेषु जलधरध्वनितेषु च मुह्यन्, सुदुर्लङ्घ्यवेगान्युत्कण्ठितानि सहस्रशः स्रोतांसि चोल्लङ्घयन्, घनोपाहितवृद्धिना कादम्बरीसमागमौत्सुक्येन पयःप्लवरयेण चोह्यमानः, जीवितप्रत्याशामनिर्वहतो जनांस्तुरंगमांश्च परित्यजन्, तर्ज्यमान इव तडिद्भिः, अवष्टभ्यमान इव जलधरैः, निर्भर्त्स्यमान इव विस्फूर्जितैः, शकलीक्रियमाण इव शतशो निस्त्रिंशवृत्तिभिर्धारासारैः, निरुद्धास्वपि जलदकालेनैवाशुगमनविघ्नभूतास्वाशासु कादम्बरीसमागमाशा सुतरां नारुध्यतास्य यथा तादृशेपि यथास्थाननिगडितसमस्तप्राणिनि प्रावृट्काले कलामप्यकृतपरिलम्बोऽनीयत तं पन्थानम्। धाराहतिविकूणिताक्षेण च मुहुर्मुहुर्वलितागमिताननेन श्च्योतदासक्तिसम्पिण्डितकेसराग्रेणैकसन्तानकर्दमानुमग्नखुरेणादृश्यनिम्नोन्नतस्खलद्गतिना

जलपूर्णे मार्गे पतति स्म तथैव जलपूर्णे सति नयनेऽपि पतति स्मेत्यर्थः। विकासिनीषु—अहरहर्वर्धनशीलासु। धाराकदम्बरजोवृष्टिषु—कदम्बपुष्पपरागवृष्टिषु। आमीलयन्—मूर्च्छामनुभवन्। अनुबन्धिषु—अनुवर्त्तनशीलेषु। गमनविघ्नेषु—प्रस्थानप्रतिबन्धेषु। जलधरध्वनिषु—मेघशब्देषु च। मुह्यन्—कर्त्तव्यनिश्चयं कर्त्तुमपारयन्। सुदुर्लङ्घ्यवेगानि—कष्टातिक्रम्यरयाणि। उत्कण्ठितानि—उत्कण्ठाः। स्रोतांसि—प्रवाहाँश्च। उल्लङ्घयन्—अतिक्रामन्। घनोपाहितवृद्धिना—मेघेन वृद्धिं गमितेन। कादम्बरीसमागमौत्सुक्येन—कादम्बरीमिलनोत्कण्ठया। पयःप्लवरयेण—जलप्लावनवेगेन च। उह्यमानः—अग्रतः सार्यमाणः। जीवितप्रत्याशामनिर्वहतः—जीवननिराशान्। जनान्—सहयायिलोकान्। तुरङ्गमान्—अश्वांश्च। तर्ज्यमानः—भयं प्राप्यमाणः। तडिद्भिः—विद्युद्भिः। अवष्टभ्यमानः—अनुरुध्यमानः। जलधरैः—मेघैः। निर्भर्त्स्यमानः—लज्जां प्राप्यमाणः। विस्फूर्जितैः—घनगर्जितैः। शकलीक्रियमाणः—खण्डशः क्रियमाणः। निस्त्रिंशवृत्तिभिः—निर्गतत्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यः—निस्त्रिंशः खड्गः तस्येव वृत्तिर्व्यापारो येषां तैस्तथोक्तैः खड्गवदाचरद्भिरित्यर्थः। धारासारैः—जलधाराभिः। निरुद्धासु—घनव्याप्तासु। जलदकालेन—प्रावृषा। आशुगमनविघ्नभूतासु—शीघ्रयात्रापरिपन्थिनीषु। आशासु दिशासु प्रतिरुद्धास्वपि आशा आशंसा नारुध्यतेति चमत्कारः। यथास्थाननिडगितसमस्तप्राणिनि—सर्वेषां प्राणिनां यात्राप्रतिबन्धं कृत्वा तान्यथातत्स्थानं संयमनं कुर्वाणे। प्रावृट्काले—वर्षासमये। कलाम्—एकं क्षणम्। अकृतपरिलम्बः—अविहितविलम्बः। तम् पन्थानम्—अच्छोदसरोवरयायिनं मार्गम्। अनीयत—आकृष्य पुरः अगम्यत। धाराहतिविकूणिताक्षेण—धाराघातेन हेतुभूतेन संकुचितनेत्रेण। मुहुर्वलितानमिताननेन—वारंवारं मुखं वक्रं नतं च कुर्वता। श्च्योतदासक्तिसंपिण्डितकेसराग्रेण—स्कन्धगतकेशा यस्य अग्रभागे मिलिताः सन्तः सम्पिण्डिता एकाकारा जातास्तादृशेन (श्च्योतन्ती क्षरन्ती आसक्तिः परस्परासक्तिर्यत्र तत्तथा संपिण्डितः एकाकारः केसराग्रो यस्य तादृशेन) एकसन्ताने एकतः प्रसृते कर्दमे पङ्के अनुमग्नाः निमग्नाः खुरा यस्य तादृशेन। अदृश्ये जलपङ्कनिमग्नतया दृष्टिशक्तिपरतो वर्त्तिनि निम्नोन्नते उच्चनीचभूभागे स्खलन्ती प्रतिहन्यमाना गतिर्यस्य तादृशेन।

डूबा जाता था, जलपूर्ण मार्ग तथा नयन में वह गिरता जाता था, बढ़ती हुई कादम्बरी-प्राप्ति चिन्ता एवं कदम्ब-धूलि में वह आँखें मूंद लेता था, बढ़ते हुए गमन-विघ्न एवं मेघध्वनि में वह मूढ़ हुआ जाता था, अलङ्घनीय वेग उत्कण्ठाओं तथा नदियों को वह पार करता था, मेघ से बढ़ते हुए कादम्बरी-प्राप्ति के औत्सुक्य एवं जलप्रवाह के वेग उसे बहाये जा रहे थे, जीवन से निराश परिजनों तथा अश्वों को छोड़ते हुए, बिजली से तर्जित, मेघों से अवरुद्ध, घनगर्जन से निर्भर्त्सित, तलवार की तरह तेज जलधार से खण्डित होने पर भी चन्द्रापीड़ के हृदय में कादम्बरी से मिलने की आशा धुंधली नहीं हुई जब कि वर्षाकाल ने शीघ्र गमन का प्रतिबन्धक बन कर सारी दिशाओं को धुंधली बना दिया। समस्त प्राणियों को अपनी-अपनी जगह पर निगड़ित कर देने वाले उस वर्षाकाल में भी चन्द्रापीड़ एक क्षण का भी विलम्ब किये बिना रास्ता तय करते गये। उनके घोड़े पानी की धारा से आँख मूंदे, बार-बार मुँह उठाते हुए चूते हुए जल से परस्परमिलितकेश, एकाकार कर्दम में लग्नखुर, अदृश्यमान

विशीर्यमाणपर्याणसमायोगेनोपर्युपरिवाहिनीतीरोत्तारसंतानावानपृष्ठेनापचीयमानबलजवोत्साहेन वाजिसैन्येनानुगम्यमानो जीवितसंधारणाय यथा तथा निर्वर्तिताशनमात्रकोऽभ्यर्हितराजलोकवचसाप्यप्रतिपन्नशरीरसंस्कारो दिवसमेव केवलमवहत्।

वहंश्च त्रिभागमात्रावशिष्टेऽध्वनि निवर्तमानं मेघनादमद्राक्षीत्। दृष्ट्वा च दूरत एव कृतनमस्कारं तमप्राक्षीत्। "तिष्ठतु तावत्पुरस्तात्पत्रलेखागमनवृत्तान्तप्रश्नः। वैशम्पायनवृत्तान्तमेव तावत्पृच्छामि। अयि दृष्टस्त्वयाच्छोदसरसि वैशम्पायनः। पृष्टो वावस्थानकारणम्। पृष्टेन वा किंचित्कथितं न वा। पश्चात्तापी वास्मत्परित्यागेन। स्मरति वास्माकम्। पृष्टोसि वानेन किंचिन्मदीयम्। उपलब्धो वाभिप्रायः। उत्पन्नो वालापो युवयोः। मातापित्रोर्वा संदिष्टं किंचित्। परिबोधितो वा त्वयागमनाय। आवेदितं वास्मदीयमागमनम्। नापयास्यति वा तस्मात्प्रदेशात्। दास्यति वा दर्शनम्। ग्रहीष्यति वास्मदनुनयम्। आगमिष्यति वा पुनर्मया सह। किं कुर्वन्दिवसमास्ते। को वा विनोदोऽस्य तिष्ठति" इति।

विशीर्यमाणः इतस्ततो व्यस्तः पर्याणसमायोगः पृष्ठास्तरणविन्यासो यस्य तादृशेन। उपर्युपरि वाहिनीनां नदीनां तीरेषु तटेषु उत्तारेण तरणेन सन्तानावानं क्रमशोऽवनतं पृष्ठं यस्य तादृशेन। अपचीयमानाः बलं शरीरसामर्थ्यम् जवः वेगः उत्साहः मनोबलं च यस्य तादृशेन। वाजिसैन्येन–अश्वसैन्येन। अनुगम्यमानः–अनुस्रियमाणः। जीवितसंधारणाय–प्राणान् रक्षितुम्। यथा तथा–येन केनापि प्रकारेण निर्वर्त्तिताशनमात्रकः–केवलं भोजनं कुर्वन्। अभ्यर्हितराजलोकवचसाऽपि–अत्याप्तराजपुत्रकथनेनापि। अप्रतिपन्नशरीरसंस्कारः–शरीरसंस्कारं स्नानप्रसाधनादिकमनाचरन्। दिवसं–सकलं दिनम्। अवहत्–चलतिस्म एव केवलम्।

वहन्–मार्गे चलन्। अध्वनि–मार्गे। त्रिभागमात्रावशिष्टे–तृतीयांशावशिष्टे सति। निवर्त्तमानम्–परावर्त्तमानम्। मेघनादम्–तन्नामकं स्वीयं भृत्यम्। कृतनमस्कारम्–प्रणतम्। तम्–मेघनादम्। अप्राक्षीत्–पृष्टवान्। पुरस्तात् पत्रलेखागमनवृत्तान्तः–पुरस्ताद् गतायाः पत्रलेखायाः समाचारः। तिष्ठतु–न तमहं प्रक्ष्यामि। अवस्थानकारणम्–अच्छोदसरसि वैशम्पायनस्य स्थितेर्निदानम्। पृष्टः–जिज्ञासितः। पृष्टेन–जिज्ञासितेन वैशम्पायनेन। पश्चात्तापी–अनुतप्तः। अनेन–वैशम्पायनेन। उपलब्धः– ज्ञातः। अभिप्रायः–वैशम्पायनस्येच्छा। आलापः–कथा। परिबोधितः–कथितः। अपयास्यति–दूरीभविष्यति। ग्रहीष्यति–स्वीकरिष्यति। अस्मदनुनयम्–मम प्रार्थनाम्। किं कुर्वन् दिवसमास्ते–सम्पूर्णं दिवसं व्याप्य किमाचरति। विनोदः–मनोरञ्जनोपायः।

निम्नोन्नत मार्ग हो रहे थे, उन घोड़ों की जीनें खिसक रही थीं, एक पर एक नदियों को पार करने से घोड़ों की पीठ झुकती जा रही थीं, उनका बल तथा वेग क्षीण हो रहा था। चन्द्रापीड़ जीवनधारणार्थ किसी प्रकार खाना पीना करते थे, अन्तरङ्ग व्यक्तियों के कहने पर भी वह शरीर का संस्कार नहीं करते थे, दिन भर चलते ही जाते थे।

चलते-चलते जब मार्ग का तृतीयांश शेष रह गया तब चन्द्रापीड़ ने लौटते हुए मेघनाद को देखा, देखकर दूर से प्रणाम करते हुए मेघनाद से चन्द्रापीड़ ने पूछा—तब तक पत्रलेखा के जाने की बात छोड़ो, पहले मैं वैशम्पायन का समाचार पूछता हूँ। क्या तुमने अच्छोदसरोवर पर वैशम्पायन को देखा? उससे वहाँ रह जाने का कारण पूछा? पूछे जाने पर उसने कुछ कहा या नहीं? क्या हमारे परित्याग का उसे पश्चात्ताप है? वह हमलोगों को याद करता है? हमारे बारे में उसने कुछ पूछा भी? उसका अभिप्राय कुछ समझ में आया? तुम दोनों में बातें हुई? मां-बाप को उसने कुछ संदेश दिया? हमारे आने की बात तुमने उससे कहीं? क्या वह उस जगह से नहीं टलेगा? क्या दर्शन देगा? हमारी प्रार्थना सुनेगा? हमारे साथ लौट आवेगा? दिन भर वह क्या करता रहता है? उसका वहाँ क्या मनोविनोद है?

स त्वेवं पृष्टो व्यज्ञपयत्। "देव, देवेन तु वैशम्पायनमालोक्यानुपदमेव तुरङ्गैरागत एवाहमित्यादिश्य विसर्जितोहम्। अच्छोदसरसः प्रतीपं वैशम्पायनो गत इत्येषान्तरा वार्तैव नोपजाता। चिरयति च देवे जलदसमयारम्भमालोक्य कदाचिदेतेषु देवेन तारापीडेन देव्या विलासवत्यार्यशुकनासेन च कृतप्रयत्नोपि न मुच्यत एवागन्तुं देवश्चन्द्रापीडस्त्वया चैकाकिना न स्थातव्यमेवास्यां भूमौ परगतप्रायाश्च वयं तन्निवर्तस्वास्मादेव प्रदेशादित्यभिधाय पत्रलेखया केयूरकेण च त्रिचतुरैः प्रयाणकैरप्राप्त एवाच्छोदं यावद्बलान्निवर्तितोस्मि।" इत्येवमावेद्य विरराम। विरतवचनं च तं पुनरपृच्छत्। "किमाकलयस्यद्यतनेनाह्ना यावत्परापतिता पत्रलेखा न" इति। स तु व्यज्ञपयत्। 'देव, यद्यन्तरा कश्चिदन्तरायो न भवति विलम्बकारी तदा विना सन्देहेन परापतत्येवमवगच्छति मे हृदयम्।'

इत्युक्तवति मेघनादे घनसमयवर्धिताभोगमकरध्वजार्णवमध्यपातिनीं स्वानुमानात् कादम्बरीमुत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्य विक्लवीभवतः पर्यावर्तन्त इवास्य जलधराः कालपुरुषैः, तडितो मदनानलशिखाभिः, अवस्फूर्जितं प्रेतपतिपटहस्वनेन; आसारधाराः स्मरेषुभिः, आमन्द्रगर्जितं

सः–मेघनादः। एवम्–पूर्वोक्तरूपेण। तुरङ्गमैः–अश्वैः। अनुपदम्–शीघ्रम्। आदिश्य–आज्ञाप्य। विसर्जितः–प्रेषितः। प्रतीपम्–विपरीतम्। अन्तरा–मध्ये। वार्त्ता–कथा। चिरयति–विलम्बमाने। देवे–भवति। जलदसमयारम्भम्–वर्षाऽऽगमम्। एतेषु दिवसेषु–वर्षाकालेषु। कृतप्रयत्नः–प्रयासं कृत्वा। न मुच्यते–गन्तुं नादिश्यते। त्वया–मेघनादेन। परागतप्रायाः–निवर्त्तितकल्पाः। त्रिचतुरैः प्रयाणकैः–त्रयाणां चतुर्णां वा दिवसानां यात्राभिः। अप्राप्तः–अगतः। आवेद्य–उक्त्वा। विरतवचनम्–कथयित्वा मौनमास्थितम्। किमाकलयसि–किं संभावयसि। अद्यतनेनाह्ना–वर्त्तमानेन दिवसेन। व्यज्ञपयत्–उक्तवान्। अन्तरा–मध्ये। अन्यरायः–विघ्नः। विना संदेहेन–निश्चयरूपेण। अवगच्छति–जानाति।

इत्युक्तवति–एवं कथितवति। घनसमयेन वर्द्धितः वृद्धिं नीत–आभोगो विस्तारो यस्य तादृशो मकरध्वजः काम एवार्णवः समुद्रस्तन्मध्यपातिनीम्। (सागरोऽपि घनसमये विस्तृताभोगो भवति, मकरध्वजोऽपि संभवत्येवेति बोध्यम्) स्वानुमानात्–स्वकृततर्कबलात्। उत्प्रेक्ष्य–संभाव्य। विक्लवीभवतः–खिद्यमानस्य। पर्यावर्त्तन्त–परिवर्त्तिताः जलधराः कालपुरुषैः पर्यावर्त्तन्त, मेघा यमदूतभावेन परिवर्त्तिता बभूवुरित्यर्थः। तडितः–विद्युतः। मदनानलशिखाभिः–कामाग्निज्वालाभिः। (विद्युतः कामाग्निशिखारूपेण परिवर्त्तिता अभवन्नित्यर्थः) अवस्फूर्जितम्–वज्रनिर्घोषः, प्रेतपतेर्यमस्य पटहस्वनेन वाद्यशब्देन (पर्यावर्त्तत) आसारधाराः–वर्षाधाराः। स्मरेषुभिः–कामबाणैः। आमन्द्रगर्जितम्–मेघस्य धीरं ध्वनितम्। मकरध्वजस्य–कामस्य। धनुर्ज्यागुञ्जिताभोगेन–कामधनुःप्रत्यञ्चाशब्दविस्तारेण। कला-

---

इस प्रकार पूछे जाने पर मेघनाद ने कहा—देव, आपने तो मुझे यह कह कर विदा कर दिया था कि वैशम्पायन को देखकर घोड़े से मैं तुरत आ रहा हूं। आपके साथ मेरी तो यह बात ही नहीं हुई थी कि वैशम्पायन अच्छोदसरोवर की ओर गया है। आपके देर करने पर वर्षा ऋतु का प्रारम्भ देख मैंने समझा कि कदाचित् वर्षा के दिनों में महाराज तारापीड़ विलासवती तथा शुकनास आपको नहीं आने दें। पत्रलेखा तथा केयूरक ने मुझे कहा कि तुमको अकेले यहाँ नहीं रहना चाहिये, हम भी आ ही रहे हैं, तुम यहाँ से लौट जाओ, इस प्रकार कहे जाने पर विना अच्छोदसरोवर की ओर गये ही अनिच्छा से ही लौट आया हूँ। इस प्रकार कह कर वह चुप हो रहा। उसके चुप हो जाने पर चन्द्रापीड़ ने उससे पुनः पूछा—तुम क्या सोचते हो आज पत्रलेखा आ जायेगी या नहीं? उसने उत्तर दिया—देव, अगर मार्ग में कोई विघ्न नहीं उपस्थित हुआ, तो मेरा हृदय कह रहा है, वह अवश्य आ जायेगी।

मेघनाद ने जब इस प्रकार कहा तब वर्षाऋतु में वर्धित कामसागर में कादम्बरी को डूबी हुई मानकर चन्द्रापीड दुःखी हो गये, उनके मत में मेघ कालपुरुष में, बिजलियाँ कामानलज्वाला में, मेघ का गर्जन कामदेव के

मकरध्वजधनुर्ज्यागुञ्जिताभोगेन, कलापिकेकाः कालदूतालापैः, केतकामोदो विषपरिमलेन, खद्योताः प्रलयानलस्फुलिङ्गराशिभिः, अलिवलयानि कालपाशैः, बलाकाश्रेणयः प्रेतपतिपताकाभिः, आपगाः सर्वक्षयमहापूरप्लवैः, दुर्दिनानि कालरात्र्या, कुटजतरवः कृतान्तहासैः। अपि च शरीरेऽपि सत्त्वं कातरतया, बलं क्षामतया, कान्तिर्वैवर्ण्येन, मतिर्मोहेन, धैर्यं विषादेन, हसितं शुचा, नयनमश्रुणा, आलपनं मौनेन, अङ्गान्यसहतया, करणान्यपाटवेन सर्वमेवारत्या। दिवसैश्चोल्लिख्यमानमिव, अनवरतवाहिनाश्रुपूरप्रवाहेणावभज्यमानमिव, सततैर्निश्वासप्रभञ्जनैरुत्खन्यमानमिव, संततैर्मदनदुःखोत्कलिकासहस्रैरजस्रपातिभिरितस्ततो जर्जरीक्रियमाणमिव, अपि च सहस्रैर्मकरध्वजशरासारैर्वपुषैव च सह क्षीयमाणमिव स्वल्पावशेषं संकल्पलिखितेन निर्विशेषवृत्तिना कादम्बरीशरीरेणैव सह कण्ठलग्नं कथंकथमपि जीवितं धारयन्, धाराधरक्लिन्नतरुतलम्, आप्लावितोपान्तहरित-

---

पिकेकाः—मयूरशब्दाः। कालदूतालापैः—यमदूतभाषितैः। केतकामोदः—केतकीपुष्पसुगन्धः। विषपरिमलेन—विषसुगन्धेन। प्रलयानलस्फुलिङ्गराशिभिः—प्रलयकालिकाग्निकणगणैः। अलिवलयानि—भ्रमरावलयः। कालपाशैः—यमराजस्य पाशाख्यास्त्रभेदैः। बलाकाश्रेणयः—बकपङ्क्तयः। प्रेतपतिपताकाभिः—यमस्य ध्वजैः। आपगाः—नद्यः। सर्वक्षयमहापूरप्लवैः—प्रलयकालिकजलप्लवैः। दुर्दिनानि—वर्षाच्छन्नानि दिनानि। कालरात्र्या—प्रलयनिशया। कुटजतरवः—वर्षाविकासिगिरिमल्लिकावृक्षाः, कृतान्तहासैः—यमराजस्य हसितैः (पर्यावर्त्तन्त इति एतावत्—पर्यन्तं सर्वत्रान्वेति) नैतावदेव, अग्रेऽपि पर्यावर्त्तन्त इति क्रियाया वचनविपरिणामेन 'पर्यावर्त्तत' इति—सम्बध्यते, तथा च शरीरेऽपि सत्त्वं धैर्यं कातरतया—अधीरतया (पर्यावर्त्तत) बलं सामर्थ्यं क्षामतया दुर्बलतया। कान्तिः—प्रभा। वैवर्ण्येन—प्रभाहीनतया। मतिः—बुद्धिः। मोहेन—अज्ञानेन। विषादेन—खेदेन। शुचा—शोकेन। अश्रुणा—रुदितेन। आलपनम्—वार्त्तालापः। असहतया—असहिष्णुतया। करणानि—इन्द्रियाणि। अपाटवेन—अक्षमतया। (अत्र पर्यावर्त्तन्त इत्येव) अरत्या—वैराग्येण (पर्यावर्त्तत इत्यन्वयः) दिवसैः—अनेकेषां दिनानां यात्रयेत्यर्थः। उल्लिख्यमानम्—प्रशान्तसकलव्यापारतया चित्रलिखितम्। अनवरतवाहिना—सततप्रवृत्तेन। अश्रुपूरप्रवाहेण—नयनवारिझरेण। अवभज्यमानम्—भज्यमानतटम्। सततैः—निरन्तरप्रवृत्तैः। निश्वासप्रभञ्जनैः—श्वासवायुभिः। उत्खन्यमानम्—दीर्घतां गभीरतां च प्राप्यमाणम्। मदनदुःखोत्कलिकासहस्रैः—बहुसङ्ख्यककामपीडातदुत्कण्ठाभिः। इतस्ततः—यत्र तत्र। जर्जरीक्रियमाणम्—विनश्यदवस्थम्। मकरध्वजशरासारैः—कामबाणवृष्टिभिः। वपुषा—शरीरेण। क्षीयमाणम्—नश्यत्। संकल्पलिखितेन—ध्यानोपनीतेन। निर्विशेषवृत्तिना—तदवस्थेन। कादम्बरीशरीरेण—कादम्बरीवपुषा। (चन्द्रापीडस्य ध्यानोपनीतं कादम्बरीशरीरं यथा कण्ठलग्नं तथैव जीवनमपि कण्ठगतमिति तात्पर्यम्) धाराधरक्लिन्नतरुतलम्—मेघसिक्तवृक्षाधोभागम्।

धनुष के टंकार में, मयूर की वाणी कालदूती के आलाप में, केतकी की गन्ध विष की सुगन्ध में, खद्योत प्रलयानल की चिनगारी में, भ्रमरों के दल कालपाश में, बगले प्रेतपति की पताका में, नदियाँ प्रलयकालिक जलप्लावन में, बरसात के दिन कालरात्रि में, और कुटजवृक्ष यमराज के हास में बदल गये। शरीर में वर्त्तमान सत्त्व कायरपन में, बल दुर्बलता में, कान्ति विवर्णता में, बुद्धि मोह में, धैर्य विषाद में, हास शोक में, आँखें अश्रु में, बोलना मौन में, अङ्ग अशक्ति में, इन्द्रियाँ अक्षमता में और अन्य अंश विरक्ति में बदल गये। दिन के बीतते जाने से चित्रलिखित समान सतत बहते रहने वाले अश्रुप्रवाह से भग्न, लम्बी साँसों द्वारा उत्पाटित, बराबर गिरते रहने वाले उत्कण्ठासहस्र से जर्जरीकृत, कामदेव के अनवरत बाणवर्षण से देह के साथ ही दुर्बल होते जाने वाले, स्वल्पावशेष,

---

१. धाराधरजलक्लिन्न।

शाद्वलम्, असेव्यतटलतावनम्, अनवरतरोधोजलप्रवेशकलुषितप्रान्तम्, अवशीर्यमाणोद्दण्डकुमुददलगहनम्, आमग्नकमलखण्डम्, उत्प्लवमानाश्यानकिञ्जल्कदलशकलम्, आजर्जरितकह्लारकुवलयम्, उद्भ्रान्तभ्रमदलिवलयम्, उड्डीनहंससार्थम्, अनवस्थानसारसारसितकरुणम्, अवशिष्टदलतलनिलीयमानोच्चकितचक्रवाकयुगलम्, उत्कम्पितकादम्बककदम्बकाश्रीयमाणोपकूलनड्वलम्, उत्कलविरुतकलापिबकबलाककलापाध्यासितोपान्तपादपम्, उपहतं प्रावृषान्यदिव, दृष्टपूर्वमप्यदृष्टपूर्वमिव, अदत्तदृष्टिसुखम्, अनुत्पादितहृदयाह्लादम्, अनुपजनितमानसप्रीति तदेवाच्छोदमुपाहितद्विगुणदुःखमाससाद।

आसाद्य चोपसपन्नेव सर्वाश्ववारानादिदेश। "कदाचिदसौ वैलक्ष्यादस्मानालोक्यापसर्पत्येव। तच्चतुर्ष्वपि पार्श्वेष्ववहिता भवन्तु भवन्तः" इति। आत्मनापि तुरगगत

आप्लावितोपान्तहरितशाद्वलम्–जलप्लावितसमीपवर्त्तितृणम्। असेव्यतटलतावनम्–जलाप्लुततया निवासायोग्यतीरवर्त्तिलताकाननम्। अनवरतं सततं रोधोजलस्य तटवारिणः प्रवेशेन कलुषितः अरम्यतामापादितः प्रान्तदेशो यस्य तादृशम्। अवशीर्यमाणैः पतद्भिः उद्दण्डैः उन्नतदण्डैः कुमुददलैः गहनम् भीषणम्। उत्प्लवमानम् जलेतरत् आश्यानम् किञ्जल्कस्य दलशकलम् खण्डं यत्र तादृशम्। आजर्जरितानि कह्लाराणि रक्तानि कुवलयानि नीलानि च कमलानि यत्र तादृशम्। उद्भ्रान्ताः अस्थिराः भ्रमन्तः अलयो भ्रमराः तेषां वलयं मण्डलं यत्र तादृशम्। उड्डीनाः पलाय्य गताः हंससार्थाः हंससमुदाया यतस्तादृशम्। अनवस्थानाः स्थातुमपारयन्तो ये सारसाः पक्षिभेदास्तेषाम् आरसितेन कूजितेन करुणम् दयोत्पादकम्। अवशिष्टाः ये तलदला अधःपत्रशालिनो वृक्षास्तेषु निलीयमानम् प्रच्छन्नभावेन स्थितम् उच्चकितम् भीतं चक्रवाकयुगलं यत्र तादृशम्। उत्कम्पितैः भयभीतैः कादम्बकदम्बकैः हंससार्थैः आश्रीयमाणः निवासस्थलतां नीयमानः उपकूलनड्वलः तटवर्त्तिनलबहुलदेशो यत्र तादृशम्। उत्कलविरुतैरुच्चविराविभिः कलापिभिः मयूरैः बकबलाककलापैश्च अध्यासितः निषेवितः उपान्तपादपः समीपतरुर्यत्र तादृशम्। प्रावृषा वर्षर्त्तुना उपहतं विनाशितशोभं सत् अन्यदिव भिन्नरूपतया प्रतीयमानम्। अदृष्टपूर्वम्–अनालोकितचरम्। अदत्तदृष्टिसुखम्–दृष्टिमनानन्दयत्। अनुत्पादितहृदयाह्लादम्–मनोऽमदयत्। अनुपजनितमानसप्रीति–हृदयमनानन्दयत्। तदेव–पुरा दृष्टादभिन्नम्। उपाहितद्विगुणदुःखम्–परिस्थितिभेदेन समधिकस्य कष्टस्य जनकम्। आससाद–प्राप।

आसाद्य–अच्छोदसमीपमुपेत्य। उपसर्पन्नेव–तत्र गच्छन्नेव। सर्वाश्ववारान्–सर्वान् अश्वारोहिणोऽनुचरान्। आदिदेश–आज्ञापयामास। असौ–वैशम्पायनः। वैलक्ष्यात्–लज्जावशात्। अपसर्पति–क्वचिदन्यत्र स्थाने पलायते। पार्श्वेषु–अच्छोदस्य भागेषु। अवहिताः–सावधानास्तिष्ठन्तु। आत्मनापि–

सङ्कल्पोपनीत स्वसदृश कादम्बरी शरीर के साथ कण्ठलग्न प्राणों को धारण करने वाले चन्द्रापीड अच्छोद सरोवर के पास पहुँचे, वहाँ अच्छोद सरोवर के वृक्षों का तल मेघ के जल से भींगा था, प्रान्त में नई हरी घासें उग गई थीं, तटवर्त्ती लतावन रहने के अयोग्य हो रहा था, तटजल के बढ़ जाने से सरोवर की प्रान्तभूमि कलुषित हो रही थी, कुमुद के दल अवशीर्ण, कमल जलमग्न, सूखे किञ्जल्क तथा पत्तों के टुकड़े पानी में तैर रहे थे, कमल तथा कुवलय जर्जर हो रहे थे, पगले भ्रमर घूम रहे थे, हंस के दल उड़ रहे थे, सारसगण उड़-उड़ कर बोल रहे थे, चक्रवाक के जोड़े चकित भाव से बचे हुए वृक्षपत्रों में छिपे हुए थे, कांपते हुए हंस तटवर्त्ती घासों में अवस्थित थे समीप के वृक्षों पर मयूर, बक, बलाका के समुदाय शब्द कर रहे थे, मानो बरसात ने अच्छोद सरोवर को दूसरे रूप में बदल दिया था, पूर्वदृष्ट होने पर भी अदृष्टपूर्व सा लगने वाला वह अच्छोद आँखों को आनन्दित नहीं करता था, हृदय को आह्लाद नहीं देता था, मन को खुश नहीं करता था और उसे देखकर दुःख दुगुना हो जाता था। वहाँ पहुँचते ही चन्द्रापीड ने सभी घुड़सवारों को कहा—'हो सकता है कि वैशम्पायन हमें देखकर लज्जा से भाग खड़ा होवे। इसलिये आपलोग चारो ओर सावधान रहें'। स्वयं घोड़े पर सवार रहकर ही भीतर से

---

१. अशेषतट। २. दलकमलम्।

एव खिन्नोऽप्यखिन्न इव विचिन्वल्लँतागहनानि तरुमूलानि शिलातलानि लसन्मण्डपांश्च समन्ताद् बभ्राम। भ्राम्यंश्च यदा न क्वचिदपि किंचिदवस्थानचिह्नमप्यद्राक्षीत्तदा चकार चेतसि। 'नियतमसौ पत्रलेखासकाशान्मदागमनमुपलभ्य प्रथममेवापक्रान्तो येनावस्थानचिह्नमात्रं कथमपि नोपलक्ष्यते। निरुद्धोद्देशं गतश्च क्वाप्यस्माभिरसावेवमन्विष्टोपि न दृष्टः। तत्कष्टतरमापतितम्। वैशम्पायनमदृष्ट्वास्मात्प्रदेशात्पदमपि गन्तुं पादावेव नोत्सहेते मे। मन्मथशरविक्षिप्ताश्च कादम्बरीदर्शनमात्रकावलम्बनाः क्षणमपि विलम्बमन्तरीकर्तुमक्षमाः क्षामतया मा यासिषुः प्राणाः। सर्वथा विनष्टोऽस्मि। न दृष्टा देवी कादम्बरी। नापि वैशम्पायनः।' इत्येवमुत्पन्ननिश्चयोऽप्यपरिच्छेद्यस्वभावत्वात् प्रत्याशायाः 'कदाचिदस्य वृत्तान्तस्याभिज्ञा महाश्वेतापि भवत्येव तत्तां तावत्पश्यामि ततो यथायुक्तं प्रतिपत्स्ये' इत्यारोप्य हृदये तदाश्रमस्यैव नातिदूरे निवेशिततुरगसैन्यः सैन्यसमायोगमपनीय सर्पनिर्मोकपरिलघुनी घनोज्झितज्योत्स्नाभिरामे परिधाय वाससी तथास्थितपर्या-

---

स्वयमपि। तुरगगतः-अश्वारूढः। खिन्नः-मार्गश्रान्तः। अखिन्न इव-अश्रान्तवत्। विचिन्वन्-मार्गमाणः। लतागहनानि-लतानिर्मितकुञ्जानि। लसन्मण्डपान्-सुन्दरान्मण्डपाकारान्गृहान्। भ्राम्यन्-वैशम्पायनान्वेषणाय चङ्क्रममाणः। क्वचिदपि-कुत्रापि। अवस्थानचिह्नम् कस्यापि सद्भावसूचकं किमपि वस्तु। अद्राक्षीत्-दृष्टवान्। चेतसि चकार-चिन्तयामास। नियतम्-निश्चयेन। असौ-वैशम्पायनः। पत्रलेखासकाशात्-पत्रलेखाद्वारा। उपलभ्य-विज्ञाय। प्रथमम्-मदागमनात् पूर्वम्। अपक्रान्तः-पलायितः। अवस्थानचिह्नमात्रम्-केवलं तदवस्थानसूचकं किमपि वस्तु। न उपलक्ष्यते-दृश्यते। निरुद्धोद्देशम्-विनाशितमार्गम्। एव-व्यर्थम्। अन्विष्टः-मार्गितः। कष्टतरम्-अतिदुःखम्। अस्मात् प्रदेशात्-इतः स्थानात्। पदम्-एकं चरणम्। उत्सहेते-सामर्थ्यं धारयतः। मन्मथशरविक्षिप्ताः-कामाहताः। कादम्बरीदर्शनमात्रकालम्बनाः-केवलं कादम्बरीं द्रष्टुमेव वर्त्तमानाः। अन्तरीकर्त्तुं-मध्ये स्थापयितुम्। क्षामतया-दौर्बल्येन। मा यासिषुः-न गच्छेयुः। विनष्टः-हतः। नापि वैशम्पायन इत्यस्य दृष्ट इति शेषः। उत्पन्ननिश्चयः-सञ्जातनिर्णयः। प्रत्याशायाः-आशायाः। अपरिच्छेद्यस्वभावत्वात्-अनिश्चितस्वरूपत्वात् (कदा कीदृश्याशा समुदेष्यतीति निश्चयस्याभावादित्यर्थः) अस्य वृत्तान्तस्य-वैशम्पायनवृत्तस्य। अभिज्ञा-ज्ञात्री। ताम्-महाश्वेताम्। पश्यामि-साक्षात्करोमि। यथायुक्तम्-यथोचितम्। प्रतिपत्स्ये-करिष्यामि। इति हृदये आरोप्य-एवं मनसि निश्चित्य। तदाश्रमस्य-महाश्वेताश्रमस्य। नातिदूरे-समीपे। निवेशिततुरगसैन्यः-स्थापितसेनासमुदायः। सैन्यसमायोगम्-सैनिकं वेषम्। अपनीय-अपसार्य। सर्पनिर्मोकः-अहित्वक् तद्वत् परिलघुनी-सूक्ष्मे। घनोज्झितज्योत्स्नाभिरामे-मेघमुक्तकौमुदीरुचिरे अतिस्वच्छे। वाससी द्वे वस्त्रे (परिधानीयमुत्तरीयञ्च) तथास्थितपर्याणाम्-अनुत्तारितपृष्ठा-

---

खिन्न होकर भी अखिन्न की तरह लताओं, वृक्ष के मूलों, शिलातलों तथा लतापण्डपों में वैशम्पायन को खोजने लगा। घूमते-घूमते जब कहीं पर कुछ भी किसी के रहने का चिह्न भी नहीं देखा तब उसने मनमें सोचा—निश्चय ही वैशम्पायन पत्रलेखा से हमारे आने का समाचार पाकर पहले ही भाग गया होगा जिससे उसके रहने का कोई चिह्न भी नहीं मिल रहा है। पता लगने के सूत्रों को भी बन्द करता गया है क्योंकि इतना ढूँढ़ने पर भी हमने उसे नहीं देखा। यह तो बड़ा कठिन हुआ, वैशम्पायन को देखे विना हमारे पैर यहाँ से एक पग भी चलने को तैयार नहीं हैं। कामबाणों में उन्मत्त, कादम्बरी-दर्शन मात्र पर अवलम्बित, एक क्षण भी विलम्ब की इच्छा नहीं रखने वाले यह हमारे प्राण कहीं निकल न जांय ? मैं सभी तरह नष्ट हो गया, न देवी कादम्बरी को देख सका न वैशम्पायन को। इस प्रकार निश्चय कर लेने पर भी—आशा का स्वभाव अनेक प्रकार का होता है, इसलिये चन्द्रापीड के मनमें यह बात आई कि कदाचित् इस वृत्तान्त को महाश्वेता भी जानती हो अतः पहले उससे मिल लूं बाद में जो ठीक होगा किया जायेगा, इस तरह हृदय में करके महाश्वेता के आश्रम के पास अपने अश्वसैन्य को ठहरा दिया; सैनिकवेश उतार दिये, और साँप के केंचुल की तरह हल्के तथा मेघमुक्त चन्द्रिका की

णमेवेन्द्रायुधमारुह्य महाश्वेताश्रममुपजगाम। तत्र च प्रविशन्नेवावतीर्य महाश्वेतावलोकन-कुतूहलात्पश्चादाकृष्टेनेन्द्रायुधपरिजनेनानुगम्यमानो विवेश। प्रविश्य च गुहाद्वार एव धवल-शिलातले समुपविष्टामधोमुखीमसह्यमन्युवेगोत्कम्पितसर्वावयवामनवरतनयनजलवर्षिणीमुच्च-ण्डवर्षवाताहतां लतामिवोद्बाष्पदीनदृष्ट्या कथंकथमपि तरलिकया विधृतशरीरां महाश्वेताम-पश्यत्। दृष्ट्वा च तां तादृशीमस्योदपादि हृदये। 'मा नाम देव्याः कादम्बर्या एव किमप्य-निष्टमुत्पन्नं भवेत्। येनेयमीदृश्यवस्था हर्षहेतावपि मदागमनेनुभूयते महाश्वेतया।' इत्याश-ङ्काभिन्नहृदयोयमुड्डीनैरेव प्राणैः पदे पदे स्खलन्निव पतन्निव मुह्यन्निवोपसृत्योपविश्य च तस्यैव शिलातलस्यैकदेशे प्रोद्बाष्पविषण्णवदनः किमेतदिति तरलिकामपृच्छत्। सा तु तदवस्थाया अपि महाश्वेताया एव मुखमवलोकितवती।

अथानुपसंहृतमन्युवेगापि गद्गदिकावगृह्यमाणकण्ठा महाश्वेतैव प्रत्यवादीत्। "महाभाग किमियमावेदयति वराकी। यया दुःखाभिघातैककठिनहृदयया पुनरप्यदुःखश्रवणा-

---

स्तरणम्। महाश्वेताश्रमम्—महाश्वेताध्युषितं देवायतनम्। उपजगाम—गतः। तत्र—आश्रमे। अवतीर्य—अश्वादवरुह्य। महाश्वेतालोकनकुतूहलात्—महाश्वेतादर्शनौत्सुक्यात्। आकृष्टेन—आश्रमं गन्तुमुदितेच्छेन। इन्द्रायुधपरिजनेन—इन्द्रयुधस्य परिचर्यायामधिकृतेन भृत्यवर्गेण। अनुगम्यमानः—अनुस्रियमाणः। विवेश—आश्रमं प्रविष्टः। गुहाद्वारे—गह्वरमुखे। धवलशिलातले—स्वच्छपाषाणखण्डे। समुपविष्टाम्—आसीनाम्। अधोमुखीम्—नतवदनाम्। असह्यमन्युवेगोत्कम्पितसर्वावयवाम्—दुःसहदुःखवेगेन कम्पमाननिखिलाङ्गीम्। अनवरतनयनजलवर्षिणीम्—सततं रुदतीम्। उच्चण्डवर्षवाताहताम्—प्रचण्डझञ्झावातकम्पिताम्। उद्बाष्पदीनदृष्ट्या—अश्रुपूर्णदीननेत्रया। कथंकथमपि—महताऽऽयासेन। विधृतशरीराम्—अवलम्बितगात्रीम्। तादृशीम्—तदवस्थाम्। अस्य चन्द्रापीडस्य। हृदये उदपादि—मनसि जातम्। अनिष्टम्—मरणादिशोच्यम्। हर्षहेतावपि—हर्षस्य कारणतां गते। मदागमने—ममागमे। अनुभूयते—भुज्यते। इत्याशङ्काभिन्नहृदयः—अनयाऽऽशङ्कया भिन्नमर्मा। उड्डीनैः—पलायितैः। स्खलन्—पातोन्मुखः। पतन्—भूमिमाश्रयन्। मुह्यन्—मूर्च्छामृच्छन्। उपसृत्य—समीपं गत्वा। तस्य—महाश्वेताऽध्युषितस्य। एकदेशे—एकत्रभागे। प्रोद्बाष्पविषण्णवदनः—अश्रुपूर्णदीनवदनः। सा—तरलिका। तदवस्थायाः—तामवस्थां गतायाः। मुखमवलोकितवती—साभिप्रायया दृष्ट्याऽपश्यत्, स्वयं किमप्यनभिधाय चन्द्रापीडाय किमपि प्रसङ्गानुकूलं कथयितुं तरलिका महाश्वेतामुखमपश्यदित्यर्थः। अनुपसंहृतमन्युवेगा—असमाप्तदुःखरया। गद्गदिकावगृह्यमाणकण्ठा—गद्गदस्वरयुतकण्ठा। प्रत्यवादीत्—उवाच। आवेदयति—कथयतु। वराकी—दीना। दुःखाभिघातैककठिनहृदयया—सततदुःखप्रहारकठोरीभूतमनसा। अदुःखश्रवणार्हे—दुःखश्रवणस्या-

---

तरह स्वच्छ कपड़े पहन लिये। तथा स्थित तैयार इन्द्रायुध पर चढ़कर वह महाश्वेता के आश्रम में गया। वहाँ पहुँचते ही चन्द्रापीड घोड़े से उतर गया, महाश्वेता को देखने की इच्छा से आकृष्ट इन्द्रायुध के सेवक उसके पीछे लग गये और वह महाश्वेता के आश्रम में पैठ गया। आश्रम में पैठते ही गुहा के द्वार पर उजली प्रस्तरशिला पर बैठी हुई, अधोमुखी, असह्यदुःखवेग से कम्पितशरीरा, भयङ्कर झञ्झावात से कम्पमान लता की तरह लगने वाली, आँखों में आँसूभर के तरलिका द्वारा किसी तरह अवलम्बितशरीरा महाश्वेता को देखा, उसको उस स्थिति में देखकर चन्द्रापीड के मन में हुआ—कहीं देवी कादम्बरी को ही तो कुछ नहीं हो गया है जिससे कि यह महाश्वेता हर्षहेतु हमारे आगमन में भी इस दशा को भोग रही है। इस आशङ्का से चन्द्रापीड का हृदय विदीर्ण हो गया, वह उड़ते हुए प्राणों से गिरते-पड़ते महाश्वेता के पास जाकर आँखों में आँसू लिये उसी शिला के एक भाग में बैठकर यह क्या बात है इस प्रकार तरलिका से पूछा, तरलिका उस अवस्था में भी महाश्वेता का ही मुँह देखने लगी।

इसके उत्तर में दुःख के वेग को रोकने में समर्थ तथा गद्गद कण्ठवाली महाश्वेता ने ही कहा—महाभाग, यह बेचारी क्या कहेगी? जिस दुःखाभिघात से कठिनहृदया महाश्वेता ने दुःख सुनने में असमर्थ होने पर भी आपको अपना दुःख सुनाया था, वही अभागी, जीवितलोभिनी, निर्लज्जा, तथा निर्दया मैं इस दुःश्रव दुःख को भी

हेऽपि दुःखमात्मीयं श्रावितं सैवाहं मन्दभाग्या महाभाग जीवितव्यसनिनी निर्लज्जा निर्घृणा च दुःश्रवणमपि श्रावयामि दुःखमिदम्। श्रूयताम्। केयूरकाद्भवद्गमनमाकर्ण्य विदीर्णमानसा न मया चित्ररथस्य मनोरथः पूरितो न मदिरायाः प्रार्थना कृतार्थिता नात्मनः समीहितं संपादितं न गृहाभ्यागतस्य चन्द्रापीडस्य प्रियमनुष्ठितं न चापि हृदयवल्लभसमागमनिर्वृता प्रियसखी कादम्बरी वीक्षितेत्युत्पन्नानेकगुणवैराग्या गाढबन्धान्कादम्बरीस्नेहपाशानपि छित्त्वा पुनः कष्टतरतपश्चरणायात्रैवायाता यावदत्र महाभागस्यैव तुल्याकृतिमुन्मुक्तमिवान्तःकरणेन शून्यशरीरमुत्तरलमुखमुत्प्लुताबद्धलक्ष्यशून्यया दृष्ट्या प्रनष्टमिव किमपीतस्ततो विलोकयन्तं ब्राह्मणयुवानमपश्यम्। स तु मामुपसृत्यानन्यदृष्टिः, अदृष्टपूर्वोऽपि प्रत्यभिजानन्निव, असंस्तुतोऽपि चिरपरिचित इव, असंभावितोऽप्युपारूढप्रौढप्रणय इव, अस्निग्धोऽपि परवानिव प्रेम्णा, शून्योऽपि किमप्यनुस्मरन्निव, दुःखिताकारोऽपि सुखायमान इव, तूष्णीमपि स्थितः प्रार्थयमान इव, अपृष्टोऽप्यावेदयन्निवात्मीयामेवावस्थाम्, अभिनन्दन्निवानुशो-

---

पात्रे। आत्मीयम्-स्वीयम्। मन्दभाग्या-अभाग्या। जीवितव्यसनिनी=प्राणधारणमात्रपरायणा। निर्घृणा-दयारहिता। दुःश्रवणम्-कष्टं श्रोतव्यम्। विदीर्णमानसा-भिन्नहृदया। चित्ररथस्य-कादम्बरीपितुर्गन्धर्वभेदस्य। मनोरथः-कादम्बरीविवाहदर्शनरूपः। पूरितः-सफलीकृतः। मदिरायाः-कादम्बरीजनन्याः। प्रार्थना-त्वं विवाहं कुरु, तथा सत्येव मम पुत्री कादम्बरी विवाहं करिष्यति, अतः तव विवाहे जाते ममापि पुत्रीविवाहदर्शनस्य मनोरथः फलिष्यति, अतो मदनुरोधेनापि त्वया कर्त्तव्यो विवाह एतादृशी निवेदना। कृतार्थिता सफलिता। आत्मनः-स्वस्य। समीहितम्-इष्टम्। गृहाभ्यागतस्य-भवनेऽतिथिभावेन समायातस्य। अनुष्ठितम्-कृतम्। हृदयवल्लभसमागमनिर्वृता-प्राणप्रियमिलनेन सुखिता। वीक्षिता-दृष्टा। उत्पन्नानेकगुणवैराग्या-बहुगुणीभूतविरक्तिः। गाढबन्धान्-दृढान्। कादम्बरीस्नेहपाशान्-कादम्बर्याः प्रणयरूपाणि बन्धनानि। कष्टतरतपश्चरणाय-अतिकठोरतपस्यायै। अत्रैव आयाता-इहैव आगता। यावत्-तदा। महाभागस्य-भवतः। तुल्याकृतिम्-समानरूपम्। अन्तःकरणेन उन्मुक्तम्-शून्यहृदयम्। शून्यशरीरम्-शिथिलतनुम्। उत्तरलमुखम्-दीनतया चञ्चलवदनम्। उत्प्लुताबद्धलक्ष्यशून्यया-उपरिसञ्चरन्निरुद्देश्यया। प्रनष्टम्-नष्टम् (अलभ्यमानम्) इतस्ततः-यत्र तत्र। विलोकयन्तम्-मार्गयन्तम्। ब्राह्मणयुवानम्-युवावस्थं ब्राह्मणम्। सः-ब्राह्मणयुवा। मामुपसृत्य-मत्समीपमागत्य। अनन्यदृष्टिः-मयि केवलायां नयने स्थापयन्। अदृष्टपूर्वः-मया कदाचिदपि अदृष्टचरः। प्रत्यभिजानन्-मां परिचिन्वन्। असंस्तुतः-अपरिचितः। असंभावितः-मयाऽभ्युत्थानादिनाऽसत्कृतः। उपारूढप्रौढप्रणयः-संजातगाढप्रीतिः। अस्निग्धः-असंजातप्रेमा। प्रेम्णा-स्नेहेन। परवान्-अधीनतां गतः। शून्यः-भावरहितमनाः। अनुस्मरन्-ध्यायन्। दुःखिताकारः-खिन्नवत्प्रतीयमानः। सुखायमानः-

---

सुनाती है, आप सुनें। केयूरक के मुख से आपके जाने की बात सुनकर मेरा हृदय विदीर्ण हो गया, मेरे मन में हुआ कि न मैंने चित्ररथ का मनोरथ पूरा किया, न मदिरा की प्रार्थना सुनी, न अपना अभीष्ट सिद्ध किया, न घर आये हुए चन्द्रापीड का प्रिय सम्पादित किया, न प्रियसखी कादम्बरी के दर्शन किये, इस प्रकार मेरे हृदय का वैराग्य अनेक गुण बढ़ गया, मैं दृढबन्ध कादम्बरी के स्नेहपाश को तोड़कर कठोरतर तपस्या करने के विचार से यहीं चली आई। यहाँ आने पर मैंने आप ही के समान आकृति वाले, अन्तःकरणमुक्त, शून्यशरीर, चञ्चलमुख, लक्ष्यशून्य दृष्टि से कुछ खोई सी चीज को ढूँढ़ते से इधर-उधर देखते हुए एक ब्राह्मणयुवक को देखा। मेरे पास आकर वह बड़ी देरतक—मेरी ओर देखता रहा—उसकी दृष्टि स्थिर थी, उसे मैंने कभी नहीं देखा था परन्तु वह ऐसा लगता था जैसे मुझे पहचान रहा हो, अपरिचित होकर भी वह चिरपरिचित सा लग रहा था, अगवानी के नहीं किये जाने पर भी उत्पन्न प्रेम सा लगता था, प्रेमी नहीं होने पर भी वह प्रेम-पराधीन सा प्रतीत हो रहा था, शून्यहृदय होकर भी वह कुछ याद सा कर रहा था, आकार से दुःखी दीखकर भी वह सुखी सा लग रहा था, चुप रह कर भी वह कुछ प्रार्थना करता हुआ सा प्रतीत हो रहा था, बिना पूछे ही वह अपनी अवस्था का

चन्निव हृष्यन्निव विषीदन्निव बिभ्यदिवाभिभवन्निव हृत इवाकाङ्क्षन्निवानुस्मरन्निव विस्मृतमनिमेषेण निश्चलस्तब्धपक्ष्मणान्तर्बाष्पपूरार्द्रेण कर्णान्तचुम्बिना विकसितेनेवा- मुकुलिततारकेण चक्षुषा मत्त इवाविष्ट इव वियुक्त इव पिबन्निवाकर्षन्निवान्तर्विशन्निव च सुचिरमालोक्याब्रवीत्। 'वरतनु, सर्व एव हि जगति जन्मनो वयस आकृतेर्वा सदृश- माचरन्न वचनीयतामेति। तव पुनरेकान्तवामप्रकृतेर्विधेरिव विसदृशानुष्ठाने कोयं प्रयत्नः। यदियमक्लिष्टमालतीकुसुमसुकुमारा मालेव कण्ठप्रणयैकयोग्या तनुरनुचितेनामुना कष्टतरतपश्चरणपरिक्लेशेन ग्लानिमुपनीयते। रूपवयसोरनुरूपेण सुमनोहारिणी लतेव रसाश्रयिणा फलेन किमर्थं न संयोज्यते। जातस्य हि रूपगुणविहीनस्यापि जन्मोपनतानि जीवलोकसुखान्यनुभूय शोभते परत्र संबन्धी तपश्चरणपरिक्लेशः। किं पुनराकृतिमतो जनस्य। तद्दुःखयति मामस्यास्ते स्वभावसरसायास्तनोर्मृणालिन्या इव तुहिनपातस्तपः- परिक्लेशः। यदि च त्वादृशी जीवलोकसुखेभ्यः पराङ्मुखी तपसा क्लेशयत्यात्मानं तदा वृथा वहति धनुरधिज्यं कुसुमकार्मुकः। निष्कारणमुदयति चन्द्रमाः। वृथा वसन्तमासाभ्यागमः।

प्रसङ्गः। प्रार्थयमानः–किमपि याचमानः। आवेदयन्–कथयन्। अभिनन्दन्–प्रशंसमानः। विस्मृतनि- मेषेण–पक्ष्मपातरहितेन। निश्चलस्तब्धपक्ष्मणा स्थिरनेत्ररोम्णा। अन्तर्बाष्पपूरार्द्रेण–अन्तर्गताश्रुसि- क्तेन। कर्णान्तचुम्बिना–आकर्णविस्तृतेन। मत्तः–उन्मत्तः। आविष्टः भूतावेशवान्। अन्तर्विशन्–हृदये निविशमानः। वरतनु–सुन्दरि, जन्मनः–उत्पत्तेः। वचनीयताम्–निन्दाम्। एकान्तवामप्रकृतेः–विपरी- तस्वभावस्य। विसदृशानुष्ठाने–विपरीताचरणे। अक्लिष्टमालतीकुसुमसुकुमारा–अनुपहतमालतीपुष्प- मृद्वी। कण्ठप्रणयैकयोग्या–कण्ठाश्लेषोपयुक्ता। तनुः–शरीरम्। अनुचितेन–अयोग्येन। कष्टतरतपश्च- रणपरिक्लेशेन–कठोरतपस्याद्वारा। ग्लानिमुपनीयते–क्लिश्यते। रूपवयसोः–सौन्दर्यस्य यौवनस्य च। अनुरूपेण–योग्येन। सुमनोहारिणी–अतिसुन्दरी पुष्पैर्मनोज्ञा च। रसाश्रयिणा–सरसेन। फलेन– सुखोपभोगेन। यथा सुपुष्पा लता सरसेन फलेन युज्यते तथा त्वमपि रसवत्सुखोपभोगेन किं न युज्यसे इत्यर्थः। जातस्य–गृहीतजन्मनः। जन्मोपनतानि–जन्मप्राप्तानि। परत्रसंबन्धी–पारलौकिकः। तपश्चर- णपरिक्लेशः–तपस्याकष्टम्। आकृतिमतः–सुन्दरस्य। (रूपगुणहीनोऽपि सांसारिकसुखान्यनुभूयैव तपसि प्रवर्त्तते तथा किमु वक्तव्यं कुरूपस्य तथाकरण इति भावः)। स्वभावसरसायाः–प्रकृत्यैव रसवत्याः। यथा स्वभावसरसाया मृणाल्या उपरि जायमानस्तुषारपातः क्लेशाय कल्पते तथैव स्वभावसरसायास्तव तपस्याक्लेशो मम क्लेशाय जायत इत्यर्थः। पराङ्मुखी–विमुखी। क्लेशयति–खेदयति। अधिज्यम्- आरोपितप्रत्यञ्चम्। कुसुमकार्मुकः–कामदेवः। निष्कारणम्–वृथा। वसन्तमासाभ्यागमः–वसन्तागमः।

निवेदन करता हुआ सा मालूम पड़ रहा था। वह अभिनन्दन करता हुआ सा, सोचता हुआ सा, विषण्ण सा, डरा हुआ सा, पराभूत करता सा, लुटा हुआ सा, चाहता हुआ सा और याद करता हुआ सा लग रहा था। इस प्रकार निर्निमेष, निश्चल, अश्रुपूर्ण, कान तक विस्तृत, विकसित और मुकुलित नेत्रों से पागल, वियुक्त, आदरयुक्त, तथा हृदय में प्रवेश करता हुआ सा उसने मुझे देखकर कहा—'सुन्दरि, संसार के सभी लोगों की प्रशंसा तभी होती है जब वह अपने जन्म, वयस और आकृति के अनुकूल आचरण करते हैं। तुम अत्यन्त वामप्रकृति ब्रह्मा की तरह इस अननुरूप आचरण में क्यों प्रयत्नशील हो। तुम्हारी मुलायम फूलों की माला सदृश कण्ठ से लगाने के ही लिये बनी यह देह अनुचित इस कठोर तपस्या में क्यों लगी हुई है? जैसे मनोहारिणी लता में रसवाले फल लगते हैं उसी तरह तुम अपनी देह को रूप तथा वयस के अनुकूल फल से क्यों नहीं जुड़ने देती हो? जन्म लेकर रूप–गुणहीन जन भी जन्मोपनत जीवलोक के सुखों का भोग करके परलोकसंबंधी तपस्या का क्लेश उठाते हैं, तुम्हारे समान सुरूप जन की तो बात ही क्या? तुम इस सुकुमार देह से तप करती हो यह मुझे उसी तरह दुःख देता है जैसे मृणालिनी पर का हिमपात। यदि तुम्हारे समान सुन्दरी सांसारिक सुखों से विमुख होकर तपस्या से अपने को कष्ट देती है तो कन्दर्प चढ़े हुए धनुष को व्यर्थ धारण करता है, चन्द्रमा व्यर्थ

निष्फलानि कुमुदकुवलयकह्लारकमलाकरविकसितानि। निष्प्रयोजना जलदसमयारम्भाडम्बराः। निरर्थकान्युपवनानि। किं ज्योत्स्नया। किं वा लीलासरित्पुलिनैर्मलयानिलेन वा' इति।

अहं तु देवस्य पुण्डरीकस्यैव वृत्तान्तादपेतकौतुका सर्वथा तं वदन्तमपि कस्त्वं कुतो वा समायातः किमर्थं वा मामेवमभिदधासीत्यपृष्ट्वैवान्यतोगच्छम्। गत्वा च देवार्चनकुसुमान्याचिन्वती तरलिकामाहूयाब्रवम्। 'तरलिके योयं युवा कोपि ब्राह्मणाकृतिरस्यावलोकयतो वदतश्चान्यादृश एवाभिप्रायो मयोपलक्षितः। तन्निवार्यतामयं यथा पुनरत्र नागच्छति। अथ निवारितोप्यागमिष्यति तदावश्यमेवास्यामद्रकं भविष्यति' इति। स तु निवार्यमाणोपि दुर्निवारवृत्तेर्मदनहतकस्य दोषैर्भवितव्यतया वानर्थस्य नात्याक्षीदेवानुबन्धम्। अतीतेषु केषुचिद्दिवसेष्वेकदा गाढायां यामिन्यामुद्गिरत्स्विव भरेणोद्दीपितस्मरानलं ज्योत्स्नापूरमिन्दुमयूखेषु, लब्धनिद्रायां तरलिकायाम्, अप्राप्तसुखा संतापान्निर्गत्यास्मिन्नेव शिलातले विमुक्ताङ्गी कह्लारसुरभिणा मन्दमन्देनाच्छोदानिलेन वीज्यमाना, वर्णसुधाकूर्चकैरिव करैर्धवलितदशाशामुखे चन्द्रमसि निहितदृष्टिः, 'अपि

निष्प्रयोजनाः-फलशून्याः। जलदसमयारम्भाडम्बराः-वर्षाप्रारम्भाडम्बराः। ज्योत्स्नया किम्-न किमपि फलं लभ्यम्? लीलासरित्पुलिनैः-क्रीडासरित्तटैः। नास्ति किमप्येषां फलम्, त्वादृशीं सुन्दरीं समाक्रष्टुमशक्तेरिति भावः।

वृत्तान्तात्-पूर्ववृत्तात् आकस्मिकमरणरूपात्। अपेतकौतुका-अपगतसर्वविषयोत्कण्ठा। अभिदधासि-कथयसि। अन्यतः-अन्यस्यां दिशि। देवार्चनकुसुमानि-पूजापुष्पाणि। आचिन्वती-आहरन्ती। अब्रवम्-उक्तवती। ब्राह्मणाकृतिः-आकृत्या ब्राह्मणवत्प्रतीयमानः। अवलोकयतः-पश्यतः। अन्यादृशः भिन्नप्रकारकः, दुष्टः। अभिप्रायः-आशयः। उपलक्षितः-तर्कितः। निवार्यताम्-निषिध्यताम्। अभद्रकम्-अहितम्। निवार्यमाणः-तरलिकया निषिध्यमानः, दुर्निवारवृत्तेः अवारणीयप्रवृत्तेः। मदनहतकस्य-कामदेवस्य। भवितव्यतया-भावितया। न अत्याक्षीत् न त्यक्तवान्। अनुबन्धम् ममानुवृत्तिम्। गाढायां यामिन्याम्-रात्रौ मध्यगतायाम्। इन्दुमयूखेषु-चन्द्रकिरणेषु। उद्दीपितस्मरानलम्-समेधितकामम्। ज्योत्स्नापूरम्-कौमुदीराशिम्। उद्गिरत्सु वमत्सु। लब्धनिद्रायाम्-सुप्तायाम्। अप्राप्तसुखा-अनधिगतशान्तिः। सन्तापात्-मानसिकपरितापवशात्। निर्गत्य-आश्रमाद्बहिरागत्य। शिलातले विमुक्ताङ्गी-शिलातले पतिता सती। कह्लारसुरभिणा-कमलामोदपूर्णेन। मन्दमन्देन मन्दसञ्चारिणा। अच्छोदानिलेन-अच्छोदसरोवरवायुना। वीज्यमाना-वायुसुखप्रापणद्वारा सेव्यमाना। वर्णसुधाकूर्चकैः-श्वेतवर्णद्वारा

उगता है, वसन्तमास व्यर्थ आते हैं। कुमुद, कुवलय, कमलाकर व्यर्थ खिलते हैं, बरसात का यह सारा आडम्बर व्यर्थ ही होता है। यह उपवन व्यर्थ हैं, चाँदनी बेकार है और लीलासरोवर के तट तथा मलयानिल भी व्यर्थ है'।

मेरे तो सारे कौतुक पुण्डरीक के वृत्तान्त से ही दूर हो गये थे, मैं तो उस प्रकार कहते हुए उस ब्राह्मण से— तुम कौन हो, क्यों यहाँ आये हो? क्यों मुझसे इस प्रकार कह रहे हो? इत्यादि बातें बिना पूछे ही दूसरी ओर चली गई। दूसरी ओर जाकर मैंने देवपूजा के फूल चुनती हुई तरलिका को पास बुलाकर कहा—तरलिके जो ब्राह्मण-समानाकृति यह युवक आया था इसके देखने तथा बोलने का अभिप्राय मुझे कुछ दूसरी तरह का मालूम पड़ा है, अतः उसे मना कर दो कि वह पुनः यहाँ नहीं आये। अगर मना करने पर भी वह फिर आवेगा तो अवश्य उसका अकल्याण होगा। उस ब्राह्मण युवक ने दुर्वार अभागे कामदेव के दोषों से अथवा भवितव्यता से आना बन्द नहीं किया। कुछ दिन बीतने पर एक समय मध्यरात्रि में, जब कि कामानल-सदृश चन्द्रकिरणों की वर्षा हो रही थी, तरलिका सो रही थी, मैं सन्ताप से बेचैन होकर शिलातल पर पड़ी हुई थी, कमल-सुगन्ध मन्दमन्द अच्छोद-वायु मुझे हवा कर रही थी, रंग की कूची के समान किरणों से सारी दिशाओं को

नामाथमेभिरमृतवर्षिभिरखिलजगदाह्लादकारिभिः करैश्चन्द्रमास्तमपि हृदयवल्लभं मे वर्षेत्, इत्याशंसाप्रसङ्गेन देवस्य सुगृहीतनाम्नः पुण्डरीकस्य स्मरन्ती, कथमभाग्यैर्मे मन्दपुण्यायास्तादृशस्यापि दिव्याकृतेर्महापुरुषस्य तस्य नभसोवतीर्णस्य भाषितमलीकमुपजातम्, जातानुकम्पेन वा यथाकथंचिज्जीवितुमित्येव समाश्वासिता जीवितप्रिया तपस्विन्यपि येन पुनर्दर्शनमेव तेन मम न दत्तम्, किं करोतु देवः सुगृहीतनामा पुण्डरीको यः परासुरेवोत्क्षिप्य नीतः, कपिञ्जलस्तु जीवन्गतः कथमियता कालेन तेनापि निष्करुणेन वार्तापि मे न संपादिता' इत्येतानि चान्यानि चालजालानि दुर्जीवितगृहीता चिन्तयन्ती जाग्रत्येवातिष्ठत्।

अथ निभृतपदसंचरणम्, आ चरणादुत्कण्टकम्, अनवरतपतितमदनशरशल्यनिकरनिचितमिव शरीरमुद्वहन्तम्, उद्भिकासिकेतकरजःपटलधवलं प्रथमतरमेव भस्मसात्कृतमिव मदनहुतभुजा भुजाग्रेण कुण्डलीकृतमृणालमपर्युषितशासनवलयमिवावश्य-

---

रञ्जकैः। करैः-किरणैः। धवलितदशाशासुखे-दशापि दिशः श्वेतिमानं लम्भयति। निहितदृष्टिः-स्थापितनेत्रा। अमृतवर्षिभिः-सुधावृष्टिकरैः। अखिलजगदाह्लादकारिभिः-समस्तजगदानन्दनैः। हृदयवल्लभम्-प्राणप्रियम्। वर्षेत्-सिञ्चेत्। आशंसाप्रसङ्गेन-आशाद्वारा। सुगृहीतनाम्नः-पुण्यस्मरणस्य। मन्दपुण्यायाः-पापायाः। दिव्याकृतेः-अलौकिकस्वरूपस्य। नभसोऽवतीर्णस्य आकाशाद् भूमिमागतस्य। भाषितम्-कथनम्। अलीकम्-मिथ्या। उपजातम्-अजायत। जातानुकम्पेन-संजातकृपेण। यथा कथंचित्-येन केन प्रकारेण। जीवितुम्-प्राणान् धारयितुम्। जीवितप्रिया-प्रियजीवना। परासुः-निर्गतप्राणः। उत्क्षिप्य-उत्थाप्य। जीवन्-प्राणान्धारयन्। (पुण्डरीको मृतः सन्नीत इति स यदि मम कृते न चिन्तयति तदा तस्य तावान्दोषो न दातुं शक्यते, कपिञ्जलस्तु जीवन् गतः, स किमर्थं मां न स्मरतीति खेदहेतुरिति विवक्षितोऽर्थः) इयता कालेन-एतावता समयेन। निष्करुणेन-निर्दयेन। संपादिता-दत्ता। आलजालानि-अनल्पानि। दुर्जीवितगृहीता-कष्टमयजीवना। जाग्रती-अनिद्रिता।

निभृतपदसञ्चरणम्-मन्दपदन्यासम्। आ चरणात् पादं व्याप्य। उत्कण्टकम्-सरोमाञ्चम्। अनवरतपतितैः-सर्वतः पातिभिः मदनशरशल्यनिकरैः कामवाणैः निचितम्-व्याप्तम्। उद्वहन्तम्-धारयन्तम् (रोमाञ्चानां कामबाणरूपता) उद्भिकासिकेतकरजःपटलधवलम्-विकसितकेतकीपुष्परागस्वच्छम्। प्रथमतरम्-पूर्वतः। भस्मसात्कृतम्-दग्धम्। स्वभावशुक्लतनोस्तस्य कामेन प्रथमत एव भस्मीकृतत्वमुत्प्रेक्ष्यते। मदनहुतभुजा-कामाग्निना। भुजाग्रेण-कराग्रभागेन। कुण्डलीकृतमृणालम्-गोलाकारं

उज्ज्वल बनाते हुए चन्द्रमा पर नजर डाले मैं सोच रही थी कि कदाचित् अमृतवर्षी तथा जगत् को आनन्दित करने वाली अपनी किरणों से यह चन्द्रमा मेरे हृदयेश को सींचता, इस तरह की आशा के प्रसङ्ग से मैं सुगृहीत नामा पुण्डरीक को याद कर रही थी, मेरे मन में हो रहा था कि मेरे अभाग्य से दिव्याकृति तथा आकाश से अवतीर्ण उस महापुरुष के वचन भी झूठे हो गये, अथवा दयावश मुझे किसी तरह जिलाने का आश्वासन भर उसने दे दिया, फिर तो उसने मुझे दर्शन नहीं दिये, सुगृहीतनामा पुण्डरीक बेचारा क्या करे वह तो मर कर गया है, कपिञ्जल तो जीता ही गया है, इतने दिनों में उस निर्दय ने भी कुछ खबर नहीं ली, इस तरह की बहुत सारी बातें सोचती हुई मैं जागती ही थी।

इसके बाद मन्दसञ्चारी, समस्त शरीर में रोमाञ्चित, अनवरत गिरते हुए मदन-बाणों से व्याप्तशरीर सुगन्धपूर्ण केतक-पराग से धवल होने के कारण कन्दर्प द्वारा पहले ही भस्म किया गया सा लगने वाला वह ब्राह्मण युवक दीख पड़ा, जो हाथ में कुण्डलाकार मृणाल-वलय लिये हुए ऐसा लगता था मानो अव्याहताज्ञ कन्दर्प

---

१. जीवन्मृतः।

मरणाय सकलजगदप्रतिहतशासनेन कुसुमधन्वना विसर्जितं दधानम्, उद्भूतसाध्वसोत्कम्पतरलितया केतकीगर्भसूच्या कापरं गम्यते हतोसि मयेति मन्मथप्रथमसहायस्य चन्द्रमसः कलयेव कर्णान्तलग्नया तर्ज्यमानम्, उद्वेगावर्जितेन नयनजलस्रोतसात्मने जलमिव प्रयच्छन्तम्, आत्मेच्छयैव मत्करग्रहणाय निर्वर्तितस्नानमिव स्वेदाम्भसा, न युक्तमेव ते परहृदयमविज्ञायोपगन्तुमिति पदे पदे निवार्यमाणमिव गुरुणोरुस्तम्भेन, दूरत एव मदालिङ्गनालीकाशया प्रसारितभुजयुगलमुत्कलिकासहस्रविषमं रागसागरमिव प्रतरन्तम्, अनवरतप्रवृत्तैराकृष्यमाणमिव पुरस्ताद्दीर्घैर्निश्वासमरुद्भिः, उह्यमानमिव दिङ्मुखप्लाविना ज्योत्स्नापूरेण, रणरणकशून्यम्, उच्छुष्काननम्, प्रोन्मुक्तं सत्त्वेन, प्रतिपन्नं कृपणतया, अवधीरितं धैर्येण, संगृहीतं तरलतया, विसर्जितं लज्जया, अधिगतं धार्ष्ट्येन, दूरीकृतं परलोकभीत्या, विमुक्तं युक्तायुक्तविवेकेन, संकल्पजन्मन एव केवलस्य वशे स्थितम्, आविष्टमिव मत्तमिवोन्मादादापतन्तम्, दूरतोपि दिवसनिर्विशेषेण चन्द्रातपेन विभाव्यमानं तमेव युवानमद्राक्षम्।

कमलनालम्। अवश्यमरणाय–निश्चितप्राणत्यागाय। अपर्थुपितशासनवलयम्–अलङ्घिताज्ञास्वरूपम्। सकलजगदप्रतिहतशासनेन–समस्तेऽपि भुवनेऽनुल्लङ्घ्यादेशेन। कुसुमधन्वना–कामदेवेन। (वैशम्पायनकरे स्थितस्य मण्डलाकारमृणालस्य अत्र कामादेशरूपता वर्णिता) उद्भूतसाध्वसोत्कम्पतरलितया–उत्पाद्यमानभयजनितकम्पप्रचलया। कर्णान्तलग्नया–कर्णाभरणतां नीतया। केतकीगर्भसूच्या–सूच्याकाराग्रकेतकीपुष्पेण। मन्मथप्रथमसहायस्य–कामदेवस्य सहायकेषु मुख्यस्य। कलया–षोडशभागेन। तर्ज्यमानम्–भयं प्राप्यमाणम्। (कर्णे कृतं केतकपुष्पमत्र वक्रतया चन्द्रकलात्वेनोत्प्रेक्षितम्) उद्वेगावर्जितेन–मनोदुःखोपनीतेन। नयनजलस्रोतसा–अश्रुप्रवाहेण। आत्मने–स्वस्मै। प्रयच्छन्तम्–ददतम्। स्वेदाम्भसा–स्वेदजलेन। मत्करग्रहणाय–मम पाणिं ग्रहीतुम्। निर्वर्तितस्नानम्–विहितस्नानम्। (पाणिग्रहणे क्रियमाणे ग्रहीतुः स्नानस्यौचित्येनात्रेयमुत्प्रेक्षा) न युक्तम्–नोचितम्। परहृदयम्–परकीयं मानसम्। अविज्ञाय–अज्ञात्वा। उपगन्तुम्–समीपं गन्तुम्। गुरुणा–महता। ऊरुस्तम्भेन गतिनिरोधकरेण जङ्घागौरवेण। मदालिङ्गनालीकाशया–ममाश्लेषविषये मिथ्याशया। प्रसारितभुजयुगलम्–प्रसारितकरद्वयम्। उत्कलिकासहस्रविषमम्–नानाविधोत्कण्ठाभयङ्करम्। (प्रसारितबाहुतात्र महाश्वेतालिङ्गनाशाकृता, सैव रागसागरतरणरूपतयोत्प्रेक्षिता बोध्या) अनवरतप्रवृत्तैः–सततं जायमानैः। दीर्घनिश्वासमरुद्भिः–दीर्घश्वासैः। पुरस्तादाकृष्यमाणम्–अग्रे नीयमानम्। दिङ्मुखप्लाविना–दिगवकाशव्यापिना। ज्योत्स्नापूरेण–कौमुदीभरेण। उह्यमानम्–अग्रेनीयमानम्। रणरणकशून्यम्–अन्तर्द्वन्द्वरहितम्। सत्त्वेन–धैर्येण। प्रतिपन्नम्–गृहीतम्। धार्ष्ट्येन। संकल्पजन्मनः–कामस्य। आविष्टम्–भूतावेशगृहीतम्। दिवसनिर्विशेषेण–दिनतुल्येन। चन्द्रातपेन–चन्द्रमसः प्रकाशेन। विभाव्यमानम्–दृश्यमानम्। अद्राक्षम्–दृष्टवान्।

द्वारा मरने के लिये दिये गये आदेश को धारण किये हुए हो, कर्णलग्ना, उत्पन्नलज्जा तथा भय से कांपती हुई केतकीपुष्प की सूची ऐसी लगती थी मानों कन्दर्प उससे कह रहा हो कि अब भागकर कहाँ जाओगे, मैं तुम्हें मार ही दूंगा। उद्वेग से उत्पन्न अश्रुप्रवाह से वह अपने को जलाञ्जलि प्रदान करता हुआ-सा लग रहा था। वह पसीने से तर हो रहा था ऐसा लगता था मानों उसने अपनी इच्छा से मेरे पाणिग्रहण के लिये स्नान किया हो। वह रुक-रुककर पैर बढ़ा रहा था मानों उसे उसका हृदय इस प्रकार दूसरे के हृदय को बिना जाने आगे बढ़ने से रोक रहा था। मेरे आलिङ्गन की मिथ्या आशा में वह दूर से ही हाथ फैलाये आ रहा था, ऐसा लगता था मानो वह उत्कण्ठारूप तरङ्गों से पूर्ण अनुराग-सागर में तैर रहा हो। सतत चलने वाले दीर्घनिश्वास उसे आगे की ओर खींच-से रहे थे, दिशाओं में व्याप्त चन्द्रिका के प्रवाह में वह बहता-सा जा रहा था। रणरणकशून्य, शुष्कमुख, सत्त्वरहित, दीन, धैर्यरहित, निर्लज्ज, धृष्ट, परलोकभयवर्जित, युक्तायुक्तविवेकहीन, केवल कन्दर्प के वशंवद, आविष्ट, मत्त, उन्मादी, उस ब्राह्मण-युवक को दिन की तरह प्रकाशित चाँदनी में मैंने दूर से ही देख लिया।

दृष्ट्वा च तं तादृशं निःस्पृहाप्यात्मनि परं भयमुपगतवती चेतस्यचिन्तयम्। 'अहो कष्टमापतितम्। यद्ययमुन्मादादागत्य पाणिनापि स्पृशति मां तदा मयेदमपुण्यहतकं शरीरमुत्स्रष्टव्यम्। तन्निराद्देवस्य पुण्डरीकस्य पुनर्दर्शनप्रत्याशया दुःखोत्तरमप्यङ्गीकृतं व्यर्थतां मे यातं प्राणसंधारणम्' इति। स त्वेवं चिन्तयन्तीमेव मामुपसृत्याब्रवीत्। 'चन्द्रमुखि, हन्तुमुद्यतो मामयं कुसुमशरसहायश्चन्द्रमाः तच्छरणमागतोस्मि। रक्ष मामशरणमनाथमार्तमप्रतीकारक्षममात्मना त्वदायत्तजीवितम्। शरणागतपरित्राणं हि तपस्विनामपि धर्म एव। तद्यदि मामात्मप्रदानेन नात्र संभावयसि तदा हतोहमाभ्यां कुसुमशरशिशिरकराभ्याम्' इति। अहं तु तदाकर्ण्य झगित्युत्तमाङ्गनिर्गतज्वालेव रोषानलेन निर्दहन्तीव तमुन्मिषद्बाष्पस्फुलिङ्गया दृष्ट्या तदा तर्जयन्तीवा पादतलादुत्कम्पितगात्रयष्टिराविष्टेवात्मानमप्यचेतयमाना क्रोधावेगरूक्षाक्षरमवदम्। 'आः पाप, कथमेवं गदतो मामुत्तमाङ्गे ते न निपतितं वज्रमवशीर्णा वा न सहस्रधा जिह्वा, विह्वलतां न गता वा वाणी, नष्टानि वा नाक्षराणि। मन्ये च न सन्त्येव तेऽस्मिञ्छरीरे सकललोकशुभाशुभसाक्षिभूतानि पञ्च महाभूतानि। येनैवं वदन्नाग्निना भस्मीकृतोसि न वायुना हृतोसि नाम्भसा प्लावितोसि न

आत्मनि निःस्पृहा—स्वजीवनविषये निर्मोहा। उन्मादात्—चित्तविक्षेपात्। आगत्य—मम पार्श्वमुपेत्य। अपुण्यहतकम्—पापसंसृष्टम्। शरीरम्—देहः। उत्स्रष्टव्यम्—त्यक्तव्यम्। पुनर्दर्शनप्रत्याशया—पुनर्मिलनाभिलापेण। दुःखोत्तरम्—सकष्टम्। व्यर्थतां यातम्—व्यर्थीभूतम्। मामुपसृत्य—मत्समीपमागत्य। अब्रवीत्—उक्तवान्। कुसुमशरसहायः—कन्दर्पस्य सहायताकरः। अशरणम्—रक्षकान्तरहीनम्। आर्त्तम्—पीडितम्। अप्रतीकारक्षमम्—उपायान्तरानुष्ठानाशक्तम् त्वदायत्तजीवितम्—त्वदधीनजीवनम्। शरणागतपरित्राणम्—शरणागतरक्षा। धर्मः—कर्त्तव्यम्। आत्मप्रदानेन स्वसमर्पणद्वारा। सम्भावयसि—सत्करोषि। हतः—मारितः कुसुमशरशिशिरकराभ्याम्—कामदेवचन्द्राभ्याम्। तत्—पूर्वोक्तरूपं ब्राह्मणयुवकवाक्यम्। आकर्ण्य—श्रुत्वा। झगिति—शीघ्रम्। उत्तमाङ्गनिर्गतज्वाला—शिरसि ज्वलन्ती। रोषानलेन—कोपाग्निना। उद्बाष्पस्फुलिङ्गया—बाष्पकणं प्रकटयन्त्या। आ पादतलादुत्कम्पितगात्रयष्टिः—कम्पितसमस्तदेहा। अचेतयमाना—अध्यायन्ती। क्रोधावेगरूक्षाक्षरम्—कोपवेगेन कठोरम्। एवं गदतः—इत्थं कथयतः। ते उत्तमाङ्गे—तव शिरसि। अवशीर्णा—भिन्ना। विह्वलताम्—कालुष्यम् (अस्फुटताम्) नष्टानि—विस्मृतानि। सकललोकशुभाशुभसाक्षिभूतानिः—समस्तजगत्पुण्यापुण्यसाक्षीणिः। महाभूतानि—क्षितिजलपावकगगनसमीराः। एवं वदन्—पूर्वोक्तरूपेण मां भाषमाणः। भस्मीकृतः—दग्धः। रसातलम्—पातालम्। आत्मनिर्विशेषताम्—स्वीयां समताम् शून्याकारताम्। अव्यवस्थितः—मर्यादारहितः। व्यवस्थिते—मर्यादारक्षिते। कुतः—कस्माद्धेतोः।

उस ब्राह्मण-युवक को इस प्रकार देखकर मेरे हृदय में बड़ा डर लगा। मैंने सोचा—बड़ा कष्ट उपस्थित है, यदि यह पागलपन में मेरे पास आकर हाथ से मुझे छू लेगा तब तो मुझे शरीर-त्याग करना ही होगा, तब तो इतने दिनों से पुनः पुण्डरीक को देखने की आशा से कष्टपूर्वक धारण किया गया यह जीवन व्यर्थ चला गया। इस प्रकार मैं सोच ही रही थी कि उसने मेरे पास आकर कहा—"चन्द्रमुखि, कामदेव का सहायक यह चन्द्रमा मुझे मारने को उद्यत है, अतः मैं तुम्हारी शरण आया हूँ, मुझ अशरण, अनाथ, आर्त्त, प्रतीकार में अक्षम, त्वदायत्त-जीवित की तुम रक्षा करो। तपस्वियों के लिये भी शरणागत-रक्षा धर्म ही है। अगर तुम आत्मनिवेदन करके मुझे नहीं बचा लोगी तो यह चन्द्रमा तथा कन्दर्प मुझे मार ही डालेंगे।"

उसकी बात सुनते ही मेरे सिर से ज्वाला निकलने लगी, रोषाग्नि से उसको दग्ध सी करती हुई मैं चिनगारी बरसाने वाली आँखों से उसे डरवाती हुई, पैर से सिर तक काँपती हुई क्रोध के आवेश में कठोर शब्दों में कह गई—"अरे पापी, इस प्रकार कहते हुए तुम्हारे सिर पर वज्र क्यों नहीं गिर पड़ा, जीभ के हजार टुकड़े क्यों नहीं हो गये, वाणी क्यों न गल गई, और अक्षर क्यों न नष्ट हो गये? मालूम पड़ता है तुम्हारे शरीर में लोक-साक्षी पञ्चभूत हैं ही नहीं, जिससे इस प्रकार कहते समय तुम्हारी देह को अग्नि ने जला नहीं दिया, वायु

धरित्र्या रसातलं प्रवेशितोसि नापि तत्क्षणमेवाकाशेनात्मननिर्विशेषतां नीतोसि। अव्यवस्थितो व्यवस्थितेऽस्मिँल्लोके कुतस्त्वमुत्पन्न एवंविधः। यस्तिर्यग्जातिरिव कामचारी न किंचिदपि वेत्सि। येनैवं खलु हतविधात्रा केनाप्युपदर्शितमुखरागः स्वपक्षपातमात्रप्रवृत्तिरनिरूपितस्थानास्थानवादी शुक इव वक्तुमेवं शिक्षितस्तेनैव किमु तस्यामेव जातौ न निक्षिप्तोसि। तेनैकान्तहासहेतुरेवं वदन्नपि न क्रोधमुत्पादितवानसि। त्वदुक्ते दुःखिताहं ते संविभागमिमं करोमि येनात्मवचनानुरूपां जातिमापन्नो नैवास्मद्विधाः कामयसे।' इत्युक्त्वा चन्द्राभिमुखी भूत्वा कृताञ्जलिः पुनरवदम्। 'भगवन् परमेश्वर सकलभुवनचूडामणे लोकपाल, यदि मया देवस्य पुण्डरीकस्य दर्शनात्प्रभृति मनसाप्यपरः पुमान्न चिन्तितस्तदानेन मे सत्यवचनेनायमलीककामी मदुदीरितायामेव जातौ पततु', इति। स च मे वचसोस्यानन्तरमेव न वेद्मि किमसह्यवृत्तेर्मदनज्वरस्य वेगादुत सद्योविपाकस्यात्मनो दुष्कृतस्य गौरवादाहोस्विन्मद्वचसः सामर्थ्यादेव छिन्नमूलस्तरुरिवाचेतनः क्षितावपतत्। अतिक्रान्तजीवितेस्मिन्कृताक्रन्दात्तत्परिजनाच्छ्रुतवती यथासौ महाभागस्यैव मित्रं भवति।' इत्युक्त्वा च त्रपावनम्रमुखी महीं महीयसाश्रुवेगेन तूष्णीमेवाप्लावितवती।

एवंविधः—दुराचारहतः तिर्यग्जाति—पशुपक्षियोनिजातः। कामचारी—यथेच्छाचारः। हतविधात्रा—नष्टेन विधिना। उपदर्शितमुखरागः—रक्तमुखः बाह्यप्रीतिप्रकटनपरश्च। स्वपक्षपातमात्रप्रवृत्तिः—स्वीयाभ्यां पक्षाभ्यामेव गमनशीलः स्वीयाभिप्रायमात्रव्यापृतश्च। स्थानास्थानवादी—युक्तायुक्तभाषणपटुः। शिक्षितः—पाठितः। तस्यामेव जातौ—शुकयोनौ। निक्षिप्तः—उत्पादितः। एकान्तहासहेतुः—अत्युपहास्यः। संविभागम्—दुःखस्य न्यूनताम्। आत्मवचनानुरूपाम्—स्वभाषितसमाम्। अस्मद्विधाः—सतीः परस्त्रियः। कामयसे—कामदृष्ट्या पश्यसि। चन्द्राभिमुखी—चन्द्रं पश्यन्ती। सकलभुवनचूडामणे—सकललोकश्रेष्ठ। पुण्डरीकदर्शनात्प्रभृति—पुण्डरीकवीक्षणकालादारभ्य। मनसापि (किमुत वचसा वपुषा वा) अपरः—पुण्डरीकभिन्नः पुमान्न चिन्तितः—पुरुषो न ध्यातः। अलीककामी—मिथ्याप्रेमप्रकटनप्रवृत्तः। मदुदीरितायाम्—मयोक्तायाम् शुकजातौ। पततु—जायताम्। अस्य वचसोऽनन्तरम्—एतादृशोक्तेः पश्चात्। असह्यवृत्तेः—असह्यव्यापारस्य। मदनज्वरस्य वेगात्—कामपीडातः। सद्योविपाकस्य—सद्यःफलप्रदानप्रवृत्तस्य। दुष्कृतस्य—सतीकदर्थनजन्यपापस्य। गौरवात्—महत्त्वात्। मद्वचसः सामर्थ्यात्—मद्वचनप्रभावात्। तरुः—वृक्षः। अचेतनः—गतप्राणः। क्षितौ—पृथिव्याम्। अतिक्रान्तजीविते—मृते। कृताक्रन्दात्—रोदितुं प्रवृत्तात्। तत्परिजनात्—तस्य भृत्यवर्गात्। महाभागस्य भवतः मित्रम्—सुहृत्। त्रपावनम्रमुखी—लज्जानतवदना। महीम्—पृथ्वीम्। महीयसाऽश्रुवेगेन—दीर्घेणाश्रुप्रवाहेण। आप्लावितवती—भृतवती।

उड़ा न ले गई, पानी ने बहा नहीं दिया, पृथ्वी ने पाताल नहीं पहुँचा दिया और आकाश ने तत्काल स्वसदृश-शून्य नहीं बना डाला। इस व्यवस्थित संसार में तुम जैसा अव्यवस्थित कहाँ से पैदा हो गया। तुम पशु-पक्षियों की तरह कामचारी बनकर कुछ नहीं समझते हो। किसी ने तुम्हारे मुख में राग पैदा कर दिया है, अपने पक्षपातमात्र में तुम्हारी प्रवृत्ति है, तुम्हारा भाग्य समाप्त है, तुम शुक की तरह जगह-बे जगह केवल बोलना ही जानते हो, तुमको शुक-जाति में ही जन्म क्यों न मिला। तुमने हँसी की बात कही है, मुझे उससे क्रोध नहीं हुआ है। तुम्हारी उक्ति से मुझे दुःख हुआ है, अतः मैं तुमको शाप देती हूँ कि फिर अपने वचन के योग्य जाति में जन्म लेकर हमारी सदृश दुःखिनियों को नहीं चाहोगे"। इस प्रकार कहकर चन्द्रमा की तरफ देखती हुई प्रणाम करने के बाद मैंने पुनः कहा—"भगवन् परमेश्वर समस्तलोकचूडामणे लोकपाल, यदि पुण्डरीक को देखने के बाद से मैंने मन में भी दूसरे पुरुष की चिन्ता की हो तो मेरे इस सत्यवचन से यह मिथ्याकामुक मेरे द्वारा कही गई शुक-जाति में चला जाय"। मेरे इस वचन के बाद ही—मैं नहीं जानती, वह क्या कामवेग की असह्यता से, अथवा परिणामोन्मुख अपने पापगौरव से, अथवा मेरी बात की सामर्थ्य से कटे वृक्ष की तरह अचेतन

चन्द्रापीडस्य तु तदाकर्ण्य कर्णान्तायतलोचनद्वयामीलनभग्नदृष्टेर्भ्रष्टवचनसौष्ठवस्य 'भगवति, कृतप्रयत्नायामपि भगवत्यामपुण्यभाजास्मिञ्जन्मनि मया न प्राप्तं देव्याः कादम्बर्याश्चरणपरिचर्यासुखं तज्जन्मान्तरेऽपि भगवती संपादयित्री भूयात्' इति गदत एव कादम्बरीसमागमाप्राप्तिदुःखेनैव भेदोन्मुखं मुकुलमिव शिलीमुखाघातात्स्वभावसरसं हृदयमस्फुटत्। अथ महाश्वेतायाः शरीरमुत्सृज्य संभ्रमप्रतिपन्नचन्द्रापीडशरीरायां 'भर्तृदारिके, किं लज्जया पश्य तावदन्यथैव कथमप्यास्ते देवश्चन्द्रापीडो भग्नेवास्य ग्रीवा न मूर्धानं धारयति, विचालितोऽपि न किंचिच्चेतयते, नान्तःप्रविष्टतारके समुन्मीलयति विलोचने, नायं यथावस्थितपतितानां गात्राणामावरणं करोति, नोच्छ्वसिति हृदयेन, हा देव चन्द्रापीड चन्द्राकृते कादम्बरीप्रिय क्वेदानीं त्वया विना गम्यते' इत्युक्त्वार्तवचसि तरलि-

---

तत्-महाश्वेतावचनम्। आकर्ण्य-श्रुत्वा। कर्णान्तायतस्य-श्रुतिपर्यन्तं विस्तृतस्य लोचनद्वयस्य नेत्रयुगलस्य आमीलनेन-मुद्रिततया भग्नदृष्टेर्नष्टदृक्शक्तेः। भ्रष्टवचनसौष्ठवस्य-समाप्तवचनपाटवस्य। कृतप्रयत्नायाम्-प्रयासमाश्रितवत्याम् भगवत्याम्-महाश्वेतायाम्। अपुण्यभाजा-पापिना। अस्मिन् जन्मनि-अत्र जीवने। चरणपरिचर्यासुखम्-पादसेवाजन्यानन्दः। जन्मान्तरे-समान्यजन्मनि। भगवती भवती महाश्वेता। सम्पादयित्री-मया कादम्बर्याश्चरणपरिचर्यासुखं यथा लभ्यते तथा प्रयासपरायणा। इति गदतः-इत्थं कथयतः। कादम्बरीसमागमाप्राप्तिदुःखेन-कादम्बर्या मिलनस्य असंभूतताकल्पनया जायमानेन क्लेशेन। भेदोन्मुखम्-स्फुटनप्रवृत्तम्। शिलीमुखाघातात्-बाणाघातात् भ्रमरामर्शनाद्वा। मुकुलम्-कोरकम्। अस्फुटत्-अभिद्यत। उत्सृज्य-यथास्थितं विहाय। (तरलिकायाम्) संभ्रमप्रतिपन्नचन्द्रापीडशरीरायाम्-वेगेन चन्द्रापीडस्य शरीरं धारयन्त्याम्। किं लज्जया-लज्जया किमपि फलं नास्ति। अन्यथैव-विभिन्नप्रकारेण आस्ते-वर्त्तते। अस्वाभाविकी जाता चन्द्रापीडस्य स्थितिरित्यर्थः। भग्ना-त्रुटिता। ग्रीवा-कन्धरा। मूर्धानम्-मस्तकम्। विचालितः-चैतन्यसमानयनाय कम्पितः। चेतयते-संज्ञां लभते। अन्तःप्रविष्टतारके-अन्तर्गतकनीनिके। समुन्मीलयति-विकासयति। यथावस्थितपतितानाम्-यथेच्छं पतितानां स्थितानां वा। गात्राणाम्-शरीरावयवानाम्। आवरणम्-वस्त्रेणाच्छादनम्। उच्छ्वसिति-श्वासान्धारयति। चन्द्राकृते-चन्द्रसमसुन्दरशरीर तथा विना-कादम्बरीं विहाय। कादम्बरीप्रियस्य कादम्बरीं विहाय गमनं न युज्यत इति पर्यनुयोगः। आर्त्तवचसि-आर्त्तवत् प्रलपन्त्याम्। तिर्यगामुग्ने वक्रीभूते चन्द्रापीडस्य मुखे निहिता स्थापिता निश्चला अचला स्तब्धा चकितभावेन स्थिरा च दृष्टिर्यया तादृश्यामत एव च निश्चेष्टायां किमपि कर्त्तुमपारयन्त्याम्। आः पापे-हा दुराचारे, दुष्टतापसि-मिथ्या तपस्यापरे। अपाकृताखिलजगत्पीडस्य-समस्तजगत्क्लेशहरणपरायणस्य। उत्सादितम्-समापितम्

होकर गिर पड़ा। उसके मर जाने के बाद किसी आप्त परिजन ने मुझसे कहा कि वह आपका मित्र था। इतना कहकर महाश्वेता लज्जानतमुखी हो बड़े जोर से चलने वाले अश्रुप्रवाह से पृथ्वी को आप्लावित करने लगी।

चन्द्रापीड ने जब यह सुना तब कान तक फैले हुए दोनों नयनों के मुंद जाने से उसकी दर्शनशक्ति समाप्त हो गई, वचनशक्ति क्षीण हो गई, उसने किसी तरह कहा—"भगवति, आपके प्रयत्नपरायण रहने पर भी इस पापी ने इस जन्म में देवी कादम्बरी की चरणपरिचर्या का सुख नहीं प्राप्त किया, अतः जन्मान्तर में आप इसे सम्पादित करें" इतना कहते-कहते कादम्बरी-समागम की अप्राप्ति के दुःख से फूटते हुए मुकुल की तरह स्वभाव-सरस उसका हृदय बाणाघात से फूट पड़ा। इसके बाद तरलिका ने महाश्वेता की देह छोड़कर घबड़ाहट के साथ दौड़कर चन्द्रापीड को पकड़ लिया और वह आर्त्त होकर कहने लगी—"राजकुमारि, लज्जा क्या करती हो, देखो: चन्द्रापीड दूसरी तरह हो रहे हैं, इनकी गर्दन टूट-सी गई है जो सिर को नहीं संभाल पा रही है, डुलाने पर भी होश में नहीं आ रहे हैं, पुतलियाँ भीतर चली गई हैं, आँखें नहीं खुलने पा रही हैं, जैसे-तैसे पड़े हुए शरीर को भी नहीं ढक रहे हैं' उनके हृदय की गति बन्द है, हा देव चन्द्रापीड, चन्द्राकृति, कादम्बरीप्रिय, आपके बिना अब हम कहाँ जाँय"।

कायाम्, तिर्यगाभुग्नचन्द्रापीडमुखनिहितनिश्चलस्तब्धदृष्टिनिश्चेष्टायां महाश्वेतायाम्, 'आः पापे दुष्टतापसि किमिदं त्वया कृतम्, अपाकृताखिलजगत्पीडस्य तारापीडस्य कुलमुत्सादितम्, अनाथीकृताः प्रजाः सहास्माभिः, भग्नाः पन्थानो गुणानाम्, अर्गलिताः ककुभोऽर्थिलोकस्य, कस्य वदनमीक्षतां लक्ष्मीः, कोऽवलम्बनं भवतु भूमेः, कं सेवन्तां सेवकाः, त्वया विना संप्रति व्यसनमेव सेवा संवृत्ता, वृत्तं समानशीलत्वम्, अस्तमिता च परिजनश्लाघा, लघूकृतो भृत्यादरः, दूरं गतानि प्रियालपितानि, समाप्ताः परित्यागकथाः, कथं कथावशेषीभूतोसि, भूतपूर्वाः कमुपयान्तु संप्रति प्रजाः, क्व संप्रति साधूनां समाधानम्, अधुना धूर्धरे त्वयि विपन्ने कः समुद्वहतु देवेन तारापीडेनोढां धुरम्, धीरस्यापि ते कथं कातरस्येव शुचा भिन्नं हृदयम्, दयालोरपि ते केयमद्येदृशी जाता निर्दयतास्मासु, देव प्रसीद, सकृदप्याज्ञापय, देहि भक्तजनस्याभ्यर्थनम्, प्रतिपद्यस्व प्राणान्, न त्वया विना क्षणमपि प्राणिति पुत्रवत्सलो देवस्तारापीडो न देवी विलासवती नाप्यार्यः शुकनासो न मनोरमा न राजानो नापि प्रजाः, परित्यज्य च सर्वानेकाकी क्व प्रस्थितोसि, कुतस्तवेयमेकपद एवेदृशी निष्ठुरता जाता, क्व सा गुरुजनस्योपरि भक्तिर्यदेवमनपेक्ष्य प्रयासि' इत्युक्तवत्यवनितलविमुक्तात्मन्यारटति परिजने, तदाकर्णनोत्कर्णे हा हा किमेतदित्युद्भ्रान्तमनसि समापतति राजपुत्रलोके, समुत्प्लुतोत्पक्ष्मनयनदर्शिनि चन्द्रापीडवदननिवेशितदृशि दीनतरहेषारवकृताक्रन्दे

अस्माभिः परिजनैः सह प्रजाः अनाथीकृताः अशरणीकृताः। पन्थानः—मार्गाः। अर्थिलोकस्य—याचकवर्गस्य। ककुभः—दिशः। अर्गलिताः—निरुद्धाः। ईक्षताम्—पश्यतु। व्यसनम्—दुःखरूपम्। समानशीलत्वम्—समन्यवहारपरायणत्वम्। वृत्तम्—समाप्तम्। परिजनश्लाघा—भृत्यवर्गस्य प्रशंसा। लघूकृतः—ह्रासितः। परित्यागकथाः—दानवार्त्ताः, कथावशेषीभूतः—कथायां केवलायामवशिष्टः। धूर्धरे—भारवहनक्षमे। विपन्ने—मृते। समुद्वहतु—धारयतु। ऊढाम्—एतावतो दिवसान् यावद् धृताम्। धुरम्—राज्यभारम्। कातरस्य—अधीरस्य। शुचा—वैशम्पायनविपत्तिवार्त्ताश्रवणजन्यशोकेन। दयालोः—कृपालोः। सकृदपि—एकवारमपि। आज्ञापय—आदिश। अभ्यर्थनाम्—प्रार्थितम्। प्रतिपद्यस्व—प्राप्नुहि। प्राणिति—जीवति। पुत्रवत्सलः—सुतस्नेही। आर्यः—पूज्यः। एकाकी—सहायकान्तररहितः। एकपदे—अकस्मात्। ईदृशी—एतादृशी। निष्ठुरता—क्रूरस्वभावता। अनपेक्ष्य—अपेक्षां समाप्य। अवनितलविमुक्तात्मनि—पृथ्वीतलपतिते। आरटति—विलपति। परिजने—चन्द्रापीडस्य भृत्यवर्गे। तदाकर्णनोत्कर्णे—भृत्यजनरुदनमाकर्ण्य उत्थितकर्णे। उद्भ्रान्तमनसि—विक्षिप्तचित्ते। समापतति—आगच्छति। राजपुत्रलोके—चन्द्रापीडानुगतराजपुत्रगणे। समुत्प्लुतेन जलपूर्णेन उत्पक्ष्मणा—उत्थितपक्ष्मणा नयनेन दर्शिनि पश्यति तच्छीले।

इस तरह तरलिका के आर्त्तनाद करने पर महाश्वेता टेढ़े होकर लटके हुए चन्द्रापीड के मुख पर निश्चल-दृष्टि डालते ही निश्चेष्ट हो गई। इसी समय परिजन दौड़कर आये और कहने लगे—आः पापे दुष्टतपस्विनि, तुमने यह क्या किया, संसार के कष्टों को दूर करने वाले महाराज तारापीड का वंश लुप्त कर दिया, हमारे साथ ही प्रजाओं को अनाथ कर दिया, गुणों के मार्ग बन्द कर दिये, याचकों की दिशायें रोक दीं, लक्ष्मी किसका मुख देखे? पृथ्वी का कौन अवलम्बन हो? तुम्हारे नहीं रहने से सेवा व्यसन बन गई है, समानशीलता समाप्त है, परिजन की श्लाघा समाप्त हो गई। भृत्यों का आदर हल्का हो गया, प्रियालाप समाप्त हो गये, परित्याग की कथा समाप्त हैं, क्यों तुम कथाशेष हो रहे? प्राचीन प्रजा कहाँ जाय? अब साधुओं का समादर कहाँ होगा? भार-वहनसमर्थ आपके कथाशेष हो जाने पर अब महाराज तारापीड का भार कौन हल्का करेगा? दयालु होकर भी आप आज हम लोगों पर क्यों निर्दय बन गये? एक बार भी आज्ञा दीजिये, भक्तजन की अभ्यर्थना सुनिये, प्राण-धारण कीजिये, आपके बिना महाराज तारापीड, देवी विलासवती, आर्य शुकनास, मनोरमा, राजा या प्रजा प्राण-धारण नहीं कर सकेंगे। सबका परित्याग करके आप अकेले कहाँ चल पड़े? आप एकाएक इस तरह निष्ठुर किस प्रकार हो गये? आपकी वह गुरुजन-भक्ति कहाँ चली गई? इस तरह नाता तोड़कर आप कैसे चले गये? परिजन

शुचेव पर्यायोत्क्षिप्तखुरचतुष्काहतक्ष्मातले मुहुर्मुहुरात्मोन्मोचनायेवाच्छोटितखरखलीनकनकशृङ्खलायोगे तुरंगमतां मुमुक्षतीवेन्द्रायुधे, पत्रलेखानिवेदितचन्द्रापीडागमना चन्द्रोदयोल्लासिनी वेलेव महोदधेः समकरध्वजा व्याजीकृत्य महाश्वेतादर्शनं मातापित्रोः पुरः प्रतिपन्नशृङ्गारवेषाभरणा रणन्नूपुरयुगेन मुखरमेखलादाम्ना रम्योज्ज्वलाकल्पेन कल्पितानङ्गबलविभ्रान्तिना गृहीतसुरभिमाल्यानुलेपनपटवासाद्युपकरणेन नातिबहुना परिजनेनानुगम्यमाना पुरः केयूरकेणोपदिश्यमानमार्गा पत्रलेखाहस्तावलम्बिनी मदलेखया सह कृतालापा 'मदलेखे पत्रलेखा कथयति प्रत्यहमहं पुनस्तस्यैकान्तनिष्ठुरहृदयस्य शठमतेर्निर्घृणमनसो निःस्पृहागमनमेव न श्रद्दधे, किं न स्मरसि तत्तस्य मदवस्थामश्रद्दधानस्य हिमगृहके मद्विमर्शाय दुर्विदग्धबुद्धेर्वक्रभाषितं यत्र सस्मितमालोकितया त्वयैवास्मै सुतरामेवासंशयकारि

चन्द्रापीडवदननिवेशितदृशि-अपक्ष्मपातेन चन्द्रापीडमुखदत्तदृष्टौ। दीर्घतरेण उच्चेन हेषारवेण अश्वशब्देन कृताक्रन्दे रोदितुं प्रवर्त्तमाने। शुचा-शोकेन। पर्यायोत्क्षिप्तं क्रमश उत्थापितं यत्खुरचतुष्कं शफचतुष्टयं तेन आहतं ताडितं क्ष्मातलं पृथ्वीतलं येन तादृशे। मुहुर्मुहुः-वारंवारम्। आत्मोन्मोचनाय-स्वं मुक्तं कारयितुम्। आच्छोटितः त्यक्तुमाकृष्यमाणः खरस्य तीक्ष्णमुखस्य खलीनस्य कनकशृङ्खलायाश्च योगः सम्बन्धो येन तादृशे। तुरङ्गताम्-अश्वभावम्। मुमुक्षति त्यक्तुमिच्छति। पत्रलेखानिवेदितचन्द्रापीडागमना-पत्रलेखाकथितचन्द्रापीडागमा। चन्द्रोदयोल्लासिनी-चन्द्रोदयदर्शनप्रवृद्धा। महोदधेः-सागरस्य। वेला। तटभूमिः। समकरध्वजा-सकन्दर्पा (कादम्बरी, सागरवेलापि मकररूपेण ध्वजेन युक्ता भवत्येवेति तयोरुपमा) महाश्वेतादर्शनं व्याजीकृत्य-महाश्वेताया अवलोकनं स्वयात्राहेतुत्वेन प्रथयित्वा। प्रतिपन्नशृङ्गारवेषाभरणा-शृङ्गारोपयुक्तं वेषं तादृशमाभरणं च धारयन्ती। रणन्नूपुरयुगेन-शब्दायमानपादभूषणेन। मुखरमेखलादाम्ना-शब्दायमानकाञ्चीधारिणा। रम्योज्ज्वलाकल्पेन-सुन्दरस्वच्छवेषधारिणा। कल्पिता जनिता अनङ्गबलस्य कामसैन्यस्य विभ्रान्तिः संशयो येन तथोक्तेन। गृहीतं धृतं सुरभि सुगन्धि माल्यं स्रक् अनुलेपनम् चन्दनम्, पटवासः कुङ्कुमश्च तदादि उपकरणं विलाससामग्री येन तादृशेन। नातिबहुना-स्वल्पसंख्येन। परिजनेन-सखीवर्गेण। अनुगम्यमाना-सहिता। उपदिश्यमानमार्गा-प्रदर्श्यमानपथा। पत्रलेखाहस्तावलम्बिनी-धृतपत्रलेखाहस्ता। कृतालापा-वार्त्तालापपरा। प्रत्यहम्-सर्वदा। तस्य-चन्द्रापीडस्य। एकान्तनिष्ठुरहृदयस्य-अतिक्रूरमनसः। शठमतेः-वञ्चकस्य। निर्घृणमनसः-निर्दयहृदयस्य। निःस्पृहागमनम्-व्यर्थमागमनम्। न श्रद्दधे-न विश्वसिमि। मदवस्थामश्रद्दधानस्य-मदीयायां कामयमानतायां विश्वासमकुर्वतः। हिमगृहके-तदाख्ये कादम्बरीगृहभेदे। मद्विमर्शाय-ममानुरागपरीक्षणाय। दुर्विदग्धबुद्धेः-शठमतेः। वक्रभाषितं-कुटिलं वचनम् (स्मरसीति पूर्वोक्तक्रिययान्वयः) सस्मितमालोकितया-सहासं दृष्टया। अस्मै-चन्द्रापीडाय। असंशयकारि-संदेहापा-

के इस प्रकार के आर्त्तनाद को सुनकर उत्कर्ण राजकुमारगण हाय, यह क्या हुआ, इस प्रकार कहते हुए पागल की तरह चारों ओर से दौड़ पड़े।

डबडबाई हुई आँखों से देखता हुआ, चन्द्रापीड की ओर आँख फैलाये, दीन हेषा शब्द में क्रन्दन करता हुआ, शोकवश क्रमशः अपने चारों खुरों को जमीन पर पटकता हुआ, अपने को छुड़ाने के लिये बार-बार लगाम तथा जंजीर को बजाता हुआ, इन्द्रायुध अश्वयोनि का ही परित्याग करना चाह रहा था।

पत्रलेखा द्वारा चन्द्रापीड के आगमन की सूचना पाकर, चन्द्रोदय से उल्लसित समकरध्वज सागर की वेला के समान, माता-पिता के सामने महाश्वेता से मिलने को व्याज बनाकर, शृङ्गारवेष धारणकर, सशब्दनूपुर तथा मुखर मेखला का धारण करके रमणीय प्रसाधन वाले अनङ्ग-सैन्य का भ्रम पैदा करने वाले थोड़े परिजन को साथ लिये, मार्गदर्शक केयूरक को आगे लेकर, पत्रलेखा-हस्तावलम्बिनी तथा मदलेखा के साथ बातें करती हुई कादम्बरी चन्द्रापीड के दर्शन को उतावली होकर वहाँ आ गई।

कादम्बरी ने कहा—मदलेखे, पत्रलेखा कहती है कि—उस निष्ठुरहृदय, शठमति, निर्दय के निःस्पृह आगमन पर रोज-रोज विश्वास नहीं करती हूँ। क्या तुम नहीं याद करती हो कि हमारी अवस्था पर विश्वास

प्रत्युत्तरं दत्तम् , तदसौ मरणेपि मे न श्रद्दधात्येवेमामवस्थाम्, अन्यथा यदि मदर्थे दुःखमेवमियमनुभवतीत्येतदस्याभविष्यत्तदा तथा गमनमेव नाकरिष्यत् , [तथागतोप्यसौ यत्किमपि वक्तव्यस्त्वयैव मया पुनर्दृष्टोपि नालपितव्यो नोपालब्धव्यः, न चरणपतितस्याप्यनुनयो ग्राह्यः, नाहं प्रियसख्या प्रसादनीया' इत्यभिदधानैवाचेतितागमनखेदा कादम्बरी चन्द्रापीडदर्शनायोत्ताम्यन्ती तत्रैवाजगाम ।

आगम्य चोद्धृतामृतमिव रत्नाकरम्, इन्दुविरहितमिव निशाप्रबन्धम्, अस्तमिततारागणमिव गगनम्, अपचितकुसुमशोभमिवोपवनम्, उत्खातकर्णिकमिव कमलम्, उत्खण्डिताङ्कुरमिव मृणालम्, अवलुप्ततरलमिव हारम्, उन्मुक्तजीवितं चन्द्रापीडमद्राक्षीत् । दृष्ट्वा च तं सहसा हा किमिदमित्यधोमुखी धरातलमुपयान्ती कथंकथमपि मुक्ताक्रन्दया मदलेखयाधार्यत । पत्रलेखा पुनरुन्मुच्य कादम्बरीकरतल-

---

करणसमर्थम् । असौ–चन्द्रापीडः । मरणेऽपि–मम मृत्यौ जातेऽपि । न श्रद्दधाति–न विश्वसिति । इमाम्–कामयमानस्वरूपाम् । अवस्थाम्–दशाम् । मदर्थे–मम चन्द्रापीडस्य कृते । इयम्–कादम्बरी । एवम्–एतादृशम् । एतत् अस्य अभविष्यत्–एतादृशं ज्ञानमस्य स्यात् । तथा–तेन प्रकारेण, (मामनाश्वास्येत्यर्थः) तथागतः–तेन रूपेण प्रस्थितः । मया–कादम्बर्या । न आलपितव्यो न सम्भाष्यः । अनुनयो न ग्राह्यः–विनयो न मान्यः । (यदाहं चन्द्रापीडं न संभाषिष्ये, न वा तदनुनयं ग्रहीष्यामि तदा त्वया) प्रियसख्या मम प्रियसुहृदा मदलेखया । अहं कादम्बरी न प्रसादनीया न अनुकूलतां प्रापणीया । इति अभिदधाना–एवं कथयन्ती । अचेतितागमनखेदा–अध्यातमार्गश्रमा । चन्द्रापीडदर्शनाय–चन्द्रापीडं द्रष्टुम् । उत्ताम्यन्ती–अधीरतां भजन्ती । तत्रैव–यत्र महाश्वेताश्रमशरीरो मृतकल्पश्चन्द्रापीडोऽवर्त्तत तत्र ।

उद्धृतामृतम्–अपनीतसुधम् । रत्नाकरम्–समुद्रम् । इन्दुविरहितम्–चन्द्रहीनम् । निशाप्रबन्धम्–रात्रिम् । अस्तमिततारागणम्–अस्तंगतनक्षत्रम् । अपचितकुसुमशोभम्–न्यूनीभूतपुष्पसमृद्धिकम् । उपवनम्–उद्यानम् । उत्खातकर्णिकम्–(कमलस्य मध्यभागे किञ्जल्कानामाधारः कर्णिकेत्युच्यते) उत्खाता लुञ्चिता कर्णिका यत्र तादृशम् । उत्खण्डिताङ्कुरम्-नाशितपुष्पोदयाङ्कुरम् । मृणालम्–कमलनालम् । अवलुप्ततरलम्–अपहृतमध्यमणिम् । हारम्–मुक्तामाल्यम् । उन्मुक्तजीवितं–प्राणपरित्यक्तम् । अधोमुखी–नतानना । धरातलमुपयान्ती–पृथिव्यां पतन्ती । मुक्ताक्रन्दया–आर्त्तप्रलापपरया । अधार्यत–अवलम्बिता । कादम्बरीकरतलमुन्मुच्य–कादम्बरीपाणिं स्वेन ध्रियमाणं परिहृत्य । अचेतना–लुप्तसंज्ञा । क्षितिमुपागमत्–पृथिव्यां पतिता । चिराच्च लब्धसंज्ञा–बहुकालानन्तरं प्राप्तचैतन्या । मूढा–ज्ञानशून्या । निश्चलस्तब्धदृष्टिः–स्थिरनयना । आविष्टा–भूतावेशवती । निष्प्रयत्ना–चेष्टाशून्या । निःश्वसितुम्–निःश्वासंत्यक्तुम् । विस्मृता–

नहीं करने वाले उस दुर्विदग्ध ने क्या कहा था जिस पर तुमने ही असन्दिग्ध उत्तर दिया था । वह तो मर जाने पर भी हमारी अवस्था पर विश्वास नहीं करेगा । यदि उसे मेरी स्थिति पर दुःख होता वह जाता ही नहीं । उस प्रकार चले जाने वाले को जो कुछ कहना होगा तुम्हीं कहोगी । मैं तो देखने पर भी उससे नहीं बोलूंगी, न उलाहना दूंगी । पैरों पर गिरेगा फिर भी मैं उसका अनुनय नहीं स्वीकार करूंगी । तुम मुझे मत मनाना । इस प्रकार कहती हुई कादम्बरी बिना मार्गश्रम का ख्याल किये ही चली आई ।

महाश्वेता के आश्रम में आकर—कादम्बरी ने अमृत निकल जाने के बाद के सागर की तरह, चन्द्ररहित रात की तरह, तारागण के अस्त हो जाने के बाद के आकाशसदृश, फूलों के चुने जाने के बाद के उपवन की तरह, कर्णिका के उखाड़ लिये जाने के बाद के कमल की तरह, खण्डिताङ्कुर मृणाल की तरह, पानी उतरे हुए हार की तरह निष्प्राण पड़े हुए चन्द्रापीड को देखा । देखते ही वह हाय, यह क्या ? इस प्रकार कहती हुई औंधे मुंह पृथ्वी पर गिरने लगी जिसे चिल्लाती हुई मदलेखा ने पकड़ लिया । पत्रलेखा कादम्बरी का हाथ छोड़कर—अचेत होकर जमीन पर गिर पड़ी । बड़ी देर के बाद होश आने पर भी कादम्बरी उसी तरह मूढ़, निश्चलदृष्टि,

मचेतना क्षितिमुपागमत्। चिराच्च लब्धसंज्ञापि कादम्बरी तथैव मूढेव निश्चलस्तब्धदृष्टिरा-विष्टेन स्तम्भितेव निष्प्रयत्ना निश्वसितुमपि विस्मृतान्तर्मन्युभारनिस्पन्देव चन्द्रापीडवदन-समर्पिताक्षी श्यामारुणानना ग्रहोपरक्तेन्दुबिम्बेन पौर्णमासीनिशा निशितपरशुपातोत्कम्पिनी लतेव वेपिताधरकिसलया लिखितेषु स्त्रीस्वभावविरुद्धेन चेतसा तस्थौ। तथावस्थितां च तामुन्मुक्तार्तनादा सपादपतनं मदलेखाब्रवीत् 'प्रियसखि, प्रसीदोत्सृजेमं मन्युसंभारमार-टन्ती। बाष्पमोक्षेणामुच्यमानेऽस्मिन्नियतमतिभारोत्पीडितं तटाकमिव सरसमृदु सहस्रधा स्फुटति ते हृदयमित्यपेक्षस्व देवीं मदिरां देवं च चित्ररथम्। त्वया विना कुलद्वय-मपि नास्ति।'

इत्युक्तवतीं मदलेखां कादम्बरी विहस्याब्रवीत्। 'अय्युन्मत्तिके, कुतोऽस्य मे वज्र-सारकठिनस्य हतहृदयस्य स्फुटनम्। यन्नालोक्यैवं सहस्रधा स्फुटितम्। अपि च या जीवति तस्याः सर्वमिदं माता पिता बन्धुरात्मा सख्यः परिजन इति। मया पुनर्म्रियमाणया जीवितभूतं कथंकथमपि समासादितमिदं प्रियतमशरीरं यज्जीवदजीवद्वा संभोगेनानुमरणेन

विस्मरन्ती। अन्तर्मन्युभारनिस्पन्दा–मनोव्यथयाऽचला। चन्द्रापीडवदनसमर्पिताक्षी–चन्द्रापीडमुखस्था-पितदृष्टिः। श्यामारुणनयना–कृष्णरक्तनेत्रा। ग्रहोपरक्तेन्दुबिम्बा–राहुगृहीतचन्द्रमण्डला। पौर्णमासी-निशा–पूर्णिमारात्रिः। निशितपरशुपातोत्कम्पिनी–तीक्ष्णपरशुनिपातेन वेपमाना। वेपिताधरकिसलया–वेपमानोष्ठपल्लवा। लिखिता–चित्रार्पिता। स्त्रीस्वभावविरुद्धेन–वनिताजनप्रतिकूलेन। (स्त्रियो हि दुःखे पतिते रुदन्ति, सा तु निभृतं तस्थाविति स्त्रीस्वभावविरुद्धस्वभावता तस्या बोध्या) उन्मुक्तार्त्तनादा–कृतकरुणविलापा। सपादपतनम्–चरणयोः पतिता। प्रसीद–कृपां कुरु। मन्युसंभारम् उत्सृज–दुःखराशिं लघूकुरु। आरटन्ती–विलपन्ती (रोदनेन दुःखं लघूभवति, तथा कुरु, अन्यथा) बाष्पमोक्षेण–रुदितेन। अमुच्यमाने–अत्यज्यमाने। अस्मिन्–दुःखभारे। नियतम्–निश्चयेन। अतिभारोत्पीडितम्–दुःखातिभारा-क्रान्तम्। तटाकम्–सरः। सहस्रधा–सहस्रेण वर्त्मभिः। स्फुटति–विदीर्यते। अपेक्षस्व–पश्य। कुलद्वयम्–त्वदीयं पितृकुलं मातृकुलञ्च। नास्ति न भवति विपद्यते।

इत्युक्तवतीम्–उक्तरूपेण कृतनिवेदनाम्। विहस्य–विकृतं स्मितं कृत्वा। अयि उन्मत्तिके अयि विक्षिप्तचित्ते, वज्रसारकठिनस्य–लौहकठोरस्य। हतहृदयस्य–भाग्यहीनस्य हृदयस्य। यत्–मम हृदयम्। एवम्–पुरो दृश्यमानम् चन्द्रापीडस्य गतप्राणत्वम्। (यदेवं दृष्ट्वा तत्कालमेव न विदीर्णं तस्य लौहकठोरस्य मम हृदयस्य परतः स्फुटनं त्वया न संभावनीयमथ तथा संभावयसि तदा त्वमुन्मत्तासीति। म्रियमाणया–सद्यःप्राणान् परिहरन्त्या। जीवितभूतम्–प्राणस्वरूपम्। कथं कथमपि–केनापि प्रकारेण। प्रियतमशरीरम्–चन्द्रापीडस्य निष्प्राणं वपुः। जीवत्–संभोगेन। अजीवत्–अनुमरणेन इति योजना। द्विधापि–प्रकारद्वयेऽपि। उपशान्तये–निवृत्तये। देवेन–राज्ञा चन्द्रापीडेन। आगच्छता–

आविष्ट समान, ठिठकी हुई, निश्चेष्ट, सांस लेने को भी भूली हुई, अन्तःखेद से निश्चल, चन्द्रापीड के मुख को देखती हुई, श्यामारुणमुखी, ग्रहणकालिक पूर्णमासी की तरह, तीक्ष्णकुठारपात से कम्पितलता की तरह, कम्पित अधरशालिनी, चित्रलिखित समान, स्त्री-स्वभाव के विरुद्ध चुपचाप बैठी रही। उसकी यह दशा देखकर आर्त्तनाद-पूर्वक उसके पैरोंपर पड़ती हुई मदलेखा बोली—"प्रसन्नता प्रकट करो, छोड़ो इस दुःखभार को। यदि रो-रोकर हृदय हल्का नहीं कर लिया जाता तो वह अतिभार-पीडित तटाक की तरह फूट जाता है। तुम्हारा यह सरस मृदु हृदय भी फूट जायगा, तुम देवी मदिरा तथा चित्ररथ की ओर देखो, तुम्हारे नहीं रहने पर दोनों ही कुल नष्ट हो जायेंगे"?

इसी प्रकार कहती हुई मदलेखा से हंसकर कादम्बरी ने कहा—अरी पगली, मेरे इस वज्र-कठोर हृदय का फूटना कहाँ सम्भव है।.यदि वही सम्भव होता तो इस तरह देखकर वह हजार टुकड़ों में फूट न गया होता। और जो जीता है उसके सभी हैं माता, पिता, बन्धु, आत्मीय, सखियाँ और परिजन। मरती हुई मैं प्राणस्वरूप

वा द्विधापि सर्वदुःखानामेवोपशान्तये। तत्किमिति देवेनागच्छता मदर्थं प्राणांश्चोत्सृजता सुदूरमारोपितं गुरुतां च नीतमात्मानमश्रुपातमात्रकेण लघूकृत्य पातयामि। कथं स्वर्गगमनोन्मुखस्य देवस्य रुदितेनामङ्गलं करोमि। कथं पादधूलिरिव पादावनुगन्तुमुद्यता हर्षस्थानेपि रोदिमि। किं मे दुःखमेवंविधम्। अधुना तु मे सर्वदुःखान्येव दूरीभूतानि। किमद्यापि रुद्यते। यदर्थं कुलक्रमो न गणितः, गुरवो नापेक्षिताः, धर्मो नानुरुद्धः, जनवादान्न भीतम्, लज्जा परित्यक्ता, मदनोपचारैः सखीजनः खेदितः, दुःखिता मे प्रियसखी महाश्वेता तस्याः कृते प्रतिज्ञातमन्यथा जातं मयेत्येतदपि चेतसि न कृतम्, तस्मिन्मदर्थमेवोज्झितप्राणे प्राणेश्वरे प्राणान्प्रतिपालयन्ती त्वयैवं किमुक्ताहम्। अस्मिन्समये मरणमेव जीवितम्। जीवितं पुनर्मरणम्। तद्यदि ममोपरि स्नेहः, करोषि मत्प्रियं हितं वा, तन्ममोपरि स्नेहाबद्धयापि प्रियसख्या तथा कर्तव्यं यथा न तातोऽम्बा च मच्छोकादात्मानं परित्यजतः। यथा च मयि वाञ्छितं मनोरथं त्वयि पूरयतः। येन परलोकगताया

मामुद्दिश्य चलितेन। सुदूरमारोपितम्–अत्यादरपात्रीकृतम्। गुरुतां नीतम्–गौरवपात्रतां प्रापितम् (चन्द्रापीडो मामुद्दिश्य चलितो मध्येमार्गं मदर्थमेव प्राणानहासीदिति महान्ममादरो गौरवभूमा च जात इति तदर्थं यद्यहं न म्रियें केवलमश्रूणि विसर्जयन्ती तिष्ठामि तदाऽकृतज्ञताप्रकटनेन मयाऽऽत्मा लघूकृतो भवतीति भावः) अश्रुपातमात्रकेण–केवलेन रुदितेन। लघूकृत्य–नीचतां प्रापयित्वा। पातयामि–गौरवाद् भ्रंशयामि। स्वर्गगमनोन्मुखस्य–स्वर्गं प्रस्थितस्य। अमङ्गलम्–अशुभम्। यात्राकालिकं रोदनं मङ्गलं प्रतिहन्तीति प्रसिद्धधुरोधिनीयमुक्तिः। पादधूलिः–चरणरजः। पादावनुगन्तुमुद्यता–चरणानुगमनप्रवृत्ता। हर्षस्थाने चरणानुगमनावसरस्य स्वाभीष्टस्य लाभेन हर्षस्यावसरे। यदर्थम्–यस्य कृते। कुलक्रमः–वंशमर्यादा। न गणितः–न विचारितः। गुरवो नापेक्षिताः–मातापित्रादयो गुरुजना न पृष्टाः। जनवादात्–लोकापवादात्। भीतम्–भयंकृतम्। मदनोपचारैः–कामव्यथाशमनोपायैः। खेदितः–क्लेशं प्रापितः। तस्याः कृते प्रतिज्ञातम्–अनूढायां महाश्वेतायां नाहमात्मनः पाणिं ग्राहयिष्यामि इत्येवंरूपा कृतपूर्वा स्वीया प्रतिज्ञा। अन्यथाजातम्–खण्डितम् (मयि चन्द्रापीडे प्रेमपरायणायां मम पूर्वोक्ता प्रतिज्ञा भग्नेति) चेतसि न कृतम्–न चिन्तितम्। उज्झितप्राणे–मृते। प्राणान्प्रतिपालयन्ती–जीवन्ती। एवम्–पूर्वोक्तम्। स्नेहाबद्धया–प्रीतया। मच्छोकात्–मद्विरहजन्यक्लेशात्। आत्मानं न परित्यजतः–न म्रियेते। (मया तु मर्तव्यमेव, मां मरणान्न निवारय, यदि मयि स्निग्धासि तदा तथा कुर्या यथा मम तातोऽम्बा च मन्मरणोत्तरं मच्छोकादात्मानं न विपादयत इति प्रार्थनार्थः) मयि वाञ्छितम्–मद्विषयेऽभीष्टम् पुत्रीविवाहदर्शनादिस्वरूपम्। येन–तव विवाहेन। परलोकगतायाः–मृतायाः। जला-

---

इस प्रियतम-शरीर को पा सकी हूँ, जो जीवित होगा तो संभोग द्वारा, और यदि जीवित नहीं हुआ तो अनुमरण द्वारा, सर्वथा मेरे सारे दुःखों को शान्त कर सकता है। चन्द्रापीड ने मेरे लिये आते हुए प्राणों का परित्याग करके मुझे बड़ा गौरव प्रदान किया है, उस आत्मा को मैं केवल रोकर क्यों लाघव प्राप्त कराऊं? मेरे देवता स्वर्ग जाने को प्रस्तुत हैं मैं रोकर क्यों उनका अमङ्गल कर रही हूं। मैं जब पादधूलि की तरह उनके चरणों के साथ जाना चाहती हूं तब फिर—हर्ष के अवसर पर भी क्यों रोऊं? मुझे ऐसा कौन दुःख है? अब तो मेरे समस्त दुःख ही दूर हो गये। अब क्यों रोया जाय? जिसके लिये कुल की मर्यादा छोड़ी, गुरुजन की अपेक्षा नहीं की, धर्म का अनुरोध छोड़ा, लोकापवाद का भय त्यागा, लाज छोड़ी, मदनोपचार के द्वारा सखियों को कष्ट दिया, दुःखिनी प्रियसखी महाश्वेता के अनुरोध से की गई प्रतिज्ञा झूठी हो रही है यह भी मनमें नहीं सोचा, वह मेरा प्राणेश्वर जब कि मेरे लिये ही मर गया है, ऐसी स्थिति में भी मैं जीवनधारण कर रही हूँ, तब तुम मुझे यह क्या कह रही हो। इस समय तो मेरा मरना ही जीवन है, और जीवन ही मरना है। अतः यदि तुम मुझ पर स्नेह रखती हो, या मेरा प्रियहित करना चाहती हो तो तुम मेरी प्यारी सखी ऐसा करना जिससे मेरी माता

अपि मे जलाञ्जलिदानाय पुत्रकस्त्वयि भविष्यति। यथा च मे सखीजनः परिजनो वा न स्मरति शून्यं वा भवनमालोक्य न दिशो गृह्णाति तथा करिष्यसि। पुत्रकस्य मे भवनाङ्गणे सहकारपोतस्य त्वया मच्चिन्तितयैव माधवीलतया सहोद्वाहमङ्गलं स्वयमेव निर्वर्तनीयम्। मच्चरणतललालितस्याशोकविटपस्य कर्णपूरार्थमपि न पल्लवः खण्डनीयः। मत्संवर्धिताया मालत्याः कुसुमानि देवार्चनायैवोच्चेयानि। वासभवने मे शिरोभागनिहितः कामदेवपटः पाटनीयः। मया स्वयं रोपिताश्चूतवृक्षा यथा फलं गृह्णन्ति तथा संवर्धनीयाः। पञ्जरबन्धदुःखाद्वराकी कालिन्दी सारिका शुकश्च परिहासो द्वावपि मोक्तव्यौ। मदङ्कशायिनी नकुलिका स्वाङ्क एव शाययितव्या। पुत्रको मे बालहरिणस्तरलकः कस्मिंश्चित्तपोवने समर्पणीयः। पाणितलसंवर्धितं मे जीवञ्जीवमिथुनं क्रीडापर्वते यथा न विपद्यते तथा कर्तव्यम्। पादसहसंचारी हंसको यथा न हन्यते केनचित्तथा विधेयः। अचिरगृहीतवसतिः सा च बलाद्धिधृता तपस्विनी वनमानुषिका वन एवोत्स्रष्टव्या। क्रीडापर्वतकः कस्मैचिदुपशान्ताय तपस्विने प्रतिपादयितव्यः। शरीरोपकरणानि मे ब्राह्मणेभ्यः प्रतिपादनीयानि। वीणा पुनरा-

---

ञ्जलिदानाय–तर्पणं कर्तुम्। पुत्रकः तनयः। दिशो गृह्णाति–पलाय्य दिक्षु गच्छति। पुत्रकस्य–पुत्रत्वेन कल्पितस्य। सहकारपोतस्य–लघोराम्रवृक्षस्य। मच्चिन्तितया–मयैव स्थिरीकृतया। उद्वाहमङ्गलम्–वैवाहिकविधानम्। स्वयम्–आत्मना। निर्वर्तनीयम्–करणीयम्। मच्चरणलालितस्य–मदीयचरणाघातसौभाग्यशालिनः। अशोकविटपस्य–अशोकवृक्षशाखायाः। कर्णपूरार्थम्–कर्णाभरणनिर्माणाय (अपिना कार्यान्तराय तत्पल्लवभङ्गकथाया दूरमनौचित्यं व्यञ्जितम्) मत्संवर्द्धितायाः–जलप्रदानाद्युचितोपचारैर्मया स्वयं वृद्धिं गमितायाः। देवार्चनायैव–केवलं देवपूजायै। उच्चेयानि–संग्राह्याणि। शिरोभागनिहितः–शिरोदेशे स्थापितः। कामदेवपटः–कामचित्रम्। पाटनीयः–खण्डनीयः। चूतवृक्षाः–आम्रतरवः। संवर्द्धनीयाः–पोष्याः। वराकी–दुःखिनी। सारिका–शुकजातिस्त्री। मोक्तव्यौ–पञ्जरदुःखान्निवारणीयौ। मदङ्कशायिनी–मम क्रोडे शयनशीला। स्वाङ्के–निजक्रोडे। शाययितव्या–स्वपितुं प्रेरणीया। तरलकः तन्नामा। समर्पणीयः–दातव्यः। (तपोवनदत्ते तस्मिंस्तस्याहिंस्यत्वेन जीवनं सुरक्षितं स्यादिति तथाकथनम्) पाणितलसंवर्द्धितम्–स्वहस्तपोषितम्। जीवंजीवमिथुनम्–चक्रवाकद्वन्द्वम्। विपद्यते–म्रियते। पादसहसंचारी–सर्वदा पादलग्नः। हन्यते–केनापि मार्यते। तथा विधेयः–तेन प्रकारेण सुरक्षितः कार्यः। अचिरगृहीतवसतिः–स्वल्पकालत एव गृहीतवासा। बलाद्धिधृता–निगृह्यानीता। वनमानुषिका–वन्यमनुष्यस्त्री। वने एव उत्स्रष्टव्या–वने त्यक्तव्या। उपशान्ताय–शमनिष्ठाय। तपस्विने–तपश्चर्यानिष्ठाय। शरीरोपकरणानि–वस्त्राभरणादीनि। प्रतिपादनीयानि–सम्प्रदेयानि। अङ्कप्रणयिनी–क्रोडे स्थिता। अपरम्–वीणाति-

---

तथा मेरे पिता मेरे ही शोक में प्राण न दे दें। मेरे मर जाने पर वह मेरे साथ बांधे गये अपने मनोरथों को तुममें पूर्ण करें, जिससे कि मेरे स्वर्गीय हो जाने पर तेरा बेटा मुझे जलाञ्जलि दे सके। ऐसा करना जिससे मेरा बन्धुवर्ग मुझे नहीं याद करे या शून्य भवन देखकर—दिशाओं में न भाग खड़ा हो। मेरे आङ्गन में मेरा कृतक पुत्र जो वह आम्रवृक्ष है उसका विवाह, मेरे ख्याल से, तुम स्वयं माधवीलता के साथ सम्पन्न कर देना। मेरे चरणप्रहार से लालित उस अशोक वृक्ष का पल्लव कर्णपूर बनाने के लिये भी मत तोड़ना। मेरे द्वारा लगाई गई उस मालती के फूल केवल देवार्चन के ही लिये चुने जायं। वासभवन में मेरे सिरहाने में लटकता हुआ कामदेव का चित्रपट फाड़ दिया जाय। मेरे हाथों रोपे गये आम के वृक्ष जिस प्रकार फलें वह उपाय किया जाय। बेचारी कालिन्दी नाम की सारिका तथा परिहास नामक शुक को पञ्जर-बन्धन के दुःख से मुक्त कर देना। मेरी गोद में सोनेवाली नेवले को अपनी ही गोद में सुलाना। मेरा कृतक-पुत्र तरलक नामक जो बाल हरिण है उसे किसी तपोवन में रख देना। मेरे हाथों पोसा गया चक्रवाक का जोड़ा कहीं क्रीड़ापर्वत पर मर न जाय ऐसा उपाय करना। मेरे चरणों में लिपटे रहने वाले हंस को कोई मारे नहीं ऐसा उपाय कर देना। मेरा क्रीडापर्वत किसी शान्त तपस्वी को दे दिया जाय। मेरे शारीरिक उपकरण ब्राह्मणों को दे दिये जांय, हां वीणा को तुम अपनी ही गोद में आश्रय देना। और भी जो चीज तुम्हे अच्छी लगे तुम ले लेना।

त्मन एवाङ्कप्रणयिनी कार्या । अपरमपि यत्ते रोचते तदपि स्वीकर्तव्यम् । अहं पुनरिममममृतकिरणरश्मिभिरनाश्यानचन्दनचर्चाभिरनवरतधारागृहासारसेकैरनेकसंतान-तुहिनकिरणकिरणनिकरतारकिततारहारार्पणैर्मणिदर्पणप्रणयनेन मलयजजलार्द्रपद्मिनीपत्रास्तरणेन सरसबिसकिसलयप्रस्तरैरकठोरमृणालतल्पकल्पनयोद्विकसत्कमलकुमुदकुवलयशयनीयैश्च दग्धशेषमुज्ज्वलचिताज्वालामालिनि विभावसौ देवस्य कण्ठलग्ना निर्वापयाम्यात्मानम् ।' इत्यभिदधानैव कृतावधारणानुबन्धां मदलेखामवक्षिप्योपसृत्य महाश्वेतां कण्ठे गृहीत्वा निर्विकारवदनैव पुनस्तामवादीत् ।

'प्रियसखि, तवास्ति कीदृश्यपि प्रत्याशा ययानुरागपरवशा पुनःसमागमाकाङ्क्षिणी क्षणे क्षणे मरणाभ्यधिकानि दुःखान्यनुभवन्ती जीवितमलज्जाकरमननुशोच्यमनुपहसनीयमवाच्यं धारयसि । मम पुनः सर्वतो हताशायाः सापि नास्ति । तदामन्त्रये प्रियसखीं पुनर्जन्मान्तरसमागमाय ।' इत्यभिधायोत्पद्यमानपुलककेसरोद्भासिन्यसमसाध्वसानिलाह-

---

रिक्तम् । अमृतकिरणरश्मिभिः-चन्द्रकिरणैः । अनाश्यानचन्दनचर्चाभिः-गाढचन्दनलेपैः । अनवरतधारागृहासारसेकैः-सततधारागृहजलधारासेचनैः । एकसन्तानः सततानुवर्त्ती यः तुहिनकिरणस्य शीतद्युतेश्चन्द्रस्य किरणनिकरैः करसमूहैस्तारकितः संजाततारो भासमानः तारः दीर्घश्च हारो मौक्तिकमाल्यं तदर्पणैः तत्प्रतिपादनैः । मणिदर्पणप्रणयेन-मणिकृतमुकुरस्नेहेन । मलयजलार्द्रपद्मिनीपत्रास्तरणेन-चन्दनसिक्तकमलिनीपत्रशय्यया । सरसबिसकिसलयप्रस्तरैः-आर्द्रमृणालपल्लवशय्याभिः । अकठोरमृणालतल्पकल्पनया-कोमलमृणालशयनीयरचनया । दग्धशेषम्-दग्धावशिष्टम् । (विरहसन्तापापनुत्तये पूर्वोक्तरूपा यावन्त उपायाः कृतास्तैर्दाहयित्वा शिष्टम्) आत्मानम्-स्वं देहम् । उज्ज्वलचिताज्वालामालिनि-समिद्धतमे । विभावसौ-चितावह्नौ । देवस्य कण्ठलग्ना-चन्द्रापीडमाश्लिष्यन्ती । निर्वापयामि-शीतलतां नयामि । इत्यभिदधाना-एवंकथयन्ती । कृतावधारणानुबन्धाम्-विहितधारणप्रयासाम् । अवक्षिप्य-दूरे क्षिप्त्वा । महाश्वेतां कण्ठे गृहीत्वा-महाश्वेतायाः कण्ठमालिङ्ग्य । निर्विकारवदना-विकारशून्यमुखी । ताम्-महाश्वेताम् । अवादीत्-उवाच ।

प्रत्याशा-प्रियतमजीवितविषये आकाशवाण्या जनिता आशा । यया-आशया । अनुरागपरवशा-प्रेमाधीना सती । मरणाभ्यधिकानि-मरणादप्यधिकानि । अलज्जाकरम्-अत्रपणीयम् । अननुशोच्यम्-अचिन्तनीयम् । अवाच्यम्-अनिन्द्यम् । धारयसि-बिभर्षि । सर्वतोहताशायाः-सर्वथानिराशायाः । सापि-प्रियतमस्य पुनर्जीवनाशा । आमन्त्रये-आज्ञां याचे । जन्मान्तरसमागमाय-जन्मान्तरे पुनर्मिलनाय । (सम्प्रति मर्त्तुमुद्यताऽहं पुनर्जन्मान्तरे स्यादावयोः सङ्ग इत्यर्थये त्वामिति भावः) उत्पद्यमानपुलककेसरोद्भासिनी-संभवद्भिः पुलकैः रोमाञ्चैरेव केसरैः किञ्जल्कैर्भासते तथा । असमसाध्वसानिलाहता-विषमदुःखवायुकम्पिता । उत्कम्पेन दुःखप्रभावेण गात्रकम्पेन उत्तरङ्ग्यमाणः वर्द्धितः य आनन्दबाष्पवेगः प्रियसहमरणजन्यानन्दाश्रुरयः स एव ऊर्मिस्तरङ्गः तेन तरला चला । संगलन् पतन् स्वेदबिन्दुरेव मकरन्दः तस्य बिन्दूनां जलकणानां निस्यन्दिनी प्रवाहिणी मुकुलायमाने कोरकाभे नयने एव कुमुदे

मैं अब चन्द्रकिरण, शुष्कचन्दनलेप, सतत धारागृह की धारा से सेचन, अनेक भाग-विभक्त चन्द्रकिरण समान हारों के धारण, चन्दन जल से गीले कमलपत्रशयन, आर्द्र मृणालकृत बिछावन तथा खिले कुमुद-कमलों की शय्या से दग्धशेष अपनी आत्मा को उज्ज्वल चिताज्वालायुक्त आग में शान्त करती हूँ, इस प्रकार कहती हुई तथा पकड़ने को दौड़ती हुई मदलेखा को ढकेलकर आगे बढ़ती हुई कादम्बरी निर्विकार चेहरा लिये महाश्वेता को गले से लगाकर कहने लगी—"हे प्रियसखि, तुम्हारे हृदय में कुछ ऐसी प्रत्याशा है जिसके बल पर तुम पुनर्मिलन की आशा लेकर, अनुरागिणी बन, प्रतिक्षण मरण से अधिक कष्ट को सहती हुई, इस अलज्जाजनक, अशोचनीय, अनुपहसनीय एवं अनिन्दनीय जीवन को धारण करती हो। मेरे हृदय में तो वैसी आशा भी नहीं है, मैं तो सर्वथा निराश हूँ । अतः मैं अपनी प्रियसखी तुमको जन्मान्तर-मिलन के लिये आमन्त्रित करती हूँ' । कादम्बरी ने ऐसा कहकर चन्द्रापीड के शरीर को अपनी गोद में ले लिया । उस समय कादम्बरी के शरीर में रोमाञ्च हो रहा था,

तोत्कम्पोत्तरंग्यमाणानन्दबाष्पवेगोर्मितरला संगलत्स्वेदमकरन्दबिन्दुनिस्यन्दिनी मुकुलाय- माननयनकुमुदा कुमुदिनीव चन्द्रापीडचन्द्रास्तमयविधुरा तदवस्थेपि हृदयवल्लभे समागम- सुखमिवानुभवन्ती सरभसमुपरिपर्यस्तचिकुरहस्तोद्वान्तकुसुमनिवहेन मूर्ध्नार्चयित्वा चन्द्रा- पीडचरणौ स्रवत्स्वेदामृतार्द्राभ्यां कराभ्यामुत्क्षिप्याङ्केन धृतवती। अथ तत्करस्पर्शेनोच्छ्वसत इव चन्द्रापीडदेहाज्झटिति तुहिनमयमिव सकलमेव तं प्रदेशं कुर्वाणमव्यक्तरूपं किमपि चन्द्रधवलं ज्योतिरेवोज्जगाम। अनन्तरं चान्तरिक्षे क्षरन्तीवामृतशरीरिणी वागश्रूयत। 'वत्से महाश्वेते, पुनरपि त्वं मयैव समाश्वासयितव्या वर्तसे। तत्ते पुण्डरीकशरीरं मल्लोके मत्तेजसाप्यायमानमविनाशि भूयस्त्वत्समागमनाय तिष्ठत्येव। इदमपरं मत्तेजोमयं स्वत एवाविनाशि विशेषतोमुना कादम्बरीकरस्पर्शेनाप्यायमानं चन्द्रापीडशरीरं शापदोषाद्विमुक्त- मप्यन्तरात्मना कृतशरीरसंक्रान्तेर्योगिन इव शरीरमत्रैव भवत्योः प्रत्ययार्थमा शापक्षयादा-

---

यस्यास्तादृशी। कुमुदिनी इव (कुमुदिनी केसरैरुद्भासते इयं रोमाञ्चेन, सा तरङ्गोर्मितरला भवति इयमपि हर्षाश्रुवेगतरला, सा मकरन्दबिन्दुस्राविणी इयं स्वेदस्राविणी, तस्याः कोरकम् अस्या मुकुलितं नयनमेव तनोति इयं कुमुदिनीरूपकं प्रापिता) चन्द्रापीडचन्द्रास्तमयविधुरा–चन्द्रापीडरूपस्य चन्द्रस्या- स्तमयेन दुःखिनी सती। तदवस्थे–अचेष्टभावेन स्थिते। हृदयवल्लभे–प्राणप्रिये। समागमसुखम्–प्रिया- लिङ्गनजं हर्षम्। सरभसम्–वेगेन। उपर्यस्तः उपरिक्षिप्तश्चिकुरः केशपाश एव हस्तः करः ततः उद्वान्तः पातितः कुसुमनिवहः पुष्पराशिर्येन तादृशेन। मूर्ध्ना–शिरसा चन्द्रापीडचरणौ चन्द्रापीडस्य पादौ। अर्च- यित्वा–पूजयित्वा। स्रवत्स्वेदामृतार्द्राभ्याम्–पतत्स्वेदरूपसुधासिक्ताभ्याम्। कराभ्यां–स्वहस्ताभ्याम्। उत्क्षिप्य–उत्थाप्य (चन्द्रापीडचरणौ) अङ्केन–स्वक्रोडेन। अथ–चन्द्रापीडचरणयोः कादम्बर्याः स्वाङ्के धार- णात्परतः। तत्करस्पर्शेन–कादम्बरीकरस्पर्शेन। उच्छ्वसतः–किंचिच्चेतयतः। झटिति–शीघ्रम्। तुहिनमयम्– प्रालेयमयम्–अतिशीतलम्। अव्यक्तरूपम्–अस्फुटस्वरूपम्। चन्द्रधवलम्–चन्द्रवत् श्वेतम्। ज्योतिः- तेजः। उज्जगाम–उदियाय। अन्तरिक्षे–आकाशे। अमृतं क्षरन्ती–सुधामिव वर्षन्ती। अशरीरिणी–अदृ- श्यवक्तृशरीरा। अश्रूयत–श्रुता (आकाशवाणी कर्णे समापतितेत्यर्थः) मया–चन्द्रमसा। समाश्वासयि- तव्या–बोधनीया। तत्–मया नीतपूर्वम्। मल्लोके–चन्द्रलोके। आप्यायमानम्–सिच्यमानम्। अवि- नाशि–अनश्वरम्। त्वत्समागमाय–त्वया सह मिलनाय। तिष्ठति–वर्त्तते। इदम्–चन्द्रापीडसंबन्धि। मत्तेजोमयम्–चन्द्रतेजःस्वरूपम्। कादम्बरीस्पर्शेन–कादम्बर्या अङ्के कृतत्वेन। आप्यायमानम्–सिच्य- मानम्। शापदोषात्–प्राक्तनशापप्रभावात्। विमुक्तमपि–गतप्राणमपि। अन्तरात्मना कृतशरीरसंक्रान्तेः– आत्मांशेन शरीरान्तरं प्रविष्टस्य। योगिनः–योगाभ्यासिनः। (यथा कस्यचन योगिनः शरीरम् आत्मना योगिनि शरीरान्तरं प्रविष्टेऽपि सत्यविकृतं तिष्ठति तथैवास्य चन्द्रापीडस्यापि। शरीरमात्मसंबन्धशून्यं सदपि अविकृतं स्थास्यति, इदं मया भवत्योर्विश्वासार्थमेवात्र स्थाप्यते इति चन्द्रोक्तेराशयः) प्रत्यया-

---

अनुपम अनिष्ट-शङ्का से उसका शरीर कांप रहा था, तरङ्गित आनन्दाश्रुप्रवाह से वह बहती जा रही थी, गिरने वाली पसीने की बूंदों से वह लथपथ हो रही थी, उसकी कुमुदसदृश आंखें मुंदी जाती थीं, चन्द्रापीडरूप चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर कुमुदिनीरूपा कादम्बरी उस अवस्था में भी प्राणप्रिय चन्द्रापीड के समागम में सुख का अनुभव करती थी, उसने हाथों से अपने बिखरे बालों को ऊपर की ओर फेंका, उसके शिर में गुथें फूल चन्द्रा- पीड के चरणों पर आ गिरे, मानो वह चन्द्रापीड के चरणों की पूजा कर रही हो। कादम्बरी के करस्पर्श से चन्द्रापीड का शरीर उच्छ्वसित-सा हो उठा, और तत्काल उस प्रदेश को शीतल करती हुई ज्योति उस शरीर से निकली। इसके बाद अमृत-वृष्टि-सी करती हुई यह आकाशवाणी हुई। "वत्से महाश्वेते, पुनः मैं ही तुझे आश्वा- सन प्रदान करूंगा। तुम्हारे पुण्डरीक का शरीर मेरे तेज से सुरक्षित हमारे चन्द्रलोक में रखा है जिससे पुनः तुम्हारा समागम होगा। यह दूसरा शरीर चन्द्रतेजोमय है, यह स्वयम् अविनाशी है, विशेषतः कादम्बरी- करस्पर्श के कारण अविनाशी हो रहा है, यह चन्द्रापीड का शरीर शाप के कारण छूट रहा है, जैसे ऊपर से

स्ताम् । नैतदग्निना संस्कर्तव्यम् । नोदके प्रक्षेप्तव्यम् । नापि वा समुत्स्रष्टव्यम् । यत्नतः परिपालनीयमा समागमप्राप्तेः' इति ।

तां तु श्रुत्वा किमेतदिति विस्मिताक्षिप्तहृदयः सर्व एव परिजनो गगनतलनिवेशितनिर्निमेषलोचनो लिखित इव पत्रलेखावर्जमतिष्ठत । पत्रलेखा तु तेन तस्य ज्योतिषस्तुषारशीतलेनाह्लादहेतुना स्पर्शेन लब्धसंज्ञोत्थायाविष्टेव वेगाद्धावित्वा परिवर्धकहस्तादाच्छिद्येन्द्रायुधमस्मद्विधानां यथा तथा भवतु त्वं पुनरेवमेकाकिनी विना वाहनं दूरं प्रस्थिते देवे क्षणमप्यवस्थातुं न शोभस इत्यभिदधाना तेनैवेन्द्रायुधेन सहात्मानमच्छोदसरस्यक्षिपत् ।

अथ तयोर्निमज्जनसमयानन्तरमेव तस्मात्सरसः सलिलाच्छैवलोत्करमिव शिरसि लग्नं गलज्जलबिन्दुसंदोहमयथावलम्बिदीर्घशिखं मुखोपरिपरस्परासक्तैरसंस्कारमलिनतया चोपसूचितचिरोर्ध्वबन्धं जटाकलापमुद्वहज्जलार्द्रदेहासक्तेन बिसतन्तुमयेनेव ब्रह्मसूत्रेणोद्धा-

---

र्थम्-विश्वासाय । आ शापक्षयात्-शापावसानावधि । आस्ताम्-तिष्ठतु । अग्निना-संस्कर्तव्यम्-अग्नौ दाह्यम् । उदके-जले । समुत्स्रष्टव्यम्-क्वचिदन्यत्र त्याज्यम् । आ समागमाप्राप्तेः-समागमप्राप्तिपर्यन्तम् ।

ताम्-आकाशवाणीम् । विस्मयाक्षिप्तहृदयः-आश्चर्यचकितचेताः । गगनतलनिवेशितनिर्निमेषलोचनः-आकाशप्रणिहितनिष्पक्ष्मपातदृष्टिः । लिखितः-चित्रार्पितः । पत्रलेखावर्जम्-पत्रलेखां विहाय (सर्वेष्वप्याश्चर्यचकितेषु सत्सु पत्रलेखाऽविकृतैवावर्त्ततेति विवक्षा) ज्योतिषः-चान्द्रस्य तेजसः । तुषारशीतलेन-प्रालेयशीतेन । आह्लादहेतुना-आनन्दकरेण । लब्धसंज्ञा-प्राप्तचैतन्या । आविष्टा-भूतावेशमुपगता । धावित्वा-शीघ्रं गत्वा । परिवर्धकहस्तात्-रक्षककरात् । इन्द्रायुधम् आच्छिद्य इन्द्रायुधं नाम चन्द्रापीडस्याश्वं बलाद् गृहीत्वा । अस्मद्विधानाम्-मादृशानां परिजनानाम् । यथा तथा भवतु यद्भवितव्यं तदस्तु । एकाकिनि-सहायकशून्ये । विना वाहनम्-यानं विना । प्रस्थिते-चलिते । देवे-चन्द्रापीडे । न शोभसे-न उचितः प्रतीयसे । आत्मानम्-स्वम् । अच्छोदसरसि-अच्छोदसरोवरे । अक्षिपत्-पातितवती (इन्द्रायुधमादाय तेन सहैव पत्रलेखापि जले निमग्नेत्याशयः) ।

तयोः-इन्द्रायुधपत्रलेखयोः । निमज्जनसमयानन्तरम्-जलपातकालानन्तरम् । तस्मात्-अच्छोदसम्बन्धिनः । सरसः सलिलात्-जलात् । शैवलोत्करमित्यादिना जटाकलापं वर्णयति-शिरसि लग्नं शैवलोत्करम्-मस्तके समासक्तं शैवालसमूहम् । गलज्जलबिन्दुसन्दोहम् पतद्वारिबिन्दुनिकरम् । अयथावलम्बिदीर्घशिखम्-अयथावलम्बिनी अस्थानस्थिता दीर्घा शिखा चूडा यत्र तादृशम्(व्यस्तचूडमित्यर्थः) मुखोपरि परस्परासक्तैः-मुखोपरि परस्परमिलनेन । असंस्कारमलिनतया-अप्रसाधनजन्मना मालिन्येन च । उपसूचितचिरोर्ध्वबन्धम्-चिरकालात् अस्य जटाकलापस्य पुनरूर्ध्वबन्धनं न कृतमिति सूचयन्तम् । जटाकलापम्-जटाभरम् । उद्वहन्-धारयन् । जलार्द्रदेहासक्तेन-जलक्लिन्नतनुसंगतेन । बिसतन्तुमयेन-

---

निष्प्राण होकर भी योगी का शरीर भीतर से प्राणयुक्त होने के कारण अविनश्वर रहा करता है, उसी तरह यह भी है, यह शरीर तुम्हारे तथा कादम्बरी के विश्वासार्थ यहीं रहे । इसका अग्निसंस्कार मत करना इसे जल में प्रवाहित मत करना, इसका परित्याग मत करना । समागम होने तक इसकी सुरक्षा करना ।'

उस आकाशवाणी को सुनकर समस्त परिजन विस्मयविमूढ़ हो उठा । सभी की आँखें निर्निमेष भाव से आकाश की ओर देखने लगीं ? सभी चित्रलिखित हो उठे । केवल पत्रलेखा प्रकृतिस्थ बनी रही । पत्रलेखा तो उस पाले के समान शीतल ज्योति के आनन्ददायी स्पर्श से मानो होश आ गई हो इस प्रकार के आवेश में आकर उठी, वेग से दौड़कर उसने इन्द्रायुध को परिवर्द्धक के हाथ से छीन लिया, और हम लोगों को जो होगा सो होगा, महाराज चन्द्रापीड़ बिना सवारी के दूर चले गये हैं तुम्हारा यहाँ खड़ा रहना अच्छा नहीं लग रहा है, ऐसा कहती हुई उसने इन्द्रायुध के साथ अपने को अच्छोद सरोवर में डाल दिया ।

उन दोनों के पानी में डूबते ही उस सरोवर के जल से एक तपस्वी बालक बाहर निकला । उसके सिर पर जटायें थीं, वह ऐसी लग रही थीं, मानो उस सरोवर के ही शैवल हों, जो उसके सिर में लग गये हों, उन

समानो म्लानारविन्दिनीपलाशपृष्ठपाण्डुरेण जीर्णमन्दारवल्कलेनाबद्धपरिकरः करेणाननावरोधिनीर्जटाः समुत्सारयन्नश्रुजलच्छलेनाच्छोदसरःसलिलमिवान्तःप्रविष्टमाताम्राभ्यामुद्वमद्भ्यां लोचनाभ्यामुद्विग्नाकृतिस्तापसकुमारकः सहसैवोदतिष्ठत्। उत्थाय च दूरत एवोद्दामबाष्पजलनिरोधपर्याकुलयापि बद्धलक्षया दृष्ट्या विलोकयन्तीं महाश्वेतामुपसृत्य शोकगद्गदमवादीत्। 'गन्धर्वराजपुत्रि, जन्मान्तरादिवागतोपि प्रत्यभिज्ञायतेयं जनो न वा' इति। सा त्वेवं पृष्टा शोकानन्दमध्यवर्तिनी ससंभ्रममुत्थाय कृतपादवन्दना प्रत्यवादीत्। 'भगवन्कपिञ्जल, अहमेवंविधापुण्यवती या भवन्तमपि न प्रत्यभिजानामि। अथवा युक्तैवेदृशी मय्यनात्मज्ञायां संभावना याहमेकान्तत एव व्यामोहहता स्वर्गं गतेपि देवे पुण्डरीके जीवामि। तत्कथय केनासावुत्क्षिप्य नीतः, किमर्थं वा नीतः, किं वास्य वृत्तं क्व वर्तते, किं वा तवोपजातं येनै-

---

मृणालसूत्रनिर्मिततुल्येन। ब्रह्मसूत्रेण-यज्ञोपवीतेन। उद्भासमानः-शोभमानः। म्लाना शुष्का या अरविन्दिनी कमलिनी तस्याः पलाशस्य पृष्ठम् पृष्ठभागस्तद्वत्पाण्डुरेण शुक्लवर्णेन। जीर्णमन्दारवल्कलेन-पुराणया पारिजाततरुत्वचा। आबद्धपरिकरः-बद्धकक्षः। करेण-एकहस्तेन। आननावरोधिनीः-मुखावरणकरीः। जटाः समुत्सारयन्-केशानन्यतः क्षिपन्। अश्रुजलच्छलेन-बाष्पव्याजेन। अन्तःप्रविष्टम् शरीरान्तर्गतम्। अच्छोदसरःसलिलम्-अच्छोदसरोवरपानीयम्। उद्वमन्-उद्गिरन्। आताम्राभ्याम्-रक्ताभ्याम्। उद्विग्नाकृतिः आकारेण उद्वेगं प्रकटीकुर्वन्। तापसकुमारकः-मुनिपुत्रः। सहसैव-शीघ्रमेव। उदतिष्ठत्-बहिरभूत्। उत्थाय-जलाद् बहिरागत्य। उद्दामबाष्पजलनिरोधपर्याकुलया-अतिवेगवाहिनेत्रजलनिरोधव्यग्रया। बद्धलक्ष्यया-लक्ष्ये द्रष्टव्ये स्थिरया। विलोकयन्तीम्-तापसकुमारमीक्षमाणाम्। उपसृत्य-समीपं गत्वा। शोकगद्गदम्-शोकेनोपहताक्षरम्। गन्धर्वराजपुत्रि-अयि गन्धर्वराजतनये महाश्वेते। जन्मान्तरादिवागतः-जन्मान्तरमिवापन्नः। (बहोः कालात्परं दृष्टः) प्रत्यभिज्ञायते-सोऽयमिति परिचीयते। सा-महाश्वेता। एवम्-पूर्वोक्तरूपेण। पृष्टा-जिज्ञासिता सती। शोकानन्दमध्यवर्त्तिनी-शोकस्य आनन्दस्य च मध्ये स्थिता। (शोकः प्रियतमसुहृदवलोकने प्रियतमविरहस्योद्दीपनात् आनन्दश्च प्रियमित्रदर्शनादिति बोध्यम्) ससंभ्रममुत्थाय-वेगेनोत्थाय। कृतपादवन्दना-विहितप्रणामा। प्रत्यवादीत्-प्रत्युत्तरं ददौ। एवंविधापुण्यवती-एतादृशी पापिनी। प्रत्यभिजानामि-सोऽयमिति स्मरामि। युक्ता-उपपन्ना। अनात्मज्ञायाम्-आत्मानमपरिचिन्वत्याम्। व्यामोहहता-किंकर्त्तव्यतामूढा। असौ-पुण्डरीकः। उत्क्षिप्य नीतः-उत्थाप्य नीतः। वृत्तम्-समाचारः। वार्त्ता-स्वीयो वृत्तान्तः। देवेन-पुण्डरीकेण। सः-सलिलाद्विर्ग-

---

जटाओं में से पानी की बूंदें चू रही थीं, जटाओं की शिखायें इधर-उधर लटक रही थीं, जो मुख पर बिखर रही थीं, संस्कार नहीं करने से जटायें ऐसी लग रही थीं, मानो बहुत समय से ऊपर बंधी रही हों, गीले शरीर से लिपटे हुए यज्ञोपवीत मृणालतन्तु के समान लग रहे थे, उसने शुष्क कमलिनीपत्र के समान पीताभ पुराने मंदारवृक्षवल्कल से परिकर बांधा था, वह तपस्वी बालक मुख को ढकनेवाली जटाओं को हाथों से ऊपर उठा रहा था, आंखों से पानी बह रहा था मानो अच्छोद सरोवर का समाया हुआ जल बाहर निकल रहा हो, उसकी आकृति घबड़ाई हुई थी। पानी से निकलकर दूर से ही आंसू से भरी होने पर भी लक्ष्य को देखने वाली आंखों से देखती हुई महाश्वेता के समीप जाकर उस तपस्वी बालक ने शोक-गद्गद स्वर में कहा—हे गन्धर्वराजपुत्रि, मैं जन्मान्तर से लौटा हुआ-सा हूँ, आप मुझे पहचान रही हैं या नहीं ? इस तरह पूछी गई महाश्वेता शोक और आनन्द के मध्य में रहकर घबड़ाकर उठी, चरण छूकर इस प्रकार कहने लगी। भगवन् कपिञ्जल, क्या मैं ऐसी पापिनी हूँ कि आपको भी नहीं पहचान सकूँगी। अथवा—मेरे समान अनात्मज्ञ जन के सम्बन्ध में ऐसी सम्भावना ठीक ही है जो मैं किङ्कर्त्तव्य-विमूढ़ होकर महाराज पुण्डरीक के स्वर्गगामी हो जाने पर भी जी रही हूँ। कृपया यह बताइये कि उन्हें कौन उठा ले गया ? क्यों उठा ले गया ? उनका क्या समाचार है ? वह कहाँ है ? आपको क्या हो

तावता कालेन वार्तापि न दत्ता कुतो वा त्वमेकाकी देवेन विना समागतः।' स त्वेवं पृष्टो महाश्वेतया विस्मयोन्मुखेन कादम्बरीपरिजनेन चन्द्रापीडानुगामिना च राजपुत्रलोकेनोपर्युपरि पातिना वीक्ष्यमाणः प्रत्यवादीत्।

"गन्धर्वराजपुत्रि श्रूयताम्। अहं हि कृतार्तप्रलापामपि त्वामेकाकिनीं समुत्सृज्य वयस्यस्नेहादाबद्धपरिकरः क्व मे प्रियसुहृदमपहृत्य गच्छसीत्यभिधाय तं पुरुषमनुबध्नञ्जवेनोदपतम्। स तु मे प्रतिवचनमदत्त्वैव गीर्वाणवर्त्मनि विस्मयोत्फुल्लनयनैरवलोक्यमानो वैमानिकैरवगुण्ठितमुखीभिरवमुच्यमानगगनमार्गो दिव्याङ्गनाभिरभिसारिकाभिरालोलतारकेक्षणाभिरितस्ततः प्रणम्यमानस्तारकाभिरम्बरसरःकुमुदाकरमतिक्रम्य तारागणं चन्द्रिकाभिरामसकललोकं चन्द्रलोकमगच्छत्। तत्र च महोदयाख्यायां सभायामिन्दुकान्तमये महति पर्यङ्के तत्पुण्डरीकशरीरं स्थापयित्वा मामवादीत। 'कपिञ्जल जानीहि मां चन्द्रम-

---

तस्तापसकुमारकः कपिञ्जलः। एवम्–पूर्वोक्तरूपेण। विस्मयोन्मुखेन–आश्चर्यवशादुपरिकृतवदनेन। चन्द्रापीडानुगामिना–चन्द्रापीडसहागतेन। राजपुत्रलोकेन–राजकुमारगणेन। उपर्युपरिपातिना–एकैकश आगच्छता।

गन्धर्वराजपुत्रि–महाश्वेते। कृतार्तप्रलापाम्–आर्त्तप्रलापपरायणाम्। एकाकिनीम्–असहायाम्। समुत्सृज्य–विहाय। वयस्यस्नेहात्–मित्रानुरागवशात्। आबद्धपरिकरः–बद्धकक्षः। अपहृत्य–बलाद् गृहीत्वा। तं पुरुषम्–पुण्डरीकापहर्त्तारं पुमांसम्। अनुबध्नन्–अनुसरन्। जवेन उदपतम्–वेगेन उत्पतितः। सः–पुण्डरीकापहर्त्ता पुरुषः। मे–मह्यम् कपिञ्जलाय। प्रतिवचनम्–उत्तरम्। गीर्वाणवर्त्मनि–आकाशे। विस्मयोत्फुल्लनयनैः–विस्मयविकसिताक्षैः। अवलोक्यमानः–दृश्यमानः। वैमानिकैः–विमानयायिभिः आकाशे सञ्चरद्भिः। अवगुण्ठितमुखीभिः–आवृतवदनाभिः दिव्याङ्गनाभिः–अप्सरोभिः। अवमुच्यमानगगनमार्गः–त्यक्तव्योमपथः। अभिसारिकाभिः–प्रियतमगृहाय प्रस्थिताभिः। आलोलतारकेक्षणाभिः–चलकनीनिकाशालिनेत्राभिः। तारकाभिः–ताराभिः। अम्बरसरःकुमुदाकरम्। आकाशसरोवरस्य कुमुदाकरस्वरूपम्। तारागणम्–नक्षत्रलोकम्। अतिक्रम्य–उल्लङ्घ्य। चन्द्रिकाभिरामसकललोकम्–कौमुदीसमुद्भासमानसमस्तभागम्। महोदयाख्यायाम्–तन्नाम्ना प्रसिद्धायाम्। सभायाम्–परिषदि। (भवनविशेषे) इन्दुकान्तमये–चन्द्रकान्तमणिरचिते। महति–विशाले। पर्यङ्के–शयनीये। तत्–स्वेन नीतम्। माम्–कपिञ्जलम्। माम् चन्द्रमसं जानीहि–अहं

गया था कि इतने दिनों तक खबर तक नहीं भेजी। आप उन्हें छोड़कर अकेले कैसे चले आये? महाश्वेता ने जब इस प्रकार पूछा तब कादम्बरी के परिजन तथा चन्द्रापीड के परिजन राजगण कपिञ्जल की ओर देख रहे थे, कपिञ्जल ने कहा—

"गन्धर्वराजपुत्रि, सुनिये, आर्त्त प्रलाप करती हुई अकेली आपको छोड़ कर मित्रप्रेमाधीन मैं—मेरे मित्र को लिये हुए कहाँ जा रहे हो? यह कहता हुआ परिकर बांधकर उस पुरुष के पीछे वेग से उड़ चला। वह पुरुष मुझे बिना उत्तर दिये ही चन्द्रलोक चला गया। आकाश में विमानचारीगण उसे आश्चर्य-चकित नयनों से देख रहे थे। अभिसार करने वाली मुंह ढँक कर चलती हुई दिव्याङ्गनायें चञ्चल नयनों से उसे मार्ग देती जा रही थीं, तारे उसे प्रणाम कर रहे थे।

आकाशरूप सरोवर के कुमुदाकररूप तारागण को पार कर चन्द्रिका से समस्त दिशावकाश को उज्ज्वल करने वाले चन्द्रलोक में उसने प्रवेश किया। वहाँ पहुँच कर महोदया नामक सभा में इन्द्रकान्तमणि निर्मित विशाल पर्यङ्क पर पुण्डरीक के शरीर को रखने के बाद उस पुरुष ने मुझसे कहा। कपिञ्जल, तुम मुझे चन्द्रमा जानो। उदयाचल पर आरूढ़ मैं संसार के अनुग्रहार्थ अपना कार्य कर रहा था, उसी समय तुम्हारे इस मित्र ने कामापराध से प्राणत्याग करते हुए, मुझे बिना अपराध के शाप दे दिया। "दुष्ट तथा अभागा चन्द्रमा, जिस प्रकार तुमने मुझे अपनी किरणों से सन्तापित करके अनुरागी बना डाला, और प्रियतमा के साथ समागम नहीं होने से

सम्। अहं खलूदयगतो जगदनुग्रहाय स्वव्यापारमनुतिष्ठन्ननेन ते प्रियवयस्येन कामापराधाज्जीवितमुत्सृजता निरपराधः संशप्तः। 'दुरात्मन्निन्दुहतक यथाहं त्वया करैः संताप्योत्पन्नानुरागः सन्नसंप्राप्तहृदयवल्लभासमागमसुखः प्राणैर्वियोजितस्तथा त्वमपि कर्मभूमीभूतेस्मिन्भारते वर्षे जन्मनि जन्मन्येवोत्पन्नानुरागोऽप्राप्तसमागमसुखस्तीव्रतरां हृदयवेदनामनुभूय जीवितमुत्स्रक्ष्यसि' इति। अहं तु तेनास्य शापहुतभुजा झटिति ज्वलित इव निरागाः किमनेनात्मदोषानुबन्धेन निर्विवेकबुद्धिना शप्तोस्मीत्युत्पन्नकोपस्त्वमपि मत्तुल्यदुःखसुख एव भविष्यसीति प्रतिशापमस्मै प्रायच्छम्। अपगतामर्षश्च विवेकमागतया बुद्ध्या विमृशन्महाश्वेताव्यतिकरमस्याधिगतवानस्मि। वत्सा तु महाश्वेता मन्मयूखसंभवादप्सरसःकुलाल्लब्धजन्मनि गौर्यामुत्पन्ना। तया चायं भर्ता स्वयंवृतः। अनेन च स्वयंकृतादेवात्मदोषान्मया सह मर्त्यलोके वारद्वयमवश्यमुत्पत्तव्यम्। अन्यथा जन्मनि जन्मन्येषा वीप्सैव

चन्द्र इत्यवगच्छ। उदयगतः–उदितः। जगदनुग्रहाय–संसारस्य कल्याणाय। स्वव्यापारम्–लोकावभासनम्। अनुतिष्ठन्–आचरन्। अनेन मया नीतेन। प्रियवयस्येन–प्रियसुहृदा। कामापराधात्–कन्दर्पदोषात्। जीवितमुत्सृजता–म्रियमाणेन सता। निरपराधः–विनैव कमपि दोषम्। संशप्तः–आक्रुष्टः। शापप्रकारमाह–दुरात्मन् इत्यादिना। दुरात्मन् दुष्ट, इन्दुहतक चन्द्र, यथा–येन प्रकारेण। अहम्–पुण्डरीकः। करैः–स्वीयैः किरणैः सन्ताप्य–सन्तापं प्रापय्य। उत्पन्नानुरागः–समुत्पादितप्रीतिः। अप्राप्तहृदयवल्लभासमागमसुखः–प्रेयसीसमागमजन्यमानन्दमलभमानः। प्राणैर्वियोजितः–मारितः। तथा–तेनैव प्रकारेण। त्वम्–चन्द्रमाः। कर्मभूमीभूते–कर्त्तव्यभूमिस्वरूपे (कर्त्तव्यफलभोगाय क्लृप्ते) भारते वर्षे तन्नामके भूखण्डे। जन्मनि जन्मनि–प्रतिजन्म। उत्पन्नानुरागः–सञ्जातप्रीतिः। अप्राप्तसमागमसुखः–अनधिगतमिलनानन्दः। तीव्रतराम्–अत्युत्कटाम्। हृदयवेदनाम्–मानसीं व्यथाम्। अनुभूय–भुक्त्वा। जीवितम्–उत्स्रक्ष्यसि–मरिष्यसि। अस्य–पुण्डरीकस्य। शापहुतभुजा–शापाग्निना। ज्वलितः–सन्तप्त इव। निरागाः–अकृतापराधः। आत्मदोषानुबन्धेन–स्वयंकृतं दोषं परस्मिन्नारोप्य। निर्विवेकबुद्धिना–अविवेकिना। शप्तः–दत्तशापः। इति उत्पन्नकोपः–एवमुदितक्रोधः। मत्तुल्यदुःखसुखः–मयि दुःखिनि दुःखी, सुखिनि च सुखितः। प्रतिशापम्–शापस्योत्तररूपेण दत्तं शापम्। प्रायच्छम्–दत्तवान्। अपगतामर्षः–वीतकोपः। विवेकमागतया–विवेकमुपागतया। बुद्ध्या–मत्या। विमृशन्–विचारयन्। महाश्वेताव्यतिकरम्–महाश्वेतया सम्बन्धम्। अस्य–पुण्डरीकस्य। अधिगतवान्–ज्ञातवान्। कोपनिवृत्तौ सत्यां विवेकमाप्तायां बुद्धौ मया पुण्डरीकस्यास्य महाश्वेतया संबन्धः काम्यमानतास्वरूपोऽवगत इत्याशयः। वत्सा शिशुः। मन्मयूखसंभवात्–मत्किरणत उत्पन्नात्। अप्सरःकुलात्–अप्सरसां वंशात्। लब्धजन्मनि–उत्पन्नायाम् गौर्याम्–गौरीनामिकायाम्। तया–परम्परासम्बन्धेन मदपत्यरूपया वत्सया महाश्वेतया। अयम्–पुण्डरीकः। स्वयं भर्ता वृतः–आत्मनैव पतिभावेन स्वीकृतः। अनेन–पुण्डरीकेण। स्वयंकृतात्–आत्मनैवानुष्ठितात्। मया सह–चन्द्रमसा सार्धम्। वारद्वयम्–द्विधा। उत्पत्तव्यम्–जन्म ग्राह्यम्। अन्यथा–

निष्प्राण कर डाला है, उसी प्रकार तुम भी कर्मभूमि भारतवर्ष में जन्म-जन्म में अनुरागी बनकर प्रियतमा को नहीं पा सकने के कारण तीव्र मनोव्यथा का अनुभव करते हुये प्राणत्याग करोगे"। मैं तो तुम्हारे मित्र के शापदहन से प्रज्वलित सा हो उठा। मैं निरपराध हूँ फिर भी यह गलती के चलते विवेकशून्य होकर मुझे ही शाप दे रहा है, ऐसा सोचने पर मुझे क्रोध हो आया, मैंने भी प्रतिशाप दे दिया कि तुम भी हमारी ही तरह सुख-दुःख भोगा करोगे। जब मेरा क्रोध शान्त हुआ, मेरी विवेक-बुद्धि लौटी, तब विचार करने पर मुझे ज्ञात हुआ कि इसमें तो महाश्वेता का सम्बन्ध है। वत्सा महाश्वेता मेरी आत्मीया है क्योंकि वह हमारे मयूख से पैदा होने वाले अप्सरोवंश में उत्पन्ना गौरी नामक अप्सरा की कन्या है। महाश्वेता ने स्वयं इसे स्वामीरूप में वरण किया है। इसे अब अपने दोष से मेरे साथ दो बार मर्त्यलोक में जन्म लेना ही पड़ेगा, अन्यथा 'जन्मनि जन्मनि' इस पद की द्विरुक्ति पूरी नहीं होगी। अतः जबतक यह शापसे मुक्त नहीं होता है तब तक इसके निर्जीव शरीर का

न चरितार्थो भवति। तद्यावदयं शापदोषादपैति तावदस्यात्मना विरहितस्य शरीरस्य मा विनाशो भूदिति मयेदमुत्क्षिप्य समानीतम्। वत्सा च महाश्वेता समाश्वासिता। तदिदमत्र मत्तेजसाप्यायमानमा शापक्षयात्स्थितम्। अधुना त्वं गत्वैनं वृत्तान्तं श्वेतकेतवे निवेदय। महाप्रभावोऽसौ कदाचिदत्र प्रतिक्रियां कांचिदपि करोति।' इत्युक्त्वा मां व्यसर्जयत्।

अहं तु विना वयस्येन शोकावेगान्धो गीर्वाणवर्त्मनि धावन्नन्यतममतिक्रोधनं वैमानिकमलङ्घयम्। स तु मां दहन्निव रोषहुतभुजा भ्रुकुटिविकरालेन चक्षुषा निरीक्ष्याब्रवीत्। 'दुरात्मन्मिथ्यातपोबलगर्वित यदेवमतिविस्तीर्णे गगनमार्गे त्वयाहमुद्दामप्रचारिणा तुरंगमेणेवोल्लङ्घितस्तस्मात्तुरंगम एव भूत्वा मर्त्यलोकेऽवतर' इति। अहं तु तमुद्बाष्पपक्ष्मा कृताञ्जलिरवदम्। 'भगवन्वयस्यशोकान्धेन त्वं मयोल्लङ्घितो नावज्ञया। तत्प्रसीद। उपसंहर शापमाशु त्वमिमम्' इति। स तु मां पुनरवादीत्। 'यन्मयोक्तं तन्नान्यथा भवितुमर्हति। तदेतत्ते करोमि कियन्तमपि कालं यस्यैव वाहनतामुपयास्यसि तस्यैवावसाने स्नात्वा विगतशापो भविष्यसि!' इत्येवमुक्तस्तु तमहमवदम्। 'भगवन्यद्येवं ततो विज्ञापयामि।

यदि वारद्वयमयं सह मया मर्त्यलोके जन्म न गृह्णीयात्तदा। 'जन्मनि-जन्मनि' इति वीप्साद्विरुक्तिः। चरितार्था-सफला। शापदोषात्-शापप्रभावात्। अपैति-मुक्तो भवति। आत्मना विरहितस्य-निष्प्राणस्य। विनाशः-शीतवातातपादिना नाशः। इति-अस्मात्कारणात्। इदम्-पुण्डरीकशरीरम्। इदम्-पुण्डरीकस्य शरीरम्। आप्यायमानम्-रक्षितं सत्। श्वेतकेतवे-पुण्डरीकपित्रे। प्रतिक्रियाम्-कामपि प्रत्युपायम्। व्यसर्जयत्-आज्ञापयत् (गन्तुमिति शेषः)।

विना वयस्येन-मित्रवियोगेन। शोकावेगान्धः-शोकाधिक्येन नष्टदृष्टिः। गीर्वाणवर्त्मनि-आकाशे। धावन्-द्रुतपदं गच्छन्। अतिक्रोधनम्-अतिकोपनम्। वैमानिकम्-व्योमयानेन चरन्तम्। अलङ्घयम्-अतिक्रम्य गतवान्। सः-वैमानिकः क्रोधी। माम्-कपिञ्जलम्। रोषहुतभुजा-कोपाग्निना। दहन्-भस्मीकुर्वन्। भ्रुकुटिकरालेन-वक्रभ्रूकठोरेण। चक्षुषा-नेत्रेण। निरीक्ष्य-दृष्ट्वा। दुरात्मन्-दुष्ट। मिथ्यातपोबलगर्वित-मृषातपश्चरणप्रभावदृप्त। अतिविस्तीर्णे-अत्यायते। उद्दामप्रचारिणा-निरर्गलं चलता। उल्लङ्घितः-अतिक्रान्तः। तुरङ्गमो भूत्वा-अश्वयोनौ जन्म गृहीत्वा। मर्त्यलोकेऽवतर-भूलोके गच्छ। उद्बाष्पपक्ष्मा-उद्गताश्रुः कृताञ्जलिः-योजितकरद्वयं प्रणमन्। वयस्यशोकान्धेन-मित्रवियोगदुःखितेन। अवज्ञया-तिरस्कारेण। उपसंहर-विगतप्रभावं कुरु। अन्यथा-विपरीतम्। वाहनताम्-यानभावम्। अवसाने-मृत्यौ। विगतशापः-समाप्तशापप्रभावः। तम्-शापप्रदं वैमानिकम्। तेन-यद्वियोगान्धोऽहं भवन्तं लङ्घ-

---

विनाश न हो जाय, इसलिये मैं इसका शरीर उठा लाया हूँ। वत्सा महाश्वेता को भी मैंने आश्वासन दे दिया है। इस तरह तुम्हारे मित्र का यह शरीर मेरे तेज से सुरक्षित यहाँ पड़ा रहेगा ? अब तुम जाकर यह सारा समाचार श्वेतकेतु से कह दो, वह बड़े प्रभावशाली हैं, कदाचित् इस प्रसङ्ग में कुछ प्रतिक्रिया करने लगें। इतना कहकर चन्द्रमा ने मुझे विदा कर दिया।

मैं तो मित्र के बिना शोकवेग से अन्धा हो रहा था, आकाश में दौड़ते हुए मैंने अतिक्रोधी एक वैमानिक का लङ्घन कर डाला। उस वैमानिक ने मुझे क्रोधाग्नि से जलाते हुए भृकुटिभयङ्कर नेत्र से देखकर कहा—दुरात्मन्, मिथ्या तपस्या के बल से गर्वित, इस विस्तृत आकाश-प्रदेश में तुमने वेग से जाते हुए घोड़े की तरह मेरा लङ्घन किया है अतः तुमको घोड़ा ही बनकर पृथ्वी पर अवतार लेना होगा। मेरी आंखों में आंसू भर आया, मैंने प्रणाम करके उनसे कहा—भगवन्, मित्र के शोक से अन्धा होकर मैंने आपका लङ्घन किया है, तिरस्कार-बुद्धि से नहीं- अतः प्रसन्न हों, अपने इस शाप को लौटा लें। उन्होंने फिर से मुझे कहा—मैंने जो कह दिया वह अन्यथा नहीं हो सकता है। इतना मैं कर देता हूँ कि कुछ दिनों तक जिसके वाहन के रूप में रहोगे, उसके समाप्त होते ही स्नान करके शापमुक्त हो जाओगे। इस तरह कहने पर मैंने उनसे फिर कहा—भगवन्, यदि ऐसी बात है तो मेरा एक निवेदन है, मेरे प्रियमित्र पुण्डरीक भी शाप के कारण चन्द्रमा के साथ मर्त्यलोक में ही

तेनापि मत्प्रियवयस्येन पुण्डरीकेण चन्द्रमसा सह शापदोषान्मर्त्यलोके एवोत्पत्तव्यम्। तदेतावन्तमपि भगवान्प्रसादं करोतु मे दिव्येन चक्षुषावलोक्य यथा तुरंगमत्वेपि मे तेनैव प्रियवयस्येन सहावियोगेन कालो यायात्' इति। स त्वेवमुक्तो मुहूर्तमिव ध्यात्वा पुनर्माम-वादीत्। 'अनया स्नेहलतया ते ममार्द्रीकृतं हृदयम्। तदालोकितं मया। उज्जयिन्यामपत्य-हेतोस्तपस्यतस्तारापीडनाम्नो राज्ञः सनिदर्शनं चन्द्रमसा तनयत्वमुपगन्तव्यम्। वयस्ये-नापि ते पुण्डरीकेण तन्मन्त्रिण एव शुकनासनाम्नः। त्वमपि तस्य महोपकारिणश्चन्द्रात्मनो राजपुत्रस्य वाहनतामुपयास्यसि' इति। अहं तु तद्वचनानन्तरमेवाधःस्थिते महोदधौ न्यपतम्। तस्माच्च तुरंगीभूयैवोदतिष्ठम्। संज्ञा तु मे तुरंगत्वेनापि न व्यपगता। येनायं मयास्यैवार्थस्य कृते किन्नरमिथुनानुसारी भूमिमेतामानीतो देवश्चन्द्रमसोऽवतारश्चन्द्रापीडः। योप्यसौ प्राक्तनानुरागसंस्कारादभिलपन्नजानत्या त्वया शापाग्निना निर्दग्धः सोपि मे वयस्यपुण्डरीकस्यावतारः।"

यन् शापं प्राप्तवानस्मि तेन पुण्डरीकेण। उत्पत्तव्यम्–जन्म ग्राह्यम्। एतावन्तम्–इयन्तम्। प्रसादम्–अनुग्रहम्। दिव्येन–कालदेशाव्यवहितमपि वस्तु साक्षात्कर्तुं शक्तेन अलौकिकेन। तुरङ्गमत्वे–अश्वभावे सत्यपि। तेनैव-प्रियवयस्येन–पुण्डरीकनाम्ना मित्रेण। अवियोगेन–संयुक्तदशायाम्। यायात्–व्यतीयात्। मुहूर्तं ध्यात्वा–क्षणं विचार्य। स्नेहलतया–प्रीतिपरायणतया। आर्द्रीकृतम्–सिक्तम्। आलोकितम्–दृष्टम्। अपत्यहेतोः–पुत्रलाभार्थम्। तपस्यतः–तपस्यां कुर्वतः। सनिदर्शनम्–पूर्वं स्वप्नादिना स्वजन्मसूचनां प्रदाय। उपगन्तव्यम्–प्राप्यम्। ते वयस्येन–पुण्डरीकेण। तन्मन्त्रिणः–तारापीडामात्यस्य। तनयत्वमुप-गन्तव्यमिति अत्रापि वाक्ये योजनीयम्। महोपकारिणः–उपकर्तृषु प्रथमस्य। राजपुत्रस्य। चन्द्रापी-डस्य। वाहनतामुपयास्यसि–अश्वभावं प्राप्स्यसि। तद्वचनानन्तरम्–तस्य वचनस्य विरामे। महोदधौ–सागरे। न्यपतम्–निपतितः। तस्मात्–सागरात्। तुरङ्गीभूय–अश्वत्वमासाद्य। उदतिष्ठम्–बहिर्गतः। संज्ञा–चेतनाशक्तिः। अस्यैवार्थस्य कृते–इदमेव प्रयोजनं साधयितुम्। किन्नरमिथुनम्–गन्धर्वयुगलम्। भूमिमेताम्–इदं स्थानम्। आनीतः–प्रापितः। प्राक्तनानुरागसंस्कारात्–पूर्वजन्मगतप्रीतिवासनावशात्। अभिलपन्–प्रेमकथाः कुर्वन्। अजानत्या–पुण्डरीकावतारोऽयमित्यनवगच्छन्त्या। त्वया–महाश्वेतया। शापाग्निना निर्दग्धः–शापेन संतापितः–शुकयोनिं प्रापितः। अवतारः–रूपान्तरम्।

जन्म लेंगे। अतः दिव्य दृष्टि से देखकर आप यह भी अनुग्रह करें कि अश्वजन्म में भी मैं अपने मित्र से अवियुक्त रहकर कालयापन कर सकूं। उस वैमानिक ने थोड़ी देर सोचकर फिर कहा—तुम्हारी यह स्नेहभावना मुझे आर्द्र कर रही है, मैंने देख लिया। उज्जयिनी नगरी में पुत्र के निमित्त तपस्या करने वाले तारापीड के घर चन्द्रमा को स्पष्टरूप में पुत्रत्व ग्रहण करना है। तुम्हारे मित्र पुण्डरीक को भी तारापीड के मन्त्री शुकनास का पुत्रत्व ग्रहण करना है। तुम भी उसी महोपकारी चन्द्रापीड का वाहन बनोगे। उसकी बात के समाप्त होते ही मैं समुद्र में गिर पड़ा। समुद्र से मैं घोड़ा बनकर ही बाहर हुआ। अश्वत्व ग्रहण करने पर भी मेरा आन्तरिक ज्ञान अक्षुण्ण बना रहा। इसीलिये मैंने उसी कार्य को सिद्ध करने के लिये चन्द्रापीड को यहाँ पहुंचाया जो किन्नर-मिथुन का अनुसरण कर रहे थे। जिसे तुमने शापाग्नि से जला दिया है वह भी हमारे मित्र पुण्डरीक का ही अवतार है, वह पूर्व जन्म के अनुराग के संस्कार से तुम्हें चाहने लगा था, तुमको इसका ज्ञान नहीं रहा।

इन बातों को सुनकर महाश्वेता आर्त्तनाद करती हुई छाती पीटकर पृथ्वी पर गिर पड़ी–वह कहती जाती थी—'हा देव पुण्डरीक, आपने जन्मान्तर में भी मेरे स्नेह की याद कायम रखी, आपका जीवन मुझसे प्रतिबद्ध होता रहा, आप मेरे शरण, मेरे मुख को देखने वाले एवं मुझमें ही समस्त लोक को मानने वाले हैं, लोकान्तर में भी मैं ही राक्षसी आपके विनाश का कारण बनती रही हूँ। अभागे ब्रह्मा ने मुझे बनाकर यही प्रयोजन सिद्ध किया है कि बार-बार आपका वध करवाया है। मैंने स्वयं तुम्हारा वध किया है, मैं पापकारिणी किसे उलाहना

१. तुरंगत्वेऽपि।

इत्येतच्छ्रुत्वा 'हा देव पुण्डरीक, जन्मान्तरेष्वप्यविस्मृतमदनुराग, मत्प्रतिबद्धजीवित, मच्छरण, मन्मुखावलोकिन्मन्मयसकलजीवलोक, लोकान्तरगतस्यापि तेऽहमेव राक्षसी विनाशायोपजाता दग्धप्रजापतेरियदेव मन्निर्माणे दीर्घजीवितप्रदाने च प्रयोजनं निष्पन्नं यत्पुनः पुनस्ते व्यापादनम्, स्वयं हत्वा च पापकारिणी कमुपालभे किं ब्रवीमि किमाक्रन्दामि कमुपयामि शरणं को वा करोतु मयि दयां याचेहमात्मनैवाधुना देव प्रसीद कुरु दयां देहि मे प्रतिवचनमित्येतान्यक्षराण्युच्चारयन्त्यपि लज्जे, मन्ये च तवाप्येवमुत्पन्नं मन्दभाग्यायां मयि वैराग्यं येनैवमपि विप्रलपन्त्यां न प्रतिवचनं ददासि, हा हतास्म्यनेनैवात्मनो जीवितस्योपर्यनिर्वेदेन' इत्युन्मुक्तार्तनादा सोरस्ताडनमवनावात्मानमपातयत्।

कपिञ्जलस्तु तथाकृतप्रलापां सानुकम्पमवादीत्। 'गन्धर्वराजपुत्रि, कस्तवात्र दोषो येनैवमनिन्दनीयमात्मानं निन्दापदैर्योजयसि। को वाऽधुना सुखपाकेऽनुभवनीये दुःखस्यावसरः येनैवात्मानं शुचा व्यापादयसि। यदसह्यतरं तत्त्वया निर्व्यूढं दृढीकृतहृदययास्यैव समागमप्रत्याशया। यथा च शापदोषादिदमुपगतं भवत्योर्द्वयोरपि दुःखं तथा मया कथितमेव। चन्द्रमसोपि भारती भवतीभ्यां श्रुतैव। तदुन्मुच्यतामयमात्मनो

एतत्-पुरोक्तरूपं मदुक्तम्। अविस्मृतमदनुरागः-ममानुरागं स्मरन्। मत्प्रतिबद्धजीवित-मया विनाशितजीवन। मच्छरण-मदाश्रय। मन्मयसकलजीवलोक-सकलमपि जीवलोकं मन्मयं पश्यन्। लोकान्तरगतस्य-अन्यं लोकं प्राप्तस्य। विनाशायोपजाता-मृत्युकारणतां गता। दग्धप्रजापतेः-दुष्टस्य ब्रह्मणः। मन्निर्माणे-मम रचनायाम्। दीर्घजीवितप्रदाने-चिरायुष्यसृष्टौ। व्यापादनम्-मारणम्। स्वयं-हत्वा-आत्मना त्वां विपाद्य। कम्-उपालभे-तव मृत्यौ कस्य दोषं दर्शयेयम्। प्रतिवचनम्-प्रत्युत्तरम्। उच्चारयन्ती-भाषमाणा। लज्जे-लज्जामनुभवामि। मन्दभाग्यायाम्-अभाग्यग्रस्तायाम्। दीर्घजीवितस्योपरि अनिर्वेदेन-चिरजीवनाविरक्त्या। उन्मुक्तार्त्तनादा-कृतप्रलापा। सोरस्ताडनम्-उरोदेशं कराभ्यामाहत्य। अवनौ-पृथिव्याम्।

तथाकृतार्त्तप्रलापाम्-तेन प्रकारेण विलपन्तीम्। सानुकम्पम्-सदयम्। अनिन्दनीयम्-सर्वगुणाधारतया निन्दाया अपात्रम्। निन्दापदैः-निन्दासूचकशब्दैः। योजयसि-सम्बध्नासि। सुखपाके-सुखप्रदे परिणामे। अनुभवनीये-भोक्तव्ये। शुचा व्यापादयसि-शोकेन विनाशयसि। असह्यतरम्-अतिदुःखप्रदतया सोढुमशक्यम्। निर्व्यूढम्-सोढम्। दृढीकृतहृदयया-हृदयं दृढतामारोपयन्त्या। समागमप्रत्याशया-मिलनस्य संभावनया। भवत्योः-तव कादम्बर्याश्च। भारती-वाणी। उन्मुच्यताम्-त्यज्यताम्। वयस्यस्य मम सुहृदः पुण्डरीकस्य। अश्रेयस्करः-अकल्याणाधायकः। शोकानुबन्धः-खेदप्रसङ्गः। द्वयोः-स्वस्य स्वप्रियस्य च श्रेयसे-कल्याणाय। अङ्गीकृतम्-स्वीकृतम्। अनुबध्यताम्-संपाद्यताम्। व्रतपरि-

---

दूँ? क्या कहूं? कैसे रोऊं? किसकी शरण में जाऊँ? मुझ पर दया ही कौन करेगा? मैं स्वयं प्रार्थना करती हूँ देव, आप प्रसन्न हों, दया करें, मेरी बातों का उत्तर दें, इन सारी बातों को कहने में भी लज्जा लगती है। मालूम पड़ता है कि आपको भी मुझ अभागी पर घृणा हो गई है जिससे इस प्रकार विलाप करने पर भी आप उत्तर नहीं दे रहे हैं। अपने जीवन पर मुझे घृणा नहीं हो रही है यही मेरा अभाग्य है।

इस प्रकार विलाप करती हुई महाश्वेता को कपिञ्जल ने दयापूर्वक कहा—गन्धर्वराजपुत्रि, इसमें आपका क्या दोष है जिससे आप अनिन्दनीय आत्मा को निन्दापदों से युक्त कर रही हैं। अब तो आपके सुख का समय आ रहा है दुःख का अवसर कहां है? आप स्वयं को इस तरह शोक से क्यों गलाती जाती हैं? इसी मिलन की आशा से आपने हृदय कड़ा करके असह्य कष्ट का भार उठाया है। जिस प्रकार शाप-दोष से आप दोनों सखियों पर यह दुःख आ पड़ा है सो सब मैंने बता ही दिया है। चन्द्रमा की वाणी भी आप दोनों ने सुन ही ली है। अतः अपने लिये तथा मेरे मित्र के लिये अकल्याणकर इस शोक का त्याग कीजिये। आपने अपने तथा मेरे मित्र के कल्याणार्थ जो व्रतपूर्वक तप करना प्रारम्भ किया है उसे जारी रखिये। भली भांति की गई तपस्या के लिये

वयस्यस्य चाश्रेयस्करः शोकानुबन्धः। द्वयोरेव श्रेयसे यदेव भवत्याङ्गीकृतं तदेवानुबध्यतां व्रतपरिग्रहोचितं तपः। तपसो हि सम्यक्कृतस्य नास्त्यसाध्यं नाम किंचित्। देव्या हि गौर्या तपसः प्रभावादतिदुरासदं स्मरारेरपि यावदासादितं देहार्धपदम्। एवं त्वमपि नचिरात्तथैव मे वयस्यस्याङ्के निजतपसः प्रभावात्पदमवाप्स्यसि।' इति महाश्वेतां पर्यबोधयत्।

उपशान्तमन्युवेगायां च महाश्वेतायां विषण्णदीनमुखी कादम्बरी कपिञ्जलमप्राक्षीत्। 'भगवन्पत्रलेखया त्वया चास्मिन्सरसि जलप्रवेशः कृतः। तत्किं तस्याः पत्रलेखायाः संवृत्तमित्यावेदनेन प्रसादं करोतु भगवान्' इति। स तु प्रत्यवादीत्। 'राजपुत्रि, सलिलपातानन्तरं न कश्चिदपि तद्वृत्तान्तो मया ज्ञातः। तदधुना क्व चन्द्रात्मकस्य चन्द्रापीडस्य क्व पुण्डरीकात्मकस्य वैशम्पायनस्य जन्म किं वाऽस्याः पत्रलेखाया वृत्तमिति सर्वथैवास्य वृत्तान्तस्यावगमनाय गतोऽहं प्रत्यक्षलोकत्रयस्य तातस्य श्वेतकेतोः पादमूलम्। इत्यभिदधान एव गगनमुदपतत्।

अथ गते तस्मिन्विस्मयान्तरितशोकवृत्तान्ता चन्द्रापीडमालोक्य गलितनयनपयसि यथास्थानमपसृत्य स्थितवति सपरिजने राजपुत्रलोके कादम्बरी महाश्वेतामवादीत्। 'प्रियसखि, तुल्यदुःखतां त्वया सह नयता न खल्वसुखं स्थापितास्मि भगवता विधात्रा।

ग्रहोचितम्-व्रतग्रहणानुकूलम्। सम्यक्कृतस्य-विधिवदनुष्ठितस्य। असाध्यम्-साधयितुमशक्यम्। गौर्या-पार्वत्या। तपसः प्रभावात्-तपोबलात्। दुरासदम्-दुरापम्। स्मरारेः-कामदहनस्य शिवस्य। देहार्धपदम्-अविभक्तशरीरभागत्वम्। नचिरात्-शीघ्रम्। निजतपसः प्रभावात्-स्वतपश्चर्याबलात्। मे वयस्यस्य-पुण्डरीकस्य। अङ्के-क्रोडदेशे। पर्यबोधयत्-सान्त्वयामास।

उपशान्तमन्युवेगायाम्-शान्तदुःखवेगायाम्। विषण्णदीनमुखी-खिन्नविवर्णवदना। अस्मिन् सरसि-अच्छोदसरोवरे-जलप्रवेशः-कृतः-जले निमग्नम्। संवृत्तम्-जातम्। इत्यावेदनेन-अस्यार्थस्य कथनेन। प्रसादम्-कृपाम्। प्रत्यवादीत्-प्रत्युत्तरं ददौ। सर्वथा-सर्वप्रकारेण। अवगमाय-ज्ञानाय। प्रत्यक्षलोकत्रयस्य-प्रत्यक्षीकृतविश्वत्रयघटनस्य सर्वज्ञस्य। श्वेतकेतोः-पुण्डरीकजनकस्य। गतः-गच्छामि (आदिकर्मणि निष्ठा) अभिदधानः-कथयन्।

अथ-एतदनन्तरम्। तस्मिन्-कपिञ्जले। गते-श्वेतकेतुपादमूलं प्रस्थिते सति। विस्मयेन कपिञ्जलवार्ताश्रवणजन्मनाऽऽश्चर्येण अन्तरितः तिरोभूतः शोकवृत्तान्तः शोको यस्यास्तथोक्ता। यथास्थानम्-यथोचिते स्थाने। गलितनयनपयसि-अश्रुप्रवाहप्लुतनयने। सपरिजने-भृत्यसहिते। राजपुत्रलोके-राजपुत्रगणे। स्थितवति-अवस्थिते सति। तुल्यदुःखताम्-समावस्थताम्। नयता-प्रापयता (मां त्वत्समानदुःखतां प्रापयता) भगवता विधात्रा-ब्रह्मणा। न खलु असुखं स्थापिता-न कष्टे पातिता। अस्मीति

कुछ भी असाध्य नहीं है। भगवती पार्वती ने तप के ही प्रभाव से अत्यन्त दुर्लभ शङ्कर का देहार्ध प्राप्त कर लिया। उसी तरह तुम भी शीघ्र ही अपने तप के प्रभाव से मेरे मित्र की गोद में स्थान प्राप्त करोगी। इस तरह कपिञ्जल ने महाश्वेता को समझाया ?

महाश्वेता के दुःख का वेग शान्त हुआ तब विषाददीनवदना कादम्बरी ने कपिञ्जल से पूछा—भगवन्, पत्रलेखा ने और आपने साथ-साथ इस तालाब के जल में प्रवेश किया। फिर पत्रलेखा का क्या हुआ? आप कृपया यह बतावें। कपिञ्जल ने उत्तर दिया—राजकुमारि, पानी में प्रवेश करने के बाद का कुछ भी वृत्तान्त मुझे ज्ञात नहीं है। अतः अब मैं चन्द्रात्मक चन्द्रापीड़ का जन्म कहां हुआ है? पुण्डरीकावतार वैशम्पायन का जन्म कहां हुआ है। पत्रलेखा का क्या हुआ? इन सारी बातों की जानकारी लिये लोकत्रयद्रष्टा तात श्वेतकेतु के पास जाता हूँ, यह कहता हुआ कपिञ्जल आकाश में उड़ गया।

कपिञ्जल के चले जाने पर आश्चर्य ने शोक-वृत्तान्त को आवृत कर लिया। चन्द्रापीड को देखकर रोते हुए सपरिजन राजकुमारगण थोड़ा हट कर बैठ गये, तब कादम्बरी ने महाश्वेता से कहा—प्रियसखि, महाश्वेते

अद्य मे शिरः समुद्धाटितम्। अद्य ते वदनं दर्शयन्ती प्रियसखीति चाभाषमाणा न लज्जे। तवाप्यहमद्यैव प्रियसखी संजाता। संप्रति मरणं जीवितं वा न दुःखाय मे। तत्कोऽपरः प्रष्टव्यो मया। केन वापरेणोपदेष्टव्यम्। यदेवं गते मत्करणीयं तदुपदिशतु मे प्रियसखी। नाहमात्मना किंचिदपि वेद्मि किं कृत्वा श्रेयः।' इत्युक्तवतीं कादम्बरीं महाश्वेता प्रत्यवादीत्। 'प्रियसखि, किमत्र प्रश्नेनोपदेशेन वा यदेवेयमनतिक्रमणीया प्रियतमसमागमप्रत्याशा कारयति तदेव करणीयम्। पुण्डरीकवृत्तान्तोऽद्य कपिञ्जलहस्तात्स्फुटीभूतः। तदा तु वाङ्मात्रकेणैव समाश्वासितया मया न पारितमन्यत्किंचिदपि कर्तुम्। तत्त्वमन्यत्किं करोषि-यस्याः प्रत्ययस्थानमिदं चन्द्रापीडशरीरमङ्क एवास्ते। तदन्यथात्वेऽस्य करणीयचिन्ता। यावत्पुनरिदमविनाशि तिष्ठति तावदेव तस्यानुवृत्तिं मुक्त्वा किमन्यत्करणीयम्। अप्रत्यक्षाणां हि देवतानां मृदश्मकाष्ठमय्यः प्रतिमाः श्रेयसे पूजासत्कारेणोपचर्यन्ते। किं पुनः प्रत्यक्षदेवस्य चन्द्रापीडनामान्तरितस्य चन्द्रमसो मूर्तिरनाराधितप्रसन्ना।'

शेषः। (त्वं दुःखिनी अहं न इत्यपि मम दुःखमेवासीत्, सम्प्रत्यावयोः समाना स्थितिर्जाता, तदहं विधात्रा सुखमेव स्थापितेत्यभिप्रायः) समुद्धाटितम्–उन्नतम्। ते तुभ्यम् वदनं दर्शयन्ती–मुखं साक्षात्कारयन्ती। अद्यैव-सम्प्रत्येव। (प्रियसख्याः समदुःखसुखताया औचित्येन सम्प्रत्येवाहं तव प्रियसखी संवृत्तास्मि, इतः पूर्वन्तु मम प्रियसखी त्वं नोपयुज्यतेस्म, आवयोर्भिन्नस्थितिकत्वादिति भावः) एवं गते–अस्यां स्थितौ। आत्मना–स्वयम्। अनतिक्रमणीया–लङ्घितुमशक्या। कारयति–कर्त्तुं प्रेरयति। कपिञ्जलहस्तात्–कपिञ्जलद्वारा। स्फुटीभूतः–प्रकटतां गतः। तदा–पुण्डरीकविपत्तिकाले। वाङ्मात्रकेण–केवलयाऽशरीरिण्या वाचा। समाश्वसितया–कृताश्वासनया। अन्यत् किञ्चित्–प्रतीक्षाभिन्नं किमपि। कर्त्तुं न पारितम्–विधातुं न शक्यतेस्म। यस्यास्तव। प्रत्ययस्थानम्–विश्वासभूमिः। अङ्के–क्रोडे। अस्य–चन्द्रापीडशरीरस्य। अन्यथात्वे–अक्रोडवर्त्तित्वे सति। करणीयचिन्ता–कर्त्तव्यगवेषणा। इदम्–चन्द्रापीडशरीरम्। अविनाशि–अक्षतम्। तावत्–तत्कालपर्यन्तम्। तस्यानुवृत्तिम्–चन्द्रापीडशरीरसेवाम्। मुक्त्वा–विहाय। अप्रत्यक्षाणाम्–अदृश्यानाम्। मृदश्मकाष्ठमय्यः–मृण्मयी, अश्ममयी, काष्ठमयी च। प्रतिमाः–मूर्त्तयः। श्रेयसे–कल्याणप्राप्तये। पूजासत्कारेण–सेवया। उपचर्यन्ते–समाद्रियन्ते। चन्द्रापीडनामान्तरितस्य–चन्द्रापीडसंज्ञया निह्नुतस्य। चन्द्रमसः अनाराधितप्रसन्ना–विनैवाराधनं प्रसादोन्मुखी (श्रेयसे स्यादिति किमु वक्तव्यमित्यर्थः)।

तुम्हारे साथ तुल्यदुःखिनी बनाकर ब्रह्मा ने मुझे सुख ही दिया है। आज मेरा मस्तक उन्नत हो रहा है। मैं आज तुम्हें अपना मुख दिखलाने तथा प्रियसखी कह कर पुकारने में लज्जा का अनुभव नहीं कर रही हूँ। आज ही मैं तुम्हारी वास्तविक प्रियसखी हो सकी हूं। अब मरना या जीना मेरे लिए दुःखप्रद नहीं रह गया है। अब मैं किससे पूछूं? दूसरा कौन उपदेश करेगा? मेरी प्रियसखी ही मुझे बतावे कि इस स्थिति में क्या करना चाहिए। मैं स्वयं नहीं समझ रही हूँ कि क्या करना हितकर होगा? इस प्रकार कहती हुई कादम्बरी को महाश्वेता ने उत्तर दिया—प्रियसखि, इसमें पूछना और कहना है क्या? अनतिक्रमणीय यह प्रिय-समागमाशा जो करावे वही करना है। पुण्डरीक का वृत्तान्त आज कपिजल के द्वारा स्पष्टरूप से ज्ञात हो गया है। उस समय तो वचनमात्र से आश्वासित होकर भी मैं कुछ नहीं कर सकी। तब तुम दूसरा क्या करोगी? तुम्हारे विश्वास के लिए पर्याप्त यह चन्द्रापीड का शरीर तुम्हारी गोद में ही विद्यमान है। तब तक उसकी अनुवृत्ति के अतिरिक्त करना ही क्या है? जब तक यह अविनाशी है। अप्रत्यक्ष देवी-देवताओं की काष्ठ-प्रस्तर की प्रतिमायें पूजा से सत्कृत की जाती हैं उनसे कल्याण होता है, चन्द्रापीड नाम से रूपान्तरित चन्द्रमा की मूर्ति तो बिना पूजा के ही प्रसन्न दीख रही है।

---

१. कपिञ्जलाख्यानात्।

इत्युक्तवत्यां महाश्वेतायां कादम्बरी तूष्णीमेवोत्थाय तरलिकया मदलेखया चोत्थाप्य तामखेदार्हां चन्द्रापीडतनुमन्यतरस्मिञ्छीतवातातपवर्षादिसर्वद्वन्द्वदोषरहिते शिलातले शनैरखेदयन्ती स्थापयित्वापनीतशृङ्गारवेषाभरणा मङ्गलमात्रकावस्थापितैककररत्नवलया स्नानशुचिर्भूत्वा परिधाय धौतशुचिनी दुकूले प्रक्षाल्य पुनः पुनर्गाढलग्नमधरकिसलये ताम्बूलरागमुपर्युपरिनिमीलितागतबाष्पवेगोत्तरललोचनान्यदेव किमप्यचिन्तितमनुत्प्रेक्षितमशिक्षितमनभ्यस्तमनुचितमपूर्वं बाला बलाद्विलोमप्रकृतिनाकार्यपण्डितेन दग्धवेधसा कार्यमाणा, यान्येव सुरभिकुसुमधूपानुलेपनानि सुरतोपभोगायानीतानि तैरेव देवतोचितामपचितिं संपाद्य चन्द्रापीडमूर्तौ, मूर्तिमतीव शोकवृत्तिरार्तरूपा, रूपान्तरमिव तत्क्षणेनैवागता, विगतजीवितेव शून्यमुखी, मुखावलोकिनी चन्द्रापीडस्य, पीडितोत्पीडित-

---

इत्युक्तवत्याम्-एवं कथितवत्याम्। तूष्णीम्-किञ्चिदप्यनुक्त्वा। उत्थाप्य-अवलम्ब्य। अखेदार्हाम्-क्लेशयितुमयोग्याम्। अन्यतरस्मिन्-एकस्मिन्। शीतम् जाड्यम्, वातः प्रखरो वायुः, आतपः सूर्यरश्मिः, वर्षाजलवृष्टिः तदादिभिः तत्प्रभृतिभिः सर्वैः द्वन्द्वदोषैः वैषम्यैः रहिते सर्वर्त्तुसुखप्रदे, अखेदयन्ती-अक्लेशयन्ती। अपनीतशृङ्गारवेषाभरणा-शृङ्गारोपयुक्तं वेषमाभरणं च विहाय। मङ्गलमात्रकाय केवलं शुभमाधातुम् अवस्थापितम् रक्षितम् एकस्य करस्य हस्तस्य रत्नवलयं मणिकङ्कणं यया तादृशी सती। स्नानशुचिः-स्नात्वा पवित्रा। धौतशुचिनी-धौते प्रक्षालिते अत एव च शुचिनी पवित्रे। दुकूले-परिधानीयमुत्तरीयञ्चेति द्वे वस्त्रे। परिधाय-धारयित्वा। अधरकिसलये-ओष्ठपल्लवे। गाढलग्नम्-अत्यन्तसमासक्तम्। ताम्बूलरागम्-नागवल्ली-सेवनजनितं रक्तिमानम्। पुनः पुनः प्रक्षाल्य-मार्जयित्वा। उपर्युपरि क्रमशः निमीलिते मुद्रणावसरे आगतैः उपस्थितैः बाष्पवेगैः अश्रुरयैः उत्तरले चञ्चले लोचने यस्यास्तथोक्ता। अन्यदेव-नितान्तभिन्नम्। अचिन्तितम्- मनसाप्यध्यातम्। अनुत्प्रेक्षितम्-असंभावितम्। अशिक्षितम्-अनभ्यस्तम्। अनुचितम्-स्वरूपायोग्यम्। किमपि अपूर्वम्-नवम्। विलोमप्रकृतिना-प्रतिकूलस्वभावेन। अकार्यपण्डितेन-कुकृत्यनिपुणेन। दग्धवेधसा-हतविधिना। बलात् कार्यमाणा-बलपूर्वकं कर्त्तुं प्रेर्यमाणा। सुरभीणि सुगन्धीनि कुसुमानि पुष्पाणि धूपानि अगुर्वादिधूपद्रव्याणि अनुलेपनानि चन्दनानि च। सुरतोपभोगयोग्यानि रतिकाले सेवितुमुपयुक्तानि। तैः-पुष्पधूपानुलेपनैः। चन्द्रापीडमूर्त्तौ-चन्द्रापीडस्य तनौ। देवतोचिताम्-देवयोग्याम्। अपचितिम्-पूजाम्। सम्पाद्य-कृत्वा। मूर्त्तिमती-शरीरधारिणी। शोकवृत्तिः-शोकावस्था। आर्त्तरूपा-कारुण्यव्यञ्जकाकृतिः। तत्क्षणेन-तावतैव कालेन। रूपान्तरम्-स्वरूपभेदम्। आगता-प्रतिपन्ना। विगतजीविता-निष्प्राणा। (इव) शून्यमुखी-विवर्णवदना। चन्द्रापीडस्य मुखावलोकिनी-मुखमीक्षमाणा। पीडितोत्पीडितहृदया-मानसीं व्यथामनुभवन्ती अपि। बाष्पमोक्षम्-अश्रुपातम्। रुन्धन्ती-निवारयन्ती। उद्दामवृत्तेः-भयङ्करात्। कष्टतमम्-

---

महाश्वेता ने जब इस प्रकार कहा तब कादम्बरी उठी, खेद नहीं सह सकने वाली चन्द्रापीड की देह को तरलिका तथा मदलेखा की सहायता से एक ऐसे प्रस्तरखण्ड पर रखवाया, जिस पर शीत, वात, धूप, वृष्टि का कुछ असर न पड़े, चन्द्रापीड की देह को उन लोगों ने धीरे-धीरे रखा जिससे उसे कष्ट न पहुँचे। इसके बाद कादम्बरी ने शृङ्गारवेष तथा भूषण उतार डाले, मङ्गलसूचक एक रत्नाभरणमात्र धारण किये रही। स्नान से पवित्र होकर उसने धुले हुए पवित्र वस्त्र धारण किये। अधररूप किसलय में लगे हुए ताम्बूलराग को बार-बार धोकर साफ किया। आँखें बार-बार ऊपर ही मुँद जाती थीं जिससे बाष्पवेग से वह चञ्चल हो रही थीं। ब्रह्मा ने विरुद्ध स्वभाव धारण करके ऐसा कार्य-पाटव प्रकट किया कि उस बाला कादम्बरी को वही कार्य करने पड़ गये जिसकी कभी चिन्ता नहीं की गई थी, जिसकी सम्भावना नहीं थी, जिसे सीखा नहीं था, जिसका अभ्यास नहीं था, जो अनुचित तथा सर्वथा अपूर्व था। जो सुगन्धित फूल, चन्दन, धूप सुरतोपभोग के लिए लाये गये थे उनका उपयोग कादम्बरी ने चन्द्रापीड-मूर्ति की देवतोचित पूजन में किया। उस समय कादम्बरी शरीरधारिणी आर्तरूपा शोकवृत्ति की तरह लगती थी। एक क्षण में ही वह रूपान्तर को प्राप्त हो गई।

हृदयापि रक्षन्ती बाष्पमोक्षम्, उद्दामवृत्तेः शोकादपि मरणादपि कष्टतमामवस्थामनुभवन्ती, तथैवाङ्के समारोपितचन्द्रापीडचरणद्वया, दूरागमनखिन्नेनापि बुभुक्षितेनाप्यप्रतिपन्नस्नानपानभोजनेनापि मुक्तात्मना राजपुत्रलोकेन स्वपरिजनेन च सह निराहारा तं दिवसमक्षिपत्।

यथैव च दिवसमशेषं तथैव तां गम्भीरमेघोपरोधभीमामनवरतगर्जितध्वनिकम्पितहृदयबन्धामाबद्धकलकलापिकुलकेकाकोलाहलाकुलितचेतोवृत्तिमुद्दामदर्दुरारटितबधिरितश्रोत्रेन्द्रियां दुर्दर्शतडित्संपातपीडितदिशमशनिनिर्ह्रादतर्जनापादितभुवनज्वरां ज्वलत्खद्योतनिवहजर्जरिततरुगहनतलतमःप्रसरभीषणतमां तमस्विनीमपि दूरीकृत्याबलासहभुवं भीतिमपरित्यक्तचन्द्रापीडचरणकमलाऽचेतितस्वशरीरखेदा जाग्रती समुपविष्टैव क्षणमिव क्षपां क्षपितवती। प्रातश्च तदुन्मीलितं चित्रमिव चन्द्रापीडशरीरमवलोक्य शनैः शनैः पाणिना

अधिककष्टप्रदाम्। अवस्थाम्–दशाम् अनुभवन्ती–भुञ्जाना। तथैव–पूर्ववत्। अङ्के–स्वक्रोडे। समारोपितचन्द्रापीडचरणद्वया–अवस्थापितचन्द्रापीडपादयुगला। दूरागमनखिन्नेन–दूरचलनश्रान्तेन। बुभुक्षितेन–भोक्तुमिच्छुता। अप्रतिपन्नस्नानभोजनेन–अकृतस्नानाहारेण। मुक्तात्मना–तत्र :स्थापितवपुषा। निराहारा–अकृतभोजना। अक्षिपत्–व्यतियापितवती। (अक्षपयदिति तु युक्तः पाठः)।

यथैव–येन प्रकारेण। अशेषं दिवसम्–समस्तं दिनम् (क्षपितवतीति योजनीयम्) तथैव–तेनैव प्रकारेण। गम्भीरमेघोपरोधभीमाम्–धीरघनघटाभीषणाम्। अनवरतं सततं गर्जितध्वनिना मेघशब्देन कम्पितः हृदयबन्धो मनो यस्यां तां तथोक्ताम्। आबद्धैः प्रारब्धैः कलैर्मधुरैः कलापिकुलानां मयूरसमूहानाम् केकाकोलाहलैः केकारवैः आकुलिता व्यग्रतां गमिता चेतोवृत्तिर्मनोदशा यस्यां तां तथोक्ताम्। उद्दामेन भीषणेन दर्दुरारटितेन भेकशब्देन बधिरितं बधिरीकृतं श्रोत्रेन्द्रियं कर्णरूपं श्रावणज्ञानसाधनं यस्यां तां तथोक्ताम्। दुर्दर्शेन–द्रष्टुमशक्येन तडित्संपातेन विद्युत्प्रकाशेन पीडिताः कष्टं प्रापिता दिशो यस्यां तां तथोक्ताम्। अशनेर्वज्रस्य निर्ह्रादेन शब्देन यत्तर्जनं भयजननं तेन आपादितः जनितः भुवनस्य विश्वस्य ज्वरः संतापो यस्यां तां तथोक्ताम्। ज्वलद्भिः प्रकाशमानैः खद्योतनिवहैः जर्जरितः क्षीणतां गमितः तरुगहनतले वृक्षाधोभागे तमःप्रसरः अन्धकारसमूहः तेन भीषणतमाम्–अतिभयानकाम्। तमस्विनीम्–अन्धकारपूर्णाम्। अबलासहभुवम्–स्त्रीस्वभावसुलभाम्। भीतिम्–भयम्। दूरीकृत्य–विहाय। अपरित्यक्तचन्द्रापीडचरणकमला–अत्यक्तचन्द्रापीडपादपद्मा। अचेतितस्वशरीरखेदा–स्वशरीरक्लेशमगणयन्ती। जाग्रती–अनिद्रिता। क्षणमिव–मुहूर्त्तवत्। क्षपाम्–रात्रिम्। क्षपितवती–व्यतियापयामास। तत्–गतप्राणम्। उन्मीलितम्–तूलिकयोद्भावितम्। चित्रम्–आलेख्यम्। (अनुपहतवर्णमविकृतञ्च)

मुर्दे की तरह उसका चेहरा फक पड़ गया, वह चन्द्रापीड का मुख देखा करती थी। हृदय के उत्पीडित होने पर भी वह आंसू को रोक रही थी। भयंकर शोक तथा मरण से भी कठोर स्थिति का अनुभव कर रही थी। चन्द्रापीड के चरणों को गोद में लिए हुए उसने दूरयात्रा से थके-मांदे, भूखे, स्नान-पान से रहित, गतप्राण राजकुमारों के साथ तथा अपने परिजन के साथ वह दिन बिता दिया, किसी ने भोजन नहीं किया।

जिस प्रकार कादम्बरी ने वह दिन बिताया उसी तरह उसने वह रात भी बिता दी। वह रात्रि गम्भीर मेघ के घिर आने से भयंकर हो रही थी। बराबर गर्जन के होते रहने से हृदय के बन्धन काँप उठते थे। मयूरों द्वारा किये गये केकाकोलाहल से चित्तवृत्ति व्याकुल हो जाया करती थी। दादुरों के सतत रटते रहने के कारण कान बधिर हो रहे थे। आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करने वाली बिजली से दिशायें पीड़ित हो रही थीं, बिजली के कड़कने से पृथ्वी सन्तप्त हो रही थी, चमकती हुई जुगनुओं के प्रकाश से वृक्षों तथा झाड़ियों के नीचे का अन्धकार नष्ट हो रहा था। कादम्बरी ने स्त्रीसुलभ भय का त्याग करके चन्द्रापीड के चरणों को नहीं छोड़ा, अपने शरीर की चिन्ता छोड़ दी, वह बैठी ही रही। प्रातःकाल में उसने पोंछे गये चित्र की तरह चन्द्रापीड की देह को

---

१. अतिनिर्ह्राद।

स्पृशन्ती पार्श्वस्थितां मदलेखामवादीत्। 'प्रियसखि मदलेखे, न वेद्मि किं रुचेर्वंशादुत निर्विकारतयैवेति। अहं तु तादृशीमेवेमां तनुमालोकयामि। त्वमपि तावदादरतो निरूपय।' इत्येवमुक्ता मदलेखा तां प्रत्यवादीत्। 'प्रियसखि किमत्र निरूपणीयम्। अन्तरात्मनो विरहाद्व्यापारमात्रकमस्योपरतम्। अन्यत्तादृशमेवेदं व्याकोशशतपत्राकारं मनागप्यनुन्मुक्तं श्रिया वदनम्। तथायं संवेल्लिताग्रभागः स्निग्धः कुन्तलकलापः। तथैवेयमिन्दुशकलानुकारिणः कान्तिर्ललाटस्य। तादृशमेवेदमामुकुलितनीलोत्पलद्युतिहारि कर्णान्तायतं लोचनद्वयम्। तथैव चेमावहसतोपि विहसिताविवोद्भासितकपोलमूलौ सृक्कोपान्तौ। तादृश एवाभिनवकिसलयच्छविरधरः। तथैव चेदं विद्रुमालोहितनखाङ्गुलीतलं पाणिपादम्। तथैव चेदमविगलितसहजलावण्यसौकुमार्याणां सौष्ठवमङ्गानाम्। तत्सत्या सा भारती कपिञ्जलावेदितश्च शापवृत्तान्त इति संभावयामि।' इत्युक्तवत्यां मदलेखाया-

---

स्पृशन्ती–परामृशन्ती। पार्श्वस्थिताम्–समीपवर्तिनीम्। रुचेर्वंशात्–प्रीतिप्रभावात्। निर्विकारतया–विकारस्यानुत्पत्त्या वा, (चन्द्रापीडशरीरमहमविकृतं भावयामि–इति न वेद्मि, संभविभ्यां द्वाभ्यामपि रुचिप्रकर्षविकारानुदयाभ्यां चन्द्रापीडरूपस्यानुपहतत्वेन ज्ञायमानत्वं शक्यं तत्रान्यतरकारणनिश्चयं कर्त्तुमहमशक्तेत्यर्थः) तादृशीम्–जीवनावस्थातोऽभिन्नाम्। तनुम्–शरीरम्। आदरतः–सावधानतया। निरूपय–विभावय। निरूपणीयम्–विभावनीयम्। अन्तरात्मनः–जीवस्य। विरहात्–अनुपस्थितेः। अस्य–चन्द्रापीडस्य। व्यापारमात्रम्–चेष्टाकेवला। उपरतम्–नष्टम्। अन्यत्–व्यापारोपरमाद्भिन्नम्। तादृशम्–पूर्वावस्थातोऽविपरीतम्। व्याकोशशतपत्राकारम्–विकसितकमलतुल्यम्। मनागपि–ईषदपि, मात्रयापि। श्रिया–शोभया। अनुन्मुक्तम्–अहीनम्। संवेल्लिताग्रभागः–कुटिलपर्यन्तः। स्निग्धः–अरूक्षः। कुन्तलकलापः–केशभरः। इन्दुशकलानुकारिणः–चन्द्रखण्डसमस्य। ललाटस्य–कपालस्य। इयम् कान्तिः तथैव पूर्ववत् एव। आमुकुलितस्य कोपावस्थस्य नीलोत्पलस्य नीलकमलस्य द्युतिं शोभां हरति तच्छीलम्। वीक्ष्यते–दृश्यते। कर्णान्तायतम्–कर्णदेशपर्यन्तविस्तृतम्। अहसतः–विनापि हासम्। हसितौ–सहासाविव। उद्भासितकपोलमूलौ- कपोलमूलं प्रकाशयन्तौ। सृक्कोपान्तौ–ओष्ठप्रान्तदेशौ। हासार्थे हसशब्दः प्रयुक्तोऽत्र, तथा प्रयुञ्जतेऽपि कवयः–'हनूमदाद्यैर्यशसा मया पुनर्द्विषां हसैर्दूतपथः सितीकृतः' इति नैषधे। अभिनवकिसलयच्छविः–नूतनपल्लवसमद्युतिः विद्रुमालोहिते प्रवालरक्ते नखाङ्गुलीतले ययोस्तादृशौ पाणी हस्तौ पादौ च अत्र पाण्योर्नखानि विद्रुमरक्तानि पादयोश्च अङ्गुलीतलं विद्रुमरक्तं ज्ञेयम्। पाणी च पादौ च इति द्वन्द्वः 'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' इत्येकवद्भावे 'पाणिपाद–' मितिरूपम्। अविगलिते अनष्टे सहजे प्रकृतिसिद्धे लावण्यं सौन्दर्यं सौकुमार्यं मार्दवं च येषां तादृशानाम्। अङ्गानाम्–करचरणादिशरीरावयवानाम्। सौष्ठवम्–रामणीयकम्। सा भारती–आकाशवाणी। सत्या–अमिथ्या।

देख कर उसने उसे हाथों से छुआ, अनन्तर समीपस्थिता मदलेखा से पूछा—सखि, मदलेखे, मैं नहीं समझती हूँ क्या स्नेह के कारण अथवा शरीर के अविकृत होने से मैं तो चन्द्रापीड की देह को वैसी ही देख रही हूँ। तुम भी गौर करके देख लो। इस प्रकार कहने पर मदलेखा ने उससे कहा—प्रियसखि, इसमें देखना क्या है ? अन्तरात्मा के नहीं रहने से इसका व्यापार समाप्त हो गया है। अन्य अंशों में यह पहले की ही तरह विकसित कमल के समान सदा शोभाशाली मुख है, पहले ही की तरह घुंघराले चिकने बाल हैं, चन्द्रखण्ड के सदृश ललाट की वैसी ही कान्ति है, किंचित् संकुचित कमल के समान कान तक फैले यह नयन भी वैसे ही हैं, नहीं हंसने पर भी हंसते हुए-से यह कपोलप्रान्त भी वैसे ही हैं, प्रवाल की तरह लाल नख वाले यह चरण भी उसी तरह हैं, स्वाभाविक सौन्दर्य तथा सुकुमारता से भरे इन अंगों की वही रमणीयता है। अतः वह आकाशवाणी तथा कपिञ्जल द्वारा कही गई शाप की कथा भी सत्य ही है। मदलेखा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर कादम्बरी आनन्दविभोर हो उठी, उसने

---

१. अस्याशुपरतम्। २. विकसितौ। ३. अविमलित।

मानन्दनिर्भरा महाश्वेतायै दर्शयित्वा चन्द्रापीडचरणतलनिबद्धजीविताय राजपुत्रलोकायापि दर्शितवती।

स तु विस्मयोत्फुल्ललोचनः सर्व एवावनितलनिवेशितशिराः प्रणम्य चन्द्रापीडचरणौ रचिताञ्जलिर्जानुद्वयेनावनौ स्थित्वा कादम्बरीं व्यज्ञापयत्। 'देवि, त्वत्प्रभावोयं यदेव-मस्मानपुण्यवतः परित्यज्य दूरं गतस्यापि देवस्य तादृशमेवेदं प्रसन्नेन्दुमण्डलद्युतिहारि वीक्ष्यते वदनम्। तथैव चेदं चरणयुगलमवभाति पुरेव प्रोत्फुल्लरक्ततामरसच्छायम्। तथैव च पुनः प्रसादानुभवप्रत्याशालालसं हृदयम्। अन्यच्च मनुष्यलोकेषु केन कदा वा दृष्टं श्रुतमनुभूतं वा यदस्माभिः पुण्यवद्भिः।' इत्यभिहितवति राजलोके ससखीजना सपरिजना चोत्थाय स्वयमेवावचित्य देवतार्चनकुसुमानि स्नात्वा निर्वर्तितचन्द्रापीडशरीरपूजासंस्कारा शरीरस्थितिकरणायादिदेश सकलमेव राजलोकम्। निर्वर्तितस्नानाशने च तस्मिन्नात्मनापि महाश्वेतयोपनीतानि तथैव सह सपरिवारा फलान्युपभुक्तवती। कृताहारा च पुनस्तथैव

शापवृत्तान्तश्च सत्य इति लिङ्गविपरिणामः कर्त्तव्यः। संभावयामि–तर्कयामि। आनन्दनिर्भरा–हर्षमग्ना। चन्द्रापीडचरणतलनिबद्धजीविताय–चन्द्रापीडपादेऽवलम्बितजीवनाय (तदायत्तप्राणधारणाय) राजपुत्रलोकाय। दर्शितवती–साक्षात्कारितवती।

सः–राजपुत्रलोकः। विस्मयोत्फुल्ललोचनः–आश्चर्यविकसितनेत्रः। अवनितलनिवेशितशिराः–शिरसा भुवं स्पृशन्। रचिताञ्जलिः–बद्धकरयुगलः। जानुद्वयेन–जङ्घायुगलेन (तदाधारेण) अवनौ स्थित्वा–पृथिव्यामाश्रितः। त्वत्प्रभावः–त्वदीयं सामर्थ्यम्। एवम्–अकस्मादेकपदे च। अपुण्यवतः–पापिनः। दूरं गतस्य–स्वर्गं प्रस्थितस्य। तादृशमेव–पूर्वाविपरीतम्। प्रसन्नेन्दुमण्डलद्युतिहारि–निर्मलचन्द्रबिम्बकान्तिहरणशीलम्। प्रोत्फुल्लरक्ततामरसच्छायम्–विकसितरक्तकमलसमकान्ति। प्रसादानुभवप्रत्याशालालसम्–पुनश्चन्द्रापीडस्य कृपायाः प्राप्तये बद्धलालसम्। हृदयम्–अस्माकमिति शेषः। अनुभूतम्–विदितम्। पुण्यवद्भिः सुकृतिभिः (श्रुतमनुभूतं च मृतस्यापि जनस्याविकृतं शरीरमिति) ससखीजना–सखीसहिता। सपरिजना–सभृत्या च। अवचित्य–गृहीत्वा। देवतार्चनकुसुमानि–देवपूजार्थानि पुष्पाणि। निर्वर्त्तितौ सम्पादितौ चन्द्रापीडशरीरस्य पूजा अर्चा संस्कारः प्रसाधनं च यया तादृशी कादम्बरी। शरीरस्थितिकरणाय–शरीररक्षासाधनं स्नानाहारादिकं सम्पादयितुम्। सकलमेव राजलोकम्–समस्तं चन्द्रापीडानुचरं राजवर्गम्। आदिदेश–आज्ञापयामास। निर्वर्त्तितस्नानाशने–कृतस्नानभोजने। तस्मिन्–राजपुत्रलोके। स्वयम्–आत्मना। उपनीतानि–आहृतानि। तया–महाश्वेतया सहैव। तथैव–पूर्वदिनवत्। अङ्केनोद्वहन्ती–क्रोडे धारयन्ती। अनयत्–अगमयत्। अन्येद्युः–परदिवसे। उपजातदृढतर-

चन्द्रापीड की देह महाश्वेता को दिखलाकर चन्द्रापीड के चरणों में जिनके प्राण बंधे हुए हैं ऐसे उन राजपुत्रगण को भी दिखला दी।

राजपुत्रगण ने चन्द्रापीड को देखकर विस्मयविकसित नयन होकर पृथ्वी पर अपने सिर रखे, चन्द्रापीड़ को प्रणाम किया, घुटने टेक कर जमीन पर बैठ गये और कादम्बरी से कहा—देवि, यह आपका ही प्रभाव है कि इस प्रकार हम पापियों को छोड़ कर दूर गये हुए देव चन्द्रापीड़ का चन्द्रसदृश मुख उसी प्रकार अविकृत है। पहले ही की तरह रक्तकमल के समान चरणद्वय शोभ रहे हैं। फिर से प्रसन्नता प्राप्त करने की लालसा रखने वाला हृदय भी वैसा ही है। मनुष्य-लोक में इस तरह की बात किसने देखी सुनी है जैसी बात हमलोग देख सुन रहे हैं। राजलोक द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सखियों तथा परिजनों के साथ कादम्बरी उठी, उसने स्वयं देवपूजा के फूल चुने, चन्द्रापीड के शरीर का पूजा-संस्कार किया, और समस्त राजलोक को भोजनादि शरीर-कार्य करने को कहा। राजलोक के स्नान-भोजन से निवृत्त हो जाने पर' कादम्बरी ने भी महाश्वेता द्वारा लाये गये फल परिजन के साथ ग्रहण किये। भोजन करने के बाद पुनः उसी प्रकार चन्द्रापीड के चरणों को गोद में लेकर उसने दिन बिता दिया।

चन्द्रापीडचरणावङ्केनोद्वहन्ती तमपि दिवसमनयत् । अन्येद्युश्चोपजातदृढतरप्रत्यया चन्द्रापीडशरीराविनाशं प्रति मदलेखामवादीत् । 'प्रियसखि, देवस्य शरीरमिदमुपचरन्तीभिरवश्यमा शापक्षयादस्माभिरधुनात्र स्थातव्यम् । तदिममत्यद्भुतं वृत्तान्तं तातस्याम्बायाश्च गत्वा निवेदय । येन नान्यथा मां संभावयतः दुःखेन वा मदीयेन न तिष्ठतः । यथा मामेवंविधां दुःखभागिनीमागत्य न पश्यतस्तथा करिष्यसि । न शक्नोम्यहं तातमम्बां च दृष्ट्वा शोकवेगं धारयितुम् । मया चोपरतमेव देवमालोक्य न रुदितम् । सा किमपरमधुना निःसंशयितजीविते देवे प्रतिपन्ननियमा रोदिमि ।' इत्यभिधाय तां व्यसर्जयत् ।

गत्वागतया च तया 'प्रियसखि, सिद्धं तेऽभिवाञ्छितम् । एवं संदिष्टं तातेन चित्ररथेनाम्बया च मदिरया गाढगाढं पुनरालिङ्ग्य शिरस्युपाघ्राय च 'वक्तव्यावयोर्वचनाद्वत्से कालमेतावन्तं मनस्येव नैतदावयोरासीद्यथा जामातृसंहता वत्सा द्रष्टव्येति तदयमेवावयोः परमानन्दो यद्वत्सया स्वयं जामाता वृतः, तत्राप्यपरं भगवतो लोकपालस्य चन्द्रम-

---

प्रत्यया-संजातस्थिरविश्वासा । चन्द्रापीडशरीराविनाशम्-चन्द्रापीडशरीरस्याविनश्वरतामधिकृत्य । उपचरन्तीभिः-सेवमानाभिः । आ शापक्षयात्-शापावसानसमयपर्यन्तम् । अवश्यं स्थातव्यम्-निश्चितं स्थेयम् । इदम्-प्राणापाये सत्यपि चन्द्रापीडस्य शरीरमविकृतं वर्त्तते इत्येवंरूपम् । अद्भुतम्-स्वरूपत आश्चर्यजनकम् । अन्यथा-विरुद्धाचाराम् । शोकवेगं धारयितुम्-शोकप्रवाहं रोद्धुम् । उपरतम्-मृतम् । निःसंशयितजीविते-असंदिग्धभावेन सप्राणे । देवे-चन्द्रापीडे । प्रतिपन्ननियमा-गृहीतव्रता । यथा मया मृतं चन्द्रापीडं दृष्ट्वापि न रुदितं सैवाहं सम्प्रत्यसंदिग्धे तज्जीवने व्रतपरायणा च सती यदि रोदिमि तदा मया स्वभावविपरीतमाचरन्त्या नियमं च विघटयन्त्याऽऽत्मोपहासपात्रतां प्रापितो भवेत्, ताते मातरि च दृष्टिगोचरेऽहं शोकवेगं धारयितुं नैव क्षमिष्ये, तत्तथा कुर्या यथा पितरौ मम नैवागच्छेतामत्रेति भावः । ताम्-मदलेखाम् । व्यसर्जयत्-गन्तुमादिष्टवती । गत्वागतया-कादम्बरीपित्रोः समीपं गत्वा ततः परावृत्तया । तया-मदलेखया (आवेदिते इति वक्ष्यमाणक्रियाकर्तृपदतयाऽत्र तृतीया) सिद्धम्-फलितम् । तेऽभिवाञ्छितम्-पितरौ मां द्रष्टुमत्र नागच्छेतामिति तवेप्सितम् । संदिष्टम्-वाचिकमुक्तम् । मदिरयाऽम्बया तन्नामिकया तव मात्रा । शिरस्युपाघ्राय-शिरोघ्राणं स्नेहसूचकं चेष्टितम्, पितरौ शिशोः शिरो जिघ्रन्तीति वर्णयन्ति कवयः । आवयोः-पित्रोश्चित्ररथमदिरयोः । मनस्येव नैतदासीत्-आवाभ्यामशक्यक्रियतया इत्थं न चिन्तितमपि यन्मम सुता परिणीयते इति । परमानन्दः-असीमहर्षः । वत्सया-कादम्बर्या मम पुत्र्या । वृतः-स्वीकृतः । (तत्राप्यपरम्-तत्राप्ययं महत आनन्दस्य विषयः) आवयोः सुतया वृतो जामाता चन्द्रमसोऽवतारो रूपान्तरमिति नौ महतो हर्षस्य विषयः । कल्याणैः-प्राक्तनैः शुभावहैः कर्मभिः । शापावसाने-शापस्यान्ते जाते । जामात्रा-त्वया वृतेन पत्या । आनन्दवाष्पनिर्भरम्-

---

दूसरे दिन, जब उसे चन्द्रापीड के शरीर के अविनाशी होने में विश्वास हो गया तब कादम्बरी ने मदलेखा से कहा—प्रियसखि, देव के शरीर की परिचर्या में शापक्षयपर्यन्त अवश्य ही हमलोगों को यहाँ रहना होगा। इसीलिए तुम जाकर पिता जी को तथा माँ को इस अद्भुत वृत्तान्त की खबर दे दो। खबर मिलने से वह हमारे सम्बन्ध में दूसरे प्रकार की सम्भावना न करेंगे, और न हमारे लिए दुःख ही करेंगे। ऐसा करना जिससे वह मुझ अभागी को देखने यहाँ न चले आवें। पिता जी को तथा माँ को देखकर मैं शोक के वेग को नहीं सम्भाल सकूँगी। मैं तो चन्द्रापीड को मरा जानकर भी नहीं रोई, अब जब कि उनका जीवन असन्दिग्ध है, मैं तपस्विनी क्या रोऊँगी। इस प्रकार कहकर उसने मदलेखा को विदा किया।

जाकर लौटी—मदलेखा ने कहा–प्रियसखि, तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो गया, पिता जी और माता जी ने हमारे द्वारा गाढ़ालिङ्गन करके तथा माथा सूँघकर सन्देश दिया है कि—वत्से कादम्बरि, इतने दिनों तक हमारे मन में यह विश्वास ही नहीं था कि हम वत्सा को जामाता के साथ देख सकेंगी, अतः यही हमारे लिए आनंद का विषय है कि वत्सा ने स्वयं जामाता का वरण कर लिया है, उस पर भी यह और आनन्द का विषय है कि

सोऽवतारः, तत्कल्याणैः शापावसाने जामात्रा सहैवानन्दबाष्पनिर्भरमाननारविन्दं ते द्रक्ष्यावः" इत्यावेदिते निर्वृतेनान्तरात्मना दैवतवदुपचरन्ती तच्चन्द्रापीडशरीरमतिष्ठत्।

अथापगतवति जलदसमये, घननिरोधोद्बन्धादिवोन्मुक्ते जीवलोके, प्रसरन्तीष्विवाशासु, फलभरावनम्रकलमवनपिञ्जरासु ग्रामसीमासु, काशकुसुमधवलास्वरण्यस्थलीषु, सेव्यतामुपगतेषु प्रासादतलेषु, कह्लारहारिषु पल्वलेषु, कुमुदामोदशीतलासु यामवतीषु, सेफालिकापरिमलग्राहिषु निशावसानमातरिश्वसु, चन्द्रप्रभाभिरामेषु प्रदोषेषु, उद्दामफुल्लेन्दीवररजोवाससुरभिषु वासरेषु, सलिलापसरणक्रमतरंग्यमाणासु सुकुमारतीरसैकतरेखासु, सुखोत्तारतामापन्नास्वापगासु, पङ्कपरिहरणशुष्केष्वप्रहतरूढतृणोलपच्छन्नेषु मन्दाश्यानकर्दमोद्भिद्यमानाभिनवपद्वीकेषु पुनरपि पार्थिवलोकेन प्रवर्तितेषु प्राञ्जलवर्त्मसु

आनन्दाश्रुपूर्णम्। आननारविन्दम्–मुखकमलम्। (मदलेखया) इति आवेदिते इत्थमुक्ते सति। निर्वृतेन–पित्रोरागमनशङ्कायां निवृत्तायां शान्तेन। चन्द्रापीडशरीरम् दैवतवत्–देवतातुल्यम्। उपचरन्ती–सेवमाना। अतिष्ठत्–स्थिता (कादम्बरीति शेषः)।

जलदसमये–वर्षाकाले। अपगतवति–व्यतीते सति। जीवलोके–संसारे। घननिरोधोद्बन्धात्–उद्बन्धनतुल्यकष्टप्रदात् घननिरोधात् सर्वतः प्रतिबन्धान्मेघकृतात्। उन्मुक्ते–रहिते सति। आशासु–दिशासु, प्रसरन्तीषु आयामिनीषु जायमानासु। फलभरेण–फलराशिना अवनम्रं नतं यत् कलमवनम् पक्वशालिकुलं तेन पिञ्जरासु रक्तपीताभासु ग्रामसीमासु ग्रामपर्यन्तभूमिषु। अरण्यस्थलीषु–वनभूमिषु काशकुसुमधवलासु •विकसितैः काशपुष्पैरुज्ज्वलवर्णासु। प्रासादतलेषु–सौधशिरस्सु सेव्यतामुपगतेषु सेवनीयेषु सत्सु। पल्वलेषु–अल्पजलाशयेषु कह्लारहारिषु रक्तकमलयुक्तेषु सत्सु। यामवतीषु रात्रिषु कुमुदामोदेन कुमुदसुगन्धेन शीतलासु शीतस्पर्शासु जायमानासु। निशावसानमातरिश्वसु प्राभातिकवातेषु सेफालिकापरिमलग्राहिषु सेफालिकुसुमगन्धं धारयत्सु सत्सु। प्रदोषेषु रात्रिप्रारम्भेषु चन्द्रप्रभाभिरामेषु चन्द्रिकारुचिरेषु। वासरेषु दिनेषु फुल्लानां विकसितानाम् इन्दीवराणां कमलानां रजसः परागस्य वासेन सुगन्धेन सुरभिषु सुगन्धपूर्णेषु सत्सु। सुकुमारासु कोमलासु तीरसैकतानां तटस्थितवालुकाराशीनां रेखासु पङ्क्तिषु सलिलापसरणक्रमेण जलह्रासक्रमेण तरङ्ग्यमाणासु पूर्वपश्चाद्भावेन प्रकटीभवन्तीषु सतीषु, (यथा यथा सलिलं हीयते तथा तथा सैकतरेखा प्रकटति, तेन पूर्वपश्चाद्भावेन प्रकटन्ती सा सैकतरेखा तरङ्गितेव प्रतिभाति, सद्योजलनिःसृततया सैकतरेखा सुकुमारतया अत्र वर्णिता) आपगासु नदीषु सुखोत्तारताम् अनायासलङ्घनीयताम् आपन्नासु प्राप्तासु। वर्षावसाने क्षीणसलिला नद्यः सुखतरणीयाः संपद्यन्त इति वस्तुस्थितिः) पङ्कपरिहरणशुष्केषु–पङ्कस्य परिहृततया अनार्द्रेषु अप्रहतैः अखण्डितैः रूढैः उत्पन्नैः तृणोलपैः वल्वजतृणैः छन्नेषु आवृतेषु। मन्दाश्यानैः न्यूनीभवद्भिः कर्दमैः पङ्कैः उद्भिद्यमानाः प्रकटीभवन्त्यः अभिनवाः नूतनाः पद्व्यो येषु तादृशेषु प्राञ्जलवर्त्मसु–प्रचलितमार्गेषु पार्थिवलोकेन राजवर्गेण पुनरपि प्रवर्त्तितेषु सञ्चारितेषु सत्सु। (पङ्कापगमे सति शुष्केषु अखण्डितैस्तृणैरावृतेषु कर्दमापगमवशात्प्रकटीभवन्नवीनमार्गेषु प्रचलितपूर्वमार्गेषु राजानः पुनरपि यात्रामारभन्त तदा),

हमारे जामाता स्वयं चन्द्रमा के अवतार हैं, अतः हमारा यही विचार है कि शाप के अन्त में कल्याणिनी वत्सा को जामाता के साथ आनन्दपूर्ण नेत्र लिए देखूँ। मदलेखा के इस प्रकार कहने पर कादम्बरी शान्त हृदय से चन्द्रापीड के शरीर को देवता की तरह पूजती रही।

इसके बाद बरसात के बीत जाने पर जीवलोक मेघ के घेरे से बाहर सा निकल गया, दिशायें विस्तृत होने लगीं, ग्राम की सीमायें फलभार से नम्र धान के पौधों से पीली पड़ गईं, जङ्गल में काश के उजले फूल खिल उठे, प्रासादतल भला लगने लगे, जलाशय में कमल खिले, रात में कुमुद की सुगन्ध फैलने लगी, प्रातःकाल की हवा में शेफालिका पुष्प की सुगन्ध मादकता उत्पन्न करने लगी, सायंकाल चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित होने लगे, खिले हुए कमलों की सुगन्ध से दिन सुगन्धमय होने लगे, पानी के हट जाने से तटगत सैकत-रेखायें प्रकट होने लगीं, नदियों को पार करना सरल होने लगा, कीचड़ के नहीं रहने से शुष्क अखण्डित तृणराशि से पूर्ण सूखे

जम्बालविगमात्सर्वतस्तुरगखुरसहासु भूमिष्वेकदा चन्द्रापीडचरणमूलोपविष्टां कादम्बरीमुपसृत्य मेघनादो व्यज्ञपयत्। 'देवो युवराजश्चिरयतीत्युत्ताम्यता हृदयेन देवेन तारापीडेन देव्या विलासवत्यार्यशुकनासेन च वार्ताहराः प्रहिताः। ते च देव्या एव शोकशल्यघटनां परिहरद्भिर्यथावृत्तं सर्वमाख्यायास्माभिरभिहिताः। 'भवतां हस्ते देवेन चन्द्रापीडेन न किंचित्प्रतिसन्देष्टव्यम्। नापि देव्या कादम्बर्या। तदकृतविलम्बा एव गत्वैवमखिलवृत्तान्तं लोकार्तिहरायावनितलपतये देवदेवाय तारापीडायावेदयत।' इत्येवमभिहितास्तु तेऽस्मान्मन्युनिर्भराः प्रत्यवदन्। 'यथा भवद्भिः कथितं तत्तथा। तिष्ठतु तावत्क्रमागतस्नेहो भक्तिरनुवृत्तिर्वा। कार्यगौरवकृतं कुतूहलमेव देवावलोकनं प्रति बलात्प्रेरयत्यस्मान्। यदि भवतामपि वार्तामात्रकोपलभ्य एवायमर्थस्ततो युज्यतेऽस्माकं भवद्भ्यः समुपलभ्य प्रतिगमनम्। अथ नयनविषयगामी तदा वयमपि नेदृशा एवापुण्यकर्माणो ये न पश्यन्ति देवम्। अस्माभिरपि चिरतरं चरणपरिचर्यया देवस्य पवित्रित एवात्मा। अस्माकमपि

जम्बालस्य शैवलस्य विगमात् अपायात् सर्वतः समन्तात् भूमिषु तुरगखुरसहासु अश्वखुरपातं सोढुं शक्तासु। चन्द्रापीडचरणमूलोपविष्टाम्-चन्द्रापीडपादतलवर्त्तिनीम् व्यज्ञपयत्-सूचितवान्। चिरयति-विलम्बते। उत्ताम्यता-अधीरतां श्रयता। वार्त्ताहराः-संवादप्रापका दूताः। प्रहिताः-प्रेषिताः। देव्याः-विलासवत्याः। शोकशल्यघटना-शोकाघातः तां परिहरद्भिः निवारयितुकामैः (चन्द्रापीडस्य वास्तविकीं स्थितिं विज्ञाय देवी विलासवती शोकशल्यैर्घटिता जायेत तस्मात् सा स्पष्टं न सूचनीयेति चिन्तयद्भिः) भवतां हस्ते-भवद्द्वारा। प्रतिसंदेष्टव्यम्-संदेशस्योत्तररूपेण कथनीयम्। नापि देव्या कादम्बर्या-इत्यस्य प्रतिसंदेष्टव्यमिति शेषः। अकृतविलम्बाः-कालातिपातमकुर्वाणाः। अखिलवृत्तान्तम्-समस्तमपि समाचारम्। लोकार्त्तिहराय-जगत्पीडाप्रशमनपरायणाय। अवनितलपतये-धरानाथाय। आवेदयत सूचयत। मन्युनिर्भराः-कोपपूर्णाः। प्रत्यवदन्-उत्तरं दत्तवन्तः। तत्तथा-सत्यं भवदुक्तम्। क्रमागतस्नेहः-कुलक्रमानुवर्त्तिनी प्रीतिः। अनुवृत्तिः-सेवाप्रवृत्तिः। कार्यगौरवकृतम्-कर्त्तव्यस्य महत्त्वेन जनितम्। कुतूहलम्-औत्सुक्यम्। देवावलोकनम्प्रति चन्द्रापीडं द्रष्टुम्। वार्त्तामात्रकोपलभ्यः श्रुतमात्रः। (यदि भवन्तोऽपि चन्द्रापीडस्थितिं न पश्यन्ति केवलं श्रृण्वन्ति तदाऽस्माभिरपि श्रुत्वैव परावर्त्तनीयमिति युक्तमेव, अथ भवतां दर्शनपथातिथिर्भवति चन्द्रापीडस्तदा वयमपि न तथा पातकिनो यथा तं न पश्येयमिति कोपपूर्णा वार्त्ताहराणामुक्तिः) वार्त्ताहराः स्वेषां चन्द्रापीडदर्शनयोग्यतामुपपादयन्ति—(अस्माभिरपीत्यारभ्य-प्रमाणमित्यन्तेन सन्दर्भेण) चिरतरम्-बहुकालपर्यन्तम्। चरणपरिचर्यया-चन्द्रापीडस्य पाद-

---

कर्दम पर लोगों ने पुनः नवीन प्रशस्त मार्ग बनाना प्रारम्भ किया, शैवल के नष्ट हो जाने से जमीन घोड़े के खुर को सहन करने के योग्य हो गई, तब एक समय चन्द्रापीड के चरणों में बैठी हुई कादम्बरी के पास जाकर मेघनाद ने कहा-'देव चन्द्रापीड देर कर रहे हैं इसलिए चिन्तित हृदय से देव तारापीड महारानी विलासवती और आर्य शुकनास ने दूत भेजे हैं, उन्हें हमने आपके शोक की बात को छोड़कर और सारी बातें बता दी हैं, हमने उनसे कह दिया है कि महाराज चन्द्रापीड को आपके हाथ कुछ भी प्रतिसन्देश नहीं भेजना है और न देवी कादम्बरी को ही कुछ सन्देश देना है अतः अविलम्ब जाकर सारा समाचार लोककल्याणकारी तथा समस्त भूमण्डल के शासक महाराज तारापीड से निवेदित करें। इस प्रकार कहने पर उन लोगों ने क्रोधपूर्ण स्वर में कहा कि आपका कहना ठीक ही है। क्रमागत स्नेह, भक्ति अथवा चिरसम्पर्क की बात जाने दीजिये, आदेश-पालन का महत्त्व ही हमें चन्द्रापीड के दर्शन के लिये प्रेरित कर रहा है। यदि आप लोगों ने भी यह बातें केवल किसी से सुनी हों तो हम लोगों का लौट जाना ठीक ही है। यदि आपको चन्द्रापीड के दर्शन होते हों तो हम भी इतने पापी नहीं हैं कि उनके दर्शन से वञ्चित रहें। हम लोगों ने भी बहुत दिनों तक उनके चरणों की सेवा करके अपनी आत्मा पवित्र की है, महाराज चन्द्रापीड बराबर हमें भी दर्शन देने की कृपा किया ही करते थे। आज क्या हो गया है कि हम महाराज के चरण की वन्दना करने से वञ्चित किये जा रहे हैं। हम तो वही हैं

सर्वदा दर्शनगोचरावस्थानेन प्रसादं कृतवानेव देवः। किमद्य जातं येन देवस्य पादारविन्दवन्दनप्रसादेनासंविभज्य विसृज्यामहे। त एव वयं पादलग्नाश्चरणरेणवः। यद्विज्ञाप्य देवी देवस्य युवराजस्य पादप्रणामेनास्माकं सफलयतु भवानागमनपरिश्रमम्। अन्यथा भूमिमेतावतीमागत्य संभवे सत्यप्रत्यक्षीकृतयुवराजशरीरा गताः सन्तः किं देवदेवेन तारापीडेन वक्तव्या वयम्। किं वास्माभिर्देवो विज्ञापयितव्यः। इत्यावेदिते देवी प्रमाणम्।' इति विज्ञाप्य पुनस्तूर्ष्णीं स्थितवति मेघनादे तत्कालसमुत्प्रेक्षितानाश्वासश्वशुरकुलवैक्लव्याद्विलीयमानेव शुचान्तःसंचितं बाष्पमाकुलिततरलतारकाभ्यामापिबन्ती लोचनाभ्यां गद्गदिकयावगृह्यमाणकण्ठी कथं कथमपि चिरात्कादम्बरी प्रत्युवाच। 'स्थान एव हि तैरगमनमङ्गीकृतम्। अनवलोक्य देवमेवमेव याताः सन्तः किमुच्यन्ताम्। अपि च वृत्तान्त एवायमेवंविधो लोकातीतो यत्रावलोकनेनापि न संप्रत्ययः समुत्पद्यते। किं पुनरनालोकनेनापि। कैतवमात्रकोपदर्शितप्रेमपल्लवा वल्लभतमजीविता वयमपि यावत्पश्यामस्तं तावदन-

---

सेवया। आत्मा। पवित्रितः=पूततां गमितः। दर्शनगोचरावस्थानेन–दृक्पथे स्थित्या। देवस्य–चन्द्रापीडस्य। पादारविन्दवन्दनाप्रसादेन–चरणवन्दनावसरप्रदानानुग्रहेण। असंविभज्य–समभागमप्रदाय। विसृज्यामहे–देवमदृष्ट्वैव गन्तुमादिश्यामहे। देवी विज्ञाप्य–मदीयमाग्रहं कादम्बर्यै निवेद्य। पादप्रणामेन–चरणवन्दनावसरप्रदानेन। आगमनपरिश्रमम्–यात्राखेदम्। एतावतीं भूमिम्–इयद्दूरम्। अप्रत्यक्षीकृतयुवराजशरीराः–अदृष्टचन्द्रापीडवपुषः। गताः–इतः परावृत्य–राजधानीमुपेताः। इत्यावेदिते–अस्माभिरेवं स्वाभीष्टे वस्तुनि निवेदिते सति। देवी प्रमाणम्–कादम्बरी यथाऽऽज्ञापयेत्तथाऽस्माभिः स्वीकर्त्तव्यमित्यर्थः। पुनस्तूर्ष्णीं स्थितवति–भूयो मौनमवलम्ब्य वर्त्तमाने सति। तत्काले तस्मिन्समये समुत्प्रेक्षितः कल्पनोपनीतोऽनाश्वासः अधीरभावो यस्य तादृशस्य श्वशुरकुलस्य तारापीडादेर्वैक्लव्यात् दुःखातिरेकात् (अस्मिन् समये मदीयस्य श्वशुरकुलस्य अधीरतामुपगतस्य कीदृशं विह्वलत्वं भविष्यतीत्युत्प्रेक्ष्य) शुचा शोकेन विलीयमाना–गलन्ती इव, अन्तःसञ्चितम् अभ्यन्तरभागेऽवस्थितम्। बाष्पमश्रु। आकुलिततारकाभ्याम्–चञ्चलकनीनिकाभ्याम् लोचनाभ्याम् नयनाभ्याम् आपिबन्ती निरुन्धती। गद्गदिकाऽवगृह्यमाणकण्ठी–गद्गदकण्ठी। कथं कथमपि–महताऽऽयासेन। चिरात्–बहु विलम्ब्य। स्थाने–युक्तम्। तैः–राज्ञा प्रहितैः वार्त्ताहरैः। आगमनम्–अपरावर्त्तनम्। अङ्गीकृतम्–स्वीकृतम्। (अदृष्ट्वा चन्द्रापीडं न गन्तव्यमस्माभिरिति यत्तैराग्रहः कृतस्तत्तेषां युक्तम्) एवमेव–विना किमपि वक्तव्यमादाय। अयं वृत्तान्तः–मरणे सत्यपि शरीरस्याविकृतिरिति वार्त्ता। लोकातीतः–अलौकिकः। अवलोकनेन–दर्शनेन। विश्वास उत्पद्येतेति कथं विश्वासः क्रियतामित्यर्थः) कैतवमात्रकोपदर्शितप्रेमपल्लवाः–छलमात्रेण प्रेम प्रदर्शयन्तः (अवास्तविकप्रीतयः) वल्लभतमजीविताः–प्रियजीवनाः। तावत्–तदा। स्नेहसद्भावनया–वास्त-

---

महाराज के चरणों की धूल। इसकी सूचना देवी को देकर आप हमें युवराज के चरण में प्रणाम निवेदित करने का अवसर देकर हमारे आगमनश्रम को सार्थक करें। यदि यह नहीं हुआ तो इतनी दूर आकर सम्भव रहने पर भी युवराज के दर्शन नहीं करके जाने पर महाराज तारापीड हमें क्या कहेंगे। हम भी महाराज को क्या निवेदित करेंगे। इसके बाद देवी की जैसी आज्ञा हो'। इतना कहकर मेघनाद फिर चुप हो रहा, कादम्बरी ने तत्काल बिना आश्वासन के श्वशुरकुल में संभवी कष्ट की कल्पना कर ली, जिसमें वह लीन हो गई, शोकसञ्चित अश्रुप्रवाह को उसने चञ्चल नयनों में ही पी लिया, उसका स्वर गद्गद हो गया, किसी तरह उसने कहा—जाना नहीं स्वीकार करके उन लोगों ने ठीक ही किया है। बिना महाराज को देखे यों ही लौट जाने पर उन्हें लोग क्या कहते? यह वृत्तान्त ही कुछ इस प्रकार अलौकिक है कि देखने पर भी विश्वास नहीं होता है, बिना देखे विश्वास की बात ही क्या है? छल से प्रेम दिखलाने वाले, प्राणों से प्रेम दिखलाने वाले हम भी जब उन चरणों के दर्शन किया करते हैं—तब अपने प्राणों की उपेक्षा करने वाले उनके स्नेहपरायण सद्भृत्य दर्शन करने से वञ्चित

पेक्षितप्राणवृत्तयः स्नेहसद्भावनया सद्भृत्या[१] न पश्यन्तीत्यघटमानकमिदम्। तदपरिलम्बितं प्रवेश्यन्ताम्। पश्यन्तु देवम्। सफलयित्वागमनपरिश्रमेण साधं लोचने ततो यास्यन्ति' इति। आज्ञानन्तरं च मेघनादेन प्रवेशितान्दूरत एव समं बाष्पपातेन पञ्चाङ्गालिङ्गितमहीतलांश्चन्द्रापीडचरणवन्दनसद्भावनिहितोत्पक्ष्मनिभृतदृष्टींस्ताननन्यदृष्टिश्चिरमिवालोक्य कादम्बरी स्वयमेवाभाषत।

भद्रमुखाः, परित्यज्यतामयं क्रमागतस्नेहसद्भावसुलभः शोकावेगः। यत्खल्वनालोचितावधि दुःखावसानमेव दुःखं तन्मरणभीरोर्भवतु नाम शोकावेगाय। यत्पुनः सुखोदर्कं तत्पुरःस्थितया सुखप्रत्याशयैवान्तरितं नापतति हृदये। तदेष वृत्तान्त एवंविधो येन न केवलमत्र निरवकाशता शोकस्य प्रत्युत सुदूरभिन्नवृत्तेर्विस्मयस्यावसरः। किमत्र

विकेन प्रेम्णा। अनपेक्षितप्राणवृत्तयः—अध्यातस्वीयजीवनाः। सद्भृत्याः—निःस्वार्थसेवापराः सेवकाः। अघटमानकम्—अनुचितम्। अपरिलम्बितम्—विनैव कमपि विलम्बम्। प्रवेश्यन्ताम्—चन्द्रापीडदर्शनाय तदध्युषिते स्थाने आगन्तुमादिश्यन्ताम्। आगमपरिश्रमेण साधं लोचने सफलयन्तु—स्वीयमागमनश्रमं लोचनद्वयं च चन्द्रापीडशरीरदर्शनद्वारा सार्थकतां नयन्तु। बाष्पपातेन समम्—सरुदितम्। पञ्चभिरङ्गैः करचरणजानूरोमस्तकैः आलिङ्गितं स्पृष्टं महीतलं यैस्तादृशान्। चन्द्रापीडचरणयोर्वन्दने नयने यः सद्भावः प्रेमातिशयस्तत्र निहिताः स्थापिताः उत्पक्ष्माणः उद्गतपक्ष्माणः निभृताः निश्चलाश्च दृष्टयो यैस्तादृशान्। (मेघनादेन प्रवेशिताश्चन्द्रापीडमवलोक्य रुदन्तः उत्पक्ष्माणि नयनानि निभृतानि धारयन्तः भृत्याः यदा सपञ्चाङ्गं चन्द्रापीडं प्रणमंस्तदा तान्) कादम्बरी अनन्यदृष्टिः तद्गतदर्शना चिरमिव आलोक्य स्वयम् अपृष्टा एवाभाषत वक्ष्यमाणरूपेणोवाच।

भद्रमुखाः—कल्याणिनः (शुभव्याहारिणः) क्रमागतस्नेहसद्भावसुलभः—कुलपरम्परागतप्रीतिप्रापितः। शोकावेगः—शुचा विह्वलीभावः। परित्यज्यताम्—हीयताम्। अनालोचितावधि—अज्ञातावसानम्। दुःखावसानम्—परिणामेऽपि दुःखरूपम्। मरणभीरोः—मृत्युभीतस्य। शोकावेगाय—शोककृताया विह्वलतायाः कारणम्। (यद् दुःखमनन्तं परिणामेऽपि तत्स्वरूपमेव च भवति तादृशं दुःखं प्राप्य मरणभीरवः कामं शोकविह्वला जायन्तां नाम) सुखोदर्कम्—परिणामसुखम्। पुरःस्थितया—अग्रे वर्त्तमानया। सुखप्रत्याशया—आनन्दस्य प्रतीक्षया। अन्तरितम्—व्यवहितम् (दुःखम्) हृदये नापतति—हृदयं न प्रविशति। एवंविधः—एतादृशो वर्त्तते। (अस्मिन् चन्द्रापीडवृत्तान्ते निरवकाशताशोकस्य प्रतीक्षाव्यवहितत्वेन शोकस्य हृदये प्रवेष्टुमशक्तत्वात्, अपि तु अत्र) सुदूरभिन्नवृत्तेः विपरीतप्रकृतेः विस्मयस्य आश्चर्यस्य अवसरः स्थानम् अस्तीति शेषः। (सुखोदर्कतयाऽत्र चन्द्रापीडवृत्तान्ते शोको न कर्त्तव्यः, किन्तु मृतस्यापि शरीरं निर्विकारमितिप्रकृतिविरुद्धं दृष्ट्वा विस्मयस्यैव स्थानमत्र मन्तव्यमिति भावः) किमत्र

रहें, यह बात अनुचित होगी। अतः उन्हें अविलम्ब आने दिया जाय, वह महाराज को देखें, अपने आगमनश्रम के साथ-साथ आँखों को भी वह सफल कर लें तब जायेंगे। आज्ञा के बाद मेघनाद ने उन्हें प्रवेश कराया, उनकी आँखों में आँसू भरे थे, वह पृथ्वी पर झुके थे, चन्द्रापीड के चरणों के दर्शन में उनकी आँखें निश्चल हो रही थीं, उन्हें बड़ी देर तक देखते रहने के बाद कादम्बरी ने स्वयं कहा—

सज्जनो, क्रमागत स्नेह से सुलभ इस शोकावेग का आप परित्याग करें, जिसका अन्त नहीं, जिसके अन्त में भी दुःख ही हो, वैसा दुःख भले ही किसी मरणभीरु व्यक्ति के लिये शोकप्रद हो, परन्तु जिसके अन्त में सुख हो जिसके आगे सुख की प्रत्याशा हो वह दुःख हृदय में नहीं प्रवेश करता है। यह घटना ऐसी है जिसमें शोक को स्थान ही नहीं है, इसमें तो दूरानुबन्धी विस्मय का स्थान है। इसमें समझाना क्या है ? दूसरी जगह भले ही नहीं देखा गया हो परन्तु मनुष्यों में तो आपने प्रत्यक्ष ही यह घटना देखी है। आपने चन्द्रापीड का शरीर भी अविनाशी रूप में देखा ही है। चन्द्रापीड से बातें आज नहीं हो सकीं वह भी कभी होगी ही।

१. सद्वृत्त्या।

परिबोधनेन। अन्यत्राहृष्टपूर्वो मनुष्येषु प्रत्यक्षीकृत एवायं वृत्तान्तः। भवद्भिरपि दृष्टं च पुरेवाक्षततनोर्देवस्य वदनम्। संभाषणापि या देवेन विना न संभवति सापि संभावितैव। तद्गम्यतामधुना वार्तोत्सुकमतेर्देवस्य पादमूलम्। न चायं प्रत्यक्षदृष्टोऽप्युपरतशरीरविनाशवृत्तान्तः प्रकाशनीयः। दृष्टोऽस्माभिरच्छोदसरसि तिष्ठत्येतदेवावेदनीयम्। यतः कारणादुपरतिः खल्ववश्यंभाविनी प्राणिनां कथंचित्प्रत्ययमुत्पादयति। शरीराविनाशः पुनः प्राणैर्विनाकृतानां दृश्यमानोऽप्यश्रद्धेय एव। तदस्यावेदनेन सुदूरस्थितमपि गुरुजनं मरणसंशये निक्षिप्य वर्तमाने प्रयोजनमेव नास्ति। प्रत्यागतजीविते जीवितेश्वरे स्वयमेवायमत्यद्भुतभूतोऽर्थो गुरुजनेष्वाप्रकटीभविष्यति।' इत्येवमादिष्टाश्च ते व्यज्ञापयन्। 'देवि, किं विज्ञापयामः। द्वाभ्यामेवापरिज्ञानमस्य वस्तुनः संभवेदगमनेनास्मदीयेनाकथनेन वा। तदस्माकं तु हस्ते द्वयमप्येतन्नास्ति। युवराजवैशम्पायनयोर्वार्तां विना दुःखं तिष्ठता

परिबोधनेन—व्यर्थमत्र भवतामाश्वासनम्। अन्यत्र—मनुष्यतेरयोनौ। अदृष्टपूर्वः—अनालोकितः। प्रत्यक्षीकृतः—साक्षात्कृतः। पुरेव—पूर्ववत्। अक्षततनोः—अविकृतशरीरस्य। देवस्य—चन्द्रापीडस्य। वदनम्—मुखम्। संभाषणा—वार्त्तालापः। संभाविता—प्राणागमे सति संभविनी। वार्त्तोत्सुकमतेः—वृत्तान्तज्ञानायोत्कण्ठितस्य। देवस्य—राज्ञस्तारापीडस्य। पादमूलम्—चरणसमीपम्। उपरतशरीराविनाशवृत्तान्तः—उपरतस्य निष्प्राणस्यापि शरीरस्य अविनाशस्य अक्षतभावेन स्थितेः वृत्तान्तः—समाचारः। प्रकाशनीयः—कस्मैचिदपि कथनीयः। (चन्द्रापीडः) अस्माभिः दृष्टः—प्रत्यक्षीकृतः। अच्छोदसरसि—अच्छोदसरोवरसमीपे। आवेदनीयम्—कथनीयम्। (मिथ्याकथने कारणमाह—यत इति०) उपरतिः—मृत्युः। अवश्यंभाविनी—निश्चिता। प्रत्ययम्—विश्वासम्। (मृतोऽप्यविकृतशरीरस्तिष्ठतीति सत्येऽभिधीयमाने सति लोको मृत्युमवश्यंभाविनं मत्वा तत्रांशे विश्वसिति, शरीराविनाशांशे तस्य दृष्टत्वेऽपि विश्वासयोग्यताया अभावाद्विश्वासो न स्यादतस्तथा कथयन् सत्यापलापितयोपहस्येत, अर्थं च विप्लावयेदतोऽत्र मिथ्याकथनमेव युक्तमिति भावः) प्राणैर्विनाकृतानाम्—मृतानाम्। शरीराविनाशः—शरीरस्याक्षतत्वम्। अश्रद्धेयः अविश्वास्यः। अस्य—शरीराविनाशस्य। सुदूरस्थितम्—दूरवर्त्तिनम्, गुरुजनम्—मातापित्रादिपूज्यलोकम्। मरणसंशये—प्राणसंकटे। निक्षिप्य—पातयित्वा। वर्त्तमाने—संप्रति। प्रत्यागतजीविते—शापावसानात् पुनर्जीविते। जीवितेश्वरे—मम प्राणनाथे चन्द्रापीडे। अत्यद्भुतः—अत्याश्चर्यजनकः। अयमर्थः—वास्तविकीस्थितिरस्य मृतस्यापि शरीराविकृतिरूपा। आप्रकटीभविष्यति—स्फुटतां प्राप्स्यति। आदिष्टाः—विज्ञापिताः। व्यज्ञापयन्—उक्तवन्तः। द्वाभ्याम्—प्रकारद्वये। अपरिज्ञानम्—अनवगमः। (वयं न गच्छेम तदाऽयमर्थः राज्ञाऽज्ञातः स्थातुमर्हति, गत्वापि वयं न कथयेम तदाऽपि अयमर्थोऽज्ञातः स्थातुमर्हति, इदमेव प्रकारद्वयमस्यार्थस्य गोपनाय समाश्रयितुं शक्यमिति) द्वयमप्येतन्नास्ति—अनयोः प्रकारयोरेकतरोऽपि प्रकारोऽस्माभिरवलम्बितुं न शक्यते—तत्र कारणमिदम्) वार्त्तां विना—प्रवृत्तिमनुपलभ्य। दुःखं तिष्ठता—खेदमनुभवता। संभाव्य—इमे वार्त्तां विज्ञायागताः सूचयिष्यन्तीति विश्वासमाधाय। प्रेषितानाम्—तैः प्रहितानाम्। अप्रोषितजीवितानाम्—अमृतवताम्। अगमनम्—गमनाभावः। दूरापेतम्—अशक्यम्। (ननु यदि

अतः आप समाचार जानने के लिये उत्सुक तारापीड के पास जायें। आपने यद्यपि प्रत्यक्ष देखा है, तथापि मर जाने पर भी शरीर नष्ट नहीं हुआ है यह समाचार किसी से नहीं कहियेगा, केवल यही कहियेगा कि हमने देखा है अच्छोद सरोवर पर हैं। मरने की बात पर सबको विश्वास हो जाता है, परन्तु मर जाने पर भी शरीर-विनाश नहीं हुआ इस बात को देखकर भी विश्वास नहीं होता है। अतः इस तरह की बात कह कर दूर-स्थित गुरुजन को मरणसंशय में डालने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। जब यह हमारे जीवितेश्वरजी उठेंगे तब स्वयं यह आश्चर्य-वृत्तान्त गुरुजनों पर प्रकट हो जायगा। इस तरह कादम्बरी के कहने पर उन लोगों ने कहा—देवि, हम क्या कहें? दो ही तरह से इस बात को छिपाया जा सकता है या तो हम नहीं जायें, अथवा जाकर भी कुछ नहीं कहें। हमारे हाथों में दोनों में से एक भी नहीं है। युवराज और वैशम्पायन की खबर के विना

देवेन तारापीडेन देव्या विलासवत्यार्यशुकनासेन संभाव्य प्रेषितानामप्रोषितजीवितानामगमनं तु दूरापेतमेव। गत्वापि दयिततमतनयवार्ताश्रवणलालसस्य राज्ञो देव्या आर्यशुकनासस्य दुःखप्लुताक्षीण्युद्वीक्ष्य मुखानि निर्विकारवदनानामस्माकमवस्थानमशक्यमेव।' इति विज्ञापिता तैरेवमेतदित्युक्त्वा कादम्बरी मेघनादमवादीत्। 'मेघनाद, वेद्मि संस्तुतजनस्यैतदनुचितमिति। तथापि गुरूणां चेतःपीडामवेक्षमाणया मयैवमभिहितम्। इतरदपि दुःखमापतति। कीदृशं भवति। किं पुनरिदं महावज्रपतनसदृशम्। तदेतदपि भवतु। एभिः सहापरः कश्चिच्छ्रद्धेयवचाः प्रत्यक्षदृष्टसकलवृत्तान्तः संप्रत्ययाय व्रजतु।' इत्येवमादिष्टस्तु मेघनादो व्यज्ञापयत्। 'देवि, राजलोके तु का कथा भृत्यवर्गोऽपि सकल एवायं कन्दमूलफलाशी निश्चयं कृत्वा स्थितो यथास्माकं मध्यादेकेनापि देवपादान्विना न प्रतीपं गन्तव्यमिति। भृत्या अपि त एव ये संपत्तेर्विपत्तौ सविशेषं सेवन्ते। समुन्नम्यमानाः सुतरामवनमन्ति। आलप्यमाना न समानालापाः संजायन्ते। स्तूयमाना नोत्सिच्यन्ते।

विश्वासपूर्वकं प्रेषितानां भवतां गमनशक्यनिरोधं तदा गम्यतां परन्तु गत्वापि भवद्भिः सत्यं न कथनीयमुपहासावश्यंभावादिति चेत्तत्राह–गत्वापि इति) गत्वा–राजधानीं प्राप्य। दयिततमतनयवार्त्ताश्रवणलालसस्य–अतिप्रियपुत्रवृत्तान्तश्रवणोत्सुकस्य। दुःखप्लुताक्षीणि–खेदपूर्णनयनानि। उद्वीक्ष्य–दृष्ट्वा। निर्विकारवदनानाम्–अविकृतमुखानाम्। (गत्वोत्सुकान्सखेदांश्च राजविलासवतीशुकनासान्दृष्ट्वा वयं स्वस्थमौनवदनास्तिष्ठेमेति संभावनाऽपि नास्माभिः क्रियत इत्यर्थः) तैः–वार्त्ताहरैः। इति विज्ञापिता–एवमुक्ता। एवमेतत्–सत्यमेभिरुच्यते। संस्तुतजनस्य–विश्वस्तभृत्यस्य कृते। एतत्–पूर्वोक्तरूपं वृत्तान्तगोपनप्रकारद्वयम्। चेतःपीडाम्–मनोव्यथाम्। अवेक्षमाणया–संभावयन्त्या। एवम्–पूर्वोक्तरूपम्। इदम्–पुत्रविपत्तिरूपम्। श्रद्धेयवचाः–विश्वसनीयवचनः। प्रत्यक्षदृष्टसकलवृत्तान्तः–प्रत्यक्षीकृतसकलार्थः। संप्रत्ययाय–तेषां विश्वासाय। राजलोके–राजवर्गे। (राजसु कोपि गमिष्यतीति तु कथापि न संभवति) एकेन–अन्यतमेन। देवपादान् विना–विना चन्द्रापीडम् (चन्द्रापीडं विहाय) प्रतीपम्–भिन्नं वर्त्म। संपत्तेर्विपत्तौ सविशेषं सेवन्ते–सम्पत्तिकाले यावती सेवा कृता विपत्तिकाले ततोऽधिकां सेवां कुर्वन्ति (त एव भृत्याः–वास्तविकाः सेवकाः) समुन्नम्यमानाः–उन्नतिं प्राप्यमाणाः। सुतरामवनमन्ति–अत्यर्थं नम्रतां श्रयन्ति। आलप्यमानाः–वार्त्तालापे प्रवर्त्यमानाः। समानालापाः–तुल्यव्याहारिणः। स्तूयमानाः–प्रशस्यमानाः। उत्सिच्यन्ते–सगर्वा भवन्ति। क्षिप्यमाणाः–अनादृताः। अपरागं गृह्णन्ति–विरक्ताः सम्पद्यन्ते। प्रतीपम्–विपरीतम्। हितप्रियम्–हितमपि प्रियम् (सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयादिति मनूक्तेः) अनादिष्टाः–आदेशमप्रतीक्षमाणाः। कुर्वन्ति–हितं साधयन्ति। कृत्वा न जल्पन्ति–कार्यं कृत्वापि स्वप्रशंसा-

---

दुःखी होकर महाराज तारापीड, महारानी विलासवती तथा आर्य शुकनास ने बड़ी आशा से हमें भेजा है ऐसी स्थिति में जीते जी नहीं जाने की बात ही नहीं उठती है। जा करके प्यारे पुत्र की वार्ता सुनने की लालसा रखने वाले राजा, रानी तथा शुकनास के दुःखाश्रुपूर्ण मुखों को देखकर हमारे मुख पर विकार नहीं उत्पन्न हो यह भी नहीं हो सकता है। जब भृत्यों ने इस प्रकार निवेदन किया तब कादम्बरी ने उनके कथन का अनुमोदन करते हुए मेघनाद से कहा—मेघनाद, मैं जानती हूँ विश्वासी भृत्य के लिये यह अनुचित है, 'तथापि गुरुजन के मनोदुःख को ध्यान में रखकर मैंने वैसा कहा था। दूसरा ही दुःख आ पड़ता है, न जाने वह कैसा हो ? क्या वह वज्रपतन के समान होगा, तो यह भी होवे, इनके साथ कोई विश्वसनीय सारी बातों की प्रत्यक्ष जानकारी रखने वाला विश्वास दिलाने के लिये जाय। इस प्रकार आदेश प्राप्त करके मेघनाद ने कहा—'देवि, राजलोक की क्या बात ? यह समस्त कन्दमूल-फल पर रहने वाला भृत्यवर्ग राजकुमार के बिना पगभर भी पीछे लौटने को तैयार नहीं है। नौकर भी वह वही है जो सम्पत्ति की अपेक्षा विपत्ति के समय अधिक सेवा करते हैं। उन्नति प्राप्त करके स्वतः अवनत हो जाते हैं, बराबर बात नहीं करते हैं, प्रशंसा करने पर भी गर्व नहीं करते हैं, शिकायत

क्षिप्यमाणा नापरागं गृह्णन्ति । उच्यमाना न प्रतीपं भाषन्ते । पृष्टा हितप्रियं विज्ञापयन्ति । अनादिष्टाः कुर्वन्ति । कृत्वा न जल्पन्ति । पराक्रम्य न विकत्थन्ते । विकथ्यमाना अपि लज्जामुद्वहन्ति । महाहवेष्वग्रतो ध्वजभूता इव लक्ष्यन्ते । दानकाले पलायमानाः पृष्ठतो निलीयन्ते । धनात्स्नेहं बहु मन्यन्ते । जीवितात्पुरो मरणमभिवाञ्छन्ति । गृहादपि स्वामिपादमूले सुखं तिष्ठन्ति । येषां च तृष्णा चरणपरिचर्यायाम्, असंतोषो हृदयाराधने, व्यसनमाननावलोकने वाचालता गुणग्रहणे, कार्पण्यमपरित्यागे भर्तुः । ये च विद्यमानेपि स्वात्मन्यस्वाधीनसकलेन्द्रियवृत्तयः पश्यन्तोप्यन्धा इव शृण्वन्तोपि बधिरा इव वाग्मिनोपि मूका इव जानन्तोपि जडा इवानुपहतकरचरणा अपि पङ्गव इव क्लीबा इवाकिंचित्कराः स्वात्मना[1] स्वामिचिन्तादर्शे प्रतिबिम्बवद्वर्तन्ते । तत्सर्वमेवायमेवं स्थितो भृत्यलोकः । देवस्य च स्थाने देवी वर्तते । तदाज्ञापितं कृतमवधारयतु देवी ।' इत्युक्त्वा मेघनादस्त्वरितकनामानं कुमारबालसेवकमाहूय तैः सह व्यसर्जयत् ।

अथ सुबहुदिवसापगमे वार्तां विनोत्ताम्यन्ती चन्द्रापीडस्यैवागमनायोपयाचितं

लोभेन तत्र प्रचारयन्ति । पराक्रम्य-विक्रमं प्रदर्श्य । विकत्थन्ते-आत्मानं श्लाघन्ते । विकथ्यमानाः-प्रशस्यमानाः सन्तः । महाहवेषु-युद्धेषु । ध्वजभूताः-पताकावदग्रे संचरन्तः । दानकाले-पारितोषिकावसरे । पलायमानाः-निःस्पृहतयाऽन्यत्र गन्तुमुद्यताः । निलीयन्ते-स्वं निह्नुवते । धनात्-धनापेक्षया । बहु मन्यन्ते-अधिकमाद्रियन्ते । जीवितात् पुरः-जीवनादग्रे । तृष्णा-लोभः । चरणपरिचर्यायाम्-स्वामिपादसेवायाम् । असंतोषः-अतृप्तिः । हृदयाराधने-स्वामिनो हृदयस्य प्रसन्नतायाः सम्पादने । आननावलोकने-स्वामिमुखवीक्षणे । व्यसनम्-आसक्तिः । वाचालता-बहुभाषित्वम् । कार्पण्यम्-कृपणता । अस्वाधीनसकलेन्द्रियवृत्तयः-परायत्तसकलचेष्टाः । वाग्मिनः-वाक्शक्तिसंपन्नाः । अनुपहतकरचरणाः-अक्षतपाणिपादाः । आत्मना-स्वेच्छया । स्वामिचिन्तादर्शे-स्वामिनः सुखस्य चिन्तायां दर्पणे । एवं स्थितः-एतादृशः प्रागुक्तसकलगुणसम्पन्नः । देवस्य-चन्द्रापीडस्य । देवी-भवती कादम्बरी । आज्ञापितं कृतमवधारयतु-यदाज्ञापयिष्यते भवत्या तदवश्यममी भृत्याः कर्त्तुं प्राणपणैश्चेष्टिष्यन्ते इति निश्चितं जानातु । त्वरितकनामानम्-त्वरितसंज्ञम् । कुमारबालसेवकम्-चन्द्रापीडस्य बालकावस्थाया उपचारकम् । तैः-भृत्यैर्वार्त्ताहरैः । व्यसर्जयत्-गन्तुमाज्ञापयामास ।

सुबहुदिवसापगमे-बहुषु दिवसेषु व्यतीतेषु । वार्त्तां विना-चन्द्रापीडसमाचारस्यानवगमेन ।

करने पर रूठते नहीं हैं, पूछे जाने पर प्रियहित कह देते हैं, बिना आज्ञा के कार्य किया करते हैं, पराक्रम दिखाकर आत्मश्लाघा नहीं करते और दूसरे द्वारा की गई श्लाघा पर लज्जा अनुभव करते हैं, युद्ध में झण्डे की तरह आगे रहते हैं, दानकाल में भागकर छिप जाते हैं, स्नेह को धन से बढ़कर मानते हैं, जीने से पहले मरण की इच्छा रखते हैं, घर की अपेक्षा मालिक की सेवा में सानन्द रहते हैं। जिन्हें स्वामिसेवा की तृष्णा रहती है, स्वामी के हृदय को खुश करने में असन्तोष रहता है, स्वामी के मुख को देखते रहने का व्यसन रहता है, स्वामी के गुणों के वर्णन के विषय में वाचालता रहती है, स्वामी का त्याग नहीं करने में कृपणता रहा करती है। ऐसे भृत्य आत्मा के रहते हुए भी पराधीन व्यापार, देखते हुए भी अन्ध, सुनते हुए भी बधिर, हाथ-पैर के होने पर भी पङ्गु, वाक्शक्ति के होने पर भी मूक, जानते हुए भी जड़, नपुंसकों की तरह अकिञ्चित्कर एवं स्वामिचिन्तारूपदर्पण में प्रतिबिम्ब की भाँति दीखने वाले हुआ करते हैं। यह सारा भृत्यवर्ग उसी प्रकार का है, महाराज चन्द्रापीड की जगह पर आप ही हैं, अतः आप अपने आदेश को पूर्ण ही समझें। ऐसा कहकर मेघनाद ने त्वरितक नामक कुमार के बालसेवक को बुलाकर उन भृत्यों के साथ भेज दिया।

इसके बाद बहुत दिन बीत जाने पर कुमार की खबर नहीं मिलने से चिन्तित महारानी विलासवती

---

१. स्वात्मनः ।

कर्तुमवन्तीनामनगरीदेवतानामवन्तिमातृणामायतनं निर्गता विलासवती 'देवि, दिष्ट्या वर्धसे, प्रसन्नास्तेऽवन्तिमातरः, परागता युवराजवार्ताहराः' इति सहसैव संभ्रमप्रधावितात् परिजनादुपश्रुत्यानन्दबाष्पजललुलितया जलार्द्रेन्दीवरदलस्रजेव विक्षेपदीर्घया दृष्ट्यार्चयन्तीव चिरं दृष्ट्वा ककुभो मृगाङ्गनेव परिभ्रष्टबालपोता फूत्कृत्य प्राकृतेवार्ता 'केनेदममृतं मे वाक्छलाद् वृष्टं, कस्यानुकम्पास्मिञ्जने जाता, केन दृष्टाः, कियद्दूरे वर्तन्ते, किं वा तैः कथितं, कुशलं मे वत्सस्य' इति पृच्छन्त्येवाद्राक्षीदितस्ततो यथादर्शनं संघशः प्रधावितेन नरपतिप्रतिबद्धेनाप्रतिबद्धेन चोज्जयिनीनिवासिना जनेन 'आगतो युवराजः कियद्दूरे भवद्भिः परित्यक्तः, दिवसेष्वेतेषु क्व वर्तते, क्व वा भवद्भिर्यात्वा दृष्टः; क्व वातिकष्टस्तेनातिवाहितो वाहनमात्रसाधनेन धाराधरागमः, तुरगपृष्ठगतस्य मन्ये वहत एवास्यापक्रान्तः त्वरितक एतद्वेत्ति, किमनेन वेदितेनाप्येतत्कथयतु यदर्थमयं क्लेशः कृतो युवराजेन स दृष्टो वैशम्पायनः प्रत्यानीतो वा मिलितोऽस्य पत्रलेखासहितो मेघनादः, दत्तः कथं कश्चिदपि

उत्ताम्यन्ती-अधीरतां गच्छन्ती। उपयाचितम्-आगते चन्द्रापीडे इत्थंप्रकारां पूजां करिष्ये इत्यादिप्रकाराम् मान्यताम्। आयतनम्-मन्दिरम्। दिष्ट्या वर्धते-अतिमहत् ते भाग्यम्। अवन्तिमातरः-अवन्तीपुर्यां देवताः। परागताः-परावृत्यायाताः। सहसैव प्रधावितात्-संभ्रमेण धावित्वाऽऽगतात्। परिजनात्-भृत्यात्। आनन्दबाष्पजललुलितया-हर्षाश्रुपूर्णया। जलार्द्रेन्दीवरस्रजा इव-जलसिक्तनीलकमलमालया इव। विक्षेपदीर्घया-संभ्रमविस्तारितया। अर्चयन्ती-पूजामाचरन्ती। ककुभः-दिशः। परिभ्रष्टबालपोता-नष्टशिशुशावका। प्राकृता-साधारणस्त्री। आर्त्ता-पीडिता। वाक्छलात्-वचनव्याजात्। केन मे इदममृतं वृष्टम्-केन जनेन (युवराजवार्त्ताहरा आयाता इति कथयता वचनव्याजेन) ममोपरि सुधावृष्टिः कृता। अस्मिन् जने-मयि। संघशः प्रधावितेन-संघीभूय द्रुतपदन्यासं गच्छता। नरपतिप्रतिबद्धेन-राज्ञा पारितेन। परित्यक्तः-पश्चात्कृतः। यात्वा-गत्वा। अतिकष्टः-अत्यन्तकष्टकरः। वाहनमात्रसाधनेन-केवलेनाश्वरूपेणोपकरणेन। धाराधरागमः-वर्षासमयः। अतिवाहितः-व्यतियापितः। तुरगपृष्ठगतस्य-अश्वारूढस्य। वहतः-चलतः। अपक्रान्तः-व्यतीतः (वर्षासमयः) अनेन—धाराधरसमयः कथं व्यतीत इतिवृत्तेन। वेदितेनापि किम्-कथितेनापि नास्ति किमपि फलम्। प्रत्यानीतः-प्रत्यावर्त्य

चन्द्रापीड के आगमन के लिये मनौतियाँ करने के लिये अवन्तिपुरी की देवता अवन्तिमाता के मन्दिर को चली। रास्ते में दौड़कर आये हुए परिजन ने कहा कि—देवि, आपके भाग्य अच्छे हैं, आप पर अवन्तिमाता प्रसन्न हैं, युवराज की खबर लाने वाले दूत लौट आये हैं। इस समाचार को सुनकर विलासवती के आनन्दाश्रु से भरे नयन पानी से भींगे हुए नीलकमल के समान दीखने लगे। बड़ी-बड़ी आंखों से उसने दिशायें देखीं, मानो वह कमल-पुष्पों से दिशाओं की अर्चना कर रही हो, विलासवती ऐसी लगती थी मानो बालशावक के खो जाने से व्याकुल हरिणी हो, वह लम्बी सांस लेकर साधारण स्त्री की तरह आर्त्त होकर कहने लगी—किसने मेरे ऊपर इन वचनों के व्याज से अमृत की वर्षा की है, किसने मुझ पर कृपा की है, किसने उन दूतों को देखा है, वह दूत कितनी दूरी पर हैं, उन लोगों ने क्या कहा है?

इस तरह पूछती हुई विलासवती ने देखा कि उज्जयिनी के लोग दल के दल दौड़े चले आते हैं, राजा ने जिन्हें रोका अथवा नहीं रोका सभी पूछ रहे हैं कि क्या युवराज आ गये, आप लोगों ने उन्हें कितनी दूरी पर छोड़ा है? इन दिनों वह कहां हैं, आप लोगों ने कहां जाकर उन्हें देखा? अति कठिन बरसात के दिन उन्होंने घोड़े की पीठ पर कैसे काटे? मालूम पड़ता है उन्होंने चलते-चलते ही बरसात काट दिया है, त्वरितक यह सारी बातें जानता है, इन बातों को जानकर ही क्या होगा? यह बतायें कि जिसके लिये यह सारा प्रयास कष्ट किया गया क्या उस वैशम्पायन को युवराज ने देखा? उसे वह लौटा लाये? पत्रलेखा के साथ मेघनाद उन्हें

---

१. यथादर्शनंसंबन्धशः। २. दत्ता।

संदेशो देववर्धनेन मे मित्रमेवासावद्यारभ्य रामसिकतयैव विनाशं बलाद्गतस्य बालधर्मणो वत्सस्य बिभेम्येव वार्तां पृच्छन्नपि जीवत्यसावस्य वाजी यो युवराजेन प्रसादीकृतः, प्रसीदत सादिनां प्रथमस्य पृथुवर्मणो मातुलस्य मे कथयत वार्ताम्, उत्प्रेक्षामहे महानश्ववारैरनुभूतः क्लेश इति, कुशलं महाश्वपतेरश्वसेनस्य, श्वशुरोसावस्माकम्, विस्मयः कृतोस्मत्पित्रापि यच्चिह्नकमपि भवतां हस्ते न किंचित्प्रहितम्, आहितभर एवासौ युवराजभवने दृष्टो भवद्भिर्भ्राता मे भरतसेनः, सपरिजनस्य सेनापतेर्भद्रं भद्रसेनस्य, सेवाव्यसनी सूनुर्मे कुमारवर्मा तत्र लगति, बलाधिकृतस्य का वार्तावन्तिसेनस्य रोषितस्तेनासीन्नासीरार्थे युवराजः, राजकुले कः प्रसादवित्तो वर्धमानो मान्यते वा केन वा किं लब्धमेतावद्भिर्दिवसैः, आजीवनिका बहवः खल्वभिनवसेवका जाताः, यातु तावत्सर्वमेवान्यद्येन दृष्टः स कथयतु सर्वसेनसूनोर्वीरसेनस्य वार्ता पितर्युपरते प्रथममेव स प्रविष्टो यात्रां मात्रास्य दुःखान्तरितप्रत्यग्रपतिमरणशोकादशनक्रियैव परित्यक्ता न विद्म एवं कथं सा जीवति, इत्येतानि

आनीतः। देववर्धनेन–तदाख्येन केनचन राज्ञा। रामसिकतया–विनोदप्रवृत्त्या बालधर्मणः–शिशुस्वभावस्य। अस्य–देववर्धनस्य। युवराजेन प्रसादीकृतः–उपहृतः। वाजी–अश्वः। जीवति–प्राणान् धारयति कच्चित्। सादिनां प्रथमस्य–अश्वारोहिणां श्रेष्ठस्य। वार्त्तां कथयत–ब्रूत। उत्प्रेक्षामहे–संभावयामः। विस्मयः–आश्चर्यजनकम्। चिह्नकम्–पत्रादि किमपि। आहितभरः–राजकार्यभारवाही। लगति–सेवायां समर्थो भवति। बलाधिकृतस्य–सेनाधिकारिणः। तेन बलाधिकृतेन अवन्तिसेनेन। नासीरार्थम्–अग्रेसरणार्थम्। युवराजः–चन्द्रापीडः। रोषितः–कोपितः। प्रसादवित्तः–राज्ञः प्रसादेन लब्धसम्पत्तिकः। आजीवनिकाः–जीवननिर्वाहमात्रवेतनाः। यातु तावत्सर्वम्–सर्वं पूर्वोक्तं तावदेकतस्तिष्ठतु। येन स वीरसेनो दृष्टः स कथयतु सर्वसेनसूनोर्वीरसेनस्य वार्ताम्, पितरि उपरते (मृते सति) प्रथमम् एव स (वीरसेनः) यात्रां प्रविष्टः प्रस्थाने गतः। अस्य (वीरसेनस्य) मात्रा दुःखान्तरितप्रत्यग्रपतिमरणशोकात् (कष्टसोढ-

---

मिला ? क्या देववर्धन ने कुछ सन्देश कहा है ? आज से वह भी मेरा मित्र हुआ। हठात् विनाश को प्राप्त लड़कपन करने वाले वत्स की खबर पूछने में डर लगता है। युवराज ने जो घोड़ा उसे उपहार दिया था क्या वह जीता है ?—कृपा कीजिये—घुड़सवारों में प्रथम मेरे मामा पृथुवर्मा की खबर सुनाइये, मैं सोचता हूँ घुड़सवारों को बड़ा कष्ट हुआ है ? महाश्वपति अश्वसेन तो सकुशल हैं, वह हमारे श्वशुर हैं, हमारे पिता ने आश्चर्यजनक कार्य किया है कि आप के हाथ कुछ चिह्न तक नहीं भेजा है। युवराज के घर का सारा कार्यभार संभालने वाला मेरा भाई भरतसेन आपको मिला था ? सेनापति भद्रसेन परिजन के साथ प्रसन्न हैं ? सेवाव्यसनी मेरा पुत्र कुमार वर्मा वहां है ? सेनानायक अवन्तिसेन की क्या खबर है ? नासीर के सम्बन्ध में उसने युवराज को रुष्ट कर दिया था। राजकुल में आजकल किस पर प्रसन्नता मालूम पड़ती है ? किसने इतने दिनों में क्या प्राप्त किया है ? बहुत से आजीवन-प्राप्त सेवक नियुक्त हुए, छोड़ो इन बातों को, जिसने जो देखा वह वही कहे। सर्वसेन का बेटा वीरसेन पिता के मरने पर पहली बार यात्रा पर गया था, पुत्र के वियोग में उसकी माता को पति के मरण का दुःख छिप गया, उसने भोजन भी छोड़ दिया है, न जाने वह कैसे जी रही है ? इसी तरह बहुत सी बातें लोग पूछते जाते थे, लेकिन वह भृत्यवर्ग कुछ भी उत्तर नहीं देते थे, उनकी दुःखभरी आंखें नाक के अग्रभाग पर अवस्थित थीं, वे आविष्ट से लग रहे थे, मार्गश्रम से उनके शरीर चूर-चूर हो रहे थे, तथापि वे पैर को घसीटते हुए बड़े प्रयत्न से चले जा रहे थे, उनके कपड़े गन्दे हो रहे थे, उनका शरीर असंस्कार से मलिन हो रहा था, उन लोगों ने रूखे बालों को बारबार समेट कर ऊपर की ओर बांध रखा था, उनके केश ध्वज की तरह खड़े हो रहे थे, वे मार्ग-श्रम के आश्रय, थकावट के स्थान, मनोवास के आवास एवं प्रवास के समूह की तरह दीख रहे थे, परमदुःखी त्वरितक समेत उन भृत्यों को देखकर विलासवती उसी मन्दिर के प्रांगण में बैठ गई और उन्हें बुला भेजा।

चान्यानि च प्रतिपदं पृच्छ्यमानानप्यदत्तवचसो नासाग्रस्थितमन्युगर्भदृष्टीनाविष्टानिव, अध्वश्रमनिःसहाङ्गानपि पदाकृष्टिसंभावितोद्यमायासितया गत्या गच्छतश्च, अतिमलिनपटच्चराच्छादितान्, असंस्कारमलिनकायान्, अनेकधैवोद्बद्धाध्वधूलिपरुषमूर्धजानध्वजानिवाध्वक्लेशस्याश्रयानिव श्रमस्य पदन्यासानिव दौर्मनस्यस्यावासानिव प्रवासस्य संदर्भानिव सर्वदुःखानां दूरत एव त्वरितकसमेतांस्ताँल्लेखहारकान् आलोक्य तस्मिन्नेव मातृगृहाङ्गणे स्थित्वा तेषामाह्वानायादिदेश।

अनन्तरं चातर्कितापतितदर्शनोत्पादितद्विगुणदुःखावेगान्मुषितानिवोन्मुक्तानिवेन्द्रियैर्दारुमयानिव शून्यशरीरान्निर्जीवितानिवोपसर्पतः पुरस्तात्पतन्तीव बाष्पान्धा साध्वसस्खलितचरणकमला कतिचिद्गत्वा पदानि गद्गदतरमुच्चैरकृतप्रणामानेवावादीत्। 'भद्राः, कथयताशु वत्सस्य मे वार्तामात्रम्। इदं त्वन्यथैव किमपि कथयति मे हृदयम्। अप्रत्यय-

---

नवीनप्रियविपत्तिखेदवशात्) अशनक्रिया-भोजनम्। प्रतिपदं प्रत्येकपदन्यासे। पृच्छ्यमानान्-जिज्ञास्यमानान्। अदत्तवचसः-उत्तरमददतः। नासाग्रस्थितमन्युगर्भदृष्टीन्-नासिकाग्रभागावस्थितदुःखपूर्णनयनान्। अध्वश्रमनिःसहाङ्गान्-मार्गचलनजन्यश्रान्तिशिथिलशरीरावयवान्। पदाकृष्टौ चरणोत्थापने संभावितेनोद्यमेन अपेक्षितेन प्रयासेन आयासितया प्रयत्नकृतया गत्या गच्छतः चलतः। अतिमलिनपटच्चराच्छादितान् जीर्णमलिनवस्त्रप्रावृतदेहान्। असंस्कारमलिनकायान्-संस्काराभावेन स्नानादिप्रसाधनाभावेन मलिनदेहान्। अनेकधैव असकृत्। उद्बद्धाः उपरिकृत्य संयमिताः अध्वधूलिपरुषाः मार्गरजोरूक्षाः मूर्धजाः केशा येषां तादृशान्। अध्वक्लेशस्य मार्गे जातस्य कष्टस्य ध्वजान् इव पताकासदृशान्। आश्रयान्-पदन्यासान्। दौर्मनस्यस्य-विषादस्य। आवासान्-वासभूमिस्वरूपान्। सन्दर्भान्-पुञ्जान्। लेखहारकान्-वार्त्ताहरान्दूतान्। मातृगृहाङ्गणे-अवन्तीमातृनामकदेवीमन्दिराजिरे। तेषाम्-आगच्छतां दूतानाम्। आह्वानाय-आकारणाय।

अतर्कितापतितेन-अकस्मादुपस्थितेन दर्शनेन विलासवतीसाक्षात्कारेण उत्पादितः कृतः द्विगुणः द्विगुणपरिमाणः दुःखावेगः क्लेशोदयो येषां तादृशान्। मुषितान्-लुण्ठितधनान्। इन्द्रियैः ज्ञानसाधनैर्नेत्रघ्राणादिभिः उन्मुक्तान् परित्यक्तान् इव (अचेतयतः) दारुमयान् काष्ठरचिततुल्यान्। शून्यशरीरान्-ज्ञानशून्यतनून्। निर्जीवितान्-मृतान्। उपसर्पतः-चलतः, पुरस्तात् पतन्ती-स्खलद्गतिः। बाष्पान्धा-अश्रुपूर्णनेत्रतया द्रष्टुमशक्ता। साध्वसस्खलितचरणकमला-भयकम्पितपादा। कतिचित् पदानि-कियतः पदन्यासान्। गत्वा-पुर उपसृत्य। गद्गदतरम्-अतिगद्गदकण्ठम्। अकृतप्रणामान्-नमस्कारमप्यकृतवतः। (दूतान्) उच्चैः-उच्चस्वरेण। भद्राः कल्याणिनः, आशु मे वत्सस्य शिशोश्चन्द्रापीडस्य। वार्त्तामात्रम्-केवलं शुभसमाचारम्। कथयत-ब्रूत। (इदं मे हृदयन्तु किमपि) अन्यथैव प्रकारान्तरेणैव। कथयति-अनुमापयति। अप्रत्ययम्-अविश्वासम्। सहसागतबाष्पवेगम्-हठात् प्रवर्त्तमानामश्रुधाराम्। अवनितलनिवेशितोत्तमाङ्गाः-पृथिवीसमासञ्जितशिरोदेशाः। प्रणामापदेशेन-प्रणामव्याजेन। उत्सृज्य-विसृज्य। (साहसोदितमश्रु नमस्कारकरणार्थं भुवि शिरो रोपयित्वा निह्नुतीकृत्य)

इसके बाद अकस्मात् महारानी के दर्शन के हो जाने से उनके दुःख द्विगुण हो उठे, वे लुट से गये, वे अचेत से हो गये, उनके शरीर शून्य हो गये, वे निर्जीव से आ रहे थे, 'उनके आगे गिरती पड़ती हुई बाष्प से अन्धी, भय से डगमगाती हुई विलासवती कुछ पग चलकर गद्गद स्वर में उनके प्रणाम करने से पहले ही उच्चस्वर में पूछने लगी। बहादुरो, मेरे बच्चे की खबर कहो, मेरा हृदय तो कुछ दूसरी तरह ही कह रहा है। इसे विश्वास ही नहीं हो रहा है। तुम लोगों ने मेरे बच्चे को देखा या नहीं। इस प्रकार पूछने पर भृत्यों की आंखों में सहसा आंसू उमड़ आये, उन लोगों ने पृथ्वी पर माथा सटाकर प्रणाम के छल से अपने उभड़े हुए आंसू को छिपाकर कष्ट से माथा उठाया और कहा देवि, हमने अच्छोदसरोवर के तटपर युवराज को देखा है, शेष बातें यह त्वरितक कहेंगे। इस प्रकार कहने वाले भृत्यों को रोते हुए स्वर में उसने कहा—यह बेचारा तपस्वी त्वरितक

मेवाश्रयते। वत्सो दृष्टो वा न भवद्भिः।' इत्येवं पृष्टास्तु ते सहसागतबाष्पवेगमवनितलनिवेशितोत्तमाङ्गाः प्रणामापदेशेनोत्सृज्य कृच्छ्रादिवाभिमुखमुन्नमितवदना व्यज्ञापयन्। 'देवि, दृष्टोस्माभिरच्छोदसरस्तीरे युवराजः। शेषमेष त्वरितको निवेदयिष्यति।' इत्यभिवदत एव तानुद्बाष्पमुखी प्रत्युवाच। 'किमपरमयं तपस्वी निवेदयिष्यति। दूरतः प्रभृत्यपसृतप्रहर्षेणैवोपसर्पणेन प्रतिलेखमालिकाशून्यैः शिरोभिराविषण्णदीनैराननैः प्रयत्नसंरक्षिताश्रुमोक्षदुःखिताभ्यां लोचनाभ्यां मन्मुखसमक्षमधारणेन च दृष्टैर्यदावेदितव्यं तद्भवद्भिरेवावेदितम्। हा वत्स जगदेकचन्द्र चन्द्रापीड चन्द्रानन चन्द्रशीतलप्रकृते चन्द्राभिरामगुण लोचनानन्दभूत किं भूतं ते येन नागतोसि। तात चन्द्रापीड पीडिता ब्रवीमि न कोपादुपालभमाना। न युक्तमेतत्तव, 'अम्ब न परिलम्बं मनागपि करोमि', इति तथा मे पुरः प्रतिज्ञायान्यत्र क्वाप्यवस्थातुम्। वत्स गच्छत एव ते मयास्य हतहृदयस्य शङ्कयैव ज्ञातं दुष्करं मे वत्सस्य पुनर्मुखावलोकनमिति। बलाद्गतोसि। किं करोमि। को वात्र दोषो वत्सस्य। मन्दभाग्याया ममैवैतान्यपुण्यानां विलसितानि। भवन्त्यपुण्यवत्योपि लोके न पुनर्मया सदृशी पापकारिणी। यस्यास्त्वमेक एवमकाण्ड एवाच्छिद्य क्वापि नीतोसि। विप्रलब्धास्मि दग्धवेधसा। वत्स सुदूरस्यापि पादयोः पतामि ते। निवर्तस्वैकवारम्।

कृच्छ्रात्-कष्टात् अभिमुखम्-विलासवतीसम्मुखम्। उन्नमितवदनाः-उत्थापितमुखाः। व्यज्ञापयन्-उक्तवन्तः। शेषम्-इतोऽधिकम्। त्वरितकः-तन्नामा चन्द्रापीडस्य बालसेवकः। इति अभिवदतः-एवं कथयतः। उद्बाष्पमुखी-साश्रुमुखी। अपसृतप्रहर्षेण-निरानन्देन। उपसर्पणेन-भवतामागमनेन। प्रतिलेखमालिकाशून्यैः-प्रत्युत्तररहितैः। (पुरा राज्ञः पत्रं शिरसोह्यते स्म, तदुत्तरमपि तथैवेति, चन्द्रापीडदत्तं प्रत्युत्तरं शिरसि न दृष्टम् इति विलासवती पुत्रस्य किमप्यत्याहितमूहाञ्चक्रे) आविषण्णदीनैः-क्लेशविवर्णैः। आननैः-मुखैः। प्रयत्नेन महताऽऽयासेन संरक्षितः पतनान्निवारितः अश्रुमोक्षः तेन दुःखिताभ्याम् कष्टं गताभ्याम्। दृष्टैः मन्मुखसमक्षम् मदभिमुखम् अधारणेन अस्थापनेन च आवेदितं कथितं तत् यत् भवद्भिः आवेदितव्यं वक्तव्यमासीत् (भवन्तः स्ववक्तव्यं स्वीयाभिः कष्टव्यञ्जिकाभिश्चेष्टाभिरेव प्राकटयन्निति सम्प्रति त्वरितकेन विशिष्य वक्तव्यं नावशिष्यतेऽतोऽसौ वराकः किं वक्ष्यतीति भावः) जगदेकचन्द्र जगतोऽद्वितीयाह्लादक, चन्द्रशीतलप्रकृते-चन्द्रवच्छीतलस्वभाव, चन्द्राभिरामगुण चन्द्रसुन्दरगुणगणोपेत। उपालभमाना-निन्दन्ती। प्रतिज्ञाय-प्रतिज्ञां कृत्वा। बलात्-स्वं बलं कृत्वा (न तु मदिच्छया) अपुण्यानां पापानाम्। विलसितानि-फलानि। अपुण्यवत्यः-पापाः। अकाण्डे-असमये। आच्छिद्य-पलाय्य। विप्रलब्धा-वञ्चिता। दग्धवेधसा-हतविधिना। सुदूरस्य-अतिदूरे

क्या कहेगा? दूर से ही आनन्दशून्य चाल, उत्तरपत्र से शून्य मस्तक, दीन-उदास मुखमण्डल, आंखों के आंसू को बलात् नियन्त्रित करना तथा हमारी आंखों के सामने नहीं ताक सकना इत्यादि व्यापारों से जो कहना था वह आपने ही कह डाला है। हा वत्स चन्द्रापीड, हा संसार के एक चन्द्र, हा चन्द्रमुख, हा चन्द्रमा के समान शीतल स्वभाव वाले, चन्द्रमाके समान सुन्दर गुणवाले, आंखों को आनन्दित करनेवाले चन्द्रापीड, तुम्हें क्या हो गया कि नहीं आये? तात चन्द्रापीड, मैं दुःख से कह रही हूँ, क्रोध से उलाहना नहीं दे रही हूँ, यह आचरण तुम्हारे योग्य नहीं हुआ कि तुम मां 'मैं विलम्ब नहीं करूँगा' इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके भी दूसरी जगह रुक गये, 'बेटा, तुम्हारे जाने के समय ही मुझे अपने हृदय की आशङ्का से मालूम हो गया था कि मैं फिर तुम्हारा मुख शीघ्र नहीं देख पाऊँगी। तुम जबर्दस्ती चले गये, मैं क्या करती? अथवा इसमें तुम्हारा ही क्या दोष? मुझ अभागी के पापों का ही यह परिणाम है। पापिनें भी संसार में हैं, परन्तु मुझ सरीखी पापिन दूसरी नहीं हो सकती है। मुझे तुम एक ही थे, जिसे भाग्य ने मुझसे जबर्दस्ती छीन कर दूर कर दिया है। दुष्ट ब्रह्मा ने मुझे ठग दिया। दूर रहने पर भी मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। एकबार लौट आओ। मां कहते हुए तुम्हारे मुख को देखने के लिये मेरा हृदय उत्सुक हो रहा है। हे मेरे दुर्लभपुत्र, मैं नहीं समझती कि जन्म से लेकर तुम्हारे

अम्बेत्यालपतस्ते वदनमालोकयितुमुत्कण्ठितं मे हृदयम्। जातदुर्लभक न जानाम्येव किमाजन्मनः प्रभृति शैशवं ते स्मृत्वात्मानमनुशोचामि । उत यौवनाभोगकारिणीं वर्तमानां रूपशोभाम्। आहोस्विदवष्टम्भधीरामुत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्यागामिनीं प्रभुताम् । इत्येवं विलपन्तीं मामवलोक्य हृदयस्थितो मैवं कृथाश्चेतसि पुत्र यथा विनापि मया जीवत्येव विलासवती। जात त्वया विना जीवन्त्यापि पितुरेवं ते कथं मया वदनं दर्शितम्। न वेद्मि किमपि प्रियतया ते किमाकृतेः प्रत्ययादुत स्त्रीजनसहभुवो मूढभावादेवेत्यद्यापि न श्रद्दधाति मे हृदयमनिष्टं ते। येन न सहस्रधा स्फुटति। स्फुटीकर्तुं च वार्तां भीता ते त्वरितकोपनीतामेव नेच्छामि। वरमनाकर्ण्यैवाश्रवणीयमुपरतास्मीति। तात किं ब्रवीषि यथा किमनेन सुतस्नेहानुचितेन लोकलज्जाकरेण वैक्लव्येनेति। एषा स्थितास्मि ते वत्स वचनात्तूष्णीम्। न रोदिमि।' इत्यभिदधानैवासन्नसखीजनावलम्बितशरीरा मोहमगात्।

यथानेकसहस्रसंख्येन प्रधावता विलासवतीपरिजनेनावेदिते तस्मिन्वृत्तान्ते मन्दरास्फालनोद्वेल इव महाम्भोधिरुद्भ्रान्तचेताः ससंभ्रममुत्थायार्यशुकनासद्वितीयो यामाव-

---

वर्त्तमानस्य। उत्कण्ठितम्–उत्सुकम्। निवर्त्तस्व–परावृत्य आगच्छ। आलपतः–कथयतः। जात, पुत्र। अनुशोचामि–हतभाग्यतया चिन्तामि। यौवनाभोगकारिणीम्–युवावस्थाविस्तारकारणीभूताम्। रूपशोभाम्–स्वरूपसंपदम्। अवष्टम्भधीराम्–सत्त्वगुणगभीराम्। उत्प्रेक्ष्योत्प्रेक्ष्य–दृष्ट्वा। आगामिनीम्–आगच्छन्तीम् (क्रमशः प्रकटन्तीम्) प्रभुताम्–अधिकारम्। त्वदीयं शैशवं रूपं प्रभुत्वं वाऽधिकृत्यात्मानं शोचामीति किमपि पक्षविशेषग्रहणे कारणं नावधारयामीत्यर्थः) हृदयस्थितः–मम हृदि वर्त्तमानस्त्वम्। एवं हृदि मा कृथाः—इत्थं मनसि न चिन्तय। प्रियतया–स्नेहेन। स्त्रीजनसहभुवः–स्त्रीस्वभावसिद्धात्। मूढभावात्–अज्ञानात्। (यदि मम हृदयं त्वदनिष्टं श्रद्दधीत तदवश्यमिदं स्फुटेत्, न स्फुटति, तेनास्य त्वदनिष्टविषयेऽविश्वासोऽनुमीयते, स चाविश्वासः स्नेहेन, रूपातिशयेन स्त्रीसुलभेन मोहेन वा जन्यते इति मयाऽपि न ज्ञायते इत्यर्थः) वरम्–उत्तमम्। अश्रवणीयम्-श्रोतुमनर्हं किमपि तवानिष्टम्। अनाकर्ण्य–अश्रुत्वा। उपरता–मृता। (तवानिष्टमश्रुत्वैव मम मरणं वरं न पुनस्तच्छ्रुत्वेत्यर्थः) सुतस्नेहानुचितेन–पुत्रप्रेमविपरीतेन। वैक्लव्येन–मोहेन। आसन्नसखीजनावलम्बितशरीरा–समीपस्थालिलोकधृतदेहा। मोहम्–मूर्च्छाम्। अगात्–प्राप्ता।

अनेकसहस्रसंख्येन–सहस्रकतिपयपरिमाणेन। प्रधावता–द्रुतपदमागच्छता। तस्मिन् वृत्तान्ते–चन्द्रापीडस्य किमप्यनिष्टं श्रुत्वा मूर्च्छिता विलासवतीति समाचारे आवेदिते–सूचिते सति। मन्दरास्फालनोद्वेलः–मन्दराचलकृतमन्थनेन प्रचलः। महाम्भोधिः–महासागरः इव उद्भ्रान्तचेताः–चकित-

---

शैशव का स्मरण करूं? अथवा यौवन के विस्तार को करने वाली तुम्हारी वर्तमान शोभा का स्मरण करूँ। अथवा संभावना के माध्यम से तुम्हारी भाविनी प्रभुता का स्मरण करूं। इस प्रकार विलाप करती हुई अपनी माता को देखकर मन में यह मत करना कि तेरे बिना भी तेरी माता जी रही है। पुत्र, तुम्हारे बिना जीकर मैं यह अपना मुख तुम्हारे पिता को किस प्रकार दिखाऊँगी। मैं नहीं समझती क्या तुम्हारे प्रेम से अथवा तुम्हारे चेहरे पर विश्वास से अथवा स्त्रीसुलभ मूर्खता से ही मेरे हृदय में यह बात नहीं बैठती है कि तुम्हारा कुछ अनिष्ट हुआ है। इसीलिये मेरे हृदय के हजार टुकड़े नहीं हो जाते हैं। अच्छा यही था कि नहीं सुनने योग्य समाचार को सुनने से पूर्व ही मैं मर जाती। पुत्र, क्या कहते हो कि पुत्र-प्रेम के कारण यह अनुचित तथा लज्जाजनक कायरपन बेकार है। अच्छा, मैं तुम्हारी बात मानकर चुप हो जाती हूँ नहीं रोऊँगी। इस तरह कहती हुई विलासवती मूर्च्छित हो गई, समीप में वर्तमान सखी ने उसे थाम लिया।

इसके बाद सहस्राधिक विलासवती के परिजन ने दौड़कर राजा को इस बात की सूचना दी। खबर मिलते ही मन्दराचल द्वारा मथित सागर की तरह चञ्चल राजा पागल हो उठे, वह घबड़ाकर उठे, शुकनास को

स्थितां प्रजविनीं करेणुकामारुह्य रयादापिबन्निव पुरो राजमार्गं किं किमेतदित्युन्मुक्तार्तनादकलकलेन सर्वतः प्रधावता जनपदौघेनाकर्षन्निवोद्वासयन्निव पृष्ठतः सगोपुराट्टालकप्राकारभवनतोरणामुज्जयिनीं निर्जगाम नरपतिः। उपेत्य चावन्तिमातृगृहमवतीर्य तिर्यग्विषण्णोद्बाष्पवदनेन मलयजजलैश्च सिञ्चता कदलीदलैश्च बीजयता जलार्द्रैश्च पाणिपल्लवैः संवाहनं कुर्वता कथं कथमपि चेतनामापाद्यमानां परिजनेनार्धोन्मीलितलोचनयुगामुष्णकालकमलिनीमिव विलासवतीमपश्यत्। दृष्ट्वा च सहसा प्रवृत्तेन नेत्राम्भसा मूर्च्छावशेषापनयनायेव सिञ्चन्समुपविश्य पार्श्वे स्पर्शामृतवर्षिणा करेण ललाटे चक्षुषि कपोलयोरुरसि बाह्वोश्च स्पृशञ्छनैः शनैर्बाष्पगद्गदमवादीत्। 'देवि, यदि सत्यमेवान्यादृशं किमपि वत्सस्य चन्द्रापीडस्य ततो न जीव्यत एव। किमर्थमयमात्मा वत्सस्य कृते सकललोकसाधारणेनामुना वैक्लव्योपगमेन तुच्छतां नीयते। इयन्ति शुभान्युपात्तानि कर्माणि। किमपरं

हृदयः। ससंभ्रमम्-सवेगम्। आर्यशुकनासद्वितीयः-शुकनासेन सहितः। यामावस्थिताम्-प्रहरिस्थाने स्थिताम्। प्रजविनीम्-शीघ्रगतिम्। करेणुकाम् गजवधूम्। रयात्-वेगात्। पुरो राजमार्गम्-अग्रतः स्थितं घण्टापथम्। आपिबन्-निगिरन्—(त्वरया लङ्घयन्) उन्मुक्तार्त्तनादकलकलेन-कृतार्त्तप्रलापकोलाहलेन। सर्वतः प्रधावता-सर्वाभ्यो दिग्भ्य आगच्छता। जनपदौघेन-लोकसमुदयेन। उद्वासयन्-ग्रामान्निर्वासयन्। गोपुरेण पुरद्वारेण अट्टालकेन प्रासादेन भवनेन गृहेण तोरणेन बहिर्द्वारेण च सहिताम् उज्जयिनीम् (उद्वासयन्) नरपतिः राजा तारापीडः निर्जगाम बहिरभवत्। उपेत्य-प्राप्य। अवन्तिमातृगृहम्-अवन्तिमातुर्नाम देव्या आयतनम्। अवतीर्य-करेणुकाया अवरोहणं कृत्वा। तिर्यक् वक्रम् विषण्णं खिन्नम् उद्बाष्पम् उदश्रु वदनं मुखं यस्य तादृशेन। मलयजजलैः चन्दनमिश्रैर्वारिभिः सिञ्चता अभ्युक्षता, कदलीदलैः रम्भावृक्षपत्रैः वीजयता वायुं कुर्वता, जलार्द्रैः वारिसिक्तैः पाणिपल्लवैः सुकुमारैः करैः संवाहनं विलासवत्याः पादयोर्मर्दनं कुर्वता परिजनेन भृत्यवर्गेण कथं कथमपि महता प्रयासेन चेतनाम् संज्ञाम् आपाद्यमानाम् नीयमानाम् अर्धोन्मीलितं लोचनयुगं यस्यास्तां तथोक्ताम् उष्णकालकमलिनीं ग्रीष्मर्तुपद्मिनीम् इव (सूर्यकरसंतापिताम्) विलासवतीम् नाम स्वप्रेयसीम् अपश्यत्-दृष्टवान्। सहसा प्रवृत्तेन-हठात् निर्गतेन। नेत्राम्भसा-अश्रुणा। मूर्च्छावशेषापनयनाय-अवशिष्यमाणमूर्च्छादूरीकरणाय इव सिञ्चन् (विलासवतीम्) पार्श्वे एकत्रभागे उपविश्य स्पर्शामृतवर्षिणा अमृतोपमं स्पर्शं वर्षता करेण हस्तेन ललाटे कपोलयोः गण्डयोः उरसि वक्षसि बाह्वोः हस्तयोश्च शनैः शनैः मन्दमन्दम्। अन्यादृशम्-अमङ्गलम्। न जीव्यत एव-जीवितुं नैव शक्यते। सकललोकसाधारणेन-अन्यजनतुल्येन। वैक्लव्योपगमेन-मोहस्वीकारेण। तुच्छताम्-नीचभावम्। नीयते-प्राप्यते। (यदि वत्सस्य किमप्यात्ययिकमुपनतं तदाऽवश्यमेव मर्त्तव्यमावाभ्यां तदलं मोहमासाद्य साधारणजनवदात्मनस्तुच्छतां व्यापयितुम्

साथ लिया, पहरे पर की तेज चालवाली हथिनी पर चढ़े। आगे की सड़क को तीव्रगति से पीते हुए राजा उसी समय निकल पड़े। यह क्या है इस प्रकार आर्त्तनाद करते हुए दौड़नेवाले पुरजन के द्वारा दरवाजे, प्रासाद, चहारदीवारी, तोरण आदि से युक्त नगरी को वह आकृष्ट-से कर रहे थे, उजाड़-से बना रहे थे। मातृभवन पहुँचकर सवारी पर से उतर कर तारापीड ने देखा कि विलासवती मूच्छित है। आंखों में आंसू लिये परिजन उसके मुँह पर चन्दन छिड़क रहे हैं, केले के पत्ते से हवा कर रहे हैं, चरण दबा रहे हैं। इस प्रकार किसी तरह उसे चेतना आ रही है, उसकी आंखें अधखुली हैं, वह ग्रीष्मऋतु की कमलिनी की तरह लग रही है। देखते ही उनके नयन से अश्रुप्रवाह होने लगा मानो वह विलासवती की शेष मूर्च्छा को दूर करने के लिये उसे सींच रहे हों, तारापीड ने विलासवती के समीप बैठकर स्पर्श द्वारा अमृत की वर्षा करते हुए हाथ से ललाट पर, आंखों पर, छाती पर, कपोलों पर, बाहुओं पर छूते हुये धीरे-धीरे गद्गद स्वर में कहा—देवि, यदि वस्तुतः कुमार का कुछ अनिष्ट हो गया है तो जीना तो नहीं ही है। साधारण लोक की तरह इस आत्मा को कायर बनाकर क्यों तुच्छ सिद्ध कर रही हो। इतने शुभ कर्म किये अब और क्या करते? इससे अधिक सुख के हम पात्र ही नहीं हैं।

क्रियते। नाधिकस्य भाजनं सुखस्य वयम्। अनुपात्तं हि हृदयताडनमपि कुर्वद्भिर्न लभ्यत एवात्रात्मेच्छया। विधिर्नामापरः कोऽप्यत्रास्ते। यत्तस्मै रोचते तत्करोति। नासौ कस्यचिदप्यायत्तः। एवं च पराधीनवृत्तौ सर्वस्मिन्न किं वास्माभिर्लब्धम्। वत्सस्यातिदुर्लभो जन्मोत्सवः संभावितः। अङ्कगतस्य मुखमवलोकितम्। उत्तानशयस्योच्चुम्ब्य चरणावुत्तमाङ्गे कृतौ। जानुसंचारिणो रेणुधूसरशरीरस्याङ्के लुलतः स्पर्शसुखमनुभूतम्। अव्यक्तमनोहारीणि प्रथमजल्पितानि श्रोत्रे कृतानि। विचेष्टमानस्य बालचाटवो दृष्टाः। गृहीतविद्यस्य गुणवत्तयानन्दितं हृदयम्। उपारूढयौवनस्यामानुषी रूपशोभा शक्तिश्च प्रत्यक्षीकृता। अभिषिक्तस्य यौवराज्ये शिरः समाघ्रातम्। दिग्विजयागतस्य प्रणमतः परिष्वक्तान्यङ्गानि। एतावदेव मनोरथशतवाञ्छितस्य वस्तुनो न संपन्नं यद्वधूसमेतस्य निजपदे प्रतिष्ठां कृत्वा तपोवने न गतम्। सर्वाभिवाञ्छितप्राप्तिस्तु महतः पुण्यराशेः फलम्। अपरमपि किं वृत्तं वत्सस्यैतदद्यापि न परिस्फुटं केनचिदेव कथितम्। एतावत्तु मया व्यक्तमेतदेव परिजनात्कथयतः कर्णे कृतम्। यथास्मत्प्रहितैर्लेखहारिभिः सहापरो वत्सस्य मे

स्यर्थः।) शुभानि पुण्यजनकानि कर्माणि यज्ञादीनि उपात्तानि कृतानि। किमपरं क्रियते—इतोऽधिकं किमनुष्ठीयताम्। भाजनम्—पात्रम्। अनुपात्तम्—अनर्जितपूर्वम्। हृदयताडनम्—उरःपीडनम्। (यद्येन शुभकर्मणा नोपार्जितं न तत्तेन स्वेच्छया हृदयं ताडयतापि लब्धुं शक्यम् इत्याशयः। अपरः—सर्वस्यापि कृतेऽवशगः। पराधीनवृत्तौ—परतन्त्रे। किंवाऽस्माभिः न लब्धम्—सर्वमपि लब्धम्। तमेव सर्वलाभं विशदयति—वत्सस्येति। वत्सस्य चन्द्रापीडस्य। जन्मोत्सवः—जन्मकालिकः हर्षसमारोहः। संभावितः कृतः। अङ्कगतस्य—क्रोडे स्थितस्य। उत्तानशयस्य—ऊर्ध्वमुखं शयानस्य। चरणावुच्चुम्ब्य—पादौ चुम्बित्वा। उत्तमाङ्गे कृतौ—शिरसि स्थापितौ। जानुसंचारिणः—जानुबलेन संचरमाणस्य। रेणुधूसरशरीरस्य—रजोरूक्षवपुषः। अङ्के—मत्क्रोडे। लुलतः—क्रीडतः। प्रथमजल्पितानि—आदिमभाषितानि। श्रोत्रे कृतानि—श्रुतानि। विचेष्टमानस्य—किञ्चिच्चेष्टां प्राप्तस्य। बालचाटवः—बालक्रीडाः। गृहीतविद्यस्य—प्राप्तशिक्षस्य। गुणवत्तया—प्रशंसनीयगुणशालितया। उपारूढयौवनस्य—यौवनं प्राप्तस्य। अमानुषी—मनुष्यदुर्लभा। रूपशोभा—सौन्दर्यलक्ष्मीः। शक्तिः—सामर्थ्यम्। अभिषिक्तस्य—यौवराज्ये प्रतिष्ठापितस्य। दिग्विजयागतस्य—दिग्विजयं कृत्वा परावृत्तस्य। प्रणमतः—चरणयोर्नतस्य। परिष्वक्तानि—आलिङ्गितानि। मनोरथशतवाञ्छितस्य—शतेन मनोरथैः अभीष्टस्य। एतावदेव—इयन्मात्रं न सम्पन्नं न जातम्। निजपदे—राजासने। सर्वाभिवाञ्छितप्राप्तिः—सकलमनोरथपूर्त्तिः। पुण्यराशेः—धर्मसमूहस्य। वृत्तम्—जातम्। अव्यक्तम्—अस्फुटम्। कर्णे कृतम्—श्रुतम्। तम्—त्वरितकम्। तावत्—प्रथमम्। अन्यतरत्—किमप्येकम्।

अप्राप्य वस्तु को हम यथेच्छ छाती पीटकर भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं। भाग्य नामक कुछ दूसरी ही वस्तु है। जो उसे अच्छा लगता है वह वही किया करता है। वह किसी के अधीन नहीं है। जब कि सारी वस्तुएँ पराधीन हैं हमने क्या नहीं प्राप्त किया ? बेटे का दुर्लभ जन्मोत्सव हमने मनाया, गोद में लेकर उसका मुख देखा, उत्तान सोते हुए बेटे के चरणों को चूम कर उसे सिर से लगाया। घुटनों के बल चलने वाले बच्चे की धूलिधूसर शरीर को गोद में लेकर उसके स्पर्श का सुख भोगा। बाल्यावस्था की पहली तुतली वाणियां सुनीं। चलने-फिरने लगने पर लड़कपन के खेल देखे, विद्याध्ययन करने पर उसकी गुणवत्ता देखी। जवान होने पर उसकी अमानुषी शक्ति तथा शोभा देखी। यौवराज्याभिषेक के समय उसका सिर सूँघा। दिग्विजय करके लौटकर जब उसने प्रणाम किया तो उसका आलिङ्गन किया। सैकड़ों मनोरथों में केवल इतना ही न हो सका कि विवाहोपरान्त बेटे को राज्य देकर हम तपोवन नहीं गये। सभी मनोरथों का पूर्ण होना तो बड़े पुण्य का फल है। और मेरे बेटे को क्या हुआ है यह तो किसी ने स्पष्टरूप में कहा नहीं है। परिजन के मुँह से मैंने इतना तो साफ सुना

बालसेवकस्त्वरितकनामायातः । स वेत्ति सर्वं वृत्तान्तम् । सोपि त्वया न पृष्ट एवेति । तत्तं तु तावत्पृच्छामः । ततो जीवितमरणयोरन्यतरदङ्गीकरिष्यामः ।' इत्यभिवदत्येव राजनि परिजनान्तरितं त्वरितकमाहूय प्रतीहारः 'त्वरितकमारान्महीतलनिवेशितोत्तमाङ्गमालोकयतु देवः' इति दर्शितवान् ।

राजा तु तथा तमालोक्य चन्द्रापीडस्नेहादेहीत्याहूय हस्तेनोत्तमाङ्गे स्पृष्ट्वादिष्टवान् । 'भद्र कथय किं वृत्तं वत्सस्य येनागमनाय मया तन्मात्रामात्येन च लिखितेपि नायातः । अनागमनकारणं वा किंचिन्न प्रतिलेखितवान्' इति । स त्वेवमादिष्टो राज्ञा गमनतः प्रभृति यथावृत्तं कथयितुमारेभे । राजा तु चन्द्रापीडहृदयस्फुटनवृत्तान्तं यावदाकर्ण्यातिक्षुभित-शोकार्णवाक्रान्तिविक्लवः प्रसार्य करमार्तस्वरस्त्वरितकमवादीत् । 'भद्र, विरम संप्रति । कथितं त्वया कथनीयम् । मयापि श्रुतं यच्छ्रोतव्यम् । पूर्णो मे प्रश्नदोहदः । निवृत्तं श्रवण-कौतुकम् । कृतार्थीभूता श्रुतिः । आनन्दितं हृदयम् । उत्पन्ना प्रीतिः । सुखं स्थितोस्मि । हा वत्स त्वयैकाकिना स्फुटतो हृदयस्यानुभूता वेदना । निर्व्यूढा त्वया वैशम्पायनस्योपरि प्रीतिः । वयं दुःखभागिनो निस्त्रिंशाः कर्मचाण्डालाः । येषां तथापि हृदयस्फुटने निर्विकार-

---

अङ्गीकरिष्यामः-स्वीकरिष्यामः । अभिवदति-कथयति सति । आरात्-समीपे । महीतलनिवेशितोत्त-माङ्गम्-शिरसा भूमिमाश्रितम् (प्रणमन्तम्) ।

तथा-तेन प्रकारेण प्रणमन्तम् । तम्-त्वरितकम् । चन्द्रापीडस्नेहात्-अयं चन्द्रापीडस्य बालसे-वक इति प्रेमवशात् । उत्तमाङ्गे शिरसि । स्पृष्ट्वा-स्पर्शं कृत्वा । आदिष्टवान्-उक्तवान् । वृत्तम्-जातम् । लिखिते-पत्रेण सूचिते । अनागमनकारणम्-न आगतस्तस्य हेतुम् । प्रतिलेखितवान्-पत्रस्योत्तर-रूपेण लेखयित्वा प्रहितवान् । राज्ञा चन्द्रापीडेन एवमादिष्टः इत्थमाज्ञप्तः स त्वरितकः यथावृत्तम् यथाघटितम् । चन्द्रापीडहृदयस्फुटनवृत्तान्तं यावत्-तदवधि । आकर्ण्य-श्रुत्वा । अतिक्षुभितस्य-अत्युद्वे-लस्य शोकार्णवस्य दुःखसागरस्य आक्रान्त्या आक्रमणेन विह्वलः व्यग्रः सन् । करम् प्रसार्य-बाहुम् विस्तृतं कृत्वा । आर्त्तरवः-करुणशब्दः । विरम-कथनान्निवर्त्तस्व । प्रश्नदोहदः-प्रश्नमनोरथः । कौतुकम्-औत्सुक्यम् । कृतार्थीभूता-सफला । स्फुटतः-विदीर्यमाणस्य । वेदना-कष्टम् । अनुभूता-भुक्ता । निर्व्यूढा-

---

है कि हमारे पत्रवाहक दूतों के साथ मेरे बेटे का बालसेवक त्वरितक आया है जो सारी बातें जानता है । इस-लिये उससे तो पूछें । तुमने तो उससे भी नहीं पूछा है । इसके बाद जीवन-मरण में किसी एक का वरण करेंगे । तारापीड इस प्रकार कह ही रहे थे, तब तक प्रतीहारी ने त्वरितक को दूतों के बीच में से लाकर महाराज से कहा कि यहीं त्वरितक आपके पास पृथ्वी पर माथा टेक रहा है आप इसकी ओर देखें ।

राजा ने त्वरितक को देखकर चन्द्रापीड के स्नेह से पुकारकर अपने हाथ से उसका माथा छुआ, और कहा—भद्र, बताओ मेरे बेटे को क्या हो गया है कि आने के लिये मैंने, उसकी मां ने तथा शुकनास ने भी लिखा फिर भी वह नहीं आया । नहीं आने का कुछ कारण भी नहीं लिख भेजा । राजा के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर त्वरितक ने जाने के समय से सारी बातें यथावत् कहना शुरू किया । राजा ने जभी चन्द्रापीड के हृदय के फटने की बात सुनी तो वह शोक के आवेग से विह्वल हो उठे, हाथ फैलाकर आर्त्तस्वर में त्वरितक से कहा—भद्र, अब रुको, तुम्हें जो कहना था सो कह दिया, मुझको भी जो सुनना था सो सुन लिया, मेरा पूछने का मनोरथ पूरा हो गया, कान की उत्कण्ठा निवृत्त हो गई । कान कृतार्थ हुए, हृदय आनन्दित हो गया, प्रीति उत्पन्न हो गई, मैं सुखी हो गया, हा वत्स, फटते हुए हृदय की वेदना तुमने अकेले भोगी । तुमने वैशम्पायन के ऊपर अपने प्रेम का निर्वाह किया । हम तो दुःखमात्र के पात्र तथा कर्मचण्डाल हैं । हमारे हृदय तुम्हारे हृदय के फटने पर भी निर्विकार बने रहे । देवि, हमारे हृदय वज्र से भी कठोर हैं, जो स्वयं हजार खण्डों में नहीं फट जाते । यह हमारे मौत से डरने वाले प्राण मेरे बेटे का अनुसरण नहीं करते हैं । इसलिये उठो, जब तक हमारा बेटा

त्वमेव। देवि वज्रसारतोपि कठिनतरमेवेदमावयोर्हृदयम्। यन्न स्वयं सहस्रधा स्फुटति। न चापि मरणदुःखभीरवोमी वत्समनुगच्छन्ति स्वयं प्राणाः। तदुत्तिष्ठ यावदेवातिदूरं न प्रयात्येकाकी वत्सस्तावदेवानुगमनाच प्रयतामहे। सशोकं शुकनास किमद्यापि तिष्ठसि। अयं स कालः स्नेहस्य। महाकालायतनसमीपे समादिश सपदि परिचारकांश्चितारचनाय। रचयत झटिति काष्ठानि काष्ठिकाः। किं तिष्ठतैवं संकुचिताः कञ्चुकिनः। गत्वा निष्क्रामयत हुताशनप्रवेशोपकरणानि। निष्कारणरुदितेन किमधुना। उपरोधपरिलम्बाद्विना दापयाशेषं देवि द्विजेभ्यः कोषम्। कस्य कृतेद्यापि पाल्यते। पालनादिकं करणीयमधुना क्षीणं क्षीणपुण्यस्य मे। यात यथाभूमि भूमिपतयः। उत्सृष्टाः स्थ। यथा च नाद्यैवास्य दुःखं जानन्ति प्रजास्तथा करिष्यथ। कथावशेषीभूतो मे वत्सः। कमपरं संविधाय यामि।' एवमार्तप्रलापिनं तारापीडमचेतितात्मपीडया विलासवत्या धृतशरीरमार्ततरस्त्वरितको व्यज्ञापयत्। 'देव स्फुटितेपि हृदये भ्रियते शरीरेण युवराजः। शापदोषाद्वैशम्पायनस्य च यथा जन्म तथा निरवशेषं शृणोतु तावद् देवः' इति।

तारापीडस्तु तदद्भुतमाकर्ण्य कौतुकान्तरितशोकावेगो विगतनिमेषेण चक्षुषाविष्ट-

---

निर्वाहिता। निस्त्रिंशाः-खड्गसमाः। कर्मचण्डालाः-क्रूरकर्माणः। वज्रसारतः-लौहात्। मरणदुःखभीरवः-मृत्युकष्टात् भीताः। यावदेवेति। यावत् एकाकी वत्सोऽतिदूरं न प्रयाति तावदेव अनुगमनाय (तमनुसर्तुं) प्रयतामहे इत्यन्वयः। अद्यापि-सम्प्रत्यपि। किं किमर्थम्। सशोकम्-शोकेन सह। स्नेहस्य-(वत्सानुवर्त्तनद्वारा तदुपरि स्थितस्य स्नेहस्य प्रकाशनस्य) महाकालायतनसमीपे-महाकालमन्दिरपार्श्वे। चितारचनाय परिचारकान् भृत्यान् आदिश आज्ञापय। काष्ठानि-इन्धनानि। रचयत-प्रस्तुतीकुरुत। काष्ठिकाः-काष्ठकर्माधिकृताः। हुताशनप्रवेशोपकरणानि वह्निप्रवेशोपयोगीनि घृतचन्दनधूपकौशेयवस्त्रादीनि साधनानि। निष्क्रामयत-बहिरानयत। निष्कारणरुदितेन-व्यर्थेन रोदनेन। उपरोधपरिलम्बाद्विना-विना किमपि निरोधं विना च विलम्बम्। दापय-समर्पय। द्विजेभ्यः-ब्राह्मणेभ्यः। कोषम्-सञ्चितम् धनम्। पाल्यते-रच्यते (भोक्तुरपाये कोषरक्षाप्रयोजनं न पश्यामः) करणीयम्-कर्त्तव्यम्। क्षीणम्-समाप्तम्। यथाभूमि-यथास्वस्थानम्। यात-गच्छत। कथावशेषीभूतः-स्मृतिशेषः। संविधाय-स्वेन धृतं राज्यभारं समर्प्य। अचेतितात्मपीडया-स्वां पीडामध्यायन्त्या। आर्त्ततरः अतिव्यथितः। भ्रियते-न विनश्यति। निरवशेषम्-समस्तम्।

तत्-शापवशात् चन्द्रापीडस्य मरणं शरीरस्याविनष्टत्वं च। अद्भुतम्-आश्चर्यजनकम्। कौतुकेन-कुतूहलेन अन्तरितः छन्नः शोकावेगः शोकप्रकोपो यस्य तादृशः सन्। विगतनिमेषेण-निमेष-

---

अकेले दूर नहीं निकल जाता, तभी तक उसका साथ देने का यत्न करें। शुकनास, तुम क्यों सशोक बैठे हो? यही तो स्नेह का समय है। नौकरों को आदेश दो कि महाकाल-मन्दिर के पास चितायें चुन दें। लकड़ी वाले लकड़ी तैयार कर दें। ऐ कञ्चुकियो, इस तरह सिकुड़े क्यों बैठे हो। जाकर वह्निप्रवेश के योग्य साधन निकालो। बेकार रोने की अब क्या जरूरत है। बिना किसी रोक तथा विलम्ब के सारा कोप ब्राह्मणों को दिलवा दो। अब किसके लिये रखूंगा। अब मुझ अपुण्यजन का पालनभार समाप्त हो गया। हे राजगण, आप अपने-अपने देश को जायँ। मैंने आपको छोड़ दिया। जिससे प्रजाओं को मेरा दुःख न हो वैसा करना। मेरा बेटा समाप्त हो गया, अब मैं किसे प्रतिनिधि बनाकर जाऊँ? इस प्रकार आर्त्त विलाप करने वाले तारापीड को विलासवती अपना दुःख भुलाकर थामे हुई थी, इसी स्थिति में अत्यार्त्तस्वर में त्वरितक ने कहा—महाराज, हृदय के फट जाने पर भी युवराज का शरीर ज्यों का त्यों है। शापदोष से वैशम्पायन का जन्म जिस प्रकार हुआ है यह भी पूर्ण रूप से आप सुनें।

तारापीड ने इस अद्भुत बात को सुनकर आश्चर्यरस से शोकवेग के ढंक जाने पर निर्निमेष नयन से भूताविष्ट की तरह सावधान होकर त्वरितक द्वारा कहे गये यथादृष्ट, यथाश्रुत और यथानुभूत समस्त वृत्तान्त

इव दत्तावधानस्तेन कथ्यमानं यथादृष्टं यथाश्रुतं यथानुभूतं च निरवशेषं तत्सर्वमश्रौषीत्। श्रुत्वा च तमनेकचिह्नोत्पादितप्रत्ययमश्रद्धेयं च निरतिशयशोककारणं च विस्मयास्पदभूतं च दुःश्रवं च कौतुककरं च युवराजवैशम्पायनयोर्वृत्तान्तमीषदिव विवर्तिताननो विमर्शस्तिमिततारकां दृष्टिं निर्विशेषावस्थे शुकनासमुखेऽभ्यपातयत्। सुहृदस्तु स्वयं दुःखिता अपि निधानीकृत्यात्मदुःखं सुहृद्दुःखापनोदायैव यतन्ते यतः शुकनासस्तदवस्थोऽपि स्वस्थवदवनिपतिमुवाच।

'देव, विचित्रेऽस्मिन्संसारे संचरत्सु सुखदुःखमयेषु देवतिर्यग्योनिमानुषेषु त्रिगुणात्मनः प्रधानस्यापि परिणामात्परमाण्वादेर्ब्रह्माण्डपर्यन्तस्योत्पत्तिस्थितिप्रलयकारणस्येश्वरस्येच्छया धर्माधर्मसाधनानामिष्टानिष्टफलसंबन्धकारिणां कर्मणां वा शुभाशुभानां विपाकस्वभावाद्वा स्वयमेवानेकप्रकारमुत्पद्यमानस्य तिष्ठतो विनश्यतो वा नियतवृत्तेः स्थावरजङ्गमस्य न कदाचिदवस्था सा या न संभवति। तत्कुतोऽयं देवस्यात्र वस्तुनि विमर्शः[1]। यदि

शून्येन। आविष्टः—भूतगृहीतः। दत्तावधानः—सावधानः। तेन—स्वरितकेन। निरवशेषम्—समस्तम्। अनेकचिह्नोत्पादितप्रत्ययम्—बहुभिश्चिह्नैर्जनितविश्वासम्। विवर्तिताननः—परिवर्त्तितांसग्रीवः। विमर्शस्तिमिततारकाम्—विचारनिश्चलकनीनिकाम्। निर्विशेषावस्थे राज्ञो मुखेन तुल्यदशे। अभ्यपातयत्—पातयामास। निधानीकृत्य—एकतः स्थापयित्वा। सुहृद्दुःखापनोदाय—मित्रकष्टनिवारणाय। तदवस्थः—तामवस्थां गतः। स्वस्थवत्—अविकृतमनोदश इव। अवनिपतिम्—राजानम्।

विचित्रे—आश्चर्यमये। सुखदुःखमयेषु—सुखेन दुःखेन च पूर्णेषु। देवतिर्यग्योनिमानुषेषु देवेषु तिर्यग्योनिषु मानुषेषु च। त्रिगुणात्मनः—सत्त्वरजस्तमोरूपगुणत्रयस्वरूपस्य। प्रधानस्य—प्रकृतेः। परिणामात्—रूपान्तरग्रहणरूपाद्विकारात्। परमाण्वादेः—परमाणुप्रभृति ब्रह्माण्डपर्यन्तस्य—समस्तचराचरात्मकस्य। उत्पत्तिस्थितिप्रलयकारणस्य—उत्पत्तौ—उद्भवे स्थितौ सत्तायाम् प्रलये विनाशे च हेतुभूतस्य। धर्माधर्मसाधनानाम्—धर्ममधर्मञ्च साधयताम्। इष्टानिष्टफलसम्बन्धकारिणाम्—इष्टेन अनिष्टेन च फलेन स्वर्गनरकाद्यात्मना यः संबन्धस्तत्कारिणाम्। शुभाशुभानां कर्मणां विपाकस्वभावात्-परिणामात्। अनेकप्रकारम्—नानाप्रकारेण। उत्पद्यमानस्य जायमानस्य तिष्ठतः—वर्त्तमानस्य। विनश्यतः—नाशं गच्छतः। नियतवृत्तेः—स्थिरसद्भावस्य। स्थावरजङ्गमस्य—चराचररूपस्य। या न संभवति सा काचित् अवस्था न—सर्वा अपि अवस्थाः अवश्यं संभवन्ति। विमर्शः—चिन्ता। युक्तेर्विचारात्—उपपत्तिविमर्शवशात्। युक्तिरहितानि—उपपत्तिशून्यानि। आगमप्रामाण्यात्—शास्त्राणां प्रमाणरूपतां स्वीकृत्य। अभ्युपगतानि—स्वीकृतानि। संवादीनि—अविरुद्धानि। आगमप्रामाण्यादङ्गीकृतस्य युक्तिविरुद्धस्यापि स्वीकृतस्य संवादित्वमुदाहरति—मुद्राबन्धादित्यादिना। मुद्राबन्धात्—गारुडादिमुद्राकरणात्। ध्यानात्—विषहराया देव्या-

---

सुन लिया। अनेक कारणों से जिस पर विश्वास होता था, फिर भी जो अविश्वसनीय था, जो अत्यन्त शोकजनक होकर भी विस्मयावह था, दुःश्रव होकर भी जो आश्चर्यजनक था, उस युवराज-वैशम्पायन वृत्तान्त को सुनकर थोड़ा मुंह घुमाकर तारापीड ने विचार में स्थिर है कनीनिका जिसकी ऐसी अपनी आंखें शुकनास के मुख पर डालीं। यद्यपि शुकनास की भी वही हालत थी, तथापि उसने स्वस्थ की तरह तारापीड से कहा, क्योंकि मित्र स्वयं दुःखी होने पर भी अपने दुःख को छोड़कर मित्र के दुःख को दूर करने का प्रयत्न किया करते हैं।

महाराज, इस संसार में बड़ी विचित्रता है, इसमें सुख-दुःखमय देव-मानुष, पशु-पक्षि प्रभृति सुख-दुःख में भटका करते हैं, त्रिगुणात्मक प्रधान के परिणाम से, अथवा परमाणु आदि से संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय के करनेवाले ईश्वर की इच्छा से धर्म-अधर्म से साधन इष्ट-अनिष्ट फल के सम्बन्ध से शुभाशुभ कर्मों के विपाक से उत्पन्न होनेवाले इस स्थावर-जङ्गम लोक की कोई भी अवस्था हो सकती है। इसमें आपको सोचने की जगह ही

---

१. विमर्षः।

युक्तेर्विचारात्कियन्त्यत्र युक्तिरहितान्यागमप्रामाण्यादेवाभ्युपगतान्यपि संवादीनि दृश्यन्ते। मुद्राबन्धाद्ध्यानाद्वा विषप्रसुप्तस्योत्थापने कीदृशी युक्तिः। अयस्कान्तस्य चायसः समाकर्षणे भ्रमणे वा। मन्त्राणां वैदिकानामवैदिकानां वानेकप्रकारेषु कर्मसु सिद्धौ। नानाविधद्रव्यसंयोगानां वा मरणमदनाद्युत्पादनापहरणवशीकरणविद्वेषणादिषु शक्तेः समुत्पादनात्। अन्येषां बहुतराणामेवंविधानां च तत्र तत्र सर्वस्मिन्नेवागमः प्रमाणम्। आगमेषु सर्वेष्वेव पुराणरामायणभारतादिषु सम्यगनेकप्रकाराः शापवार्ताः। तद्यथा। महेन्द्रपदवर्तिनो नहुषस्य राजर्षेरगस्त्यशापादजगरता। सौदासस्य च वसिष्ठसुतशापान्मानुषादत्वम्। असुरगुरुशापाच्च ययातेस्तारुण्य एव जरसा भङ्गः। त्रिशङ्कोश्च पितृशापाच्चाण्डालभावः। श्रूयते च स्वर्गतासौ महाभिषो नाम राजास्मिँल्लोके शन्तनुरुत्पन्नः। तत्पत्नीत्वमुपगताया गङ्गायाः शापदोषादष्टानामपि वसूनां मनुष्येषूत्पत्तिः। तिष्ठतु तावदन्य एव। अयमादिदेवो भगवानजः स एव जमदग्नेरात्मजतामुपगतः। श्रूयते च पुनश्चतुर्धात्मानं विभज्य राजर्षेर्दशरथस्य तथैव मथुरायां वसुदेवस्य। तन्मनुष्येषु देवतानामुत्पत्तिर्नैवासंभाविनी। न च

श्चिन्तनात्। विषप्रसुप्तस्य-विषकृतमूर्च्छयाऽचेष्टमानस्य। उत्थापने-चैतन्यापादने। अयस्कान्तस्य-चुम्बकाख्यलौहभेदस्य। अयःसमाकर्षणे-लौहानामाकर्षणे। भ्रमणे-स्थानात्सञ्चरणे वा (कीदृशी युक्तिः न कापि) वैदिकानाम्-वेदोक्तानाम्। अवैदिकानाम्-वेदानुक्तानाम्। अनेकप्रकारेषु-नानाविधेषु। कर्मसु-क्रियासु। सिद्धौ-साफल्यलाभे (कीदृशी युक्तिरिति योजनात्रापि) मरणस्य मृत्योः मदनस्य कामस्य उत्पादने जनने, अपहरणे चौर्यद्वाराऽन्यथा वाऽपनयने वशीकरणे विद्वेषणे परस्परवैरोत्पादने-तदादिषु तत्प्रभृतिषु कार्येषु। (नानाविधानि द्रव्याणि पृथक् पृथक् तत्तत्कार्यजननासमर्थान्यपि सन्ति संयोगवशेन मरणमदनवशीकरणादिकार्यक्षमाणि जायन्त इति तत्र युक्तिविरहेऽपि आगमप्रामाण्यादेव विश्वासः कार्यते, यथा-मधु घृतं च समभागं सेवितं सह मरणाय जायते एवमन्यत्रापि संयोगे क्रिमप्युपपादकं न दृश्यतेऽन्तराऽऽगमप्रामाण्यम्, अत आगमप्रामाण्यादयुक्तेरपि वस्तुसार्थस्य स्वीकारेऽवश्यकरणीये मृतस्यापि शरीरं शापवशाद्भ्रियते इत्यर्थोऽनुपपद्यमानोऽपि शास्त्रप्रामाण्यादङ्गीकरणीय एव, शास्त्रे तत्तुल्यस्य नानाविधस्यार्थस्य स्वीकरणादिति। अत्र दृष्टान्तविधया शास्त्राणि निदर्शयितुमाह-आगमेष्वित्यादि०। महेन्द्रपदवर्तिनः-इन्द्रपदं प्राप्तस्य। अजगरता-सर्पप्रभेदता। मानुषादत्वम्-नरभक्षित्वम्। असुरगुरुशापात्-शुक्रशापवशात्। जरसा-वृद्धतया। महाभिषः-अच्छलः महारूपो वा। गङ्गाया इति पञ्चम्यन्तम्, 'भुवः प्रभवः' इति तत्र पञ्चमी। आदिदेवः-विष्णुः। अजः-जमदग्नेरात्मजताम्-परशुरामताम्। असंभाविनी-संभावनायाः परतः। पूर्वमनुष्येभ्यः-प्राचीनेभ्यो नरेभ्यः। हीयते-न्यूनो भवति। कमलनाभात्-विष्णोः। अतिरिच्यते-अधिको भवति। (भवान्यदि दशरथादितो न न्यूनः चन्द्रमा

कहाँ है ? युक्ति के विचार से कुछ युक्तिरहित कर्म भी आगम के प्रामाण्य के फलशाली माने जाते हैं। मुद्राबन्धन से अथवा ध्यान से विष से मूर्च्छितजन के उठ खड़े होने में कौन सी युक्ति है। चुम्बक लोहे को खींचता और घुमाता है इसमें ही कौन सी युक्ति है। वैदिक या अवैदिक मन्त्र अनेक प्रकार के कार्यों की सिद्धि करते हैं उनमें क्या युक्ति रहती है ? नाना प्रकार के द्रव्यों के संयोग से मरण, पागलपन, आदि तथा अपहरण, वशीकरण, विद्वेषण आदि शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, और भी इस तरह की बहुत सी बातों में शास्त्र प्रमाण है। पुराण, रामायण, महाभारत आदि शास्त्रों में अनेक प्रकार के शापों की बातें लिखी हैं। जैसे—इन्द्र के पद पर वर्त्तमान नहुष का महर्षि अगस्त्य के शाप से अजगर बन जाना, सौदास का वशिष्ठ के शाप से नरभक्षी बन जाना शुक्राचार्य के शाप से ययाति जवानी में ही बूढ़े हो गये, पितरों के शाप से त्रिशङ्कु चाण्डाल हुए, सुनते हैं स्वर्गवासी महाभिष राजा इस लोक में शन्तनु उत्पन्न हुए थे, उनकी पत्नी गङ्गा के शाप से आठो वसुओं को मनुष्य जन्म लेना

---

१. मान्धाद्युत्पाद।

पूर्वमनुष्येभ्यो गुणैः परिहीयते देवः। न चापि भगवतः कमलनाभादतिरिच्यते चन्द्रमाः। किमत्रासंभावनीयम्। अपि च गर्भारम्भसंभवे देवेन देव्या वदने विशंश्चन्द्रमा एव दृष्टः। तथा ममापि स्वप्ने पुण्डरीकस्य दर्शनं समुपजातम्। तदुत्पत्तिं प्रति तयोर्नास्त्येव संदेहः। विनष्टयोः शरीरस्याविनाशः कथं कथं वा पुनर्जीवितप्रतिलम्भ इत्यत्राप्यखिललोकप्रख्यातप्रभावममृतमेवैकं कारणमावेदितम्। तच्चन्द्रमसि विद्यत इत्येषास्त्येव वार्ता। तत्सर्वमेतदित्थमेवावगच्छतु देवः। अन्यच्च तादृशाकारकान्तेरखिललोकाह्लादकारिणोन्यत्र संभव एव नास्ति। तत्कल्याणैर्न चिराच्छापावसाने निर्वर्तितगन्धर्वसुतोद्वाहमङ्गलस्य गलन्नयनपयसो वध्वा सह पादयोः पततः पुत्रत्वमुपगतस्य चन्द्रापीडनामान्तरितस्य लोकपालस्यैव चन्द्रमसो दर्शनेनाजन्मकृतमेव संतापं परित्यक्ष्यति देवः। तयोरेवं शापोऽस्माकं पुनर्वर एव। तदस्मिन्वस्तुनि मनागपि न देवेन देव्या वा शोकः कार्यः। मङ्गलान्यभिधार्यन्ताम्। अभिमतदेवताराधनेन धनातिसर्जनेन चान्यजन्मोपार्जितं कुशलमभिवर्ध्यताम्। अकुशलमपि यमनियमकष्टव्रतोपवासादिना तपःपरिक्लेशेन क्षयमुपनीयताम्। अपरमपि यद्यदेवं गते श्रेयस्करं श्रूयते ज्ञायते वा तत्तदद्यैवारभ्य क्रियतां कार्यतां च कर्म। न खलु वैदिकाना-

अपि विष्णोर्नाधिकः अथ दशरथगृहे विष्णुरुत्पन्नः, तदा भवद्गृहे चन्द्रमसो जन्म नासंभवमिति भावः) गर्भारम्भसंभवे-गर्भोदयसंभावनाकाले। देवेन-भवता। देव्याः-विलासवत्याः। तयोः-चन्द्रापीडवैशम्पायनयोः। विनष्टयोः-मृतयोः चन्द्रापीडवैशम्पायनयोः। पुनर्जीवितप्रतिलम्भः-पुनर्जीवनप्राप्तिः। अखिललोकप्रख्यातप्रभावम्-सकलभुवनविदितसामर्थ्यम्। इत्थम्-यथाऽनेन त्वरितकेन उक्तं तथा। तादृशाकारकान्तेः-तादृशमाकारम् रूपम् कान्तिं सौन्दर्यं च धारयतः। शापावसाने-शापस्यान्ते। निर्वर्तितगन्धर्वसुतोद्वाहमङ्गलस्य-कृतकादम्बरीविवाहस्य। गलन्नयनपयसः-आनन्दाश्रुपूर्णनयनस्य। वध्वा-कादम्बर्या। पुत्रत्वमुपगतस्य-पुत्ररूपेणोत्पन्नस्य। चन्द्रापीडनामान्तरितस्य-चन्द्रापीड इति नामान्तरं धारयतः। आजन्मकृतम्-जन्मप्रभृतिसञ्चितम्। मङ्गलानि-शुभावहानि वस्तूनि।

पड़ा था। यह आदिदेव अजन्मा ईश्वर ही तो जमदग्नि के पुत्र हुए, फिर—अपने को चार भागों में बांटकर दशरथ के घर पैदा हुए थे, फिर—वसुदेव के घर पैदा हुए। इसलिये मनुष्यों में देवों का पैदा होना कुछ असम्भव नहीं है। प्राचीन मानवों से आप किसी प्रकार गुण में कम नहीं हैं। भगवान् विष्णु से बढ़कर चन्द्रमा भी नहीं हैं। इसमें असम्भाव्य क्या है? और गर्भ की प्रारम्भिक स्थिति में महारानी के मुख में चन्द्रमा को प्रवेश करते हुए आपने भी देखा ही था। मैंने भी सपने में पुण्डरीक देखा था। इसलिये उन दोनों की ही उत्पत्ति चन्द्रमा तथा पुण्डरीक से है इसमें सन्देह नहीं है। मरने के बाद भी शरीर नष्ट नहीं हो, पुनः जीवित हो उठे इसमें तो जगत्-प्रख्यात प्रभाव अमृत ही एकमात्र कारण है, वह अमृत चन्द्रमा में वर्तमान है यह बात प्रसिद्ध है। अतः आप इन सारी बातों को सत्य ही समझें। और उस तरह की आकृति तथा कान्तिवाले का जन्म अन्यथा सम्भव ही नहीं था। इस लिये थोड़े ही दिनों में आप शापावसान होने पर गन्धर्वराजपुत्री के साथ विवाह करके स्त्री को साथ लेकर आंखों में आंसू भरकर चरणों पर पड़ते हुए चन्द्रापीड नाम से प्रख्यात चन्द्रस्वरूप पुत्र को देखकर आजन्म कृततांप को भूल जायेंगे। उन लोगों के लिये शाप है हमारे लिये तो यह वरदान ही है। इसलिये इस विषय में आपको अथवा महारानी को शोक नहीं करना चाहिये। मङ्गल कार्य किये जायं, अभिमत देवता की आराधना एवं धन के दान से अन्य जन्मकृत पुण्य की वृद्धि की जाय। और भी जो कुछ ऐसी स्थिति में कल्याणकारी सुना गया हो अथवा ज्ञात हुआ है वह आज से ही किया जाय। वैदिक अथवा अवैदिक कर्मों के लिये असाध्य कुछ भी नहीं है। बड़ी कठिनाई से प्राप्त उन पुत्रों की उत्पत्ति भी इसी तरह हुई थी।

शुकनास के इस प्रकार कहने पर सशोक राजा ने कहा—आपने जो सारी बातें कही हैं वह कौन जानता है, दूसरा कौन हमें परिबोधित ही कर सकता है? हम लोग किस दूसरे का कहना ही मानेंगे। वैशम्पायन के

मवैदिकानां वा कर्मणामसाध्यं नाम किंचिदपि। उत्पत्तिरपि तयोः कृच्छ्रलब्धयोरीदृशेनैव प्रकारेणोपजाता।'

इत्युक्तवति शुकनासे सशोक एव राजा प्रत्यवादीत्। 'सर्वमेतद्यदार्येणाभिहितं कोन्यो बुध्यते। केन वापरेण वयं परिबोधनीयाः। कस्य वापरस्यास्माभिर्वचनं करणीयम्। किंतु तद्वत्सस्य मे वैशम्पायनदुःखात्स्फुटनं हृदयस्याग्रतो दृष्टिलग्नं सर्वमेवान्यदन्तरयति। तदेव पश्यामि। तदेव शृणोमि। तदेवोत्प्रेक्षे। तदेवमप्रत्यक्षिते वत्सस्य वदने संस्तम्भमेवात्मनो न शक्नोमि कर्तुम्। यत्र च ममायमीदृशः प्रकारस्तत्र देव्याः परिबोधनं दूरापेतमेव। तद्गमनादृतेन्य उपाय एव नास्ति जीवितसंधारणाय। इत्येवमवधारयत्वार्यः।' इत्युक्तवति तारापीडे चिरात्तनयपीडया तत्पुरः परित्यज्य लज्जां विलासवती कृताञ्जलिरुच्चैर्जगाद। 'आर्यपुत्र, यद्येवं तथापि किमपरं विलम्बितेन। निर्गता एव वयम्। दीयतां प्रयाणम्। उत्ताम्यति मे हृदयं वत्सस्य दर्शनाय। दुःखापनोदार्थं स्फुटनमङ्गीकृतमासीत्। तदपि संप्रति दर्शनकाङ्क्षया न रोचत एव। जानामि वरं दीर्घकालमपि दुःखान्यनुभवन्ती सकृदपि वत्सस्य दर्शनाय जीवितास्मि। न पुनरसह्यदुःखोपशान्तये संप्रत्येव मृतास्मीति। तदस्य पुनराशानिबन्धनस्य सर्वात्ययनिवारणोपायस्य वत्साननावलोकनोत्सुकस्य गमनमपि हृदयस्य तावद्विनोदतां व्रजतु।' इति वदन्तीमेव विलासवतीमासाद्यान्यतमः शुकनासस्या-

---

धनातिसर्जनेन-दानेन। अकुशलम्-अमङ्गलकरं पापम् क्षयमुपनीयताम्-विनाश्यताम्। एवं गते-अस्यां स्थितौ। कृच्छ्रलब्धयोः-अतिक्लेशेन प्राप्तयोः। ईदृशेनैव प्रकारेण-जपतपोदानादिना शुभेन कर्मणा।

अन्यः-भवद्भिन्नः परिबोधनीयाः-धैर्यं प्रापणीयाः। तत्-तथापि। वत्सस्य हृदयस्य वैशम्पायनदुःखात्स्फुटनं दृष्टिलग्नं नयनयोः स्थितं सत् अन्यत्सर्वं भवदुक्तं मया स्वयं वा चिन्तयित्वा दृढीकृतम् अन्तरयति व्यवधापयति। अप्रत्यक्षिते-अदृष्टे संस्तम्भम्-धैर्यधारणम्। दूरापेतम्-दूरं गतम् असाध्यम्। गमनादृते-चन्द्रापीडसमीपगमनभिन्नः। जीवितसंधारणाय-जीवनाय। प्रयाणम्-यात्रादेशः। दुःखापनोदाय-स्वीयस्य दुःखस्यापाकरणाय। स्फुटनम्-हृदयभेदनम्। (मया पुत्रविपत्तिकष्टमपनेतुं स्वीयस्य हृदयस्य स्फुटनमभिमतमक्रियत, तदपि) असह्यदुःखोपशान्तये-अतिकठोरदुःखस्य निवृत्तये। आशानिबन्धनस्य-गृहीताशस्य। सर्वात्ययनिवारणोपायस्य-सकलदुःखप्रतिकारस्वरूपस्य। विनोदताम्-आनन्दसाधनताम्। आत्मसमः-अतिप्रियः। परिणतवयाः-वृद्धः। षट्कर्मा-ब्राह्मणोचितयजनयाजनाध्ययनाध्यापनदानप्रतिग्रहरूपषट्कर्मपरायणः। स्वस्तिपूर्वकम्-आशीर्वादपूर्वकम्। अपरिस्फुटेन-

---

दुःख में मेरे बेटे के हृदय का फट जाना सर्वदा हमारी आंखों के सामने रहता है और अन्य वस्तुओं को व्यवहित किये रहता है। मैं वही देखता, सुनता तथा सम्भावना किया करता हूँ। इस प्रकार बेटे का मुँह देखे बिना मैं हृदय को स्थिर नहीं कर सकता, जब मेरी यह दशा है तब देवी का परिबोधन तो दूर की बात है। इसलिये पुत्र के पास जाने के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। जिससे जिया जा सके। आप यह निश्चित समझें। तारापीड के इस प्रकार कहने पर चिरकालिक पुत्रशोक से लज्जा का त्यागकर शुकनास के सामने ही विलासवती ने इस प्रकार कहा। आर्यपुत्र, जब ऐसी बात है तब देर की क्या जरूरत है? हमें निकल चलना चाहिये। यात्रा की आज्ञा दीजिये। मेरा हृदय बेटे को देखने के लिये उतावला हो रहा है। दुःख दूर करने की इच्छा से हृदय का टूटना अभिप्रेत था, परन्तु इस समय दर्शन की आशा से वह भी नहीं जंचता है। मैं समझती हूँ चिरकाल तक दुःख सह कर भी मैं जो जीवित रह गई सो पुत्र को एक बार देख लेने के ही लिये। असह्य दुःख की उपशान्ति के लिये मैं मर भी तो नहीं गई। इसलिये सारी आशाओं का स्थान, समस्त अनर्थों के निवारण का उपाय बेटे के मुख के अवलोकनार्थं उत्सुक इस हृदय के लिये यह यात्रा भी तब तक एक विनोद बन जाय। इस प्रकार कहती हुई विलासवती के पास आकर शुकनास के आत्मीय तथा

त्तमः परिणतवयाः षट्कर्मा समुपसृत्य स्वस्तिपूर्वकं व्यज्ञापयत्। 'देवि सर्वत एवापरिस्फुटेन वार्ताकलकलेनाकुलीकृतहृदया मनोरमा स्वयमेव धावन्त्यागता। राज्ञो लज्जमाना नोपगता स्थानमिदम्। तदेषा मातृगृहस्य पृष्ठतस्तिष्ठति। पृच्छति च देवीम्। किमेभिः कथितम्। जीवति मे वत्सो वैशम्पायनः। स्वस्थशरीरो वा। ढौकितो वा पुनर्युवराजस्य। क्व वर्तते। तावागमिष्यतो वा कियद्भिर्दिवसैः' इति राजा तु तदुपरतिवार्ताया अपि कष्टतममाकर्ण्य दीर्ण इव शुचा शतगुणीभूतशोकोत्प्लुताङ्गीं विलासवतीमवादीत्। 'देवि, न श्रुतं किंचिदपि वत्सयोः प्रियसख्या ते। अन्यतश्च श्रुत्वा कदाचिज्जीवितेनैव वियुज्यते। तदुत्तिष्ठ स्वयमेव धैर्यमालम्ब्य सर्ववृत्तान्तानुकथनेन संस्थापय प्रियसखीं तथा यथार्थशुकनासेन सह यातव्यम्।' इत्येवोत्थाप्य सपरिजनां विलासवतीं व्यसर्जयत्। आत्मनापि शुकनासेन सह गमनसंविधानमकारयत्।

अथ तथा प्रस्थिते राजनि राजानुरागाच्चन्द्रापीडस्नेहेन चाश्चर्यदर्शनकुतूहलाय प्रथमगतपितृपुत्रभ्रातृमित्रस्वजनदर्शनाय च गृहरक्षकवर्जमुज्जयिन्याः सकल एव लोको गन्तुमुदचलत्। राजा तु शीघ्रगमनविघातहेतूनमस्तानेव निवर्त्य प्रलघुपरिकरः

अव्यक्तेन। वार्ताकलकलेन–चन्द्रापीडसमाचारोत्थापितेन कोलाहलेन। आकुलीकृतहृदया–व्यग्रमनाः। धावन्ती–द्रुतपदा। मातृगृहस्य–अवन्तिमातृमन्दिरस्य। एभिः–वार्ताहरैर्दूतैः। ढौकितः–समीपस्थः। तत्–मनोरमापृष्टम्। उपरतिवार्ताया अपि कष्टतमम्–मृत्युसमाचारादपि समधिककष्टदायि। शुचा दीर्णः–शोकेन भिन्नहृदयः। शतगुणीभूतशोकोत्प्लुताङ्गीम्–शतगुणवर्द्धितसन्तापक्लिष्टशरीराम्। ते प्रियसख्या–मनोरमया। संस्थापय–प्राप्तधैर्यां कुरु (तथा तां परिबोधय यथा सा शुकनासेन सह चलितुं योग्या तिष्ठेत्) गमनसंविधानम्–यात्राप्रबन्धम्।

तथा–तेन प्रकारेण (विलासवतीमनोरमाशुकनासैः सह) राजनि तारापीडे। प्रस्थिते चन्द्रापीडदर्शनाय चलिते सति। राजानुरागात्–राज्ञः स्नेहात्। आश्चर्यदर्शनकुतूहलाय–अत्यद्भुतवस्तुविलोकनौत्सुक्याय। प्रथमगतानाम् पूर्वत एव गतानाम् पितृभ्रातृमित्रस्वजनानाम् दर्शनाय च (केचिद्राजानुरागात्, केचिच्चन्द्रापीडस्नेहात्, केचिदाश्चर्यदर्शनकौतुकवशात्, केचिदितः पूर्वं चन्द्रापीडेन सह गतानां पितृपुत्रमित्रभ्रातृप्रभृतीनां स्वजनानां दर्शनमुद्दिश्य चलिता इति) गृहरक्षकवर्जम्–गृहरक्षकान् वर्जयित्वा। उदचलत्–प्रस्थितवान्। शीघ्रगमनविघातहेतून्–द्रुतगमनपरिपन्थिनः। निवर्त्य–परावर्त्य। प्रलघुपरिकरः–अत्यल्पसहायजनः। पन्थानम् पिबन्–मार्गं निगिरन् (संकोचयन्) परापतितुम्–लक्ष्यस्थाने उपस्था-

---

वृद्ध ब्राह्मण ने आशीर्वचनपूर्वक कहा—'देवि, चारो ओर इस अस्फुट वृत्तान्त-कोलाहल से व्याकुलहृदया मनोरमा स्वयं दौड़ी आई है। राजा से लज्जित होने के कारण इस जगह नहीं आ सकी, वह मातृमन्दिर के पृष्ठभाग में खड़ी है। उसने देवी से पूछा है कि इन लोगों ने क्या कहा है? मेरा बेटा वैशम्पायन जीता तो है? स्वस्थ तो है? युवराज को मिला या नहीं? कहाँ है? वह दोनों कितने दिनों में आ रहे हैं? राजा को यह बात उनके मरण-वृत्तान्त से भी कठोर मालूम पड़ी, उनका हृदय शोक से विदीर्ण होने लगा, उन्होंने सौगुने शोक से दग्धशरीरा विलासवती से कहा—देवि तुम्हारी सखी ने दोनों लड़कों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं सुना है, दूसरों के मुख से वह कुछ सुन लेगी तो मर ही जायेगी, अतः उठो स्वयं धैर्य अवलम्बन करके सारा वृत्तान्त कहकर अपनी सखी को ढाढ़स बँधाओ जिससे वह शुकनास के साथ चले। इस प्रकार कहकर विलासवती को परिजन के साथ उठाकर राजा ने भेजा। स्वयं शुकनास के साथ यात्रा की तैयारी में लग गये।

इस प्रकार राजा के चलने पर राजा के अनुराग से, चन्द्रापीड के स्नेह से, आश्चर्य-दर्शन की उत्कण्ठा से पहले गये हुए बाप, बेटा, भाई, मित्र प्रभृति आत्मीयजन के दर्शन की उत्कण्ठा से घर के रक्षकों को छोड़कर उज्जयिनी का सारा लोक ही चल पड़ा। शीघ्र यात्रा के प्रतिबन्धक उन लोगों को राजा ने लौटा दिया, थोड़े से परिजन साथ लिये, वह रास्ते को पी जाना चाहते थे, उनकी इच्छा एक दिन में ही पहुँच जाने की हो रही थी,

पिबन्निव पन्थानमेकदिवसेनेव परापतितुमीहमानः स्तोकत एवाध्वनः प्रभृत्युत्ताम्यता हृदयेन कियत्यध्वन्यद्यापि वर्तामहे कतिपयैर्दिवसैः परापताम इति मुहुर्मुहुस्तुरंगमारोपितं त्वरितकमाहूयाहूय पृच्छन्नविच्छिन्नकैः प्रयाणकैर्वहन्नबहुभिरेव दिवसैराससादाच्छोदम्। आसाद्य च विकल्पशतदोलाधिरोहणदुःस्थितेनान्तरात्मना दूरस्थित एव प्रथममाप्ततमानश्ववारान्वार्तान्वेषणाय त्वरितकेन सार्धं प्रहितवान्।

अथ तैः सार्धमागच्छन्तम्, उज्झितात्मसंस्कारमलिनकृशशरीरम्, अवनितलनिवेशितोत्तमाङ्गम्, उद्बाष्पदीनतरदृष्टिम्, जीवितलज्जया रसातलमिव प्रवेष्टुमीहमानम्, अहमहमिकया परस्परावरणेनैवात्मदर्शनमभिरक्षन्तम्, अक्षतमपि हतमिव, सपरिच्छदमपि मुषितमिव, जीवन्तमपि मृतमिव, ससंभ्रमकृतागमनमपि प्रतीपमाकृष्यमाणचरणमिव, अङ्गैरेव सह गलितोत्साहम्, बाष्पेणैव सह मुक्तात्मानम्, वैक्लव्येनैव सहोपसर्पन्तम्,

---

तुम्। अध्वनः स्तोकतः–मार्गमल्पमेव चलित्वा। उत्ताम्यता–अधीरतां श्रयता। अविच्छिन्नकैः–अनिरुद्धैः अविश्रामैः। प्रयाणकैः यात्राभिः। वहन्–चलन्। अबहुभिः–कतिपयैः। विकल्पशतदोलाधिरोहणदुःस्थितेन–नानाविकल्पकदर्थितेन। दूरस्थितः–अच्छोदसरोवराद् व्यवहित एव देशे वर्त्तमानः। प्रथमम्–स्वयं तत्र गमनात्पूर्वम्। आप्ततमान्–अतिविश्वसनीयान्। अश्ववारान्–अश्वारोहिणः। वार्तान्वेषणाय–समाचारपरिज्ञानाय। प्रहितवान्–प्रेषितवान्।

तैः–राज्ञा समाचारज्ञानाय प्रेषितैः। सार्धम्–सह। उज्झितस्त्यक्त आत्मसंस्कारः स्नानप्रसाधनादिस्तेन मलिनः कृशो दुर्बलश्च कायो यस्य तादृशम्। अवनितलनिवेशितोत्तमाङ्गम्–पृथिवीं शिरसा स्पृशन्तम्। उद्बाष्पा उद्गताश्रुः दीनतरा अतिदैन्यवती च दृष्टिर्यस्य तादृशम्। जीवितलज्जया जीवनेऽनुभूयमानया त्रपया। रसातलं पातालम्। प्रवेष्टुम्–गन्तुम्। ईहमानम्–चेष्टमानम्। अहमहमिकया–परस्परस्पर्धया। परस्परावरणेन–अन्योन्यव्यवधानेन। आत्मदर्शनम्–स्वं साक्षात्कारम्। अभिरक्षन्तम् गोपयन्तम्। (अन्योन्यस्य शरीरं व्यवधानं कृत्वा स्वं गोपयितुं व्यवस्यन्तम्) अक्षतम्–अप्राप्ताघातम्। अपि हतमिव–हततुल्यम्। सपरिच्छदम्–सपरिवारम्। मुषितम्–लुण्टितम्। ससंभ्रमकृतागमनम्–वेगेनागच्छन्तम्। प्रतीपमाकृष्यमाणचरणम्–विरुद्धायां दिशि बलान्नीयमानम्। अङ्गैः सह गलितोत्साहम्–यस्य उत्साहः अङ्गानि च स्रंसन्ते तादृशम्। बाष्पेणैव सह मुक्तात्मानम्–अश्रुणैव सह विसृष्टजीवनम्। वैक्लव्येन–विह्वलतया। मेघनादपुरस्सरम्–मेघनादाग्रगण्यम्। चन्द्रापीडचरणतलनिबद्धजीवितम्–चन्द्रापीडपादच्छायायामेव सततं जीवन्तम्। उल्लासितेन वर्द्धमानेन तनयशोकोर्मिवेगेन पुत्रवियोगतर-

---

थोड़ा सा मार्ग तय करके ही उनका हृदय उतावला हो रहा था, अभी हम कितनी दूरी पर हैं, कितने दिनों में पहुँचेंगे? इत्यादि प्रश्न वह घोड़े पर आरूढ़ त्वरितक को पास बुलाकर बार-बार पूछा करते थे, रास्ते में बिना विश्राम के चलते हुए वह थोड़े ही दिनों में अच्छोद सरोवर के पास पहुंच गये। वहाँ पहुँचकर नाना प्रकार के सन्देहों से दोलायमान तथा पीडित हृदय से पहले अत्यन्त विश्वसनीय घुड़सवारों को त्वरितक के साथ खबर लाने के लिये भेजा।

इसके बाद राजा ने देखा कि उन घुड़सवारों के साथ मेघनाद-पुरस्सर चन्द्रापीड के चरणों में जीवन अर्पित करने वाले सारे राजकुमार चले आ रहे हैं, जिनके शरीर संस्कार नहीं करने से मलिन हो रहे हैं, जो पृथ्वी पर झुककर प्रणाम कर रहे हैं, जिनके दीन नयनों में अश्रु भरे हैं, जीने में लज्जा हो रही है, अतएव जो पाताल में पैठ जाना चाहते हैं, एक दूसरे की ओट में आकर जो अपने को छिपाने में प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं, शरीर से अक्षत होकर भी जो मृत हैं, सभी सामान वर्त्तमान हैं फिर भी जो लुटे-से हुए हैं, जीते हुए भी जो मरे हुए हैं, वह आगे चलना चाहते हैं, फिर भी उनके चरण उन्हें पीछे की ओर खींच रहे हैं, अङ्गों के साथ ही उनके उत्साह भी गल गये हैं, वाष्प के ही साथ उनके हृदय भी वह गये हैं, वे कायरपन को साथ लिये आ रहे हैं। उन्हें आते देखकर बढ़े हुए पुत्रशोक के वेग से आक्रान्त होकर भी राजा को यह विश्वास हो आया कि

मेघनादपुरःसरं सकलमेव चन्द्रापीडचरणतलनिबद्धजीवितं राजपुत्रलोकमालोक्योच्छ्वसितत-नयशोकोर्मिवेगाक्रान्तोऽप्युच्छ्वसित इव दृढीभूतचन्द्रापीडदेहाविनाशप्रत्ययान्तरात्मना निवृत्य सावरणपर्याणवर्तिनीं विलासवतीमवादीत् । 'देवि, दिष्ट्या वर्धसे । ध्रियते सत्यमेव शरीरेण वत्सः । येन सकल एवायं तच्चरणकमलानुजीवी राजपुत्रलोकस्तत्पादमूलादागत' इति । सा तु तदाकर्ण्य किंचिदात्मपाणिनैवोत्सारितावरणसिचयाञ्चला निश्चलया दृष्ट्या चिरमिवालोक्य तनयनिर्विशेषं राजपुत्रलोकमविच्छिन्नाश्रुधारापि धैर्यमुन्मुच्योच्चैरारटितवती 'हा वत्स, कथं सहपांशुक्रीडितस्यैतावतो राजपुत्रलोकस्य मध्ये त्वमेवैको न दृश्यसे' इति । तथारटन्तीं तु तां समाश्वास्य दूरत एव राजा समं सर्वलोकेनावनितलनिवेशितोत्तमाङ्गं मेघनादमितो ढौकस्वेत्यादिश्योद्दिश्याप्राक्षीत् । 'मेघनाद, कथय को वृत्तान्तो वत्सस्य' इति । स तु व्यज्ञापयत् । 'देव, चेतनाविरहाच्चेष्टामात्रकमेवापगतं शरीरे पुनर्ज्ञायते । दिवसे दिवसेऽप्यधिका कान्तिः समुपजायते' इति । राजा तु तच्छ्रुत्वा जीवितप्रतिलम्भे समु-पजातप्रत्याशः 'श्रुतं देव्या मेघनादस्य वचनं तदेहि चिरात्पुनः कृतार्थयामो दर्शनेनात्मानं पश्यामो वत्सस्य वदनम्' इत्यभिदधान एवाभिवर्धितगतिविशेषया करेण्वा महाश्वेताश्रम-मगमत् ।

क्रमेण आक्रान्तः अभिभूतः अपि (तेषां दर्शनेन) उच्छ्वसितः प्राप्तचैतन्यः दृढीभूतः प्रबलीकृतः चन्द्रापीडदेहाविनाशप्रत्ययः चन्द्रापीडदेहस्य अक्षतत्वे विश्वासो यस्य तादृशेन । सावरणपर्याणवर्ति-नीम्-आवृतशिबिकास्थिताम् । ध्रियते-वर्त्तते । (चन्द्रापीडस्य शरीरमविकृतं वर्त्तते) तच्चरणकमला-नुजीवी-तत्पादपद्माश्रितः । सा-विलासवती । आत्मपाणिना-स्वकरेण । उत्सारितावरणसिचयाञ्चला-अपाकृतावरणवस्त्रप्रान्ता सती । निश्चलया-स्थिरया । तनयनिर्विशेषम्-पुत्रसदृशम् । अविच्छिन्नाश्रु-धारा-सततास्रुप्रवाहिनी । धैर्यमुन्मुच्य-अधीरा भूत्वा । आरटितवती-आक्रन्दं कृतवती । सहपांशुक्री-डितस्य-सहधूलीषु क्रीडां कृतवतः (बालसखस्य) अवनितलनिवेशितोत्तमाङ्गम्-पृथ्वीचुम्बिशिरसम् । ढौकस्व-समीपमागच्छ । उद्दिश्य-मेघनादं संबोध्य । चेतनाविरहात्-चैतन्यापगमात् । चेष्टामात्रम्-व्यापारमात्रम् । अपगतम्-नष्टम् । जीवितप्रतिलम्भे-पुनर्जीवनप्रत्यापत्तौ । समुपजातप्रत्याशः-उत्प-न्नाशो भूत्वा । कृतार्थयामः-सफलतां नयामः । अभिवर्धितगतिविशेषया-तीव्रगत्या चलितुं प्रेरितया । करेण्वा-गजस्त्रिया । महाश्वेताश्रमम्-(अच्छोदसरोवरसमीपस्थं महाश्वेतया निर्मितम्) तपश्चर्यासाधनं स्थानविशेषम् ।

चन्द्रापीड का शरीर अक्षत है, उन्होंने पीछे लौटकर पर्देदार पालकी में बैठी हुई विलासवती से कहा—देवि, तुम्हारे बड़े भाग्य हैं, चन्द्रापीड निश्चय ही शरीर से वर्त्तमान है, क्योंकि उसकी सेवा में रहने वाला यह समस्त राजपुत्र लोक उसके पास से यहाँ आया है । उसने राजा की बात सुनकर अपने हाथों से ही थोड़ा सा पालकी का पर्दा हटाया, निश्चल दृष्टि से थोड़ी देर तक पुत्रनिर्विशेष राजकुमारों को देखती रही, उसकी आंखों से आंसू की धारा बह चली, धैर्य छोड़कर वह जोरों से पुकार उठी—हाय बेटा, साथ-साथ धूल में खेलने वाले इन राजकुमारों के बीच एक तुम ही नहीं दीख पड़ते हो । इस प्रकार रोती हुई विलासवती को धीरज बँधाकर राजा ने सभी लोगों के साथ पृथ्वी पर माथा टेककर प्रणाम करते हुए मेघनाद को समीप आने का आदेश देकर पूछा—मेघनाद बताओ मेरे बेटे का क्या समाचार है ? मेघनाद ने कहा—इतना ही मालूम पड़ता है कि शरीर में चैतन्य के नहीं रहने से चेष्टा नहीं है, परन्तु कान्ति दिनों-दिन बढ़ती ही जाती है । राजा को मेघनाद की बात सुनकर चन्द्रापीड के पुनः जीवित हो उठने की आशा हो आई, उन्होंने विलासवती से कहा—देवि, तुमने मेघनाद की बातें सुनीं, अब चलो बहुत दिनों के बाद पुनः बेटे का मुख देखकर अपने नयन कृतार्थ कर लें । इस प्रकार कहते हुए हथिनी की चाल को तेजकर महाश्वेता के आश्रम को चले ।

---

१. उच्छ्वसितनयनः ।

अथ सहसैव तच्चन्द्रापीडगुरुजनागमनमाकर्ण्य पुरःप्रकीर्णतारमुक्तानुकारिनयनबिन्दुसंदोहा 'हा हतास्मि मन्दपुण्या दुःखैकभागिनी, न जानाम्येव विस्मृतमरणा कियद्यावद्दहमनेनानेकप्रकारं खलीकारदानैकपण्डितेन दग्धवेधसा परं दग्धव्या।' इत्यभिदधानैव धावित्वा ह्रिया महाश्वेता गुहाभ्यन्तरमविशत्। चित्ररथतनयापि सत्वरोपसृतसखीकदम्बकावलम्बितशरीरा तूष्णीमेव मोहान्धकारम्। तदवस्थयोश्च तयोः शुकनासावलम्बितशरीरो राजा विवेशाश्रमपदम्। तदनु मनोरमावलम्बिता पुरःप्रधावितोत्प्लुतायततरदृष्टिः क्व मे वत्स इति पृच्छन्ती विलासवती। प्रविश्य च सहजयैव कान्त्या विरहितमुपरतसर्वप्रयत्नं सुप्तमिव तं पुत्रवत्सला तनयमालोक्य यावन्न परापतत्येव तारापीडस्तावद्विलासवती विधारयन्तीं मनोरमामप्याक्षिप्य दूरत एव प्रसारितबाहुलताद्वया रयोन्मुक्तजर्जराभिर्नयनजलधाराभिः प्रस्रवेण च सिञ्चन्ती महीतलम्, 'एहि जातदुर्लभक चिराद् दृष्टोसि, देहि मे प्रतिवचनम्, आलोकय सकृदपि माम्, अनुचितं तात तवैतदवस्थानम्, उत्थायाङ्कोपगमनेन मे

चन्द्रापीडगुरुजनसमागमनम्–तारापीडादेरागमनम्। पुरःप्रकीर्णा अग्रदेशे विकीर्णा तारा यस्या एताहृश्याः मुक्ताया अनुकारी सदृशः नयनबिन्दुसन्दोहो यस्यास्ताहृशी मुक्तास्थूलानि अश्रूणि विमुञ्चती (महाश्वेता) विस्मृतमरणा–वाञ्छित्वापि मरणमलभमाना। कियद्यावत्–कियत्कालपर्यन्तम्। अनेकप्रकारम्–नानोपायैः। खलीकारैकपण्डितेन–अपकारमात्रपरायणेन। दग्धवेधसा–हतविधिना। दग्धव्या–सन्ताप्या। इत्यभिदधाना–एवं कथयन्ती। ह्रिया–लज्जया। गुहाभ्यन्तरम्–गह्वरमध्यम्। अविशत्–प्रविष्टा। चित्ररथतनया–कादम्बरी। सत्वरोपसृतैः–शीघ्रमागतैः सखीकदम्बकैः–आलीनिवहैः अवलम्बितं धृतं शरीरं यस्यास्ताहृशी। मोहान्धकारम्–मूर्च्छारूपं तमः। (अविशदितिपूर्वोक्तक्रिययाऽन्वयः) तदवस्थयोः–पूर्वोक्ते अवस्थे गतयोः (महाश्वेतायां गुहाप्रविष्टायाम् कादम्बर्यां च मूर्च्छितायां सत्याम्) शुकनासावलम्बितशरीरः–शुकनासेन धृतदेहः। पुरः प्रधाविता अग्रेसरीभूता उत्प्लुता अश्रुपूर्णा आयततरा अतिदीर्घा दृष्टिर्यस्याः सा तथोक्ता। सहजया–स्वाभाविक्या। कान्त्या–देहद्युत्या। अविरहितं युक्तम्। सुप्तमिव–निद्रितसदृशम्। परापतति–समीपमायाति। विधारयन्तीम्–विलासवतीशरीरमवलम्बमानाम्। आक्षिप्य–दूरं क्षिप्त्वा। प्रसारितबाहुलताद्वया–लतासदृशं बाहुयुगलं प्रसार्य। रयोन्मुक्ताभिः वेगेन विसृष्टाभिः अत एव जर्जराभिः विशीर्णाभिः। नयनजलधाराभिः अश्रुप्रवाहैः। प्रस्रवेण–स्तन्यक्षरणेन। एतदवस्थानम्–एवंरूपेण स्थितिः। अनाकर्णितपूर्वम्–अश्रुतम्। रोषितः–कोपं गमितः। तोषयामि–प्रसादयामि। प्रत्युद्गम्य–स्वागताय प्रत्युद्गमनं कृत्वा। पितृपक्षपातित्वम्–मातरि पितरि च

इसके बाद अकस्मात् चन्द्रापीड के मां-बाप के आने की बात सुनकर महाश्वेता की आंखों से आंसू बरसने लगे मानो टूटे हुए मोती उसके आगे बिखर गये हों, उसने कहा—हाय मैं अभागी केवल दुःखभागिनी हूँ, मुझे मौत भूल गई है, मैं नहीं जानती कब तक वह दुःखमात्र प्रदान करनेवाला जलमुंहा विधाता मुझे जलाता रहेगा? इस प्रकार कहती हुई महाश्वेता दौड़कर लज्जा से गुहा में पैठ गई। कादम्बरी भी मूर्च्छित हो गई, उसकी सखियों ने झटपट आकर उसके शरीर को थाम लिया। उन दोनों की उसी स्थिति में शुकनास से अवलम्बित देह राजा ने आश्रम में प्रवेश किया। उनके पीछे मनोरमा द्वारा आलम्बितदेहा विलासवती ने भी आश्रम में प्रवेश किया, विलासवती से पहले उसकी बड़ी-बड़ी आंखों ने आश्रम में प्रवेश किया। विलासवती आश्रम में प्रवेश करके स्वाभाविक कान्ति से युक्त होने पर भी सभी प्रकारों के व्यापारों से रहित चन्द्रापीड को सोया-सा देख कर जब तक तारापीड जमीन पर गिरते तभी तक सम्भालनेवाली मनोरमा को ढकेलकर दूर से ही दोनों हाथ फैलाये, वेग से गिरने के कारण जर्जर होनेवाले आँसू की धारा तथा चूते हुए दुग्धधार से पृथ्वी को सींचती हुई विलाप करने लगी–आओ मेरे दुर्लभ बेटे, बहुत दिनों के बाद मिले हो, मेरी बातों का उत्तर दो, एकबार भी मेरी तरफ देखो, तुम्हारा इस तरह पड़ा रहना अनुचित है, उठकर मेरी गोद में आकर पुत्र का स्नेह दिखलाओ, तुमने लड़कपन में भी सदा मेरी बात सुनी, आज विलाप करनेवाली अपनी माता की बात भी तुम क्यों नहीं

संपादय तनयोचितं स्नेहम्, न चानाकर्णितपूर्वं बाल्येपि त्वया मद्वचनम्, अद्य किमेवं विलपन्त्या अपि न शृणोषि, जात केन रोषितोऽस्येषा तोषयामि वत्स पादयोर्निपत्य, पुत्र चन्द्रापीड प्रणम तावत्प्रत्युद्गम्य त्वत्स्नेहाद्देवातिदूरमागतस्यापि पितुः पादौ, क्व सा गता ते गुरुभक्तिः, क्व ते गुणाः, क्व स स्नेहः, क्व सा धर्मज्ञता, क्व तत्पितृपक्षपातित्वम्, क्व सा बन्धुप्रीतिः, क्व सा परिजनवत्सलता, कथमभाग्यैर्मे सर्वमेकपद एवोत्सृज्यैवमौदासीन्यमवलम्ब्यावस्थितोसि, अथवा यथा ते सुखं तथा तिष्ठ वयमुदासीनहृदयास्त्वयि', इति कृतार्तप्रलापा सूनुमुपसृत्य पुनः पुनर्गाढमालिङ्ग्याङ्गानि शिरः समाघ्राय कपोलौ चुम्बित्वा चन्द्रापीडस्य चरणावुत्तमाङ्गे कृत्वोन्मुक्तकण्ठमरोदीत्। तथा रुदन्तीं तु तामन्तरितनिजपीडस्तारापीडश्चन्द्रापीडमपरिष्वज्यैव सर्वप्रजापीडापहरणक्षमाभ्यां भुजाभ्यामवलम्ब्याब्रवीत्। 'देवि, यद्यप्यावयोः सुकृतैरपत्यतामुपगतस्तथापि देवतामूर्तिरेवायमशोचनीयः। तदुन्मुच्यतामयमिदानीं मनुष्यलोकोचितः शोचितव्यवृत्तान्तः। अस्मिञ्छोके कृते न किंचिदपि भवति। केवलं गल एव स्फुटति रटतो न हृदयम्। निरर्थकं प्रलपितमेव निर्याति वदनान्न जीवितम्। निरासङ्गं नयनजलमेव पतति न शरीरम्। अपि च वत्सस्यादर्शनमात्रमेवावयोः पीडाकरम्। तच्चैवमालोक्यमाने मुखेस्य दूरापेतम्। अपरमस्या-

प्रीतिः। परिजनवत्सलता-भृत्यानुरक्तिः। औदासीन्यम्-सर्वत्र वैराग्यम्। उदासीनहृदयाः-अनासक्तमनसः (आग्रहविमुखाः) अन्तरितनिजपीडः-विस्मृतस्वकीयव्यथः। अपरिष्वज्य-अनाश्लिष्य। सर्वप्रजापीडाहरणक्षमाभ्याम् सर्वासां प्रजानां दुःखं हर्तुं समर्थाभ्याम्। आवयोः-तव मम च। सुकृतैः-पुण्यपरिपाकैः। अपत्यतामुपगतः-पुत्रत्वं प्राप्तः। देवतामूर्तिः-चन्द्रमोरूपः। अशोचनीयः-शोकस्यापात्रम्। शोचितव्यवृत्तान्तः-चिन्तनीयता। गलः-कण्ठः। (हृदयं यदि स्फुटेत्तदा रोदनफलस्य मृत्योर्लाभे संभवति सति रोदनमुचितमप्यासीत्परं तु केवलं गलस्फुटनफले तु रोदने प्रवृत्तिर्वृथेति मारोदीरिति तात्पर्यम्) नयनजलम्-अश्रु। अदर्शनम्-नयनगोचरताऽभावः। तच्च-अदर्शनञ्च (एवम् अस्य मुखे आलोक्यमानेऽदर्शनस्य का कथेति भावः) आवाभ्याम्-त्वया मया च। अवष्टम्भम्-धैर्यम्। संधार-

सुन रहे हो, बेटा किसने तुमको कोपित कर दिया, अभी मैं तुम्हारे चरणों पर गिरकर तुम्हें प्रसन्न करती हूँ, तुम्हारे ही स्नेह से इतनी दूर आये हुए अपने पिता का स्वागत करके उनके चरण छुओ, वह तुम्हारी गुरुभक्ति कहाँ गई, वे तुम्हारे गुण कहाँ हैं। वह स्नेह, वह धर्मज्ञता, वह पिता के ऊपर पक्षपात, वह बान्धव प्रेम, वह परिजन स्नेह कहाँ हैं? हमारा अभाग्य है कि तुमने सभी उपर्युक्त गुणों का एकाएक परित्याग करके इस प्रकार उदासीन बन गये हो, अथवा तुम जैसे चाहो वैसे रहो हमने तुम्हारे विषय में उदासीनता अपना ली है। इस प्रकार आर्त्त प्रलाप करती हुई विलासवती ने चन्द्रापीड के पास जाकर उसका पुनः-पुनः आलिङ्गन किया, माथा सूँघा, गालों को चूमा, चरणों को माथे से लगाया और गला फाड़कर रो उठीं। उस प्रकार रोती हुई विलासवती को देखकर तारापीड को अपना कष्ट भूल गया, चन्द्रापीड के आलिङ्गन को भुलाकर सारी प्रजा की पीड़ा को अपहृत करने की क्षमता रखनेवाले अपने हाथों से उठा लिया और कहा—देवि, यद्यपि हमारे-तुम्हारे भाग्य से यह हमारी सन्तान बन गये हैं तथापि यह देवता हैं, इनके लिये शोक करना व्यर्थ है। अतः छोड़ो इस मनुष्यलौकिक शोक को। इस शोक से कुछ नहीं हो सकता है। रोने से केवल गला ही फटेगा हृदय नहीं फट सकेगा। मुँह से केवल निरर्थक विलाप ही निकला करेंगे, प्राण नहीं निकलेंगे। बेकार नयनजल ही गिरेंगे, शरीर नहीं गिरेंगे। हम दोनों के लिये बेटे का नहीं दीखना ही कष्टकर था, वह इसके मुख को देखने से दूर हो गया। इस अवस्था में हमको धीरज बाँधकर शुकनास तथा मनोरमा को धीरज बंधाना चाहिये जिनका बेटा वैशम्पायन लोकान्तर चला गया है। अथवा छोड़ो इन दोनों को। जिसके प्रभाव से हमें पुनः पुत्र के पुनर्जीवनप्राप्ति का उत्सव मनाना है, वही यह गन्धर्वराजकन्या कादम्बरी अपना-अपना नाम लेकर सखियों के द्वारा रो-रोकर पुकारने पर भी होश में नहीं आ रही है, पहले उसे गोद में उठाकर होश में लाओ, पीछे यथेच्छ रो लेना।

मवस्थायामावाभ्यामपि तावत्परमवष्टम्भं कृत्वा मनोरमा शुकनासश्च संधारणीयौ ययोर्लोकान्तरितो वैशम्पायनः। तिष्ठतां तावदेतावपि। यस्याः प्रभावात्पुनरनुभवनीयो वत्सस्य जीवितप्रतिलम्भाभ्युदयमहोत्सवः सैवेयं गन्धर्वराजतनया वधूस्तेस्मदागमनशोकोर्मिसंक्रान्तिमूढा सनामग्रहणमुन्मुक्ताक्रन्दाभिः प्रियसखीभिर्ग्राह्यमाणाद्यापि संज्ञां न प्रतिलभते। तदेनां तावदुत्थाप्याङ्के कृत्वा चेतनां लम्भय। ततो यथेच्छं रोदिष्यसि।'

इत्यभिहिता राज्ञा विलासवती 'क्व सा मे वत्सस्य जीवितनिबन्धनवधूः' इत्यभिदधत्येव ससंभ्रममुपसृत्याप्रतिपन्नसंज्ञामेवाङ्केनादाय कादम्बरीं करेण मूर्च्छानिमीलनाहितद्विगुणतरनयनशोभं वदनमालोक्यानवरतनयनसलिलस्नानार्द्रमिन्दुशकलशीतलं स्वकपोलं कपोलयोर्ललाटे ललाटं लोचनयोश्च लोचने निवेशयन्ती चन्द्रापीडस्पर्शशिशिरेण च पाणिना हृदये स्पृशन्ती 'समाश्वसिहि मातस्त्वया विनाद्यैव प्रभृति केन संधारितं वत्सस्य मे चन्द्रापीडस्य शरीरम्, मातस्त्वममृतमयीव जातासि येन वत्सस्य पुनर्वदनमालोकितम्' इत्यवादीत्। कादम्बरी तु तेन चन्द्रापीडनामग्रहणेन तेन च तन्निर्विशेषवृत्तिना विलासवतीशरीरस्पर्शेन लब्धसंज्ञापि लज्जावनम्रमुखी प्रतिपत्तिमूढा मदलेखयाङ्कादवतार्य परवत्येव यथाक्रममकार्यत वन्दनां गुरूणाम्। 'आयुष्मति दीर्घकालमविधवा भव' इति कृताशीर्वादा

रणीयौ-धैर्यं प्रापणीयौ। लोकान्तरितः-अन्यं लोकं गतः। (अचेष्टमानोऽपि देहेनाधुनेतनावयोश्चन्द्रापीडः पुरो वर्त्तते, शुकनासमनोरमयोः पुत्रस्तु वैशम्पायनः सर्वथैव लोकान्तरित इति सापेक्षन्यूनशोकाभ्यामावाभ्यां समधिकशोकशालिनोर्मनोरमावैशम्पायनयोर्धैर्यधारणायां प्रयास उचित इति भावः) तिष्ठताम्-यथास्तस्तथा स्ताम्नाम। एतौ मनोरमावैशम्पायनौ। यस्याः कादम्बर्याः प्रभावात्-सामर्थ्यवशात्। पुनरनुभवनीयः-पुनः प्राप्यः। जीवितप्रतिलाभेन-प्राणप्रतिपत्त्या यः अभ्युदयः प्रकर्षः स एव महोत्सवः (महोत्सवाधायकं चन्द्रापीडस्य पुनर्जीवनम्) गन्धर्वराजतनया-चित्ररथसुता कादम्बरी। वधूः-स्नुषा। अस्मदागमनेन अस्माकमुपस्थित्या या शोकोर्मिः शोकतरङ्गः तस्याः संक्रान्त्या उदयेन मूढा मूर्च्छिता सती। सनामग्रहणम्-नामोपादानपूर्वकम्। उन्मुक्ताक्रन्दाभिः रुदतीभिः। ग्राह्यमाणा-संज्ञां प्राप्यमाणा। एनाम्-आत्मनः स्नुषाम्। कादम्बरीम्। अङ्के-क्रोडे। चेतनां लम्भय-संज्ञां प्रापय।

जीवितनिबन्धनम्-प्राणधारणकारणीभूता। ससंभ्रमम्-वेगेन। उपसृत्य-समीपं गत्वा। अप्रतिपन्नसंज्ञाम्-अचेतनभावेन स्थिताम्। अङ्केनादाय-क्रोडे कृत्वा। मूर्च्छानिमीलनाहितद्विगुणतरनयनशोभम्-मूर्च्छाकृतेन मुद्रणेन आहिता जनिता द्विगुणतरा नयनशोभा नेत्रसुषमा यत्र तादृशम्। अनवरतनयनसलिलस्नानार्द्रम्-अविच्छेदेन प्रवहमानेनाश्रुणा सिक्तम् अत एव इन्दुशकलशीतलम् चन्द्रखण्डवच्छीतलम्। निवेशयन्ती-स्थापयन्ती। चन्द्रापीडस्पर्शशिशिरेण-चन्द्रापीडस्पर्शकृतशीतलतायुतेन। अमृतमयी-सुधास्वरूपा। चन्द्रापीडनामग्रहणेन-विलासवतीकृतेन चन्द्रापीडस्य नामोच्चारणेन। निर्विशेषवृत्तिना-चन्द्रापीडस्पर्शतुल्येन। लब्धसंज्ञाप्रत्यागतचैतन्या। लज्जावनम्रमुखी-त्रपावनतवदना।

राजा के द्वारा इस प्रकार कही गई विलासवती—कहाँ है वह मेरे पुत्र को जिलानेवाली पुत्रवधू! इस प्रकार कहती हुई दौड़कर समीप में पहुँच कर बेहोश पड़ी हुई कादम्बरी को गोद में उठाकर मूर्च्छा में मुंदे नयनों से द्विगुण कान्तिवाले कादम्बरी के मुख को देख कर बराबर बहते हुए अश्रुप्रवाह से चन्द्रखण्ड समान शीतल अपने कपोल को कपोल पर, ललाटको ललाट पर और आंखों को आंखों पर—रखती हुई चन्द्रापीड के स्पर्श से शीतल हाथ से कादम्बरी के हृदय को छूती हुई—कहने लगी—धीरज धरो बेटी, तुम्हारे बिना आजतक कौन मेरे बेटे चन्द्रापीड के शरीर की रक्षा करता, बेटी तुम तो अमृतमयी बन गई—जिससे मैं पुनः पुत्र का मुख देख सकी हूँ। चन्द्रापीड के नाम के उच्चारण उसी के शरीर स्पर्श से मिलते-जुलते विलासवती के शरीरस्पर्श से कादम्बरी को होश हो आया, तथापि वह किंकर्त्तव्यमूढ बनी रही, मदलेखा ने उसे विलासवती की गोद से उतार कर जबर्दस्ती श्वशुरों के चरण छुलवाये। विलासवती ने आशीर्वाद दिया—चिरकाल तक अविधवा बनी

च शनैः शनैस्तैरुत्थाप्यमानातिनिकटे विलासवत्याः पृष्ठतः समुपवेश्याधार्यत । अथ प्रत्यापन्नचेतनायां चित्ररथतनयायां चन्द्रापीडमेवोज्जीवितं मन्यमानो राजा चिरमिवास्य गाढमङ्गमालिङ्ग्य चुम्बंश्च पश्यंश्च स्पृशंश्च स्थित्वा मदलेखामाहूयादिदेश । 'दर्शनसुखमात्रकमस्माकं विधीयमानम् । तच्चास्माभिरासादितम् । तद्यादृशेनैवोपचारेणैतावतो दिवसानुपचरितवती वधूर्वत्सस्य शरीरं स एवोपचारो नास्मदनुरोधाल्लज्जया वा मनागपि परिहरणीयः । वयं निष्प्रयोजना द्रष्टार एव केवलम् । किमस्माभिरिह स्थितैर्गतैर्वा । यस्याः करस्पर्शेनाप्यायितमेतदविनाशि सैव वधूः पार्श्वेऽस्य तिष्ठतु ।' इत्यादिश्य निर्जगाम । निर्गत्य चोपकल्पितं निजावासमगत्वैव तपस्विवासोचितेऽन्यतमस्मिन्नासन्न एवाश्रमस्य शुचिशिलातलसनाथे तरुलतामण्डपे समुपविश्य निर्विशेषदुःखं सकलमेव राजचक्रमाहूय सबहुमानमवादीत् । 'न भवद्भिरवगन्तव्यं यथाद्य शोकावेगादेवैतदहमङ्गीकरोमीति । पूर्वचिन्तित एवायमर्थो यथा वधूसमेतस्य चन्द्रापीडस्य वदनमालोक्य संक्रामितनिजभरेण मया क्वचिदाश्रमपदे गत्वा पश्चिमं वयः क्षपितव्यमिति । स चायं मे भगवता कृतान्तेन पुराकृतैः कर्मभिर्वा विरूपैरेवं समुपनमितः । किमपरं क्रियते । अनतिक्रमणीया नियतिः । अप्रापणीयं

प्रतिपत्तिमूढा–किङ्कर्त्तव्यताविमूढा । परवती–मदलेखापराधीना । गुरूणाम्–श्वश्रूश्वशुरादीनाम् । वन्दनाम्–प्रणामम् । कृताशीर्वादा–दत्ताशीर्वचना । अनतिनिकटे–किञ्चिद्दूरे अधार्यत–अवलम्ब्य शरीरमुपावेश्यत । प्रत्यापन्नचेतनायाम्–लब्धसंज्ञायाम् । विधीयमानम्–विधात्रा लिख्यमानम् (अस्तीति शेषः) तत्–पुत्रदर्शनसुखम् । उपचारेण–सेवाविधिना । उपचरितवती । वधूः–मम स्नुषा । परिहरणीयः–त्यक्तव्यः । निष्प्रयोजनाः–चन्द्रापीडशरीरपरिचर्यायामकार्यकराः । यस्याः–तव । आप्यायितम्–पोषितं पालितम् । एतत्–चन्द्रापीडशरीरम् । अविनाशि–अनष्टम् । उपकल्पितम्–भृत्यैर्निर्माय प्रस्तुतम् । तपस्विवासोचितम्–तपस्विजननिवासोपयुक्तम् । आसन्ने–समीपवर्त्तिनि । अन्यतमस्मिन्–बहुष्वावासेष्वेकतमे । शुचिशिलातलसनाथे–पवित्रस्वच्छशिलायुक्ते । तरुलतामण्डपे–वृक्षलतादिकृते मण्डपे । निर्विशेषदुःखम्–स्वसमदुःखम् । राजचक्रम्–नृपमण्डलम् । सबहुमानम्–सादरम् । शोकावेगात्–शोकाधिक्यवशात् । एतत्–तपश्चरणम् । पूर्वचिन्तितः–प्राङ्निश्चितः । वधूसमेतस्य–कृतविवाहस्य । संक्रामितनिजभरेण–चन्द्रापीडस्योपरि स्वधृतं राज्यभारं समर्पितवता । क्वचित्–कुत्रापि । आश्रमपदे–आश्रमे । पश्चिमं वयः–चरमावस्था वार्धक्यम् । क्षपितव्यम्–यापनीयम् । कृतान्तेन–भाग्येन यमेन वा । पुरा-

---

रहो, अनन्तर मदलेखा ने धीरे धीरे कादम्बरी को उठाकर विलासवती के पीछे समीप में ही—बैठा दिया, और उसे पकड़े बैठी रही । कादम्बरी के होश में आने पर राजा को ऐसा मालूम पड़ा मानो चन्द्रापीड ही जी उठा हो । राजा ने कादम्बरी को गले लगाकर चुम्बन किया, देखा, छुआ, फिर मदलेखा से कहा–दर्शन सुखमात्र हमें प्राप्त करना था, सो हमने पा लिया, अतः जिस तरह के उपचार से बहू इतने दिनों तक चन्द्रापीड के शरीर की रक्षा करती रही है, उस उपचार को हमारे अनुरोध अथवा लज्जा से वह कभी नहीं छोड़े । हम लोग तो बे सरोकार द्रष्टामात्र हैं, हमारे यहां रहने अथवा चले जाने में क्या अन्तर है । जिसके कर-स्पर्श से आप्यायित होकर कुमार का यह शरीर अविनाशी रहा करता है वह बहू ही इसके पास रहे । ऐसा कहकर तारापीड निकल गये । आश्रम से निकलकर तारापीड ने अपने लिये बनाये गये आवास में नहीं जाकर तपस्वियों के निवास के योग्य किसी दूसरे ही आश्रम के समीपस्थ पवित्र शिलाखण्ड से युक्त लतामण्डप में बैठ कर स्वसमान दुःखी राजमण्डल को बुलाकर कहा—आप लोग ऐसा मत समझें कि मैं आज शोक के आवेश में आकर यह कह रहा हूँ, मैंने पहले ही सोचा था कि वधू-समेत चन्द्रापीड़ का मुख देखकर चन्द्रापीड़ के हाथ में राज्य का भार सौंपकर किसी आश्रम में जाकर आखिरी उमर व्यतीत करूँगा । मेरा वह मनोरथ भाग्य ने अथवा मेरे पूर्वजन्म के कर्मों ने दूसरे ही रूप में पूरा किया है । मैं दूसरा क्या कर सकता हूँ, भाग्य की रेखा अलङ्घनीय होती है । अपनी चेष्टा से मैं वत्स को सुख नहीं पहुँचा सका क्योंकि वह उसको प्राप्य नहीं था । प्रजा

नानुभूतमात्मचेष्टाकृतं वत्सस्य सुखम्। प्रजापरिपालनफलं तु पुनर्भवद्भुजेष्वेवमक्षतेष्वविरहितमस्त्येव। अन्यथापि हि चेष्टमानेष्वस्मासु सर्वमेव तेष्वेवावस्थितम्। तदिच्छामि चिरकाङ्क्षितं मनोरथं पूरयितुम्। धन्याश्च जरापीतसारतनवस्तनयेष्वात्मभरमासज्य लघुशरीराः परलोकगमनं साधयन्ति। यच्च बलाद्गले पादमादाय यदा तदानिच्छतोऽप्याच्छिद्यत एव कृतान्तेन। तद्यदि पात्रे क्वचिदपि स्थापयित्वा निजपदं जरापरिभुक्तायुःशेषेण निष्प्रयोजनस्थितिना सर्वसुखबाह्येन मांसपिण्डेन परलोकसुखान्युपार्ज्यन्ते लाभ एवायम्। तदस्य वस्तुनः कृते भवन्तो मया प्रार्थनीयाः। इत्युक्त्वा संनिहितान्यपि परित्यज्योचितानि सर्वसुखान्यनुचितान्यङ्गीकृत्य वन्यानि तथा हि हर्म्यबुद्धिं वृक्षमूलेषु, अन्तःपुरस्त्रीप्रीतिं लतासु, संस्तुतजनस्नेहं हरिणेषु, निवसनरुचिं चीरवल्कलेषु, कुन्तलरचनाभियोगं जटासु, आहारहार्दं कन्दमूलफलेषु, शस्त्रधारणव्यसनमक्षसूत्रे, प्रजापरिपालनशक्तिं समित्कुशकुसुमेषु,

---

कृतैः-पूर्वजन्माचरितैः। विरूपैः-भिन्नरूपतां श्रयद्भिः। एवंरूपेण-पारवश्यद्वारा। अनतिक्रमणीया-लङ्घितुमशक्या। अप्रापणीयम्-भाग्येऽलिखितम्। आत्मचेष्टाकृतम्-स्वयं चेष्टमानम्। प्रजापालनफलम्-राज्यफलम्। अक्षतेषु-अनपायेषु। अविरहितम्-मिलितम्। (भवद्भिः प्रजासु रचयमाणासु मया प्रजापालनफलं लभ्यमेवेत्याशयः) अन्यथापि-प्रकारान्तरेणापि। चेष्टमानेषु-व्यापृतेषु। तेषु-भवद्भुजेषु। (अन्यथा चिन्तयति मयि सत्यपि यथा भवद्भिश्चिन्तितं प्रजापालनं तथैव मयापि कर्त्तुं बाध्येनाभूयतेति भावः) चिरकाङ्क्षितम्-बहोः कालादभीष्टम्। जरसा वार्द्धकेन पीतसाराः लुप्तबलाः शिथिलास्तनवः शरीराणि येषां ते तथोक्ताः। आत्मभरम्-स्वीयं कर्त्तव्यभारम्। तनयेषु-स्वीयेषु पुत्रेषु। आसज्य-स्थापयित्वा। लघुशरीराः भारापगमेन लघूभूतदेहाः। परलोकगमनं पुण्यादिपरलोकप्रापणं कर्म साधयन्ति अनुतिष्ठन्ति। बलात्-सामर्थ्यवशात्। गले-कण्ठदेशे। पादमादाय-चरणं स्थापयित्वा (निगृह्य) आच्छिद्यते-अपह्रियते (निजपदमिति शेषः) पात्रे-योग्ये पुत्रादौ। जरापरिभुक्तायुःशेषेण-वार्द्धक्यगृहीतेनावशिष्टेन। निष्प्रयोजनस्थितिना-व्यर्थीभूतेन। सर्वसुखबाह्येन-किमपि सुखं प्राप्तुमक्षमेण। मांसपिण्डेन-अकार्यकरतया मांसपिण्डोपमेन देहेन। परलोकसुखानि-स्वर्गलभ्यानि सुखानि। उपार्ज्यन्ते-अर्जितानि क्रियन्ते। अस्य वस्तुनः कृते-अहं स्वर्गसाधनं तपश्चरितुं प्रारभे, यूयं प्रजाः पालयथेति निर्णयसम्बन्धे।[1] सन्निहितानि-उपस्थितानि। अनुचितानि-अनभ्यस्तानि। वन्यानि-वनभवानि। हर्म्यबुद्धिम्-प्रासादबुद्धिम्। (या बुद्धिः सेव्यतामतिः पूर्वं प्रासादेष्ववर्त्तत सा सेव्यताबुद्धिस्तरुमूलेष्वक्रियतेति भावः) अन्तःपुरप्रीतिम्-पत्नीस्नेहम्। संस्तुतजनस्नेहम्-परिजनपरिचितजनोचितं प्रेम। निवसनरुचिम्-वस्त्रस्नेहम्। कुन्तलरचनायोगम्-केशविन्याससम्बन्धम्। आहारहार्दं-भोजनप्रीतिम्। अक्षसूत्रे-जपमालायाम्। समिधः होमकाष्ठानि कुशा दर्भाः कुसुमानि पूजार्थानि

का परिपालन तो आपलोगों के भुजों के रहते हुए होता ही रहेगा। मैं कुछ भी चाहूँ आप लोगों के ऊपर ही प्रजापालन का भार रहता है। अतः मैं अपना चिराभिलषित मनोरथ पूर्ण कर लेना चाहता हूँ। धन्य हैं वे लोग, जो बुढ़ापे से थके हुए शरीर को हल्का पाकर पुत्रों के कन्धों पर सारा राज्यभार डालकर परलोक सिद्ध करते हैं। बलात् गर्दन पर चढ़कर नहीं चाहने पर भी एक दिन परलोक ले ही जायगा। तब यदि सुपात्र के हाथ में अपना भार सौंपकर बुढ़ापे से जर्जर, बेकार, सर्वसुखरहित, मांसपिण्ड से पारलौकिक सुख का अर्जन कर लें तो लाभ ही होगा। इसी विषय में हम आप लोगों से प्रार्थना करते हैं। ऐसा कहकर—तारापीड़ ने अभ्यस्त तथा समीपस्थ सुखों को भी छोड़कर अनभ्यस्त वन्य साधनों को स्वीकार किया। वृक्षमूल को ही घर मान लिया, अन्तःपुरस्त्री की प्रीति लताओं से कर ली, विश्वस्त परिजन का कार्य हरिणों से लिया, वस्त्र का कार्य चीरवल्कल से किया, केशविन्यास के स्थान में जटायें बनीं, भोजन का स्नेह कन्दमूल फल से किया, शस्त्रधारण का व्यसन अक्षसूत्र में गया, प्रजापालन की शक्ति कुशसमिध् तथा फूलों के सञ्चय में लगाया, परिहासकथा का स्थान धर्मालापने लिया,

१. प्रार्थिताः।

नर्मालापं धर्मसंकथासु, समररसमुपशमे, जयेच्छां परत्र, कोशस्पृहां तपसि, आज्ञां मौने, सर्वोपभोगरागं च वैराग्ये, तनयस्नेहं तरुषु संक्रमय्य तथा तपस्विजनोचिताः क्रियाः कुर्वन्गन्धर्वलोकोचितानहरहरुपचारान्कादम्बर्या कथमपि समुत्सृष्टलज्जया महाश्वेतया च क्रियमाणाननिच्छन्नविच्छेदात्सायंप्रातश्चानुभूतचन्द्रापीडदर्शनसुखो दुःखान्यगणयन्नरपतिः सपरिवारः समं देव्या शुकनासेन च तत्रैवातिष्ठत् ।

इत्येव च कथयित्वा भगवाञ्जाबालिर्जराभिभवविच्छायं स्मितं कृत्वा हारीतप्रमुखान्सर्वानेव ताञ्छ्रावकानवादीत् । 'दृष्टमायुष्मद्भिरिदमन्तःकरणापहारिणः कथारसस्याक्षेपसामर्थ्यम् । यत्कथयितुं प्रवृत्तोस्मि तत्परित्यज्यैव कथारसात्कथयन्नतिदूरमतिक्रान्तोस्मि । तद्यः स कामोपहतचेताः स्वयंकृतादेवाविनयाद्दिव्यलोकतः परिभ्रश्य मर्त्यलोके वैशम्पायननामा शुकनाससूनुरभवत्स एवैष पुनः स्वयंकृतेनाविनयेन कोपितस्य पितुराक्रोशान्महाश्वेताकृताच्च सत्याधिष्ठानादस्यां शुकजातौ पतितः' ।

पुष्पाणि च तेषु । नर्मालापम्—विश्रम्भकथाम् । समररसम्—युद्धप्रेम उपशमे—शान्तौ । सर्वोपभोगरागम्—सर्वविषयभोगस्नेहम् । अत्र सर्वत्र संक्रमय्येति क्रिया योजनीया । तथा च—हर्म्यबुद्धिं वृक्षमूलेषु संक्रमय्य, अन्तःपुरप्रीतिं लतासु संक्रमय्य, संस्तुतजनस्नेहं हरिणेषु संक्रमय्य, निवसनरुचिं चीरवल्कलेषु संक्रमय्य, कुन्तलरचनाभियोगं जटासु संक्रमय्य, आहारहार्दं कन्दमूलफलेषु संक्रमय्य, शस्त्रधारणव्यसनमक्षसूत्रे संक्रमय्य, प्रजापालनशक्तिं धर्मकथासु संक्रमय्य, समररसमुपशमे संक्रमय्य, जयेच्छां परत्र संक्रमय्य, कोशस्पृहां तपसि संक्रमय्य, आज्ञां मौने संक्रमय्य, सर्वोपभोगरागं च वैराग्ये संक्रमय्य, तनयस्नेहं तरुषु संक्रमय्य, इत्येवं पर्यवसितं वाक्यकदम्बकमूहनीयम् । तपस्विजनोचिताः ऋषिमुनियोग्याः । अहरहः—प्रतिदिनम् । उपचारान्—सेवाः । समुत्सृष्टलज्जया—त्यक्तत्रपया । अविच्छेदात्—विना विच्छेदम् । दुःखानि—वनवासकष्टानि । अगणयन्—अविभावयन् । सपरिवारः—परिजनसहितः ।

इत्येव—एतावदेव । जराभिभवविच्छायम्—वार्द्धकाक्रमणविवर्णम् । स्मितम्—ईषद्धासम् । हारीतप्रमुखान्—हारीतप्रभृतीन् । श्रावकान्—कथाश्रवणपरायणान् । आयुष्मद्भिः—चिरजीविभिः । अन्तःकरणापहारिणः—हृदयावर्जकस्य । आक्षेपसामर्थ्यम्—आकर्षणप्रभुत्वम् । प्रवृत्तः—कृतप्रारम्भः । तत्—प्रारब्धम् । कथारसात्—कथारसस्वभावसिद्धादाक्षेपात् । अतिदूरम्—प्रथमप्रारब्धकथातो दूरम् । अतिक्रान्तः—मुख्यां कथामसमाप्यान्यसम्बद्धकथां कथयितुं प्रवृत्तः । कामोपहतचेताः—कामदेवाधीनहृदयः । स्वयंकृतात्—आत्मनैव कृतात् । अविनयात्—औद्धत्यात् । दिव्यलोकतः—स्वर्गात् । परिभ्रश्य—पतित्वा । कोपितस्य—कोपं प्रापितस्य । आक्रोशात्—शापात् । सत्याधिष्ठानात्—यदि मम सत्यं पातिव्रत्यं तदा शुको भवेत्येवंरूपात् सत्याश्रितात् । पतितः—उत्पन्नः ।

युद्धाभिलाष शान्तिवार्ता में पूरा हुआ, जयेच्छा परलोक के विषय में हुई, खजाना तप का इकट्ठा हुआ, आज्ञा मौन में, सभी तरह के उपभोग वैराग्य में, तनयस्नेह वृक्षों में हुए, और तपस्विजनोचित कार्य करते हुए किसी तरह लज्जा छोड़कर कादम्बरी तथा महाश्वेता द्वारा किये गये गन्धर्व-लोकोचित संस्कारों को भी नहीं चाहते हुए सायं-प्रातः चन्द्रापीड का मुख देखते हुए तारापीड़ ने शुकनास तथा विलासवती के साथ दुःखों को भूलकर वहीं रहना स्वीकार किया ।

इतना ही कहकर भगवान् जावालि ने बुढ़ापे के कारण सूखी हँसी हँसकर हारीत प्रभृति कथा सुनने वालों से कहा—आपलोगों ने कहानी की हृदयावर्जन-सामर्थ्य तथा आकर्षकता देखी ? जो कहने को प्रवृत्त हुआ था उसे छोड़कर कहानी के प्रवाह में कहां से कहां चला आया हूँ । वह जो कामाधीन अपने अपराध से दिव्य लोक से च्युत होकर मर्त्यलोक में वैशम्पायन नाम से ख्यात शुकनास का पुत्र हुआ था, वही है यह, पुनः इसने अपने ही अविनय द्वारा पिता को कुपित करके पिता के शाप तथा महाश्वेताकृत आक्रोश से शुकजाति में जन्म लिया है ।

इत्येवं वदत्येव भगवति जाबालौ बाल्येपि मे सुप्तप्रबुद्धस्येव पूर्वजन्मान्तरोपात्ताः समस्ता एव विद्या जिह्वाग्रेऽभवन्। सकलासु च कलासु कौशलमुपजातम्। उपदेशाय मनुजस्येव चेयं विस्पष्टवर्णाभिधाना भारती च संपन्ना। विज्ञानं च सर्ववस्तुविषयं स्मरणं च संवृत्तम्। किं बहुना। मनुष्यशरीरादृते सर्वमन्यत्तत्क्षणमेव मे वैशम्पायनस्य स एव चन्द्रापीडस्योपरि स्नेहः सैव कामपरवशता स एव महाश्वेतायामनुरागः सैव तदवाप्तिं प्रत्युत्सुकतेत्युपगतं सकलमेव। केवलमसंजातपक्षतया मे तस्मिन्समये पूर्वजन्मोपात्ता शरीरचेष्टा नासीत्। तथा चाविर्भूतसकलान्यजन्मवृत्तान्तः समुत्सुकान्तरात्मा किं मातापित्रोः किं तातस्य तारापीडस्य किमम्बाया विलासवत्याः किं वयस्यस्य चन्द्रापीडस्योत प्रथमसुहृदः कपिञ्जलस्याहोस्विन्महाश्वेताया इति नाज्ञासिषमेवं कस्य कस्य कथं वा स्मृतवानस्मीति। तथा चोत्सुकान्तरात्मा महीतलनिवेशितशिराश्चिरमिव स्थित्वा भगवन्तं जाबालिं निजाविनयश्रवणलज्जया विलीयमान इव विशन्निव पातालतलं कथमपि शनैः शनैर्व्यज्ञापयम्। 'भगवंस्त्वत्प्रसादादाविर्भूतज्ञानोस्मि संवृत्तः। स्मृताः

वदति-कथयति सति। सुप्तप्रबुद्धस्य-स्वप्नादुत्थितस्य। पूर्वजन्मान्तरोपात्ताः प्राक्तनेषु जन्मसु अभ्यस्ताः। समस्ता एव विद्याः-सर्वा एव कलाः जिह्वाग्रेऽभवन्-कण्ठाग्रवर्तिन्यो जाताः। कौशलम्-प्रावीण्यम्। उपदेशाय-परस्मै कथनाय। विस्पष्टवर्णाभिधाना-स्फुटाक्षरोच्चारणा। भारती-वाणी। सम्पन्ना-सञ्जाता। सर्ववस्तुविषयं विज्ञानम् सर्ववस्तुविषयं च स्मरणं संवृत्तम्-सर्वविषयगोचरोऽवगमः सर्वविषयस्मरणं च जायतेस्म। मनुष्यशरीरादृते-मानवं कार्यं विहाय। कामपरवशता-अतिकामुकता। अनुरागः—प्रीतिः। तदवाप्तिं प्रति महाश्वेताप्राप्तिसम्बन्धे। उत्सुकता-उत्कण्ठा। उपगतम्-उपजातम्। असञ्जातपक्षतया-पक्षतीनामनुत्पन्नतया। पूर्वजन्मोपात्ता-पूर्वस्मिन् जन्मनि समभ्यस्ता। शरीरचेष्टा-कायिको व्यापारः। आविर्भूतसकलान्यजन्मवृत्तान्तः-प्रकटीभूतसकलपूर्वभववृत्तः (प्राक्तनजन्मसु जाताः सकला अपि घटना मम स्मृतौ आगता इत्याशयः) समुत्सुकान्तरात्मा-तत्सम्बन्धे ज्ञातुमुत्कण्ठमानः। महीतलनिवेशितशिराः-शिरसा भूमिं स्पृशन्। चिरं स्थित्वा-किञ्चित्कालपर्यन्तं तदवस्थ एवावस्थाय। निजाविनयश्रवणलज्जया-स्वीयस्याविनयस्य अनुचिताचारस्य श्रवणेन लज्जा त्रपा तया। निलीयमानः-आत्मानं गोपयन्। विशन्-प्रविशन्। आविर्भूतज्ञानः-प्रकटीभूतस्मृतिः। मूढतायाम्-इतः पूर्वं वर्त्तमानायाम् अज्ञानदशायाम्। तेषाम्-पूर्ववान्धवानाम्। (यावन्मया पूर्ववान्धवा मोहदशायां स्थित्वा

भगवान् जावालि के इस प्रकार कहते ही बाल्य होने पर भी सुप्तप्रबुद्ध की तरह पूर्वजन्मार्जित मेरी सारी विद्यायें मेरी जीभ पर नाचने लगीं, सारी कलाओं में कौशल उत्पन्न हो गया। बातचीत करने के लिए मनुष्य की तरह विस्पष्टवर्णा वाणी उत्पन्न हो गई। सभी वस्तुओं का ज्ञान एवं स्मरण हो उठा। मनुष्य शरीर के अतिरिक्त वैशम्पायन वाली सारी बातें हो गयीं। उसी तरह चन्द्रापीड़ से प्रेम, वही कामुकता, वही महाश्वेता पर अनुराग, वही उससे मिलने की उत्सुकता, वही सारी बातें हो गयीं। केवल पंख के नहीं होने से उस समय मेरी पूर्वजन्म वाली देहचेष्टा नहीं हुई। पूर्वजन्म के सारे वृत्तान्तों के याद आ जाने से मैं यह नहीं जानकर व्याकुल हो रहा था कि मेरे पिता तथा माता का क्या हुआ, तात तारापीड़ तथा माता विलासवती का क्या समाचार है, मेरे मित्र चन्द्रापीड़, मेरे प्रथम मित्र कपिञ्जल, अथवा महाश्वेता का क्या हुआ? किस-किस को किस तरह याद किया यह भी नहीं ज्ञात हुआ। इन सारी बातों को जानने के लिए मैं उतावला हो उठा, पृथ्वी पर माथा रखकर अपनी अविनीतता के सुनने से उत्पन्न लज्जा के कारण पाताल में पैठता सा हुआ किसी तरह भगवान् जावालि से कहा-भगवन्, आपकी अनुकम्पा से मुझे ज्ञान हो गया है, मैं अपने पूर्ववान्धवों को याद कर रहा हूँ, जब तक मैं अज्ञान रहा तब तक जैसे ही उनकी याद नहीं थी उसी तरह विरहपीड़ा भी नहीं सताती रही। अब उनकी याद से मेरा हृदय फटा जा रहा है। अन्य सम्वन्धियों को याद करकेमुझे उतना कष्ट नहीं हो रहा है जितना कि चन्द्रापीड को याद करके हो रहा है जिसका हृदय मेरी मृत्यु की बात सुनते ही फट गया। कृपया आप उसके जन्म की

खलु मया सर्वे एव पूर्वबान्धवाः। मूढतायां च यथैव मे तेषां स्मरणं नासीत्तथैव पीडापि। अधुना पुनस्तान्स्मृत्वा स्फुटतीव मे हृदयम्। न च तान्स्मृत्वापि तथा यथा चन्द्रापीडं यस्य मद्धुपरतिश्रवणमात्रकात्स्फुटितं हृदयम्, तत्तस्यापि जन्माख्यानेन प्रसादं करोतु भगवान्। येनायं तिर्यग्योनिवासोपि मे तेन सहैकत्र वसतो न पीडाकरः संजायते।' इत्येवं च विज्ञापितो मया सासूयमिव मामवलोक्य भगवाञ्जाबालिः सस्नेहकोपगर्भं प्रत्यवादीत्। 'दुरात्मन्, ययैतावतीं दशामुपनीतोसि कथं तामेव तरलहृदयतामनुबध्नासि। अद्यापि पक्षावपि नोद्भिद्येते। तत्संचरणक्षमस्तु तावद्भव। ततो मां प्रक्ष्यसि।' इत्येवमुक्ते भगवता समुपजातकुतूहलो हारीतः पप्रच्छ। 'तात, महानयं विस्मयो मे। कथय कथमस्य मुनिजातौ वर्तमानस्य तादृशी कामपरता जाता। यया जीवितमपि न संधारयितुं पारितम्। कथं च दिव्यलोकसंभूतस्य तथा स्वल्पमायुः संवृत्तम्।' एवं च पृष्टः सूनुना भगवाञ्जाबालिरमलाभिः पापमलमिव प्रक्षालयन्दशनदीधितिसलिलधाराभिः प्रत्यवादीत्। 'स्पष्टमेवात्र कारणं वत्स। अयं हि कामरागमोहमयादल्पसारात्स्त्रीवीर्यादेव केवलादुत्पन्नः। श्रुतौ च

न स्मृतास्तावत्तेषां वियोगस्य व्यथापि मम नासीत्, अधुना भवत्प्रसादाज्जाते स्मरणे तान्स्मृत्वा मम मनो विदीर्यत इवेत्यर्थः) न च तान् स्मृत्वाऽपि तथा पूर्वबन्धूनां तेषां स्मरणं न तथा मां क्लेशयति यथा मद्धुपरतिं मम मृत्युं स्मृत्वा स्फुटितस्य चन्द्रापीडस्य स्मरणं सम्प्रति जत्यमानं मां क्लेशयति इत्यर्थः। तस्य-चन्द्रापीडस्य। जन्माख्यानेन-जन्मवृत्तान्तकथनद्वारा। प्रसादम्-अनुग्रहम्। येन-चन्द्रापीडजन्मवृत्तपरिज्ञानेन। तिर्यग्योनिनिवासः-शुकजातौ जन्मग्रहणम्। तेन-चन्द्रापीडेन। एकत्र वसतः-सहवासिनः। पीडाकरः-खेदावहः। सासूयम्-सकोपम्। सस्नेहकोपगर्भम्-कोपेन प्रेम्णा च युक्तम्। प्रत्यवादीत्-उत्तरयामास। यया तरलहृदयतया। एतावतीम्-इयत्पर्यन्ताम्। उपनीतः-प्रापितः, तरलहृदयताम्-चञ्चलचित्तताम्। अनुबध्नासि-अनुधावसि। अद्यापि-सम्प्रत्यपि। पक्षौ-पत्त्री। नोद्भिद्येते-न निर्गच्छतः। सञ्चरणक्षमः-उड्डयनसमर्थः। 'मां प्रक्ष्यसि' इत्यस्य चन्द्रापीडजन्मवृत्तान्तमिति शेषः। भगवता जावालिना। समुपजातकुतूहलः-उत्पन्नकौतुकः। हारीतः-तन्नामा जावालेः पुत्रः। विस्मयः-आश्चर्यम्। मुनिजातौ-मुनिवंशे (श्वेतकेतोः सुतः पुण्डरीकः-स एव वैशम्पायनः-स एव चायं शुकः इति कथाऽनुबन्धो बोध्यः) कामपरता-कामुकता। सन्धारयितुम्-रक्षितुम्। पारितम्-शक्तम्। दिव्यलोकसम्भूतस्य-स्वर्गे गृहीतजन्मनः। एवम्-पूर्वोक्तरूपेण। सूनुना-पुत्रेण। अमलाभिः-स्वच्छाभिः। दशनदीधितिः दन्तप्रभा सैव सलिलधारा जलधारा तया पापमूलम् दुष्कृतरूपं मालिन्यम् प्रक्षालयन्-स्वच्छीकुर्वन्। कामरागमोहमयात्-कामनाप्रेमाज्ञानप्रचुरात्। स्त्रीवीर्यात्-रजसः। यादृशात्-यद्गुणकात् जायते तादृशः तद्गुणक एव भवति, अतः कामरागमोहमयात् केवलात् स्त्रीवीर्यादुत्पन्नस्यास्य कामुकत्वं स्पष्टमेवोपपद्यते कारणगुणानां कार्यगुणारम्भकत्वध्रौव्यादिति भावः।

कथा भी कहें, उसकी कथा जान लेने पर उसके साथ इस पक्षियोनि में रहकर भी वास करना मेरे लिए कष्टकर नहीं होगा। इस प्रकार मेरे द्वारा विज्ञापित होने पर सक्रोध मेरी ओर देखते हुए भगवान् जाबालि ने स्नेह तथा कोप के साथ कहा—दुष्ट, जिस चञ्चलता के कारण इस स्थिति तक पहुँच गया है फिर क्यों उसी चञ्चलता को अपना रहा है। अभी तक तो तुम्हारे पंख भी नहीं उगे हैं, पहले चलने-फिरने लायक तो हो ले, फिर मुझसे पूछना। इस प्रकार जाबालि के कहने पर उत्सुकतावश हारीत ने पूछा, तात, मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है, कृपया यह बताइये कि मुनिजाति में रहने पर भी इसमें उस तरह की कामुकता कहाँ से आ गई जिसके कारण यह जीवन धारण भी नहीं कर सका। दिव्य लोक में उत्पन्न होकर भी इसकी इतनी छोटी आयु क्यों हुई? इस प्रकार पुत्र के द्वारा पूछे जाने पर भगवान् जाबालि ने उज्ज्वल दन्तप्रभाधारा से पापमलका प्रक्षालन सा करते हुये कहा—इसका कारण स्पष्ट है। यह कामरागमोहमय अल्पसार केवल स्त्री-वीर्य से ही उत्पन्न हुआ, शास्त्र में लिखा है कि जो जैसे वीर्य से उत्पन्न होता है वह वैसा होता है। लोक में भी प्रायः कारण-गुण सादृश्य गुण वाले ही कार्य

पश्यत एतद्यादृशाद्वै जायते तादृगेव भवतीति। लोकेऽपि च प्रायः कारणगुणभाञ्ज्येव कार्याणि दृश्यन्ते। तथा चैतदायुर्वेदेऽपि श्रूयते। यः किलाल्पसारात्स्त्रीवीर्यादेव केवलाज्जन्तुर्भवति स खल्वभावात्सारभूतस्य स्थैर्यहेतोः पुरुषवीर्यस्य यथासारं गर्भे वा विलयमापद्यते मृतो वा जायते जातो वा न दीर्घकालं जीवतीति। तदयमुत्पन्न एवेदृशो येनास्य तादृशी कामपरता जाता। मरणं च मदनवेगसंज्वरासहिष्णोस्तथोपनतम्। अधुनापि तादृश एवाल्पायुरयं शापावसानोत्तरकालं यदस्याक्षयेणायुषा योगो भविष्यति।'

इत्येतच्छ्रुत्वा पुनरवनितलनिवेशितशिराः प्रणम्य भगवन्तं व्यज्ञापयम्। 'भगवन्नहमपुण्यवानस्यां तिर्यग्योनौ वर्तमानः स्वयं सर्वस्यैवाक्षमः। वागपि मे भगवतः प्रसादादन्यस्मिञ्जन्मनि यदि भवेत्तत्केन प्रकारेणाक्षयं तन्मे महाकर्मसाध्यमायुर्भविष्यतीत्येतदाज्ञापयतु भगवान्।' इत्येवं विज्ञापितस्तु मया दिक्षु विक्षिप्य चक्षुर्भगवानाज्ञापितवान्। 'एतदपि यथा तथा ज्ञास्यस्येव। तावदियं कथास्ताम्। रसाक्षेपादचेतितैश्चास्माभिः प्रभातप्राया रजनी। प्रभाविरहादनुन्मृष्टरजतदर्पणाभमिदमपरान्तावलम्बि वर्तते रजनिकरबिम्बम्। यथायथोद्गमविस्तारिणी जरत्तामरसपत्रारुणा पाण्डुच्छविरुल्लसति सीमन्त-

---

कारणगुणभाञ्जि–कारणगुणयुक्तानि। अल्पसारात्–स्वल्पबलात् स्वल्पद्रव्यांशाद्वा। स्थैर्यहेतोः–स्थिरतायां चिरस्थायितायां कारणभूतस्य। यथासारम्–सारभागमात्रानुसारेण। अयं (वैशम्पायनः सम्प्रति) पुण्डरीकः। मदनवेगसंज्वरासहिष्णोः–कामसन्तापं सोढुमशक्तस्य। तादृशः पूर्ववत्। शापावसानोत्तरकालम्–शापे समाप्ते सति। अक्षयेण–अनन्तेन।

अपुण्यवान्–पापात्मा। तिर्यग्योनौ–पक्षियोनौ शुकजातौ। सर्वस्यैवाक्षमः–सर्वेषु शुभावहेषु कर्मसु असमर्थः। भगवतः प्रसादात्–तवानुग्रहात्। वाक्सम्भूता–वाक्शक्तिः प्रकटीभूता, आयुःसम्वर्द्धककर्मयोग्यम्–आयुर्वर्धयितुं शक्तस्य जपानुष्ठानादेः कर्मणः सम्पादने शक्तम्। महाकर्मसाध्यम्–केनाप्यनुष्ठानविशेषेण साधयितुं शक्यम्। दिक्षु चक्षुर्विक्षिप्य समन्ताद्दिशो विलोक्य। भगवान्–जाबालिः रसाक्षेपात्–कथारसमोहितत्वात्। अचेतिता–अध्याता। प्रभातप्राया–समाप्तकल्पा। प्रभाविरहात्–कान्तेरवसानात्। अनुन्मृष्टरजतदर्पणाभम्–अस्पष्टरजतमुकुरतुल्यम्। रजनिकरबिम्बम्–चन्द्रमण्डलम्। अपरान्तावलम्बि–पश्चिमदिशि गतम्। यथायथोद्गमविस्तारिणी–उदयक्रमेण विस्तरणशीला। जरत्तामरसपत्रारुणा–जीर्णकमलपत्ररक्ताभा। पाण्डुच्छविः–पीताभा। पूर्वस्याः ककुभः–प्राचीदिशायाः। केशसङ्घात-

---

हुआ करते हैं। यह बात आयुर्वेद में भी सुनी जाती है। जो प्राणी केवल अल्पसार स्त्री-वीर्य मात्र से पैदा होते हैं पुरुषवीर्यकृत सारभाग की कमी के कारण वह या तो गर्भ में ही नष्ट हो जाते हैं, अथवा मरे ही हुए पैदा होते हैं, अथवा जन्म लेकर भी चिरजीवी नहीं हुआ करते हैं। यह भी वैसा ही पैदा हुआ था इसलिये इसमें उस तरह की कामुकता हुई। कामकृत सन्ताप को नहीं सह सकने के कारण ही इसका मरण हुआ। अभी भी यह उसी तरह अल्पायु है, शाप के समाप्त हो जाने पर इसे अक्षय आयु से सम्बन्ध होगा।

इन बातों को सुनने के बाद मैंने पुनः पृथ्वी पर माथा टेककर भगवान् जाबालि से कहा—मैं पापी इस पशुयोनि में रहकर स्वयं सारे कार्यों में अक्षम हूँ। मेरे मुंह में वाणी भी आपकी ही कृपा से अभी-अभी आयी है। आत्मा में ज्ञान भी आपकी ही कृपा से हुआ है। आयु बढ़ाने वाली क्रिया कर सकने लायक शरीर यदि आपकी कृपा से जन्मान्तर में हुआ तो कौन सी क्रिया करने से मुझे बड़ी आयु मिल सकेगी, यह भी आप कृपया बतावें। इस प्रकार पूछे जाने पर भगवान् जाबालि ने चारो ओर दृष्टि डालकर कहा—यह भी जैसे तैसे जान ही लोगे। तब तक यह बात रहे। कथारस की आकर्षकता से बिना जाने ही रात समाप्त हो गई। कान्ति के क्षीण हो जाने से अपरिमार्जित रजतदर्पण के समान दीखने वाला यह चन्द्रबिम्ब पश्चिम में लटक रहा है। धीरे-धीरे फैलने वाली

---

१. शापावसानानन्तरकालम्। २. रजतकुम्भाभ।

यन्ती तमःकेशसंघातमिव पूर्वस्याः ककुभोरुणाग्रकरालोकततिः। इमाः सशेषतिमिरतया-म्बरैरकाण्डकलुपं भास्वत्प्रभालोकमारब्धाः क्रमेण यथासूक्ष्मं तारकाः प्रवेष्टुम्। एष पम्पासरःशायिनां प्रबोधाशंसी समुच्चरति कोलाहलः श्रोत्रहारी विहंगमानाम्। एते च निशीथिनीपरिमिलनशीतलाश्चलितवनकुसुमपरिमलग्राहिणो वातुं प्रवृत्ताः प्रभातपिशुना वायवः, प्रत्यासन्नाग्निविहारवेला।' इत्यभिदधान एव गोष्ठीं भङ्क्त्वोदतिष्ठत्।

अथोत्थिते भगवति जाबालौ वीतरागापि निष्कौतुकापि मोक्षमार्गावस्थानापि समस्तैव सा तपस्विपरिषत्कथारसाद्विस्मृतगुरूचितप्रतिपत्तिः शृण्वतीवोत्कण्टकितकाया विस्मयोत्फुल्लमुखी युगपदागलितशोकानन्दजन्मनयनसलिला हाकष्टशब्दानुबन्धिनी स्तम्भितेव चिरमिव स्थित्वा यथास्थानं जगाम। हारीतस्तु मां सन्निहितेऽपि मुनिकुमारकजने निजकरेणैवोत्क्षिप्यात्मपर्णशालां नीत्वा शनैः स्वशयनैकदेशे स्थापयित्वा प्राभातिकक्रिया-

---

मिव-चिकुरप्रकरसमानम्। तमः-अन्धकारम्। सीमन्तयन्ती-भागद्वये विभजन्ती। अरुणाग्रकरालोकततिः-अरुणाग्रः सूर्यस्तस्य कराणां किरणानाम् आलोकततिः प्रकाशराशिः। इमाः तारकाः-एतानि नक्षत्राणि यथासूक्ष्मम्-सूक्ष्मदृश्यताक्रमेण। सशेषतिमिरतया-अन्धकारस्य ईषदवशिष्टतया। अम्बरैः-आकाशैः। अकाण्डकलुषम्-अनवसरमलिनं यथा स्यात्तथा। भास्वत्प्रभालोकम्-सूर्यकिरणप्रकाशम्। प्रवेष्टुम्-प्रवेशं कर्तुम्। आरब्धाः-प्रारभन्त। एषः-प्रत्यक्षश्राव्यः। पम्पासरःशायिनाम्-पम्पासरोवरे शयनशीलानाम्। विहङ्गमानाम्-पक्षिणाम्। प्रबोधाशंसी-जागरणसूचकः। श्रोत्रहारी-कर्णप्रियः। कोलाहलः-कलकलः। समुच्चरति-प्रकटीभवति। एते प्रभातपिशुनाः-इमे प्रातःकालसूचकाः। निशीथिनीपरिमिलनशीतलाः-रात्रिमध्यसम्पर्कशीतस्पर्शाः। चलितवनकुसुमपरिमलग्राहिणः-विकासिवनपुष्पसुगन्धयुक्ताः। वायवः वातुं प्रवृत्ताः-प्रभातवाताः सञ्चरितुं कृतप्रारम्भाः। अग्निविहारवेला-अग्निहोत्रकालः। प्रत्यासन्ना-समीपागता। भुक्त्वा गोष्ठीम्-सभां विसृज्य। उदतिष्ठत्-उत्थितः।

वीतरागा-गतमोहा। निष्कौतुका-उत्कण्ठासामान्यशून्या। मोक्षमार्गावस्थाना-मुक्तिमार्गस्थिता। तपस्विपरिषत्-मुनिमण्डली। विस्मृतगुरूचितप्रतिपत्तिः-गुरूचिताम् गुरौ उत्थिते सति उत्थानरूपामुचिताम् कर्त्तव्याम् प्रतिपत्तिम् आचारं विस्मरन्ती (जाबालौ उत्थिते समस्ताऽपि मण्डली कथारसाक्षिप्तहृदया यथास्थिता एव तस्थौ इति नाऽत्र कर्त्तव्यं विस्मृतवती'-अतः सा विस्मृतगुरूचितप्रतिपत्तिरुक्ता) उत्कण्टकितकाया-रोमाञ्चितदेहा। विस्मयोत्फुल्लमुखी-आश्चर्यितवदना। युगपत्-एककालम्। अवगलितशोकानन्दजन्मनयनसलिला-शोकजन्म आनन्दजन्म चाश्रु एककालमेव विसृजन्ती। हाकष्टशब्दानुबन्धिनी-हाकष्टमितिशब्दमुच्चारयन्ती। स्तम्भिता-निवृत्तसर्वव्यापारा। सन्निहिते-समीपस्थिते। मुनिकुमारकजने-ऋषिबालकगणे। उत्क्षिप्य-उत्थाप्य। आत्मपर्णशालाम्-स्वीयमुटजम्। स्वशयनैक-

---

सूर्य की शुष्ककमलपत्रवर्णा तथा तमोराशि रूप केश को दो भागों में बांटने वाली कान्ति पूर्व दिशा में बढ़ रही है। आकाश में थोड़ा अन्धकार शेष है, उस अन्धकार से मलिन सूर्यप्रभालोक में क्रमशः सूक्ष्म होते जाने वाली ग्रहमण्डली प्रवेश करती जा रही है। पम्पा सरोवर में सोये हुए पक्षियों का यह जागरणसूचक श्रवण मनोहर कोलाहल प्रारम्भ हो गया है। रात्रि के सम्पर्क से शीतल चलते हुए वनकुसुमों के परिमल से सुरभित प्रभातसूचक हवा बहने लगी हैं, अग्निहोत्र का समय समीप आ गया है। इस तरह कहते हुए जाबालि ने सभाभङ्ग करके उठ दिया।

भगवान् जाबालि के उठ जाने पर वीतराग होकर भी सकौतुक, मोक्षमार्ग पर अवस्थित होकर भी सारी वह तपस्विमण्डली कथारस की आकर्षकता से यथोचित गुरुसत्कार भुलाकर कथा सुनती हुई रोमाञ्चित देह लिये आश्चर्यरस से विकसितमुखी एक ही साथ शोक तथा आनन्द के आंसू बरसाती हुई 'हाय कष्ट' कहती हुई कुछ देर तक ठिठकी सी खड़ी रहकर अपनी-अपनी जगह चली गई। मुनिकुमारों के रहते हुए भी हारीत ने मुझे स्वयं

---

१. अम्बराकाण्ड। २. उत्कण्ठिततया।

करणाय निर्ययौ। निर्गते च तस्मिंस्तेन सर्वकार्याक्षमेण तिर्यग्जातिपतनेन पीडितान्तरात्मा चिन्तां प्राविशम्। अत्र तावदनेकभवसुकृतशतसहस्राधिगम्यं मानुष्यमेव दुर्लभम्। तत्राप्यपरं सकलजातिविशिष्टं ब्राह्मण्यम्। ततोपि विशिष्टतरमासन्नामृतपदं मुनित्वम्। तस्यापि विशेषान्तरं किमपि दिव्यलोकनिवासित्वम्। तद्येनैतावतः स्थानात्स्वदोषैरात्मा पातितस्तेन कथमधुना सर्वक्रियाविहीनेनास्यास्तिर्यग्जातेः समुद्धृतः स्यात्। कथं वा पूर्वजन्माहितस्नेहैः सह समागमसुखमनुभूतम्। अननुभवतश्च तन्निष्प्रयोजनेनामुना जीवितेन किं मे परिरक्षितेन। पततु यत्र तत्र क्वापि यातनाशरीरम्। सुखं तु नानुभवितव्यममुना दुःखैकभाजनेन। तत्परित्यजाम्येनम्। पूर्यतामस्मद्व्यसनदानैकचिन्तादुःस्थितस्य विधेर्मनोरथः, इति। एवं च जीवितपरित्यागचिन्तानिमीलितं मां समुच्छ्वासयन्निव विकासहासिना मुखेन सहसा प्रविश्य हारीतोऽभ्यधात्। 'भ्रातर्वैशम्पायन दिष्ट्या वर्धसे। पितुस्ते भगवतः श्वेतकेतोः पादमूलात्कपिञ्जलस्त्वामेवान्विष्यन्नायातः' इति।

देशे-स्वशय्याया एकतमभागे। प्राभातिकक्रियाकरणाय-प्रातःकृत्यमनुष्ठातुम्। सर्वकार्याक्षमेण-किमपि कर्तुमशक्तेन। तिर्यग्जातिपतनेन-पक्षिजातिजन्मग्रहणेन। पीडितान्तरात्मा-व्यथितहृदयः। चिन्तां कर्तुमारब्धवान्। अनेकभवसुकृतशतसहस्राधिगम्यम्-नानाजन्मपुण्यपरम्पराप्राप्यम्। मानुष्यम्-मनुष्यजन्म। दुर्लभम्-दुरापम्। सकलजातिविशिष्टम्-सर्वासु जातिषु श्रेष्ठम्। ततोपि-ब्राह्मणजातितोऽपि। विशिष्टतरम्-अत्युत्तमम्। आसन्नामृतपदम्-मोक्षसमीपस्थम्। तस्यापि-मुनित्वस्यापि। विशेषान्तरम्-कोऽपि विशिष्टो विभागः। दिव्यलोकनिवासित्वम्-स्वर्गे वासः। येन-मया। एतावतः स्थानात्-एतादृशादुच्चतमास्पदात्। स्वदोषैः-आत्मनः कामप्रवृत्त्यादिदुर्गुणैः। आत्मा पातितः-नीचतां गमितः (पक्षियोनिः प्राप्ता) तेन-दुराचारेण मया। सर्वक्रियाविहीनेन-सकलसामर्थ्यशून्येन। अस्यास्तिर्यग्जातेः-वर्तमानपक्षियोनितः। समुद्धृतः-उच्चैर्नीतः। पूर्वजन्माहितस्नेहैः-पूर्वस्मिन् जन्मनि वर्द्धितप्रीतिभिः। समागमसुखम्-मिलनानन्दः अनुभूतं स्यादिति योजना। तत्-प्राग्जन्मप्रियजनमिलनसुखम्। अननुभवतः-अप्राप्नुवतः। निष्प्रयोजनेन-फलविशेषशून्येन। परिरक्षितेन-पोषितेन (यदि पूर्वजन्मप्रीतिपात्रैः सह मिलनजन्यं सुखं नावाप्यते तदेदं मम पक्षियोनौ जीवितं नितान्तव्यर्थमिति भावः) यातनाशरीरम्-दुःखभोगाय सृष्टमिदं वपुः। अमुना अनेन। दुःखैकभाजनेन-केवलस्य दुःखस्यैव पात्रेण। अनुभवितव्यम्-लभ्यम्। एनम्-पक्षिदेहम्। अस्मद्व्यसनदानैकचिन्तया केवलं मम कष्टमुत्पादयितुं या चिन्ता तया दुःस्थितस्य दुःखिनः विधेर्मनोरथः अभिलाषः पूर्यताम् पूर्णो भवतु। इति एवम्-जीवितपरित्यागचिन्तानिमीलितम्-प्राणत्यागस्य चिन्तया मुद्रितनयनम्, समुच्छ्वासयन्-चैतन्यं प्रापयन्। विकासहासिना-मुक्तहास्येन। प्रविश्य-उटजाभ्यन्तरमागत्य। दिष्ट्या वर्धसे-महत्ते सौभाग्यम्। पादमूलात्-समीपतः, त्वामन्विष्यन्-तवान्वेषणाय।

उठकर अपनी पर्णशाला में पहुँचाया और वहां अपने बिछावन के एक भाग में रखकर वह प्रातःकृत्य करने चला गया। उसके चले जाने पर सर्वकार्यासमर्थ इस पक्षियोनि में जन्म लेने के कारण व्यथित हृदय होकर मैं चिन्ता करने लगा। पहले तो अनेक जन्मार्जित पुण्यों से प्राप्य मनुष्य-जन्म ही दुर्लभ होता है, उसमें भी सकल जाति से उच्च ब्राह्मणत्व दुर्लभ है, उससे भी मोक्ष के समीप पहुँचा हुआ मुनित्व बड़ा है, उसमें भी दिव्यलोकवासिता की कुछ अपनी विशेषता है जिसने इतने ऊँचे स्थान से अपने दोषों के कारण निज को पतित कर लिया है वह सर्वकार्याक्षम अपनी आत्मा को इस पशुयोनि से कैसे उद्धृत कर सकेगा? पूर्वजन्म के प्रेमियों के साथ मिलन का आनन्द कैसे प्राप्त होगा? यदि वह सुख नहीं मिल सकता तो इस जीवन के रहने से ही क्या लाभ है? यह कष्टभोगी शरीर चाहे जहां जाय, इस दुःखभाजन शरीर से सुख तो नहीं ही मिल सकता है। इसलिए मैं इस शरीर को छोड़ता हूँ। हमें दुःख देने की चिन्ता से व्यथित ब्रह्मा के मनोरथ पूरे हों। इस प्रकार प्राणत्याग की चिन्ता में उदासीन होकर बैठे हुए मुझको विकसित हास्य से आश्वासित करते हुए हारीत ने पर्णशाला में प्रवेश करके कहा—भाई वैशम्पायन, तुम्हारे पिता श्वेतकेतु के पास से तुम्हें ढूँढता हुआ कपिञ्जल आया है।

अहं तु तच्छ्रुत्वा तत्क्षणेनोत्पन्नपक्ष इवोत्पत्य तत्समीपमेव प्राप्तुमभिवाञ्छन्नुद्ग्रीवावलोकी कासाविति तमप्राक्षम् । स त्वकथयत् । एष तातपादमूले वर्तत इति । एवं वादिनं तु तमहं पुनरवदम् । 'यद्येवं ततः प्रापयतु मां तत्रैव भगवान् । उत्ताम्यति मे हृदयं तद्दर्शनाय' इति । एवं वदन्नेवाग्रतो गगनागमनवेगादयथास्थितजटाकलापम्, अनिलपथसंचरणचलितैकाञ्चलोत्तरीयम्, तरुत्वचा दृढाबद्धपरिकरम्, अर्धत्रुटितयज्ञोपवीतसनाथास्थिशेषोरस्कम्, निःशेषसुरपथावतरणश्रमोच्छ्वसितशरीरम्, समीरणापहृतमपि मरुत्पथोत्पन्न[1]खेदसंभृतमुदकप्रवेशान्निस्यन्दमानस्वेदमाननेन मदवलोकनदुःखोद्गतं च बाष्पजललवविसरमीक्षणाभ्यां युगपदुत्सृजन्तम्, मुमुक्षुमपि मत्स्नेहेनामुक्तम्, वीतरागमपि मत्प्रियहितरतम्, निःसङ्गमपि मत्समागमोत्सुकम्, निस्पृहमपि मदर्थसंपादनपर्याकुलम्, निर्मम-

---

तत्-हारीतवचनम् । तत्क्षणेन-तत्कालम् । उत्पन्नपक्षः-सञ्जातपक्षोद्गमः । उत्पत्य-उड्डीय । तत्समीपम्-कपिञ्जलस्यान्तिकम् । अभिवाञ्छन्-ईहमानः, उद्ग्रीवावलोकी-कन्धरामुन्नमय्य चतुर्दिक्षु निक्षिप्तचक्षुः । कासौ-कुत्र वर्त्तते कपिञ्जलः । तम्-हारीतम् । तातपादमूले-मम पितुः पार्श्वे । एवं वादिनम्-इत्थं कथयन्तम् । यद्येवम्-यदि सत्यमेव कपिञ्जलः समायातः । ततः-तदा । भगवान्-भवान् । माम् तत्रैव प्रापयतु-तत्रैव नयतु । मे मम हृदयं तद्दर्शनाय कपिञ्जलस्यावलोकनाय । उत्ताम्यति-अधीरभावं भजते । अग्रतः-मुखभागे । गमनागमनवेगात्-गतागतरयवशात् । अयथावस्थितजटाकलापम्-अस्तव्यस्तकेशभरम् । अनिलपथे वायुमार्गे सञ्चरणेन चलितैकाञ्चलम् सञ्चरभ्रान्तम् उत्तरीयमूर्ध्ववस्त्रं यस्य तादृशम् । तरुत्वचा-वल्कलेन दृढाबद्धपरिकरम्-सम्यग्बद्धकक्षम् । अर्धत्रुटितेन खण्डितैकदेशेन यज्ञोपवीतेन ब्रह्मसूत्रेण सनाथम् युक्तम् अस्थिशेषम् अस्थिमात्रावशेषम् दुर्बलम् उरः वक्षो यस्य तादृशम् । निःशेषस्य समस्तस्य सुरपथस्य आकाशस्य अवतरणेन लङ्घनेन यः श्रमः तेन उच्छ्वसितं शरीरं यस्य तादृशम् । समीरणाहृतम्-वायुना प्रेर्य आनीतम् (अपि) मरुत्पथोत्पन्नखेदसम्भृतम्-वायुमार्गे उत्पतनजन्येन श्रमेण संयुतम् । उदकप्रवेशात्-जलावगाहनात् । निस्यन्दमानस्वेदम्-निर्गतं पानीयम् आननेन मुखेन, मदवलोकनदुःखोद्गतम्-मां पशुपक्षियोनौ दृष्ट्वोद्भूतम् वाष्पजललवविसरम्-अश्रुबिन्दुसमूहम् । ईक्षणाभ्याम्-नेत्राभ्याम् । युगपत्-सहभावेन । उत्सृजन्तम्-मुञ्चन्तम् । मुमुक्षुम्-मोक्षेच्छया त्यक्तसकलाभिलाषम् । मत्स्नेहेनामुक्तम्-मम प्रीत्या बद्धम् । वीतरागम्-निःसङ्गम् । मत्समागमोत्सुकम्-मम सङ्गमाय उत्कण्ठमानम् । निःस्पृहम्-सर्वाभिलाषशून्यम् । मदर्थसम्पादनपर्याकुलम्-मदीयं कार्यमनुष्ठातुं व्यग्रम् । निर्ममम्-ममताशून्यम् । उपारूढस्नेहम्-मयि समुपचितप्रीतिम् । निरहङ्कारम्-देहाभिमानशून्यतया अहमितिबुद्ध्या रहितम् । अहं कपिञ्जल एवायं वैशम्पायनः इति द्वयोरभेदम् मन्यमानम् । समुज्झितक्लेशम्-देहाभिमानशून्यतया क्लेश-

---

यह सुनते ही तत्काल मानो मुझे पंख हो आये हों इस प्रकार उसके पास जाकर गर्दन उठाकर उसकी ओर देखते हुए उससे पूछा कि वह कहां है ? उसने कहा—वहीं तो पिताजी के पास है । इस प्रकार कहने पर मैंने उससे पुनः कहा—यदि ऐसी बात है तो मुझे वहीं पहुँचा दो, मेरा हृदय उसे देखने को उतावला हो रहा है । इस प्रकार कहते हुए ही मैंने कपिञ्जल को अपने आगे में देखा । आकाश मार्ग से आने में अवलम्बित वेग के कारण उसकी जटायें बिखर गई थीं, वायुमार्ग में सञ्चरण करने से उसके उत्तरीय वस्त्र का अञ्चल डोल रहा था, वह वृक्ष की त्वचा से परिकर बांधे हुए था, उसकी अस्थिपञ्जरशेष छाती पर अर्धत्रुटित यज्ञोपवीत लटक रहा था, समस्त आकाश को पार करने की थकावट से उसका शरीर उच्छ्वसित हो रहा था, वायुमार्ग से सञ्चरण करने से उत्पन्न स्वेद हवा से सूख गया था, तथापि जलप्रवेश का पानी मुंह पर से तथा मेरे देखने से बहने वाला अश्रुप्रवाह आंखों से एक साथ चू रहा था, वह मुमुक्षु होकर भी मेरे स्नेह में पगा हुआ, वीतराग होकर भी मेरे प्रिय में तत्पर, निःसङ्ग होकर भी मुझसे मिलने को उत्कण्ठित, निःस्पृह होकर भी मेरे कार्य के लिए व्याकुल, निर्मम

---

१. मरुत्पथोत्पतन ।

मय्युपारूढस्नेहम् , निरहंकारमप्यहमेवायमिति मां मन्यमानम् , समुज्झितक्लेशमपि मदर्थे क्लिश्यन्तम , समलोष्टाश्मकाञ्चनतासुखितमपि मद्दुःखदुःखितम् , कृतज्ञमकृतज्ञः स्नेहलप्रकृतिं रूक्षचेताः सुकृतिनमपुण्यवाननुगतं वामस्वभावो भावार्द्रहृदयमेकान्तनिष्ठुरोमित्रं वैरी वचनकरमनाश्रवो महात्मानं दुरात्मा कपिञ्जलमहमद्राक्षम् । दृष्ट्वा च निर्भरगलितनयनपयास्तादृशोपि कृताभ्युद्गमनप्रयत्नः फूत्कृत्य तमवदम् । 'सखे कपिञ्जल, एवं जन्मद्वयान्तरितदर्शनमपि त्वां दृष्ट्वा किं सरभसमुत्थाय दूरत एव प्रसारितभुजद्वयो गाढालिङ्गनेन सुखमनुभविष्यामि । किं करेणावलम्ब्यासनपरिग्रहं कारयिष्यामि । किं सुखासीनस्य गात्रसंवाहनं कुर्वञ्छ्रममपनेष्यामि' इति । एवमात्मानमनुशोचन्तमेव मां कपिञ्जलः करद्वयेनोत्क्षिप्य मद्विरहदुःखदुर्बले वक्षसि निवेश्य चिरमिवान्तःप्रवेशयन्निवालिङ्गनसुखं किल तथा मेनुभूय भूयसा मन्युवेगेनोत्तमाङ्गे कृत्वा मच्चरणावितरवदरोदीत् ।

मुक्तम् । मदर्थे-मत्कृते । क्लिश्यन्तम्-क्लेशमनुभवन्तम् । समलोष्टाश्मकाञ्चनतासुखितम्-लोष्टम्-अश्मप्रस्तरम् काञ्चनं सुवर्णञ्च समतया पश्यन्तम् । (यो ज्ञानी स सर्वत्र समबुद्धिरिति समलोष्टाश्मकाञ्चनत्वं तस्योक्तम्) कृतज्ञम् कृतं परेण जानाति तादृशम्-उपकारमविस्मरन्तमित्यर्थः । अकृतज्ञः-अनुपकारज्ञः । स्नेहलप्रकृतिम्-स्निग्धस्वभावम् । रूक्षचेताः-अस्निग्धहृदयः । सुकृतिनम्-पुण्यात्मानम् । अपुण्यवान्-पापी । अनुगतम्-अनुवर्त्तनपरायणम् । वामस्वभावः-प्रकृत्या कुटिलः । भावार्द्रहृदयम्-प्रीतिस्निग्धचित्तम् । एकान्तनिष्ठुरः-नितान्तक्रूरः । वचनकरम्-अनुरोधरक्षापरम् । अनाश्रवः-अनाज्ञाकारी । ('अहं कपिञ्जलमद्राक्षम्' इति समापिते वाक्ये सर्वमेव प्रथमान्तं वैशम्पायनं सर्वमेव च द्वितीयान्तं कपिञ्जलं विशिनष्टि) निर्भरगलितनयनपयाः-अत्यर्थमश्रु विसृजन् । तादृशः-पक्षिशिशुरनुत्पन्नगमनशक्तिश्च । कृताभ्युद्गमप्रयत्नः-आगच्छतस्तस्य सत्काराय अभ्युत्थाने सप्रयासः । फूत्कृत्य-उच्चैर्निश्वस्य । जन्मद्वयान्तरितदर्शनम्-द्वाभ्यां जन्मभ्यामदृष्टम् । सरभसम्-वेगेन । प्रसारितभुजद्वयः-द्वावपि भुजौ-प्रसारयन् । करेणावलम्ब्य-हस्ते गृहीत्वा । आसनपरिग्रहं कारयिष्यामि-आसने उपवेशयिष्यामि । सुखासीनस्य-सुखमुपविष्टस्य । गात्रसंवाहनम्-अङ्गमर्दनम् । श्रममपनेष्यामि-परिश्रान्तिं दूरीकरिष्यामि । आत्मानमनुशोचन्तम्-स्वां स्थितिं प्रति चिन्तयन्तम् । उत्क्षिप्य-उत्थाप्य । मद्विरहदुर्बले मदीयेन वियोगेन दुर्बलतां गते । वक्षसि निवेश्य-उरोदेशे स्थापयित्वा । अन्तःप्रवेशयन्-हृदयाभ्यन्तरभागेऽवस्थापयन् । भूयसा-महता । मन्युवेगेन-दुःखप्राचुर्येण । मच्चरणौ उत्तमाङ्गे शिरसि कृत्वा स्थापयित्वा इतरवत् साधारणजनवत् अरोदीत् रोदितुं प्रवृत्तः ।

होकर भी मेरा स्नेही, निरहङ्कार होकर भी 'यह मैं ही हूँ' इस प्रकार से मुझे मानने वाला, अपने क्लेश को भुलाकर भी मेरे लिए क्लेश करने वाला, सोना तथा लोहा को समान समझने वाला होकर भी मेरे दुःख से दुःखी था । वह कृतज्ञ और मैं अकृतज्ञ, वह स्नेही मैं रूक्ष, वह धर्मात्मा मैं पापी, मैं वामस्वभाव और वह भाव से गीला हृदय रखने वाला, वह मित्र मैं वैरी, वह बात रखने वाला और मैं अनाज्ञाकारी, मैं दुरात्मा और वह महात्मा था । उसे देखकर मेरी आंखों से आंसू बहने लगा, उस दशा में भी मैंने उठने का प्रयत्न किया और फुफकार छोड़कर उससे कहा—मित्र कपिञ्जल, दो जन्मों से नहीं देखे गये तुमको आज देखकर क्या वेग से दौड़कर दूर से ही दोनों हाथ फैलाये गाढ आलिङ्गन से सुख का अनुभव करूंगा, क्या आराम से बैठने पर तेरी देह दबाकर तुम्हारी थकावट दूर करूंगा । इस प्रकार मैं अपने विषय में सोच ही रहा था कि कपिञ्जल ने मुझे दोनों हाथों से उठाकर मेरे विरहदुःख से दुर्बल अपनी छाती से लगा लिया और बड़ी देर तक हृदय में पैठाता सा हुआ मेरे आलिङ्गन का आनन्द उपभोग करके बड़े भारी दुःख के वेग से मेरे चरणों को माथे पर रखकर साधारण आदमी की तरह रोने लगा ।

तथा रुदन्तं तु तं वाङ्मात्रप्रतीकारः पुनरवदम्। 'सखे कपिञ्जल, सकलक्लेशपरिभूतस्य पापात्मनो ममेदं युज्यते यत्त्वया प्रारब्धम्। त्वं पुनर्बालोपि न स्पृष्ट एवामीभिः संसारबन्धात्मकैर्निर्वाणमार्गपरिपन्थिभिर्दोषैः। तत्किमधुना मूढजनगतेन वर्त्मना। समुपविश्य तावत्कथय यथावृत्तं तस्य वार्ताम्। अपि कुशलं तातस्य। स्मरति वा माम्। दुःखितो वा मदीयेन दुःखेन। मद्वृत्तान्तमाकर्ण्य किमुक्तवान्। कुपितो न वा' इति। स त्वेवमुक्तो मया हारीतशिष्योपनीते पल्लवासने समुपविश्याङ्के मां कृत्वा हारीतोपनीतेनाम्भसा प्रक्षाल्य मुखमाख्यातवान्।

'सखे कुशलं तातस्य। अयं चास्मद्वृत्तान्तः प्रथमतरमेव तातेन दिव्येन चक्षुषा दृष्टः। दृष्ट्वा च प्रतिक्रियायै कर्म प्रारब्धम्। समारब्ध एव कर्मणि तुरगभावाद्विमुक्तो गतोस्मि तातस्य पादमूलम्। गतं च मां दूरत एवोद्वाष्पदृष्टिर्विषण्णदीनवदनं भयादनुपसर्पन्तमालोक्याहूयाज्ञापितवान्। 'वत्स कपिञ्जल परित्यज्यतां स्वदोषशङ्का। ममैवायं खलु शठमतेः सर्व एव दोषः। येन जानताप्युत्पत्तिसमय एव वत्सस्य कृते नेदमायुष्करं कर्म

तथा रुदन्तम्–इतरजनवद्रुदन्तम्। वाङ्मात्रप्रतीकारः–केवलेन वचसा बोधयितुं शक्तः। (अनन्योपायः) सकलक्लेशपरिभूतस्य–सर्वविधकष्टभुजः। पापात्मनः–पापिनः। इदं–रुदितम्। संसारबन्धात्मकैः–संसारबन्धनं द्रढयद्भिः कामक्रोधादिभिः। निर्वाणमार्गपरिपन्थिभिः–मोक्षमार्गविरोधिभिः। दोषैः–कामादिदुर्गुणैः। मूढजनगतेन–मोहवत्पुरुषानुयातेन। वर्त्मना–मार्गेण (यस्त्वं बाल्येऽपि कामादिदोषरहिततया निर्ममत्वं संस्थाप्य कदाचिदपि हृदयासक्तिमूलं रोदनं नाकार्षीः स एवेदानीं मूढजनवन्मम दुःखेन रोदिषीत्ययुक्तं तवेदमाचरणमतो मा रोदीरित्यर्थः) यथावृत्तं तस्य वार्ताम्–यज्जातं तत्समाचारम्। हारीतशिष्योपनीते–हारीतशिष्येण–आनीय दत्ते। पल्लवासने–पल्लवमये आस्तरणे। मामङ्के कृत्वा–मां क्रोडे स्थापयित्वा। अम्भसा–जलेन। मुखं प्रक्षाल्य मार्जयित्वा। आख्यातवान्–कथितवान्।

सखे–मित्र वैशम्पायन। कुशलं तातस्य–कुशलवान् वर्त्तते तव पिता। प्रथमतरम्–पूर्वम्। दिव्येन चक्षुषा–ध्यानरूपेण अलौकिकेन नेत्रेण। प्रतिक्रियायै–मुक्त्युपायार्थम्। कर्म–शान्तिस्वस्त्ययनादिकम्। समारब्ध एव–प्रारब्धमात्रे। तुरगभावात्–अश्वरूपात् विमुक्तः–प्राप्तावकाशः। उद्वाष्पदृष्टिः–साश्रुनेत्रः। विषण्णदीनवदनम्–विषादक्लिष्टाननम्। अनुपसर्पन्तम्–तातस्य पार्श्वेऽगच्छन्तम्। आहूय–समीपे आकार्य। स्वदोषशङ्का–स्वीयापराधभयम्। शठमतेः–कृपणबुद्धेः। जानता–सर्वं भाविनमर्थमवगच्छता। उत्पत्तिसमये–जन्मकाले। वत्सस्य कृते–पुण्डरीकार्थम्। इदम्–शान्तिजनकम् दीर्घायुष्यकरम्। निर्व-

---

उस प्रकार रोते हुए कपिञ्जल को वचनमात्र से प्रतीकार करने की क्षमता रखने वाले मैंने कहा—सारे कष्टों से पीड़ित पापी मुझको जो कार्य करना चाहिये वह तुमने प्रारम्भ कर दिया। लड़का होकर भी तुम इन सांसारिक बन्धनों में डालने वाले तथा मोक्षमार्ग के परिपन्थी दोषों से अछूते हो। इस समय यह मूर्खजनानुगत-मार्ग क्यों पकड़ रहे हो ? बैठकर यथाघटित सारी बातें बताओ। पिताजी सकुशल तो हैं, क्या वह मुझे भी याद करते हैं ? क्या वह मेरे दुःख से दुःखी भी हैं ? मेरा समाचार सुनकर उन्होंने क्या कहा ? कुपित भी हुए ? इस प्रकार कहे जाने पर कपिञ्जल हारीत के शिष्य द्वारा लाये गये पल्लवासन पर बैठ गया और हारीत के द्वारा लाये गये जल से मुंह धोकर कहा—

मित्र, पिताजी सकुशल हैं। हमारी सारी यह बातें उन्होंने पहले ही दिव्य दृष्टि से जान ली थीं। सारी बातें जान लेने के बाद उन्होंने प्रतीकार के लिए क्रिया भी प्रारम्भ कर दी थी। क्रिया के प्रारम्भ होते ही मुझे अश्वभाव से छुटकारा मिला और मैं पिताजी के पास पहुँचा। मैं जब वहाँ गया तब मुझे देखकर पिताजी की आँखें भर आयीं, मैं भी भय से उनके समीप नहीं जा रहा था, मेरा चेहरा उदास था, पिताजी ने मुझे डरते देखकर पुकार कर कहा—बेटा कपिञ्जल, अपनी गलती के कारण अब मत डरो। मुझ दुर्बुद्धि के ही यह सारे दोष हैं, जो

निर्वर्तितम् । अधुना सिद्धप्रायमेवेदम् । न दुःखासिका भावनीया । मत्पादमूले तावत्स्थीयताम्' इति । एवमाज्ञापितस्तु तातेन विगतभीर्व्यज्ञापयम् । 'तात यदि प्रसादोऽस्ति ततो यत्रैवासावुत्पन्नस्तत्रैव गमनायाज्ञापयतु मां तातः' इति । एवं विज्ञापितस्तु मया पुनराज्ञापितवान् । 'वत्स शुकजातावसौ पतितः । तद्गत्वापि तमद्य नैव वेत्सि नाप्यसौ त्वां वेत्तीति तत्तिष्ठ तावत्' इति । अद्य च प्रातरेवाहूय मामाज्ञापितवान् । 'वत्स कपिञ्जल महामुनेर्जाबालेराश्रमपदं सुहृत्ते प्राप्तः । जन्मान्तरस्मरणं चास्योपजातम् । तद्गच्छ संप्रति तं द्रष्टुम् । मदीयया चाशिषानुगृह्य वक्तव्योऽसौ । वत्स यावदिदं कर्म परिसमाप्यते तावत्त्वयास्मिन्नेव जाबालेः पादमूले स्थातव्यमिति । अपि च त्वद्दुःखदुःखिताम्बा ते श्रीरपि तस्मिन्नेव कर्मणि परिचारिका वर्तते । तथा तु शिरस्युपाघ्रायैतदेव पुनः पुनः संदिष्टम् ।' एवमुक्त्वा कठोरशिरीषकुसुमशिखासूक्ष्माग्रोद्भेदपक्ष्मलानि गात्राणि पुनः पुनः पाणिना परामृश्यान्तर्हृदयेनादूयत । तथा दूयमानहृदयं च तमवदम् । 'सखे कपिञ्जल किं दूयसे ।

र्तितम्-कृतम् । सिद्धप्रायम्-समाप्तमिव । दुःखासिका-भुक्तपूर्वा दुःस्थितिः । न भावनीया-न चिन्तनीया । विगतभीः-निर्भयः सन् । व्यज्ञापयम्-निवेदितवान् । यदि प्रसादोऽस्ति-यद्यनुग्रहो विद्यते । असौ-मम सुहृत्पुण्डरीकः । आज्ञापयतु-आदिशतु । असौ-पुण्डरीकः । शुकजातौ-पक्षियोनौ । न वेत्सि-अयं पुण्डरीक एवेति न परिचिनोषि । असौ-पुण्डरीकः । वेत्ति-कपिञ्जलोऽयमिति परिचिनोति । तत्तिष्ठ तावत्-यावत्तस्य परिचयशक्तिः समुत्पद्यते तावद्व्यर्थगमनान्निवृत्त एव तिष्ठेत्यर्थः । ते सुहृत्-पुण्डरीकः । जाबालेराश्रमं प्राप्तः-जाबालिनामकस्य मुनेराश्रमे समुपस्थितः । अस्य-पुण्डरीकस्य (सम्प्रति शुकस्य) जन्मान्तरस्मरणम्-पूर्वजन्मस्मृतिः । आशिषा-आशीर्वचसा । अनुगृह्य-सम्भाव्य । इदम्-तस्यैव दीर्घायुष्याय क्रियमाणं शान्त्यादिक्रियारूपम् । पादमूले-समीपे । त्वद्दुःखदुःखिता-त्वदीयेन दुरवस्थाखेदेन खिन्ना । अम्बा-माता । तस्मिन् कर्मणि-पित्रा त्वदीयदीर्घायुष्यार्थमारब्धे शान्त्यादिकर्मणि । परिचारिका कर्मसामग्र्याद्युपस्थापनद्वारा सहायिका । एतदेव-आकर्मसमाप्ति त्वया जाबाल्याश्रमे एव स्थातव्यमिति पूर्वोक्तरूपमेव । सन्दिष्टम्-वाचिकमुक्तम् । अकठोरं सद्यो विकसितं यत् शिरीषकुसुमम् शिरीषनामकं पुष्पम् तस्य शिखा उपरितनभागः तद्वत्-सूक्ष्माणि नितान्तकृशानि अग्रोद्भेदानि अबहुकालोद्भिन्नानि पक्ष्माणि लान्ति गृह्णन्ति यानि तादृशानि सद्योजायमानकोमलकृशरोमभराणीत्यर्थः । मे गात्राणि-अङ्गानि । परामृश्य-स्पृष्ट्वा । अन्तर्हृदयेन-मनोऽभ्यन्तरभागेन । अदूयत-सन्तापं प्राप । दूयमानहृदयम्-हृदयेन सन्तप्यमानम् । दूयसे-परितप्यसे ? मन्दपुण्यस्य-पापिनः । तुरङ्गतामापन्नेन-अश्वयोनौ उत्पन्नेन । पराधीनवृत्तिना-अस्वतन्त्रेण । बहुतराणि-अनेकानि । (तान्येव दुःखान्युदा-

---

जानते हुए भी मैंने बच्चे की उत्पत्ति के समय ही यह आयुष्कर क्रिया नहीं कर दी । अब तो यह सिद्ध हो चुकी है । अब तुम्हें दुःख नहीं करना है । तब तक मेरे पास ही रहो । इस प्रकार आदेश मिलने पर निडर होकर मैंने निवेदन किया । तात, यदि आप प्रसन्न हैं तो जहां वह पैदा हुआ है-आप मुझे वहीं जाने की आज्ञा दें । इस प्रकार निवेदन करने पर पिताजी ने पुनः कहा—वह शुकयोनि में पड़ा है । अभी जाकर भी तुम उसे पहचान नहीं पाओगे, न वही तुम्हें पहचानेगा, अतः अभी यहीं रहो । आज प्रातःकाल ही उन्होंने मुझे बुलाकर कहा कि तुम्हारा मित्र महामुनि जाबालि के आश्रम में आ गया है, उसे जन्मान्तर का स्मरण भी हो आया है, अब तुम उसे देखने जाओ । मेरी ओर से आशीर्वाद कहकर उससे कहना कि वत्स, जब तक क्रिया समाप्त होती है तब तक जाबालि के ही आश्रम में रहना और तुम्हारी माता लक्ष्मी भी उसी क्रिया में परिचारिका बनकर लगी हुई है, उसने तुम्हारा माथा सूँघ कर यही बात कही है । इस तरह कहकर प्रौढ़ शिरीष पुष्प के अग्रभाग समान रोम से युक्त मेरे शरीर को कपिञ्जल ने बार-बार अपने हाथ से छूकर मन में कष्ट का अनुभव किया । उस प्रकार कष्ट करते देख मैंने कपिञ्जल से कहा-सखे कपिञ्जल, क्यों सन्ताप कर रहे हो ? तुमने भी मुझ पापी के लिए घोड़े का जन्म ग्रहण कर,

त्वयापि मन्दपुण्यस्य मम कृते तुरंगमतामापन्नेन पराधीनवृत्तिना बहुतराण्येव दुःखान्यनुभूतानि। कथं सोमपानोचितेनामुनास्येन समुत्पादितसफेनरक्तस्रवाः खरखलीनक्षतयो विसोढाः। कथमयमकठोरकिसलयशयनैकसेवासुकुमारः सदा पर्याणितस्य न शीर्णः पृष्ठवंशः। कथमेषु कुसुमोच्चयपातितबालवनलतास्पर्शमात्राक्षमेषु गात्रेषु कशाभिघाता निपतिताः। कथं च ब्रह्मसूत्रोद्वाहिनि देहेऽस्मिन्वध्रोत्पीडनकृताः पीडाः समुपजाताः' इति। एभिरन्यैश्च पूर्ववृत्तान्तालापैस्तत्कालविस्मृततिर्यग्जातिदुःखः सुखमतिष्ठम्।

उपरोहति च मध्याह्नं सवितरि सह कपिञ्जलेन मां यथोचितमाहारमकारयत्। कृताहारश्च कपिञ्जलः क्षणमिव स्थित्वा मामब्रवीत्। 'अहं हि तातेन त्वां समाश्वासयितुं जाबालिपादमूलादा कर्मपरिसमाप्तेर्न त्वया चलितव्यमित्येतच्चादेष्टुं विसर्जितः। अन्यदहमपि तत्रैव कर्मणि व्यग्रतर एव। तद् व्रजामि संप्रति।' अहं तु तच्छ्रुत्वा विषण्णवदनस्तं प्रत्यवदम्। 'सखे कपिञ्जल, एवं गते किं ब्रवीमि। किं च तातस्याम्बाया वा संदिशामि। सर्वं त्वमेव वेत्सि' इति। स त्वेवमुक्तो मया पुनः पुनस्तत्रावस्थानाय मां संनिधाय हारीतं

हरणविधया गणयति–कथमित्यादिना) सोमपानोचितेन–सोमपानेऽभ्यस्तेन। अमुना आस्येन–अनेनैव मुखेन। समुत्पादितसफेनरक्तस्रवाः सफेनं रक्तं स्रावयन्त्यः। खरखलीनक्षतयः–तीक्ष्णकविकाव्रणानि। विसोढाः–मृष्टाः। अकठोरकिसलयशयनैकसेवासुकुमारः–कोमले पल्लवशयनीये सततं शेतुमवसरं प्राप्य तत्सेवया सुकुमारः कोमलतरः। पर्याणितस्य–पृष्ठास्तरणं प्रापितस्य। (तव) पृष्ठवंशः–पृष्ठास्थिभागः। न शीर्णः–न त्रुटितः। कुसुमोच्चये पुष्पावचयनकाले पातिताः नमिताः याः बालाः अजीर्णा वनलताः तासां स्पर्शमात्राक्षमेषु स्पर्शमपि सोढुमशक्तेषु। गात्रेषु–तवाङ्गेषु। कशाभिघाताः–अश्वदमककृताः प्रहाराः। ब्रह्मसूत्रोद्वाहिनि–यज्ञोपवीतधारिणि। अस्मिन्देहे–तव शरीरे। वध्रोत्पीडनकृताः–बन्धनरज्जुजनिताः, पूर्ववृत्तान्तालापैः–प्राक्तनसमाचारचर्चाभिः। तत्कालविस्मृततिर्यग्जातिदुःखः–तत्समये स्वीयशुकत्वप्रासिकष्टं विस्मृत्य। सुखम्–अक्लेशम्। अतिष्ठम्–स्थितवान्।

सवितरि–सूर्ये। मध्याह्नम्–उपरोहति–मध्यं दिनमारूढे सति। यथोचितम्–उपयुक्तम्–आहारम्–भोजनम्। कृताहारः–कृतभोजनः। समाश्वासयितुम्–धैर्यं धारयितम्। आ कर्मसमाप्तेः–स्वदायुष्यकर्मणः समाप्तिपर्यन्तम्। चलितव्यम्–अन्यत्र गन्तव्यम्। आदेष्टुम्–आज्ञापयितुम्। विसर्जितः–प्रेषितः। अन्यत्–अपरं च। तत्रैव कर्मणि–त्वदर्थमनुष्ठीयमाने शान्तिस्वस्त्ययनादिव्यापारकलापे। व्यग्रतरः–आकुलः (सततव्यापृतिरेवात्र व्यग्रतामूलम्) विषण्णवदनः–खिन्नमुखः। एवं गते–अस्यां दशायाम्। हारीतं संनिधाय च–मां हारीतस्य समीपे कृत्वा। अनुभूतास्मदालिङ्गनसुखः–मदालिङ्गन-

---

पराधीन हो, बहुत से दुःख भोगे हैं। सोमरस पीने के अभ्यासी इस मुख से सफेन रक्त की धार बहानेवाली तेज लगाम का घाव सहा है। किस प्रकार तुम्हारी यह पीठ सदा जीन कसे रहने पर भी टूट नहीं गई जिस पीठ को कोमल किसलय शयन पर सोने से सुकुमारता आ गई थी। फूल बरसाने वाली लताओं के स्पर्श को भी नहीं सह सकनेवाले तुम्हारे अङ्गों ने चाबुक की चोटें किस प्रकार सह लीं ? ब्रह्मसूत्र धारण करने वाले इस शरीर पर रस्से की कसावट की पीड़ा कैसे सही गई ? इस प्रकार के तथा अन्यान्य पूर्व वृत्तान्तों से मेरा तात्कालिक पक्षिजन्म का दुःख भूल सा गया, मैं सुखी रहा।

सूर्य जब मध्याह्न में आया तब हारीत ने कपिञ्जल के साथ मुझे भी यथोचित भोजन कराया। भोजनोपरान्त थोड़ी देर ठहर कर कपिञ्जल ने मुझसे कहा—पिताजी ने मुझे तुम्हें आश्वासन प्रदान करने तथा आयुष्य-क्रिया की समाप्तिपर्यन्त जाबालि के आश्रम से कहीं भी नहीं जाने को कहने के लिए भेजा था, मैं भी उसी क्रिया में आसक्त हूँ, अतः अभी चलता हूँ। मैंने यह सुनकर उदास हो उससे कहा—सखे कपिञ्जल, ऐसी स्थिति में मैं क्या कहूँ ? पिताजी को तथा मां को क्या सन्देशा दूँ ? सब तुम्हीं जानते हो। मेरे इस प्रकार कहने पर कपिञ्जल ने मेरे वहाँ रहने के सम्बन्ध में मुझे तथा हारीत को बार-बार सावधान करके मेरे आलिङ्गन का आनन्द उठाकर

चानुभूतास्मदालिङ्गनसुखो विस्मयोन्मुखेन मुनिकुमारकजनेनेक्ष्यमाणोऽन्तरिक्षमतिक्रम्य क्वाप्यदर्शनमगात्। गते च तस्मिन्हारीतः समाश्वास्य मां शरीरस्थितिकरणायोदतिष्ठत्। उत्थाय चान्यं मुनिकुमारकं मत्पार्श्वे स्थापयित्वा निरगात्। निर्वर्तितस्नानादिक्रियाकलापश्चात्मनैव सहापराह्णसमये पुनर्मामाहारमकारयत्।

एवं चावहितचेतसा हारीतेन संवर्ध्यमानः कतिपयैरेव दिवसैः संजातपक्षोऽभवम्। उत्पन्नोत्पतनसामर्थ्यश्च चेतस्यकरवम्। 'गमनक्षमस्तु संवृत्तोऽस्मि। तन्न नाम चन्द्रापीडोत्पत्तिपरिज्ञानम्। महाश्वेता पुनः सैवास्ते। तत्किमुत्पन्नज्ञानोपि तद्दर्शनेन विनात्मानं निमेषमपि दुःखं स्थापयामि। भवतु तत्रैव गत्वा तिष्ठामि।' इति निश्चित्यैकदा प्रातर्विहारनिर्गत एवोत्तरां ककुभं गृहीत्वावहम्। अबहुदिवसाभ्यस्तगमनतया स्तोकमेव गत्वाशीर्यन्त इव मेऽङ्गानि श्रमेण। अशुष्यच्चञ्चुपुटं पिपासया। नाडिंधमेनाकम्पत कण्ठः श्वासेन। तदवस्थश्च शिथिलायमानपक्षतिरत्र पताम्यत्र पतामीति परवानेवान्यतमस्य

जन्यमानन्दमनुभूय। विस्मयोन्मुखेन-आश्चर्योर्ध्वस्थापितवदनेन सता। मुनिकुमारकजनेन-ऋषिबालवर्गेण। ईक्ष्यमाणः-दृश्यमानः। अन्तरिक्षमतिक्रम्य-यावति दृश्यते तावन्तमाकाशभागमुल्लङ्घ्य। अदर्शनमगात्-अदृश्यतां गतः। शरीरस्थितिकरणाय-स्नानादिदेहकार्यं कर्त्तुम्। अन्यं मुनिकुमारकम् मत्पार्श्वे स्थापयित्वा-कमप्येकमृषिपुत्रं मत्समीपे रक्षार्थं स्थापयित्वा। निरगात्-गतः। निर्वर्त्तितस्नानादिक्रियाकलापः-स्नानादिकार्यजातमवसाय्य। अपराह्णसमये-दिनस्य शेषभागे। आहारमकारयत्-भोजितवान्।

अवहितचेतसा-सावधानमनसा। संवर्ध्यमानः-पोष्यमाणः। कतिपयैः-अल्पसंख्यैः। सञ्जातपक्षः-उद्भिन्नपक्षतिः। उत्पन्नोत्पतनसामर्थ्यः-सञ्जातोड्डयनशक्तिः चेतस्यकरवम्-मनस्यचिन्तयम्। गमनक्षमः-उड्डयनसमर्थः। संवृत्तः-जातः। तन्न नाम चन्द्रापीडोत्पत्तिपरिज्ञानम्-कामं नास्तु मे चन्द्रापीडः कुत्रोत्पन्न इति ज्ञानम्। (अतोऽहं चन्द्रापीडदर्शनाय उद्यम्यापि साफल्यं नाशंसे) उत्पन्नज्ञानः-सञ्जातपूर्वजन्मस्मरणः। तद्दर्शनेन विना-अन्तरेणैव महाश्वेताऽऽलोकनम्। निमेषम्-क्षणात्मकमपि कालम्। दुःखं स्थापयामि-कष्टमनुभावयामि। तत्रैव-महाश्वेताया अधिष्ठानभूतेऽच्छोदसरस्तीरवर्त्तिनि-महादेवायतने। निश्चित्य-निश्चयं कृत्वा। प्रातर्विहारनिर्गतः-प्रातःकालिकं चङ्क्रमणं कर्त्तुं हारीताश्रमान्निःसृतः। उत्तरां ककुभं गृहीत्वा-उत्तरां दिशं लक्ष्यीकृत्य। अवहम्-चलितुं प्रवृत्तः। अबहुदिवसाभ्यस्तगमनतया-उड्डयनस्य स्वल्पकालशिक्षिततया। स्तोकम्-अल्पम्। श्रमेण-उड्डयनपरिश्रमेण। अङ्गानि-शरीरावयवाः। अशीर्यन्त इव-भिन्नानि इव अजायन्त। पिपासया-जलाभिलाषेण। चञ्चुपुटम्-चञ्चुः। अशुष्यत्-शुष्कतां गतम्। नाडिंधमेन-अतितीव्रेण। तदवस्थः-तस्यामेव दशायां वर्त्तमानः।

विस्मयोन्मुख मुनिकुमारों के द्वारा देखते-देखते आकाश को पारकर कहीं जा छिपा। उसके चले जाने पर हारीत ने मुझे आश्वासन प्रदान किया और शरीरक्रिया करने के लिए उठ खड़े हुए। दूसरे मुनिकुमार को मेरे पास रखकर हारीत स्वयं वहाँ से चले गये। स्नानादि कार्य सम्पन्न करने के उपरान्त हारीत ने पुनः मुझे भोजन कराया।

इस प्रकार बड़ी सावधानी के साथ हारीत द्वारा पोषित होने के कारण कुछ ही दिनों में मेरे पंख उग आये। उड़ने की शक्ति के हो जाने पर मेरे मन में हुआ कि अब तो मैं आकाश में उड़ने के लायक हो गया हूँ। चन्द्रापीड की उत्पत्ति का तो मुझे ज्ञान नहीं है, परन्तु महाश्वेता तो वही है। फिर ज्ञान के रहने पर भी बिना उसे देखे एक क्षण भी अपने को दुःखी क्यों बनाये रहूँ ? वहीं जाकर रहता हूँ। ऐसा निश्चय करके एक दिन प्रातःकाल विहार के लिए निकला और उत्तर दिशा की राह पकड़ कर उड़ने लगा। उड़ने का अभ्यास पुराना नहीं था इसलिए थोड़ी दूर जाने के बाद ही मेरे अङ्ग परिश्रम से टूटने लगे, प्यास से चोंच सूखने लगी। नाड़ी को कँपाने वाले श्वास से गला हिलने लगा। उसी अवस्था में मेरे पंख शिथिल हो गये यहाँ गिरा वहाँ गिरा इस प्रकार गिरने को बाधित होकर किसी समीपवर्त्ती सरोवर-तटस्थ तरुनिकुञ्ज के ऊपर अपने को डाल दिया, वह निकुञ्ज रात्रि के अन्धकार

तमस्विनीतिमिरसंघातस्येवार्ककरतिरस्कारिणो घनहरितपल्लवभरावनम्रस्यासन्नतरस्य सरस्तीरतरुनिकुञ्जस्योपर्यात्मानममुञ्चम्। चिरादिवोन्मुक्ताध्वश्रमक्लमोऽवतीर्य शीतलतरुतलच्छायास्थितो दलगहनसंरोधशिशिरमरविन्दकिञ्जल्करजोवासमुरभि बिसरसकषायमापीयमानमेवोत्पादितपुनरुक्तपानस्पृहमा तृप्तेः पयो निपीय यथाप्राप्तैरकठोरकमलकर्णिकाबीजैर्वीरतरुपर्णाङ्कुरफलैश्च कृत्वा क्षुधः प्रतीकारमपराह्णसमये पुनः कियन्तमप्यध्वानं यास्यामीति मनसि कृत्वाध्वश्रमनिःसहान्यङ्गानि विश्रमयितुमन्यतमामविच्छिन्नच्छायां शाखामारुह्य तरोर्मूलभाग एवावतिष्ठम्। तथा स्थितश्चाध्वश्रमसुलभां निद्रामगच्छम्। चिरादिव च लब्धप्रबोधो बद्धमात्मानमनुन्मोचनीयैस्तन्तुपाशैरपश्यम्। अग्रतश्च पाशविरहितमिव कालपुरुषम्; अतिकठिनतया कालिम्ना च वपुषः कालायसपरमाणुभिरिव केवलैर्निर्मितम्,

---

शिथिलायमानपक्षतिः-श्लथीभूतपक्षः। परवान्-पतनाय बाध्यमानः सन्। अन्यतमस्य-एकस्य। तमस्विनीतिमिरसंघातस्य-निशान्धकारराशितुल्यस्य। अर्ककरतिरस्कारिणः-सूर्यकिरणप्रवेशं निवारयतः। (अतिघनपत्रावृततया सूर्यकरदुष्प्रवेशस्य)। घनहरितपल्लवावनम्रस्य-घनैर्निविडैर्हरितैः श्यामवर्णैश्च पल्लवैः अवनम्रस्य समृद्धस्य। आसन्नतरस्य-अतिसमीपस्थस्य। सरस्तीरतरुनिकुञ्जस्य-सरोवरतटवर्त्तिवृक्षकुञ्जस्य। आत्मानममुञ्चम्-अपतम्। चिरात्-बहुकालपर्यन्तं तत्र कुञ्जोपरि स्थित्वा। उन्मुक्ताध्वश्रमक्लमः-त्यक्तमार्गपरिश्रमखेदः सन्। अवतीर्य-निकुञ्जोपरिभागतोऽध आगत्य। शीतलतरुतलच्छायास्थितः-शीतलायां वृक्षच्छायायामवस्थितः। दलगहनसंरोधशिशिरम्-पत्रावलीशीतलम्। अरविन्दस्य कमलस्य किञ्जल्कानां वासेन सुगन्धेन सुरभि सुगन्धीकृतम्। बिसरसेन कमलनाडस्वरसेन कषायम् कषायस्वादम्। आपीयमानम्-पीतं सत्। उत्पादितपुनरुक्तपानस्पृहम्-पुनःपुनःपानस्पृहां जनयत्। पयः-जलम्। आतृप्तेर्निपीय-तृप्तिपर्यन्तं पीत्वा। यथाप्राप्तैः-यथोपलब्धैः। अकठोरकमलकर्णिकाबीजैः-कमलाक्षैरवयवैः। वीरतरुपर्णाङ्कुरफलैः-वीरतरोः कोकिलाक्षवृक्षस्य पत्रैरङ्कुरैः फलैश्च। क्षुधः प्रतीकारम्-बुभुक्षाशान्तिम्। अध्वश्रमनिःसहानि-मार्गश्रमशिथिलानि। विश्रमयितुम्-विश्रामं प्रापयितुम्। अविच्छिन्नच्छायाम्-घनच्छायाम्। शाखाम्-विटपम्। मूलभागे-शाखामूलप्रदेशे। अध्वश्रमसुलभाम्-मार्गपरिश्रमवशादत्यन्तसुखलभ्याम्। निद्रामगच्छम्-सुप्तवान्। लब्धप्रबोधः-जागरितः। आत्मानम्-स्वम्। अनुन्मोचनीयैः-त्रोटयितुमशक्यैः। तन्तुपाशैः-रज्जुबन्धनैः। बद्धम्-सन्दानितम्। अग्रतः-बद्धस्यात्मनः पुरोदेशे। पाशविरहितम्-त्यक्तपाशम्। कालपुरुषम्-यमम्-(पाशहीनयमवत्प्रतीयमानम्) वपुषः अतिकठिनतया अत्यन्तकर्कशतया कालिम्ना श्यामतया च केवलैः द्रव्यान्तरासंकीर्णैः कालायसपरमाणुभिः-श्यामलोहाणुभिरिव निर्मितम्। अपरम्-अन्यम्। प्रेतपतिमिव-यममिव। पुण्यराशेः प्रतिपक्षम् शत्रुम्-सद्यःपुण्यविरोधिपापवत्प्रतीयमानम्। पाप्मनः-पापस्य। आशयम्-आश्रयस्थानम्। विनापि क्रोधकारणात्-अविद्यमानेऽपि कोपस्य हेतौ। आबद्धा धारिता या भीषणा भयजननी भ्रुकुटिः वक्रा भ्रूस्तया रौद्रतरेण अतिरौद्रेण। आरक्तकेकरतरकनीनिकेन-रक्तवर्णवक्रतारकायुक्तेन। चक्षुषानेत्रेण। सकलजनभयङ्करस्य-सर्वभीतिजननस्य। कृतान्तस्य-यमस्य। उपजनयन्तम्-उत्पादयन्तम्।

की तरह सूर्य-किरण का तिरस्कार करनेवाला और मनोहर पल्लवों के भार से झुका हुआ था। बड़ी देर तक पड़े रहने से हमारा मार्गश्रम दूर हुआ, उस तरुकुञ्ज से उतर कर वृक्ष की शीतल छाया में ठहरकर पत्तों की घनी छाया ऊपर रहने से शीतल, कमल-किञ्जल्क-रज से सुगन्धित, कमलनालरस से कसैला तथा जिसे पीने से पुनः-पुनः पीने की तृष्णा उत्पन्न हो रही थी ऐसा पानी यथेच्छ पीकर, और यथोपलब्ध कमल-कर्णिका-बीज तथा वीरतरु के पल्लव को खाकर क्षुधा की शान्ति करके 'अपराह्ण समय में पुनः कुछ रास्ता तय करूँगा' इस तरह का विचार मन में करके मार्गश्रम से क्लान्त अङ्गों को विश्राम देने के लिए किसी घनी छायावाले वृक्ष की शाखा पर बैठकर वृक्ष के नीचे के भाग में ही पड़ गया, मार्गश्रान्त होने के कारण उसी स्थिति में मुझे नींद आ गई। बड़ी देर के बाद मेरी नींद खुली तब मैंने अपने को अच्छेद्यपाश में बँधा हुआ पाया। अपने आगे मैंने पाशरहित यम के सदृश, शरीर के अतिश्याम होने के कारण काले लौह के परमाणुओं से निर्मित प्रतीत होनेवाले दूसरे

प्रेतपतिमिवापरम्, प्रतिपक्षमिव पुण्यराशेः, आशयमिव पाप्मनः, विनापि क्रोधकारणादाबद्धभीषणभ्रुकुटिरौद्रतरेणाननेनारक्तकेकरतरकनीनिकेन च चक्षुषा सकलजनभयंकरस्य भगवतः कृतान्तस्यापि भयमिवोपजनयन्तम्, आशये केशेषु चास्निग्धम्, आनने ज्ञाने चान्धकारितम्, वर्णे चरिते च कृष्णम्, निवसने कर्मणि च मलिनम्, वपुषि वचसि च परुषम्, अदृष्टाश्रुतानुरूपमस्याकारप्रत्ययादेवानुमीयमानक्रौर्यदोषं पुरुषमद्राक्षम्। आलोक्य च तं तादृशमात्मन उपरि निष्प्रत्याश एवापृच्छम्। 'भद्र कस्त्वम्? किमर्थं वा त्वया बद्धोस्मि। यद्यामिषतृष्णया तत्किमिति सुप्त एव न व्यापादितोस्मि। किं मया निरागसा बन्धदुःखमनुभावितेन। अथ केवलमेव कौतुकात्। ततः कृतं कौतुकम्। मुञ्चतु मामिदानीं भद्रमुखः। मया खलु वल्लभजनोत्कण्ठितेन दूरं गन्तव्यम्। अकालक्षेपक्षमं वर्तते मे हृदयम्। भवानपि प्राणिधर्मे वर्तते।' एवमुक्तः स मामुक्तवान्। 'महात्मन्, अहं खलु क्रूरकर्मा जात्या चाण्डालः। न च मया त्वमामिषलुब्धेन कुतूहलेन वा बद्धः। मम खलु स्वामी पक्कणाधिपतिरितो नातिदूरे मातङ्गकप्रतिबद्धायां भूमौ कृतावस्थानः। तस्य दुहिता कौतुकमये प्रथमे वयसि वर्तते। तस्यास्त्वं केनापि दुरात्मना कथितो यथा जाबालेराश्रम एवंगुणविशिष्टो महाश्चर्यकारी शुकस्तिष्ठति। तया च श्रुत्वोत्पन्नकौतुकात्त्वद्ग्रहणाय

आशये अभिप्राये केशेषु च अस्निग्धम् रूक्षम्-(रूक्षाशयं रूक्षकेशश्च) आनने ज्ञाने च अन्धकारितम्-(मुखं यथाऽन्धकारमयं तथैव ज्ञानमपि तस्यान्धकारपूर्णमासीदिति बोध्यम्)। वर्णे चरिते च कृष्णम् मलिनम् (मलिनवर्णो दुराचारश्चेत्यर्थः) निवसने वस्त्रे कर्मणि व्यापारे च मलिनम्। वपुषि शरीरे वचसि वचने च (शरीरं परुषं वचनं च परुषम्) अदृष्टम् अश्रुतं च अनुरूपं सदृशं यस्य तादृशम् (अनुपमम्) आकारप्रत्ययात्-शरीरदर्शनजन्यविश्वासवशात्। अनुमीयमानक्रौर्यदोषम्-क्रूरतामनुमापयन्तम्। तादृशम्-अतिभीषणम्। आत्मन उपरि निराशः-स्वजीवनविषये गताशः। आमिषतृष्णया-मांसलोभेन। व्यापादितः-मारितः। निरागसा-निरपराधेन। अनुभावितेन-प्रापितेन। कौतुकात्-उत्कण्ठावशात्। कृतं कौतुकम्-पूरिता उत्कण्ठा। वल्लभजनोत्कण्ठितेन-प्रियजनमिलनोत्केन। अकालक्षेपक्षमम्-कालविलम्बासहिष्णु। प्राणिधर्मे-प्राणिनो जीवनदानपुण्ये। (यदि भवान्मां मुञ्चति तदा भवतोऽपि पुण्यं भवति) क्रूरकर्मा-नृशंसाचारः। पक्कणाधिपतिः-शबरालयस्वामी। मातङ्गकप्रतिबद्धायाम्-मातङ्गैराश्रितायाम्। कृतावस्थानः-अवस्थितः। दुहिता-कन्या। कौतुकमये-उत्कण्ठापूर्णे। प्रथमे वयसि नवयौवने। तस्याः मम स्वामिनो दुहितुः। उत्पन्नकौतुकात्-संजातोत्सुकतावशात्। समादिष्टाः-आज्ञप्ताः। पुण्यैःमम भाग्यैः (यस्त्वां स्वामिदुहितुः पार्श्वं प्रापयिष्यति, स तस्याः प्रसादं जनयिष्यति, मया च त्वां

प्रेतराज के तुल्य, पुण्य के शत्रु समान, पाप के निवास-स्थान तुल्य एक पुरुष को देखा जो बिना किसी क्रोध के कारण के ही भ्रुकुटियाँ चढ़ाये हुए था, जिसके क्रूर आनन तथा रक्तकनीनिकावाली आँखों को देखकर सकललोकभयङ्कर यमराज को भी डर लग सकता था, उसका अभिप्राय तथा केश रूखे थे, आनन तथा ज्ञान अन्धकारपूर्ण था, वर्ण तथा आचार काला था, कपड़े तथा कर्म मलिन थे, शरीर तथा वचन कठोर थे, न वैसा देखा गया था न सुना गया था, आकार देखकर ही उसकी क्रूरता का अनुमान किया जा सकता था, उसे देखते ही मैंने अपने जीवन की आशा छोड़ दी, और उससे पूछा—भद्रपुरुष, मुझे आपने क्यों बाँधा है? यदि आपने मुझे मांस के लोभ से बाँधा है तो सुप्तावस्था में ही क्यों नहीं मार डाला? मुझ बेकसूर को बन्धन-कष्ट देने में आपको क्या लाभ होगा? अगर केवल कौतुकवश मुझे बांधा है तब कौतुक कर लिया, अब आप मुझे छोड़ दें। मैं अपने प्रियजन से मिलने के लिये दूर जा रहा हूँ। मेरा हृदय समय बरबाद करना नहीं चाहता है। आप भी अपने धर्म पर आरूढ़ हैं। इस प्रकार कहने पर उसने कहा—'महात्मन् मैं क्रूरकर्मा जाति से चाण्डाल हूँ, मैंने तुम्हें मांसलोभ से अथवा कौतुक से नहीं बांधा है। मेरा मालिक शबरालय का स्वामी यहाँ से नजदीक में ही मातङ्गों द्वारा सुरक्षित भूमि में ठहरा हुआ है। उसकी लड़की कौतुकजनक जवानी पर है। किसी दुरात्मा ने तुम्हारे विषय में उससे कह दिया है कि जाबालि

बहव एवापरे मादृशाः समादिष्टाः। तदद्य पुण्यैर्मयासादितोसि। तदहं तत्पादमूलं त्वां प्रापयामि। बन्धे मोक्षे चाधुना सा ते प्रभवति' इति।

अहं तु तच्छ्रुत्वा शुष्काशनिनेव ताडितः शिरसि संविग्नान्तरात्मा चेतस्यकरवम्। 'अहो मे मन्दपुण्यस्य दारुणतरः कर्मणां विपाकः। येन मया सुरासुरशिरःशेखराभ्यर्चितचरणसरसिजायाः श्रियो जातेन जगत्त्रयनमस्यस्य महामुनेः श्वेतकेतोः स्वहस्तसंवर्धितेन दिव्यलोकाश्रमनिवासिना भूत्वा म्लेच्छजातिभिरपि दूरतः परिहृतप्रवेशमधुना पक्कणं प्रवेष्टव्यम्। चण्डालैः सहैकत्र स्थातव्यम्। जरन्मातङ्गाङ्गनाकरोपनीतैः कवलैरात्मा पोषणीयः। चण्डालबालकजनस्य क्रीडनीयेन भवितव्यम्। दुरात्मन्पुण्डरीकहतक धिग्जन्मलाभं ते। यस्य कर्मणामयमीदृशः परिणामः। किमर्थं प्रथमगर्भ एव न सहस्रधा शीर्णोसि। मातः श्रीः, अशरणजनशरणचरणपङ्कजे, अतिगहनभीषणाद्रक्ष मामस्मान्महानरकपातात्। तात भुवनत्रयत्राणक्षम, त्रायस्व, कुलतन्तुमेकम्। त्वयैव संवर्धितोस्मि।

लब्धवता तत्प्रसादप्राप्तिः संभाव्यतेऽतो भाग्यं ममेति भावः) तत्पादमूलं तस्याः समीपम्। बन्धे-नियमने, मोक्षे त्यागे च। प्रभवति-समर्थास्ति। तदादेशेन तद्भृत्यद्वारा बद्धस्य तव बन्धं मोक्षं चादेष्टुं सैव क्षमेत्याशयः।

तत्-तस्य पुरुषस्य भाषितम्। शुष्काशनिना-विनैव वृष्ट्या वज्रपातोपमेन। संविग्नान्तरात्मा-नितान्तखिन्नमानसः। चेतस्यकरवम्-चिन्तितवान्। दारुणतरः-अतिभयङ्करः। विपाकः-परिणामः। सुराणां देवानाम् असुराणां रक्षसाञ्च शिरःशेखरैः शिरोमाल्यैरर्चितमाराधितं चरणसरसिजं पादकमलं यस्यास्तस्याः। श्रियः लक्ष्म्याः। जातेन-उत्पन्नेन। (मया) जगत्त्रयनमस्यस्य लोकत्रयवन्दनीयस्य। स्वहस्तसंवर्द्धितेन-आत्मकरपोषितेन। दिव्यलोकाश्रयनिवासिना स्वर्गाश्रमवास्तव्येन सता (मया) दूरतः परिहृतप्रवेशम्-अनभिमतप्रवेशम्। (म्लेच्छा अपि यत्र प्रवेशादात्मानं दूरे स्थापयन्ति तादृशम्) पक्कणम्-शबरालयम्। जरती वृद्धा या मातङ्गाङ्गना शबरवधूस्तस्याः करेण उपनीतैः दत्तैः। कवलैः-ग्रासैः। क्रीडनीयेन-क्रीडासाधनेन। धिग् जन्मलाभं ते-निन्द्यं तव जन्मग्रहणम्। (यस्य तव) कर्मणाम्-पूर्वचरितानाम्। ईदृशः एतादृशः पक्कणप्राप्तिरूपः। परिणामः-फलम्। प्रथमगर्भे-गर्भस्य प्रथमदशायाम्। सहस्रधा शीर्णः सहस्रखण्डेषु भिन्नः। अशरणजनशरणपङ्कजे-अशरणजनशरणीभूतपादपङ्कजे। माम् (आत्मनः पुत्रम्) अतिगहनभीषणात्-अतिभयङ्करात्। महानरकपातात्-घोरनरकनिपातात्। कुलतन्तुम्-वंशरक्षाक्षमं पुत्रम्। परापत्य-आगत्य। मोचितः-मुक्तिं गमितः। मत्समागम-

---

के आश्रम में ऐसे गुणों वाला महाश्चर्यकारी शुक वर्त्तमान है। सुनकर उसे उत्सुकता हुई, उसने तुम्हें पकड़ने के लिये बहुत से हमारे समान भृत्य नियुक्त किये हैं। मेरे पुण्यों से आज तुम मुझे मिल गये हो। मैं तुमको उसके पास पहुँचाता हूँ, वही तुम्हारे मोक्ष अथवा बन्धन में समर्थ है।"

उसकी बात सुनकर मेरे ऊपर वज्र-सा गिरा, मैं उद्विग्न हो उठा, मैंने सोचा—मुझ पापी का कर्मविपाक कितना दारुण है। देव तथा दानव द्वारा जिसके चरणों की अर्चना शिरोमाल्य सेंकी जाती है उसी लक्ष्मी से जन्म लेकर तथा जगत्त्रय-प्रणम्य महामुनि श्वेतकेतु से पोषित होकर दिव्यलोक में निवास करके अब मैं म्लेच्छजाति भी जिसमें नहीं पैठना चाहते हैं उसी शबरालय में प्रवेश करूँगा, चाण्डालों के साथ रहना होगा, बूढ़ी मातङ्ग-स्त्रियों द्वारा दिये गये कवलों पर जीना होगा, चाण्डाल-बालकों का खिलौना बनना पड़ेगा। दुरात्मन् पुण्डरीक, तुम्हारे जन्मग्रहण को धिक्कार है। तुम्हारे ही कर्मों का यह परिणाम है। क्यों न पहले ही गर्भ में हजार टुकड़ों में बिखर कर नष्ट हो गये ? मां लक्ष्मी, तुम अशरणजनों को अपने चरणों में शरण देती हो, अत्यन्त घोर इस नरक में गिरने से मुझे बचा लो, तात, आप लोकत्रय की रक्षा करने में समर्थ हैं, अपनी अकेली सन्तान को बचाइये।

वयस्य कपिञ्जल, यदि परापत्य त्वयास्मात्पापान्न मोचितोस्मि तदा जन्मान्तरेपि पुनर्मा कृथा मत्समागमप्रत्याशाम्।' इत्येतानि चान्यानि च चेतसा विलप्य पुनस्तमभ्यर्थनादीनमवदम्।

'भद्रमुख जातिस्मरो मुनिरस्मि जात्या। तत्त्वापि मामस्मान्महतः पापसंकटादुद्धृत्य धर्मो भवत्येवादृष्टसुखहेतुः। दृष्टेपिच केनचिदपरेणादृष्टस्य मन्मुक्तिकृतः प्रत्यवायो नास्त्येव। तन्मुञ्चतु मां भद्रमुखः' इत्यभिदधानश्च पादयोरपतम्। स तु विहस्य मामब्रवीत्। 'रे मोहान्ध यस्य शुभाशुभकर्मसाक्षिभूताः पञ्च लोकपालास्तवैवात्मशरीरस्थिता न पश्यन्ति सोन्यस्य भयादकार्यं नाचरति। तन्नीतोसि मया स्वाम्याज्ञया' इति। एवमभिदधान एव मामादाय पक्कणाभिमुखमगच्छत्।

अहं तु तेन तद्वचसाभिहत इव मूर्ध्नि मूकतामापन्नः केषां पुनः कर्मणामिदं मे फलमित्यन्तरात्मनाभिध्यायन्प्राणपरित्यागं प्रति कृतनिश्चयोभवम्। नीयमानश्च तथा तेन तन्मोचनप्रत्याशयैवाग्रतो दत्तदृष्टिराविष्टैरिव बीभत्सविन्यासैर्व्यावृत्तैश्चावर्तकानायपरिभ्रमणानिभृतैश्च मृगावपाटितजीर्णवागुरासंग्रन्थनव्यग्रैश्चोत्त्रुटितकूटपाशसंग्रन्थनायस्तैश्च

प्रत्याशाम्–मम मिलनस्याशाम्। मा कृथाः–न कुर्याः। तम्–बन्धकं पुरुषम्। अभ्यर्थनादीनम्–प्रार्थनया दीनस्वरम्। अवदम्–उक्तवान्।

जातिस्मरः–पूर्वजन्मस्मर्त्ता। जात्या मुनिः–मुनिजातीयः। पापसंकटात्–पापरूपात्कष्टात्। उद्धृत्य–मोचयित्वा। अदृष्टसुखहेतुः–परत्र सुखजनकः। दृष्टेऽपि–सम्प्रत्यपि। अपरेण–स्वसजातीयेनान्येन अदृष्टस्य–अनालोकितस्य। मन्मुक्तिकृतः–मामस्मात्कष्टादुद्धरतः। प्रत्यवायः–किमपि पापम्। इत्यभिदधानः–एवं कथयन्। अपतम्–पतितः। मोहान्ध–अज्ञान। शुभाशुभकर्मसाक्षिभूताः–शुभाशुभकर्मणोः पापपुण्ययोः साक्षिभूताः द्रष्टारः। नीतोऽसि तत्समीपं प्राप्यसे (आदिकर्मणि निष्ठा) पक्कणाभिमुखम्–शबरालयाभिमुखम्।

तेन तद्वचसा–पूर्वोक्तरूपेण शबरवचनेन। मूर्ध्नि अभिहतः–शिरसि ताडितः। मूकताम्–वाक्शक्तिराहित्यम्। इदम्–चाण्डालहस्तगमनम्। मनसाऽभिध्यायन्–हृदयेन चिन्तयन्। प्राणपरित्यागं प्रति कृतनिश्चयः–मरणविषये कृतनिर्णयः। तन्मोचनप्रत्याशया–कदाचिदसौ शबरराजकुमारी मां मोचयेदित्याशया। अग्रतो दत्तदृष्टिः–पुरो निहितनयनः। (अहम्) आविष्टैः–भूतावेशं गतैः। (इतः प्रभृति

मित्र कपिञ्जल, यदि झटपट आकर तुमने मुझे इस पापी से नहीं बचाया तो जन्मान्तर में भी मुझसे मिलने की आशा छोड़ देना। इस प्रकार विलाप करके पुनः मैंने दीन प्रार्थना के स्वर में उससे कहा—

भद्रमुख, मुझे पूर्वजन्म का स्मरण है, मैं मुनि जाति का हूँ। मुझे यदि तुम इस पाप-सङ्कट से उबार देते हो तो तुम्हें लोकान्तर में सुख देने वाला धर्म अवश्य ही होगा, इस लोक में भी जब कोई दूसरा नहीं देख रहा है तब मुझे छोड़ देने से तुमको पाप नहीं होगा। इसलिये तुम मुझे मुक्त कर दो। इस तरह कहता हुआ मैं उसके चरणों पर गिर गया, उसने हँसकर मुझसे कहा—रे मोहान्ध, शुभाशुभ कर्म के साक्षी पाँच लोकपाल तो तुम्हारी अन्तरात्मा में ही अवस्थित हैं, वह दूसरे के भय से अकर्त्तव्य नहीं करता है, मैं तुमको स्वामी की आज्ञा से लेकर चला। इस तरह कहता हुआ वह मुझे लेकर शबरालय की ओर चल पड़ा।

उसकी इस बात से मुझे मस्तक पर चोट सी लगी, मैं चुप हो रहा, मैंने मन में सोचा कि किन-किन कर्मों का यह परिणाम है, इस तरह सोचते हुए मैंने प्राण-त्याग करने का निश्चय कर लिया, वह मुझे लिये जा रहा था, मैं उससे छुटकारा पाने की आशा में आगे की ओर दृष्टि डाल रहा था। मैंने शबरालय देखा जिसकी सूचना—भूताविष्ट से लगने वाले, बीभत्स वेश-भूषाधारी, सिमटने वाले जाल को घुमाने में आसक्त, मृग द्वारा फाड़े गये पुराने जाल को सीने में संलग्न, टूटे पाश को जोड़ने में प्रयत्नशील, हाथों में धनुष-दण्ड धारण करने वाले, भाले से

हस्तस्थितसकाण्डकोदण्डैश्च प्रासप्रचण्डपाणिभिश्च सेलग्राहिभिश्च नानाविधग्राहकविहंग-वाचालनकुशलैः कौलेयकमुक्तिसंचारणचतुरैश्चण्डालशिशुभिर्वृन्दशो दिशि दिशि मृगयां क्रीडद्भिर्दूरत एवावेद्यमानम्, इतस्ततो विस्रगन्धिधूमोद्गमानुमीयमानसान्द्रवंशवनान्तरित-वेश्मसंनिवेशम्, सर्वतः करङ्कप्रायवृतिवाटम्, अस्थिप्रायरथ्यावकरकूटम्, उत्कृत्तमांसमेदोवसासृक्कर्दमप्रायकुटीराजिरम्, आखेटकप्रायाजीवम्, पिशितप्रायमशनम्, वसाप्रायस्नेहम्, कौशेयप्रायपरिधानम्, चर्मप्रायास्तरणम्, सारमेयप्रायपरिवारम्,

---

क्रीडद्भिरित्येतत्पर्यन्तं सकलमपि तृतीयान्तं 'शबरशिशुभिः' इत्यस्य विशेषणजातं बोध्यम्) बीभत्स-विन्यासैः बीभत्सः घृणाजनको विन्यासः वस्त्राभरणादिधारणप्रकारो येषां तादृशैः। व्यावृत्तैः-गृहाभिमुखचलितैः। आवर्त्तकः मुहुर्जनितवन्धनव्यापारो य आनयो जालविशेषस्तस्य परिभ्रमणे सञ्चालने अनिभृतैः सव्यापारैः। मृगैः सद्योजालनिपतितैरवपाटिता त्रोटिता या वागुरा तस्याः संग्रन्थने पुनर्योजनादिरूपे व्यापारे व्यग्रैः संलग्नैः। उत्त्रुटितयोः-खण्डितयोः कूटपाशयोः तन्नामकयोः पशुपक्षिबन्धनोपकरणयोः संग्रन्थने योजने आयस्तैः धृतप्रयासैः। कूटपाशयन्त्रयोश्चर्चा वाल्मीकीयरामायणेऽपि दृश्यते, यथा—'वागुराभिश्च पाशैश्च कूटैश्च विविधैस्तथा।' हस्तस्थितकाण्डकोदण्डैः-करे काण्डम् लौहमुखं दण्डम् कोदण्डं चापं च धारयद्भिः। प्रासप्रचण्डपाणिभिः-प्रासनामकेनास्त्रेण भीषणतां गतेन हस्तेनोपलक्षितैः। सेलग्राहिभिः अस्त्रभेदधारिभिः—सेलनामकमस्त्रं स्मर्यते तुलसीदासेनापि स्वीये रामायणे—'फरसा बांस सेल सम करहीं'। नानाविधाः बहुप्रकाराः ये ग्राहकाः पक्षिणां ग्रहणे दक्षाः विहंगाः पक्षिणः श्येनोलूकादयस्तेषां वाचालने शिक्षणे कुशलैः पटुभिः। कौलेयकानाम् शुनां मुक्तौ किमपि लक्ष्यमुद्दिश्य विसृष्टौ संचारणे स्वेन सहचालने च चतुरैः दक्षैः। चण्डालशिशुभिः व्याधबालकैः। वृन्दशः-संघभावमासाद्य। मृगयां क्रीडद्भिः-आखेटकमाचरद्भिः। आवेद्यमानम्-तदेवेदमिति सूच्यमानम्। विस्रगन्धिना आममांसगन्धयुक्तेन धूमोद्गारेण धूमनिर्गमेन अनुमीयमानः तर्कविषयीकृतः सान्द्रवंशवनान्तरितः-घनवंशजालच्छन्नः वेश्मसन्निवेशः गृहनिर्माणं यत्र तादृशम् (गृहनिवेशो यत्र वंशवनान्तरिततयाऽदृश्यमानोऽपि आममांस-गन्धशालिनो धूमस्योद्गममालोक्यानुमीयते तादृशमित्यर्थः)। करङ्कप्राया-नृमुण्डबहुला वृतिर्वेष्टनं यस्य तादृशो वाटो मार्गो यत्र तथोक्तम्। अस्थिप्रायः नरास्थिबहुलः अवकरकूटः-संमार्जन्यादिनिक्षिप्तधूलिराशिर्यत्र तादृशः अवकरशब्दस्य धूलिरूपेऽर्थे प्रयोगो यथा—'अवकरनिकरं विकिरति तत्किं कृकवाकुरिव हंसः' इति भर्तृहरेर्नीतिशतके। उत्कृत्तानाम् लुञ्चितानाम् मांसानाम् वसानाम् स्नेहभागानाम् सृक्काणां ओष्ठप्रान्तानाञ्च ये कर्दमाः पङ्कास्तत्प्रायम् कुटिराजिरम् भवनाङ्गणं यस्य तादृशम्। आखेटकप्रायः-मृगयाबहुलः आजीवः जीविका यत्र तादृशम्। पिशितप्रायम् मांसमयमशनं भोजनं यत्र तादृशम्। वसाप्रायः स्नेहः तैलघृतादिपदार्थो यत्र तादृशम्। (यत्र तैलघृतादिस्नेहद्रव्यकार्यं वसयैव चाल्यते तादृशम्) कौशेयप्रायम्-कृमिकोशोत्थवस्त्रबहुलं परिधानम् यत्र तादृशम्। चर्मप्रायं चर्ममयमास्तरणं शयनीयं यत्र तादृशम्। सारमेयः-कुक्कुरः। परिवारः-सहचरः। धवली-शुक्ला गौः तत्प्रायं तत्प्रचुरं वाहनं यानसाधनं यत्र तादृशम्। स्त्रीमद्यप्रायः-स्त्रीभोगमद्यपानमयः। असृक्प्राया

भयङ्कर हाथ वाले, सेलग्राही, नाना प्रकार के शिकारी पक्षियों को वाचालित करने में कुशल, कुत्तों को खोलने तथा हांकने में निपुण, तथा इधर-उधर शिकार के सिलसिले में घूमने वाले चाण्डाल-बालक-दें रहे थे। वहाँ दुर्गन्धपूर्ण धूम से घने वंशवन में अवस्थित छिपे हुए घर का अनुमान होता था, कङ्कालों के बने घेरे थे, हड्डियों की बनी गलियों की आवृत्तियाँ थीं, झोपड़ों के आँगन उधेड़े गये पशुओं के मांस, मेदा, वसा के कीचड़ से भरे थे, उनकी जीविका शिकार थी, मांस ही प्रधान भोजन था, चर्बी ही उनका घी-तेल था, कौशेय वस्त्र ही उनके परिधान थे, चमड़े ही उनके शयन थे, कुत्ते ही उनके परिवार थे, उजली गायें उनके वाहन थे, स्त्रीभोग तथा मद्यपान ही उनके पुरुषार्थ थे, रुधिर ही उनकी देवपूजा के साधन थे, उनकी सारी धर्मक्रिया पशुबलि ही थी। वह शबरालय

---

१. आवेष्ट्यमानम्।

धवलीप्रायवाहनम्, स्त्रीमद्यप्रायपुरुषार्थम्, असृक्प्रायदेवताबलिपूजम्, पशूपहारप्रायधर्मक्रियम्, आकरमिव सर्वनरकाणाम्, कारणमिव सर्वाकुशलानाम्, संनिवेशमिव सर्वश्मशानानाम्, पत्तनमिव सर्वपापानाम्, आयतनमिव सर्वयातनानाम्, स्मर्यमाणमपि भयंकरम्, श्रूयमाणमप्युद्वेगकरम्, दृश्यमानमपि पापजननम्, जन्मकर्मतो मलिनतरजनम्, जनतो नृशंसतरलोकहृदयम्, लोकहृदयेभ्योपि निर्घृणतरसर्वसंव्यवहारसमस्तपुरुषम्, अविशेषाचारबालयुवस्थविरम्, अव्यवस्थितगम्यागम्याङ्गनोपभोगम्, अपुण्यकर्मैकापणं पक्कणमपश्यम्।

दृष्ट्वा च तं तादृशं नरकवासिनोप्युद्वेगकरं समुत्पन्नघृणोन्तरात्मन्यकरवम्। 'अपि नाम सा चाण्डालदारिका दूरत एव मामालोक्योत्पन्नकरुणा मोचयेन्न जातिसदृशमाचरिष्यति। भविष्यन्त्येवंविधानि मे पुण्यानि। न निमेषमप्यत्र पदं कुर्याम्।' इत्येवंकृताशंसमेव मां नीत्वा स चाण्डालस्तदा दुर्दर्शनाकारवेषायै दूरतः स्थितः प्रणम्य 'एष स मया प्राप्तः' इति तस्यै चाण्डालदारिकायै दर्शितवान्। सा तु प्रहृष्टतरवदना 'शोभनं कृतम्', इति तमभिधाय तत्करात्स्वकरयुगेनादाय माम्, 'आः पुत्रक प्राप्तोसि, सांप्रतं क्वापरं गम्यते,

---

रक्तबहुला। धर्मक्रिया यत्र पशूपहारः तादृशम्। आकरम्-खनिम्। सन्निवेशम्-निवासम्। पत्तनम्-गृहम्। आयतनम्-मन्दिरम्। सर्वयातनानाम्-सर्वविधानां कष्टानाम्। स्मर्यमाणम्-स्मृतिगतम्। उद्वेगकरम्-भयजनकम्। जन्मकर्मतः-जन्मनः कर्मणा च। जनतः-लोकापेक्षया नृशंसतरम् अतिक्रूरम् लोकानां हृदयं यत्र तादृशम्। (यावती क्रूरता लोकेषु ततोऽप्यधिका क्रूरता येषां लोकानां हृदयेष्वस्तीति भावः) निर्घृणतरसर्वसंव्यवहाराः-अतिघृणोत्पादकसकलचेष्टाः समस्तपुरुषा यत्र तथोक्तम्। अविशेषाचाराः समानमाचरन्तः बाला युवानः स्थविरा वृद्धाश्च यत्र तादृशम्। अव्यवस्थितः अनियतः गम्यानामगम्यानाञ्च अङ्गनानां स्त्रीणामुपभोगो यत्र तादृशम्। अपुण्यकर्मणः पापस्य एकमापणम् अद्वितीयं प्राप्तिस्थानम्। पक्कणञ्च-शबरालयम्।

तम्-शबरालयम्। तादृशम्-पूर्ववर्णितस्वरूपम्। नरकवासिनोऽप्युद्वेगकरम्-नरकादपि भीषणतरतया नरकेऽवस्थितिशालिनमपि मानसेषु व्यग्रतां सृजन्तम्। समुत्पन्नघृणः-सञ्जातघृणः। उत्पन्नकरुणा-उद्भूतदया। जातिसदृशम्-स्वजात्युचितं क्रूरं व्यवहारम्। (यदि सा दयया कदाचिन्मां मुञ्चति तदाहम्) निमेषम्-एकमपि क्षणम्। पदं कुर्याम्-तिष्ठेयम्। एवं कृताशंसम्-इत्थमाशां कुर्वन्तम्। दुर्दर्शनाकारवेषायै-आकारे स्वरूपे वेषे वसनाभरणादौ च दुर्दर्शनायै नितान्तविकृतायै। चाण्डालदारिकायै-शबरराजपुत्र्यै। प्रहृष्टतरवदना-अतिप्रसन्नमुखी। तम्-मद्ग्रहीतारं चाण्डालपुरुषम्। तत्करात्-तस्य पुरुषस्य हस्तात्। करयुगेन-निजकरद्वयेन। माम् आदाय-गृहीत्वा। प्राप्तोऽसि-गृहीतोऽसि मया।

सारे नरकों का आवास, सारे अमङ्गलों का कारण, सारे श्मशानों का समाहार, सारे पापों का नगर, सारे कष्टों का आस्पद था उसे याद करने से भी भय, सुनने से भी उद्वेग, देखने से भी पाप होता था। वहाँ के लोग जन्म तथा कर्म से मलिन थे, वहाँ के लोगों से भयङ्कर उनके हृदय थे, लोकहृदय से भी घिनौना था वहां के पुरुषों का आचार, वहाँ के बालक, युवक, वृद्ध सभी के आचार एक समान थे, वहाँ गम्यागम्य स्त्री की कोई व्यवस्था नहीं थी, और वह शबरालय सारे पापों का आपणस्वरूप था।

नरकवासियों के भी हृदय में उद्वेग उत्पन्न करने वाले उस शबरालय को देखकर मुझे घृणा हुई, मैंने मन में सोचा—शायद वह चाण्डालदारिका दूर से ही मुझे देखकर दयावश मुझे छोड़ दे, अपनी जाति के समान आचरण न करे। क्या मेरे ऐसे पुण्य होंगे। अगर ऐसा हुआ तो मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहरूँगा। मैं इस तरह कल्पना कर ही रहा था कि उस चाण्डाल ने भोली सूरतवाली एक लड़की को प्रणाम करके यही है वह शुक, जो मुझे मिला है, इस प्रकार कहते हुए मुझे दिखलाया। उसका मुख प्रसन्न हो उठा, उसने उससे कहा कि अच्छा किया, और उसके हाथ से मुझे अपने दोनों हाथों में ले लिया,—और कहा—हाँ बेटा, पकड़ा गये, अब कहाँ

व्यपनयामि ते सर्वमिदं कामचारित्वम्' इत्यभिदधानैव धावमानचण्डालबालकोपनीतेऽर्धोश्यानलोमशदुर्गन्धिगोचर्मवध्रिकावनद्धे दृढबद्धदारुमयपानभोजनपात्रे मनागुद्घाटितद्वारे दारुपञ्जरे समं महाश्वेतावलोकनमनोरथैराक्षिप्यार्गलितद्वारा सा मामवदत्। यथा 'अत्र निर्वृतः संप्रति तिष्ठ।' इत्यभिधाय तूष्णीमस्थात्। अहं तु तथा संरुद्धश्चेतस्यकरवम्। 'महासंकटे पतितोऽस्मि। यदि तावदावेदितात्मावस्थः शिरसा प्रणिपत्य मुक्तये विज्ञापयाम्येनां तदा य एव मे गुणो दोषतामापद्य बन्धायोपजातः स एव संवर्धितो भवति। साधु जल्पतीत्येवाहमनया ग्राहितः। कास्या मदीयया बन्धनपीडया पीडा। नाहमस्यास्तनयो न भ्राता न बन्धुः। अथ मौनमालम्ब्य तिष्ठामि। तत्रापि शाठ्यप्रकुपिता कदाचिदतोऽप्यधिकामवस्थां प्रापयति माम्। नृशंसतमा हि जातिरियम्। अथवा वरमितोऽप्यधिकमुपजातं न पुनश्चाण्डालैः सह वागपि विमिश्रिता। अपि च गृहीतमौनं निर्वेदात्कदाचिन्मुञ्चत्येव।

व्यपनयामि-दूरीकरोमि। कामचारित्वम्-यथारुचि व्यवहारपरताम्। धावमानः शीघ्रगतिशाली यश्चाण्डालबालकस्तेन उपनीते समीपमुपनीयमाने। अर्धाश्यानया-अर्धशुष्कया लोमशया बालव्याप्तया दुर्गन्ध्या पूतिगन्धयुतया गोचर्मवध्रिकया गोचर्मनिर्मितया रज्ज्वा अवनद्धे-बद्धे। दृढबद्धे स्थिररूपेण नियमिते दारुमये काष्ठनिर्मिते पानस्य जलपानार्थम् भोजनस्य आहारार्थञ्च पात्रे भाजने यत्र तादृशे। मनाक्-ईषत्। उद्घाटितद्वारे-उन्मुक्तद्वारे। महाश्वेतावलोकनमनोरथैः समम्-महाश्वेतादर्शनलालसाभिः सार्द्धम्। (मयि पञ्जरनिक्षिप्ते सति महाश्वेतादर्शनमनोरथा मया मनसिकृतास्तत्रैव निक्षिप्ताः अपूरिता एव जाताः इत्याशयेनेयं सहोक्तिः) आक्षिप्य-निक्षिप्य। अर्गलितद्वारा-रुद्धपञ्जरमुखी। निर्वृतः-शान्तः। संरुद्धः-निरुद्धसर्वचेष्टः। चेतस्यकरवम्-चिन्तितवान्। महासंकटे-महत्यां विपत्तौ। आवेदितात्मावस्थः-स्वीयां स्थितिं निवेद्य। शिरसा प्रणिपत्य-नमस्कृत्य। मुक्तये-मोचनाय। विज्ञापयामि-प्रार्थये। यो मे गुणः-वाक्पाटवरूपः। दोषतामापद्य (बन्धनकारणतया) दोषभावमासाद्य। बन्धाय-मम पञ्जरबन्धनाय। संवर्धितः-दृढीकृतः। (अयं शुकः साधु वदतीत्येव मम वाक्पाटवरूपो गुणो मम बन्धनस्य कारणं भवति, मुक्तये प्रार्थनां कुर्वता मया स्वं वाक्पाटवं प्रकाशयता-सगुणः पुष्टिं प्रापितो भवतीत्यनभ्युपायः प्रार्थनव्यापारोऽत्रेति भावः) काऽस्याः पीडा ? मयि बद्धेऽपि अस्याश्चाण्डालदारिकायाः कापि पीडा नास्ति, यतोऽस्यास्तनयो भ्राता बन्धुर्वाऽहं न भवामीत्यर्थः। मौनमालम्ब्य-मूकीभूय। शाठ्यप्रकुपिता-मदीयेन मौनावलम्बनरूपेण कर्मणा कुपिता सती। इतोऽपि अधिकामवस्थाम्-वर्त्तमानाया मम दशाया अपि कठोरां दशाम्। नृशंसतमा-अतिक्रूरा। वागपि विमिश्रिता-परस्परालापेन सहभावं नीता। (चाण्डालैः सह वार्त्तालापविधानापेक्षया इतोऽपि महत्तरस्य कष्टस्य भोग एव सरलतया सह्य इति भावः।) गृहीतमौनम्-मूकीभूय स्थितं माम्। निर्वेदात्-वृथाऽयं शुको बद्ध इति हृदये जायमानोदासीनतावशात्। न मोक्तव्य एवाहमनया-यदि वाचं प्रदास्यामि तदा त्वियं मां नैव

जाओगे ? मैं तुम्हारे सारे कामचारित्व को दूर करती हूँ, इस प्रकार कहती हुई उसने मुझे एक ऐसे पिंजड़े में डाल दिया—जो एक चाण्डाल-बालक द्वारा दौड़कर लाया गया था, आधे भाग में पतले रोएंदार दुर्गन्धपूर्ण गोचर्म के धागे से बंधा था, जिसके भीतर लकड़ी के भोजनपात्र कस कर बंधे थे, जिसका दरवाजा एक ही ओर खुला था, मुझे ही नहीं मेरे महाश्वेता से मिलने के मनोरथों को भी मेरे ही साथ उस पिंजड़े में डालकर दरवाजा वन्द करती हुई उस चाण्डालदारिका ने कहा कि—अब इसमें शान्ति से रहो।

इस प्रकार कह कर वह चुप हो रही। उस प्रकार से घिरने पर मैंने मनमें सोचा बड़ी आफत में फँस गया, यदि मैं अपनी स्थिति बताकर प्रणाम करके इससे अपनी मुक्ति के लिए प्रार्थना करता हूँ तो जिस दोष से पकड़ा गया हूं उसी की पुष्टि होती है। इसीलिए तो इसने मुझे पकड़वाया है कि बड़ा अच्छा बोलता हूँ। मेरी बन्धन-पीड़ा से इसको क्या कष्ट ? न मैं इसका बेटा हूँ न भाई न बन्धु, और अगर चुप रहता हूँ तो यह मेरी हठधर्मिता से कुपित होकर इससे भी अधिक दुरवस्था करायेगी। यह जाति बहुत क्रूर होती है। अथवा इससे भी अधिक जो

वदंस्तु पुनर्न मोक्ष्य एवाहमनया। अपि च यद्दिव्यलोकभ्रंशो यन्मर्त्यलोके जन्म यत्तिर्यग्जातौ पतनं यच्चाण्डालहस्तागमनं यच्चेदमेवंविधं पञ्जरबन्धदुःखं सर्व एवायमनियतेन्द्रियत्वस्यैव दोषः। तत्किमेकया वाचा। सर्वेन्द्रियाण्येव नियमयामि।' इति निश्चित्य मौनग्रहणमकरवम्। आलप्यमानोऽप्यातर्ज्यमानोऽप्याहन्यमानोऽपि त्रुट्यमानोऽपि च बलान्न किंचिदप्यवदम्। केवलमुच्चैश्चीत्कारमेवामुञ्चम्। उपनीतेऽपि च पानाशने तं दिवसमनशनेनैवात्यवाहयम्। अन्येद्युश्चातिक्रामत्यशनकाले मे दूयमाने हृदये च सा स्वपाणिनोपनीय नानाविधानि पक्वान्नानि च फलानि सुरभिशीतलं च पानीयमप्रतिपन्नतदुपभोगं मामारोपितलोचना स्निह्यन्तीवावोचत्। 'क्षुत्पिपासार्दितानां हि पशुपक्षिणां निर्विचारचित्तवृत्तीनामुपनतेष्वाहारेष्वनुपयोगो न संभवत्येव। तद्यद्येवंविधस्त्वं कोऽपि भोज्याभोज्यविवेककारी पूर्वजातिस्मरोऽस्मदीयमाहारं परिहरसि तथापि तावद्भक्ष्यविवेकरहितायां तिर्यग्जातौ वर्तमानस्य ते किं

मोचयति। दिव्यलोकभ्रंशः–स्वर्गान्निपातः। मर्त्यलोके जन्म–वैशम्पायननाम्ना शुकनासभवने जन्म। तिर्यग्जातौ–शुकयोनौ। एवंविधम्–अतिकष्टजनकम्। अनियतेन्द्रियत्वस्य–इन्द्रियासंयमस्य। नियमयामि–संयतानि करोमि। आलप्यमानः–किमपि पृच्छ्यमानः पाठ्यमानो वा। आतर्ज्यमानः–भयं प्राप्यमाणः। आहन्यमानः–ताड्यमानः। त्रुट्यमानः–अंशतः खण्ड्यमानदेहः। बलात्–बलमास्थाय (प्रयासमाधाय) उपनीते–दत्ते। पानाशने–जले भोज्यद्रव्ये च। अनशनेन–भोजननिवृत्त्या। अन्येद्युः–परदिने। अशनकाले–भोजनसमये। अतिक्रामति–व्यतिगच्छति सति। सा–चाण्डालदारिका। स्वपाणिना–निजेन करेण। नानाविधानि–बहुप्रकारकाणि। सुरभि शीतलम्–सुगन्धं शीतं च। अप्रतिपन्नतदुपभोगम्–तानि फलानि तच्च जलमनुपभुञ्जानम्। आरोपितलोचना–मयि स्थापितदृष्टिः। स्निह्यन्ती–प्रीतिपरा। क्षुत्पिपासार्दितानाम्–बुभुक्षया जलाभिलाषेण च पीडितानाम्। निर्विचारचित्तवृत्तीनाम्–विचाररहितमनसाम्। उपनतेषु–उपस्थितेषु। आहारेषु–भोज्यपदार्थेषु। अनुपयोगः–उपभोगाप्रवृत्तिः। (इदं न संभवति यत् क्षुधा पिपासया चार्त्ताः पशुपक्षिणः उपनतमाहारं न भुञ्जीरन्, यतस्तेऽविचारप्रवृत्तिशीला भवन्तीत्यर्थः) एवंविधः–एतादृग्विचारपूर्वकप्रवृत्तिः। भोज्याभोज्यविवेककारी–भोज्यमभोज्यं च विविच्य प्रवर्त्तनशीलः। अस्मदीयम्–अस्माभिरुपनीतम्। भक्ष्याभक्ष्यविवेकरहितायाम्–इदं भक्ष्य-

---

होना है हो जाय, इन चाण्डालों के साथ बोलना अच्छा नहीं। हो सकता है मेरी चुप्पी से विरक्त होकर यह कदाचित् मुझे छोड़ भी दे। बोलने पर तो नहीं ही छोड़ेगी, दिव्यलोक से च्युत हुआ, मर्त्यलोक में जन्म लिया, पक्षि-जन्मग्रहण किया, चाण्डाल के हाथों में पड़ा, इस प्रकार पिंजड़े में फँसा, यह सारा मेरे इन्द्रिय-चाञ्चल्य का ही परिणाम है। अतः एकमात्र वाणी ही क्यों? सभी इन्द्रियों को नियन्त्रित करता हूँ। इस प्रकार निश्चय करके मैंने चुप्पी साध ली। बोलने पर, डरवाने पर, पीटे जाने पर, तोड़े जानेपर भी कोशिश करके मैं कुछ नहीं बोलता था। केवल जोरों से चीत्कार करने लगता था, खाने-पीने की सामग्री के उपस्थित रहने पर भी वह दिन मैंने अनाहार में ही बिता दिया। दूसरे दिन भोजन के समय बीत जाने पर मेरा हृदय बड़ा सन्तप्त था, उसी समय वह चाण्डालदारिका अपने हाथों में नाना प्रकार के कच्चे-पके फल तथा सुगन्ध शीतल जल ले आई, मुझे उन वस्तुओं का उपयोग नहीं करते देखकर उसने मेरे ऊपर नजर डालकर स्नेह से कहा— भूख-प्यास से पीड़ित पशु-पक्षियों की चित्तवृत्तियाँ विचारशून्य हो जाती हैं, यह असम्भव है कि वह उपस्थित आहार का उपयोग न करें। यदि तुम भोज्य अभोज्य के विवेक से युक्त पूर्व जातिस्मर्त्ता होने के कारण मेरे द्वारा दिये गये आहार का परित्याग करते हो तो तुम्हीं कहो पक्षिजाति में रहने पर तुम्हारे लिए क्या अभक्ष्य है कि तुम यह नहीं खाते हो। जो तुमने ऊँची जाति में जन्म लेकर ऐसे कर्म किये जिनके चलते तिर्यग्योनि में आ पड़े वह अब यह सब क्या सोच रहे हो। इस समय अपने कर्म के अनुकूल जाति में उत्पन्न होने पर तदनुसार आचरण करने से तुम्हें दोष नहीं लगेगा। जिनके लिए भक्ष्याभक्ष्य-नियम हैं उनके लिए भी आपत्तिकाल में अभक्ष्य-भक्षण करके भी प्राण-धारण विहित है। तुम्हारे लिए तो कहना ही क्या है? मैंने तुम्हारे आहार के लिए कुछ ऐसी चीज नहीं लाई है जिसके खाने से चाण्डाल के

वाभक्ष्यं यन्न भक्षयसि। येन चोत्कृष्टतमां जातिं प्राप्यात्मनैवेदृशं कर्म कृतं येन तिर्यग्योनौ पतितः स किमपरं विचारयसि। प्रथममेवात्मा न विवेके स्थापितः। अधुना स्वकर्मोपात्तजातिसदृशमाचरतस्ते नास्त्येव दोषः। येषां च भक्ष्याभक्ष्यनियमोस्ति तेषामप्यापत्काले प्राणानां संधारणमभक्ष्योपयोगेनापि तावद्विहितम्। किं पुनस्त्वादृशस्य। न चेदृशं किंचिदत्याहाराय मयोपनीतं यादृशेन चाण्डालाशनशङ्का समुत्पद्यते। फलानि तु ततोपि प्रतिगृह्यन्त एव। पानीयमपि चाण्डालभाण्डादपि भुवि पतितं पवित्रमेवेत्येवं जनः कथयति। तत्किमर्थमात्मानं क्षुधा पिपासया वा पातयसि। यन्न भक्षयस्यमूनि मुनिजनोचितानि वनफलानि न पिबसि वा पानीयम्' इति। अहं तु तेन तस्याश्चाण्डालजात्यनुचितेन वचसा विवेकेन च विस्मितान्तरात्मा तथेति प्रतिपद्य शापनिघ्नो घृणां परित्यज्य जीविततृष्णया क्षुत्पिपासोपशमायाशनक्रियामङ्गीकृतवानस्मि। मौनं तु पुनर्नात्याक्षम्।

एवमतिक्रामति च काले क्रमेण तरुणतामापन्ने मय्येकदा प्रभातायां यामिन्यामुन्मीलितलोचनोद्राक्षमस्मिन्कनकपञ्जरे स्थितमात्मानम्। सापि चाण्डालदारिका यादृशी

मिदमभक्ष्यमिति विचारेण वर्जितायाम्। तिर्यग्जातौ-पशुपक्षियोनौ। येन-त्वया। उत्कृष्टतमाम्-सर्वतः श्रेष्ठाम्। जातिम्-मुनियोनिम्। स त्वम्। (यस्त्वं मुनिजातिं प्राप्यापि स्वीयेनाविनयेन तिर्यग्योनौ पतितस्तस्य तव न युज्यते भक्ष्याभक्ष्यविवेक इत्यर्थः) प्रथमम्-पूर्वम्। विवेके स्थापितः-अकृत्याचुष्ठानान्निवारितः। स्वकर्मोपात्तजातिसदृशम्-स्वीयकृत्यप्राप्तशुकजात्यनुकूलम् (भक्ष्याभक्ष्यविवेकं विना) येषाम्-मनुष्यादियोनौ विद्यमानानाम्। भक्ष्याभक्ष्यनियमः-इदं भक्ष्यमिदमभक्ष्यमित्येवंरूपो नियमोऽस्ति। आपत्काले-विपदुपनिपातसमये। अभक्ष्योपयोगेनापि-अभक्ष्यभक्षणेनापि। प्राणानां सन्धारणम्-जीवितरक्षणम्। विहितम्-शास्त्रानुमोदितम्। किं पुनस्त्वादृशस्य—(येषां कृते भक्ष्याभक्ष्यनियमो विद्यते तेषामपि कृते यद्यापत्कालेऽभक्ष्यभक्षणेनापि प्राणधारणं शास्त्रानुमोदितं तदा त्वादृशस्य पक्षियोनौ वर्तमानस्य कृते आपत्कालेऽभक्ष्यभक्षणद्वारा प्राणानां रक्षणं शास्त्रविहितमिति किं वक्तव्यमित्यर्थः) चाण्डालाशनशङ्का-चाण्डालभक्ष्यश्वमांसादिभोजनाशङ्का। ततः-चाण्डालात्। प्रतिगृह्यन्ते-स्वीक्रियन्ते। चाण्डालभाण्डात्-चाण्डालपात्रात्। पातयसि-मारयसि। तस्याः-चाण्डालदारिकायाः। चाण्डालजात्यनुचितेन-चाण्डालजात्ययोग्येन। विवेकेन विचारेण च। विस्मितान्तरात्मा-आश्चर्यचकितमानसः। तथेति प्रतिपद्य-तथास्तु इति कथयित्वा तदुक्तमङ्गीकृत्य। शापनिघ्नः-शापपराधीनः सन्। जीविततृष्णया-जीवनस्य लोभेन। क्षुत्पिपासोपशमाय-बुभुक्षापिपासयोः शान्त्यै। अशनक्रियाम्-तदर्पितफलादिभोजनम्। अङ्गीकृतवान्-स्वीकृतवान्। न अत्याक्षम्-न त्यक्तवान्।

एवम्-अनेन प्रकारेण। काले अतिक्रामति-समये गच्छति सति। क्रमेण मयि तरुणतामापन्ने-क्रमशो मयि यौवनमुपारूढे सति। प्रभातायां यामिन्याम्-रात्रौ प्रभातभावेन परिणतायां सत्याम्। उन्मीलितलोचनः-विकसितनेत्रः। (अहम्) आत्मानमस्मिन् कनकपञ्जरेऽद्राक्षम्-स्वमत्र स्वर्णमये पञ्जरे दृष्टवान्। देवेन-भवता राज्ञा शूद्रकेण। सकलम्-समस्तम्। तत् पक्कणम्-मया तया चाध्युषित-

---

यहाँ खाने का दोष लगे। फल तो चाण्डाल से भी लिये ही जाते हैं। चाण्डाल के पात्र का पानी भी पृथ्वी पर गिरने के बाद पवित्र हो जाता है ऐसा लोग कहा करते हैं। फिर तुम क्यों भूख तथा प्यास से आत्मा को कष्ट दे रहे हो। यह मुनिजनोचित वन्यफल क्यों नहीं खाते हो, पानी क्यों नहीं पीते हो?

उसकी चाण्डाल-जात्यनुचित वचन तथा विवेक से आश्चर्यान्वित होकर मैंने तथास्तु कहकर शापवश घृणा छोड़कर जीने की इच्छा से भूख-प्यास मिटाने के लिये भोजन स्वीकार किया, फिर भी मौन मैंने नहीं ही छोड़ा।

इसी प्रकार से समय बीतता गया, क्रमशः मैं बड़ा होने लगा, एक दिन प्रभात होने पर मेरी आँखें खुलीं तो मैंने अपने को सोने के पिंजड़े में देखा, वह चाण्डाल-कन्या भी जैसी हो गई उसे आपने भी देखा ही है। वह सारा शबरालय अमरपुरी सी दीखने लगी। मेरे हृदय में वर्तमान चाण्डालपुरी-निवास का उद्वेग दूर हो

तादृशी देवेनापि दृष्टैव। सकलमेव तत्पक्कणममरपुरसदृशमालोक्य चापगतचाण्डालवसतिसंवेगो विस्मितान्तरात्मा किमेतदिति कुतूहलात्प्रष्टुकामो यावन्न परित्यजाम्येव मौनं तावदेषा मामादाय देवपादमूलमायाता। तत्केयं, किमर्थमनया चाण्डालतात्मनः ख्यापिता, किमर्थं वाहं बद्धः, बद्धो वा किमर्थमिहानीतः' इत्यत्र वस्तुन्यहमपि देव इवानपगतकुतूहल एव' इति।

राजा तु तच्छ्रुत्वा समुपजाताभ्यधिककुतूहलस्तदाह्वानाय पुरःस्थितां प्रतीहारीमादिदेश। नचिरादेव तयोपदिश्यमानमार्गा प्रविश्य सा पुरस्तादूर्ध्वस्थितैव राजानमभिभवन्ती धाम्ना प्रागल्भ्येन बभाषे। 'भुवनभूषण रोहिणीपते ताराररमण कादम्बरीलोचनानन्दचन्द्र, सर्वस्त्वयास्य दुर्मतेरात्मनश्च पूर्वजन्मवृत्तान्तः श्रुत एव। अत्रापि जन्मनि यथायं निषिद्धोपि पित्रा कामरागान्धः पितुराज्ञामुल्लङ्घ्य वधूसमीपं प्रस्थितः तथाप्यनेन स्वयमेव कथितम्। तदहमस्य दुरात्मनो जननी श्रीः। तथा प्रस्थितमेनं दिव्येन चक्षुषा दृष्ट्वास्य पित्राहं समादिष्टास्मि। 'सर्व एव ह्यविनयप्रवृत्तोनुतापाद्विना न निवर्तते। तदयं ते तनयः कदाचिदस्या अपि तिर्यग्जातेरधस्तात्पतति तद्यावदिदं कर्म न परिसमाप्यते तावदेनं मर्त्यलोक एव बद्ध्वा धारय। यथा चानुतापोस्य भवति तथा प्रतिविधेयमस्य'

पूर्वं शबरालयम्। अमरपुरसदृशम्–स्वर्गतुल्यम्। अपगतचाण्डालवसतिसंवेगः–चाण्डालवसतिरियमिति दुःखान्मुक्तः। विस्मितान्तरात्मा–आश्चर्यितहृदयः। कुतूहलात्–उत्कण्ठावशात्। यावत् मौनं नैव परित्यजामि–अहं यावन्मौनं नैव परित्यक्तवान् (यावन्नैवैतादृक्परिवर्तनकारणं पृष्टवान्) देवपादमूलम्–भवत्समीपम्। आत्मनश्चाण्डालता ख्यापिता–स्वस्य चाण्डालभावः प्रथितः। अपगतकुतूहलः–अशान्तौत्सुक्यः। इयं का, किमर्थमियमात्मनश्चण्डालभावं प्रथितवती, किमर्थं मां बद्धवती, किमर्थं च मामिहानीतवतीत्यादिविषये भवान् यथा ज्ञातुमुत्सुकस्तथैवाहमपि, अहमपि किमपि न जानामीति भावः।

राजा–शूद्रकः। तत्–शुकस्य भाषितम्। समुपजाताभ्यधिककौतुकः–उत्पन्नाधिकौत्सुक्यः। तदाह्वानाय–चाण्डालदारिकाया आनयनाय। न चिरात्–शीघ्रम्। तया–प्रतीहार्या। उपदिश्यमानमार्गा–दर्श्यमानवर्त्मा। सा चाण्डालदारिका। ऊर्ध्वस्थिता–अनुपविष्टा। राजानम् धाम्ना अभिभवन्ती–शूद्रकं स्वतेजसा पराभवन्ती। प्रागल्भ्येन धृष्टतापूर्वकम्। भुवनभूषण–जगदलङ्कार। दुर्मतेरस्य–दुर्बुद्धेरस्य वैशम्पायनस्य। निषिद्धः–वारितः। कामरागान्धः कामुकतया प्रीत्या च नष्टबुद्धिः। वधूसमीपम्–पूर्वजन्मस्त्रिया महाश्वेतायाः पार्श्वम्। दुरात्मनः–दुष्टस्य। जननी–माता। तथा प्रस्थितम्–वधूसमीपं चलितम्। दिव्येन चक्षुषा–अलौकिकदृष्ट्या। अस्य पित्रा–जनकेन श्वेतकेतुना। अविनयप्रवृत्तः–कुपथचलितः। अनुतापाद्विना–अन्तरेण पश्चात्तापम्। न निवर्त्तते–अविनयप्रवृत्तेरिति शेषः। अस्या अपि तिर्यग्जातेः–वर्त्तमानाया अपि शुकयोनेः। अधस्तात्–नीचैः। इदं कर्म–एतदायुःसंवर्धकमनुष्ठानम्। बद्ध्वा–संयमय्य। प्रतिविधेयम्–कार्यम्। विनयाय–पश्चात्तापद्वारा सदाचारशिक्षायै। इदम्–शबरालयादिकम्। युवयोः–

गया। आश्चर्यचकित होकर पूछने की इच्छा से जब तक मैं मुंह खोलूँ तब तक यह मुझे लेकर आपके पास आई। अतः यह कौन है? क्यों इसने अपने को चाण्डाल घोषित कर रहा है? क्यों इसने मुझे बाँधा है? बांधकर यह मुझे यहाँ क्यों लाई है? इन सारी बातों में मैं भी आपकी ही तरह कुतूहलशाली हूँ॥'

राजा ने जब सारी बातें सुनीं तब उन्हें बड़ा कुतूहल हुआ, उन्होंने तत्काल आगे में खड़ी प्रतीहारी से उसे बुला लाने को कहा। अविलम्ब प्रतिहारी के साथ-साथ प्रवेश करके उसने खड़ी रहकर ही अपने तेज तथा दृढ़ता से राजा को अभिभूत करते हुए कहा हे भुवनभूषण, रोहिणीपते, ताराररमण, कादम्बरी की आँखों को आनन्दित करने वाले चन्द्र, आपने इस दुष्ट का तथा अपना सारा पूर्वजन्म-वृत्तान्त सुना ही है। इस जन्म में भी जैसे इस कामान्ध दुष्ट ने पिता की आज्ञा टालकर बहू के पास जाने की ठानी, यह भी इसने स्वयं कहा है। मैं इस दुष्ट की

इति । तदस्य विनयायेदं विनिर्मितं मया । सर्वमधुना तत्कर्म परिसमाप्तम् । शापावसानसमयो वर्तते । शापावसानेन च युवयोः सममेव सुखेन भवितव्यमिति त्वत्समीपमानीतो मयायम् । अत्रापि यच्चाण्डालजातिः ख्यापिता तल्लोकसंपर्कपरिहाराय । तदनुभवतां संप्रति द्वावपि सममेव जन्मजराव्याधिमरणादिदुःखबहुले तनू परित्यज्य यथेष्टजनसमागमसुखम् ।' इत्यभिदधानैव सा झटिति रणद्भूषणारवबधिरितान्तरिक्षमुत्फुल्ललोकलोचनोद्वीक्षिता क्षितेर्गगनमुदपतत् ।

अथ राज्ञस्तद्वचनमाकर्ण्य संस्मृतजन्मान्तरस्य 'सखे वैशम्पायनाख्यपुण्डरीक दिष्ट्या तुल्यकालमेवावयोः शापावसानं संजातम्' इत्यभिदधत एवाकर्णाकृष्टकार्मुको मकरकेतुरग्रतः परमास्त्रं कादम्बरीं कृत्वा जीवितापहरणाय प्रतिरोधक इव निरुद्धसर्वाशोन्तरा पदं चकार । तत्पदाक्रान्तिनिर्वासितमिव कादम्बरीशरणमुपजगामान्तःकरणम् ।

चन्द्रापीडास्मनस्तव, वैशम्पायनात्मनोऽस्य च । लोकसंपर्कपरिहाराय–सति लोकसम्पर्के कदाचिदस्य हृदि कोप्यन्यः कामादिदुरभिसन्धिरुदियादिति हेतोर्लोकसंबन्धं वारयितुम् । द्वावपि–अयं त्वं च । समम्–तुल्यकालम् । जन्म उत्पत्तिः, जरा वार्धकम्, व्याधिः रोगः, मरणम्–प्राणत्यागश्चेत्यादिदुःखबहुले दुःखप्रदघटनापूर्णे । तनू–मनुष्यदेहौ । यथेष्टजनसमागमसुखम्–स्वप्रियजनमिलनसमुद्भवमानन्दम् । अनुभवताम्–प्राप्नुताम् । इति अभिदधाना–एवं कथयन्ती । सा–श्रीरूपा चाण्डालदारिका । रणतां शब्दायमानानां भूषणानां देहधृतालङ्काराणाम् आरवैः शब्दैः बधिरितम् शब्दान्तरश्रवणासमर्थतां नीतम् अन्तरिक्षं यत्र कर्मणि तत्तथा । उत्फुल्लैः विस्मयविकसितैः लोकलोचनैः जननयनैर्वीक्षिता दृष्टा सती । क्षितेः–पृथिव्याः (भुवं विहाय) । गगनम्–आकाशम् । उदपतत्–उत्पतिता ।

तद्वचनम्–चाण्डालदारिकारूपेणोपस्थितायाः श्रियः उक्तिम् । आकर्ण्य–श्रुत्वा । संस्मृतजन्मान्तरस्य उद्भूतजन्मान्तरस्मरणस्य । दिष्ट्या–भाग्येन । तुल्यकालम्–समसमयम् । आवयोः–तव मम च । शापावसानम्–शापसमाप्तिः । आकर्णाकृष्टकार्मुकः–कर्णपर्यन्तं चापमाकर्षन् । मकरकेतुः–कन्दर्पः । अग्रतः–स्वपुरतः । परमास्त्रम्–अमोघमस्त्रम् । जीवितापहरणाय–प्राणान् हर्तुम् । प्रतिरोधक इव लुण्ठाकसमः । निरुद्धसर्वाशः–सकला दिशो निरुन्धन् । अन्तरा–मध्ये । पदं चकार उपस्थितः । यथा कश्चिद्धनान्यपहर्तुमिच्छुर्लुण्ठाकोऽमोघं किमप्यस्त्रमादाय सर्वा दिशश्च निरुध्य गृहाभ्यन्तरे पदं निधत्ते एवमेव कादम्बरीममोघमस्त्रं कृत्वा निरुद्धसर्वान्याभिलाषः कन्दर्पो राज्ञो जीवितापहरणेच्छया तदन्तः पदं चकारेत्यर्थः । तत्पदाक्रान्तिनिर्वासितम्–अन्तःकरणस्य पदं स्थानं हृदयम् तस्य आक्रान्त्या कामकृतेन आक्रमणेन निर्वासितम् निष्कासितं सत् अन्तःकरणं शूद्रकस्य हृदयं कादम्बरीशरणम् कादम्बरीरूपं स्थानदानेन रक्षकम् उपजगाम । (अन्योपि कश्चित् प्रतिरोधकेन स्वीये स्थाने आक्रान्ते सति कमपि

माता लक्ष्मी हूँ । उस प्रकार इसे बहू के पास जाते हुए दिव्य दृष्टि से देखकर इसके पिता ने मुझसे कहा कि सभी अविवेकी जन विना अनुताप के अपनी चाल नहीं छोड़ सकते । हो सकता है तुम्हारा यह बेटा कदाचित् इस पक्षियोनि से भी नीचे चला जाय, अतः जबतक यह क्रिया समाप्त नहीं हो जाती तब तक मृत्युलोक में ही घेर रखो । ऐसा उपाय करना जिससे इसे पश्चात्ताप हो । इसीको सीख देने के लिये मैंने यह सब किया है । अब वह क्रिया समाप्त हो गई है । अब शाप के समाप्त होने का समय है । शाप के समाप्त होने पर साथ ही तुम दोनों को सुख प्राप्त होगा इसीलिए इसे मैं तुम्हारे पास ले आई हूँ । यहाँ मैंने जो चाण्डाल जाति की घोषणा की थी सो लोकसम्पर्क बचाने के लिए । अब साथ ही तुम दोनों जन्म, जरा, व्याधि से दुःखपूर्ण देहों को छोड़कर अपने प्रिय जन के मिलन का सुख प्राप्त करो । इस तरह कहती वह लक्ष्मी झनझनाते हुए भूषण के शब्द से लोगों के कानों को बधिर बनाती हुई पृथ्वी से आकाश को उड़ गई, लोगों का विस्मय-विकसित नयन उसे देखते ही रह गये ।

उस बात को सुनते ही राजा को तत्काल जन्मान्तर का स्मरण हो आया, राजा ने कहा—हे मेरे वैशम्पायनाख्य पुण्डरीक नाम वाले मित्र, हम दोनों का शाप एक ही समय में आकर समाप्त हो रहा है, इस

तन्मार्गणाभिहतिभीता इव देहमुत्सृज्य निर्जग्मुरजडाः श्वासमरुतः। तद्बाणपक्षवाताहत-मिवाकम्पत तरलं शरीरम्। तच्छरशल्यभरालसोत्कण्टकिनी तनुरजायत। तद्विशिखरजो-रूषितमिव नयनयुगलमश्रुजलमुत्ससर्ज। आपाण्डुतां च सद्यो वदनलावण्यमयासीत्। तद्गुणध्वानाकर्णनोद्वेजितमिव हृदयवेदनाकूणितत्रिभागं नयनयुगलमभवत्। अन्तर्ज्व-लिष्यतो मदनदहनस्य धूमोपहतमिव वेपमानमधरकिसलयं शोषमगात्। तत्तापविरस-माननान्निष्पीडितं सरागं हृदयमिव ताम्बूलमपतत्। आर्द्रस्य दारुणो द्रव इव दह्यमानस्या-ङ्गेभ्यो निरगमत्स्वेदः। मदनशरकीलितानीव तावत्तैव क्षणेनाङ्गानि परवशान्यजायन्त।

शरणं गच्छति, तथैव शूद्रकस्य हृदयमपि कामेनाक्रम्य स्वस्थानान्निर्वास्यमानं सत् कादम्बरीं शरणमुपजगामेत्यर्थः) तन्मार्गणाभिहतिभीताः—कामबाणप्रहारसंत्रस्ताः इव अजडाः उष्णाः चेतनाश्च श्वासमरुतः निश्वासवायवः देहमुत्सृज्य विहाय निर्जग्मुः। (केनचित् प्रतिरोधकेन आक्रमणे कृते सति यथा तदाक्रमणविषयगृहे स्थिताः चेतनावन्तः प्रहारभीताः सन्तस्तद्गृहं विहाय क्वचिदन्यत्र पलायन्ते तद्वदमी उष्णाः श्वासमरुतः कामबाणाघातभीता इव सन्तः शूद्रकस्य देहं विहाय निर्गताः, कामाक्रमणे शूद्रक उष्णं निशश्वास इत्याशयः) तद्बाणपक्षवाताहतम्—कामबाणानां ये पक्षवाताः पक्षदेशोत्थिता वायवस्तैः आहतम् कृताघातम् इव तरलं चञ्चलं शूद्रकस्य शरीरम् अकम्पत—कम्पतेस्म। तच्छरशल्य-भरेण—कीलरूपतां गतेन कामबाणनिवहेन अलसा आलस्यं गता एवम् उत्कण्टकिनी सरोमाञ्चा च अजायत तनुः शरीरम्। तद्विशिखानाम् पुष्पस्वरूपाणां कामबाणानां रजोभिः परागैः रूषितम् पूर्णमिव नयनयुगलम् अक्षिद्वयम् अश्रुजलम् उत्ससर्ज (अन्यस्यापि नयनं धूलिपाते जातेऽश्रु विसृजति, तथैव शूद्रकस्यापि नयनद्वयं कामबाणभूतपुष्पपरागरूषितं सत् नयनजलमुत्ससर्जेत्याशयः) सद्यः तत्कालम् वदनलावण्यम् मुखस्य सौन्दर्यम् आपाण्डुताम् पाण्डुरवर्णताम् अयासीत्। तद्गुणध्वानाकर्णनोद्वे-जितम्—कामचापज्याशब्दश्रवणघतोद्वेगम् इव हृदयवेदनाकूणितत्रिभागं मनोव्यथावक्रीभूततृतीयांशम् अभवत् तदीयं नयनयुगलम् नेत्रद्वयम्। अन्तर्ज्वलिष्यतः—हृदये दाहं जनयिष्यतः मदनदहनस्य कामाग्नेः धूमोपहतम् धूमेनाहतं सत् वेपमानं कम्पमानम् शूद्रकस्य अधरकिसलयम् पल्लवतुल्योऽधरः शोषमगात्—शुष्कतामभजत्। (यथा कुत्रचनवनवृक्षाधोभागेऽवस्थाप्य तृणगणं यदि तत्र वह्निः क्षिप्यते तदा तत्र प्रज्वलिष्यतो वह्नेः प्रथमं धूम उदेति, तेन धूमेन चाहतस्तत्किसलयः कम्पते शुष्यति च, तथैव शूद्रकस्याप्यधरकिसलयं हृदये ज्वलितस्य कामाग्नेर्धूमाहतमिव कम्पमानं शुष्यतिस्मेति तात्पर्यम्) तत्तापविरसम् कामाग्निसन्तापेन वैरस्यं गतम् निष्पीडितं कामेन पीडितं हृदयमिव सरागं ताम्बूलम् आननात् अपतत्—यथा किमपि विरसं वस्तु निष्पीडितं सत्सरागं जायत एवमेव कामपीडितं सत्सराग-तामापन्नं हृदयमिव ताम्बूलं शूद्रकस्याननादपतदिति तुलना। आर्द्रस्य सरसस्य (अशुष्कस्य) दारुणः काष्ठस्य द्रवः रस इव दह्यमानस्य कामाग्निना सन्तप्यमानस्य तस्य शूद्रकस्य अङ्गेभ्यः स्वेदो निरगमत् निर्गतः। मदनशरकीलितानि कामबाणदिग्धानि अङ्गानि शूद्रकस्य शरीरावयवाः तावत्तैव क्षणेन परवशानि स्वयंकिमपि कर्त्तुमशक्तानि अजायन्त जायन्तेस्म। कादम्बरीं पुरस्कृत्य—कादम्बरीं

प्रकार कहते हुए राजा के आगे कान तक धनुष खींचे हुए कादम्बरी को परमास्त्र बनाने वाला प्राण लेने के लिए लुटेरे की तरह चारों ओर घेरकर कामदेव ने उसके हृदय में प्रवेश किया, कामदेव के हृदय में प्रवेश करने पर उसके द्वारा निर्वासित किया गया सा राजा का अन्तःकरण कादम्बरी की शरण में चला गया। कन्दर्प के बाणों के आघात से डरे हुए श्वासवायु देह को छोड़कर निकल पड़े। कन्दर्प के बाणों के पक्षों से कम्पित शरीर चञ्चल हो उठा। कन्दर्प के बाणों से सशल्य सारी देह रोमाञ्चित हो गई। कन्दर्प के बाणरूप पुष्पों के पराग से रूषित होकर आँखें जल बरसाने लगीं। तत्काल मुख का सौन्दर्य पीला पड़ गया, कामदेव के धनुष की ध्वनि सुन कर उद्विग्ननयन हृदय की वेदना से आकुञ्चित हो उठे। भीतर जलते हुए मदन दहन के धूम से उपहत होकर काँपता हुआ अधर-पल्लव शुष्क हो गया। भीतर जलते हुए मदन दहन के ताप से विरस ताम्बूल मुँह से गिर पड़ा—ऐसा मालूम पड़ा मानो उसका सराग हृदय ही गिर पड़ा

तथा च कादम्बरीं पुरस्कृत्य कुसुमधन्वनायास्यमानस्य तदवयवरूपशोभाविनिर्जितानि तापापहरणक्षमाण्यपि तस्याकिंचित्कराण्यभवन्। तथा हि। कमलकिसलयानि पाणिपादेन, कुवलयदलस्रजो दृष्ट्या, मणिदर्पणाः कपोलेन, मृणालानि बाहुलतिकया, शशाङ्करश्मयो नखमयूखैः, घनसारधूलिः स्मितप्रभया, मुक्तादामानि दशनकिरणैः, अमृतकरबिम्बं मुखेन, ज्योत्स्ना लावण्येन, मणिवेदिकाकुट्टिमानि नितम्बेन। एवं च विहतसर्वबाह्यप्रक्रियस्य, हृदयेप्यसुखायमानसकलान्यविनोदस्य, तामेवाभिध्यायतः, तामेवोत्प्रेक्षमाणस्य, तामेवाभिलषतः, तामेव पश्यतः, तामेवालपतः, तामेवालिङ्गतः, तया सह तिष्ठतः, तां प्रकोपयतः, तामनुनयतः, तस्याः पादयोः पततः, तया सह केलिं कुर्वतः, तां रममाणस्य, मुक्तसर्वान्यक्रियस्य, दिवाप्यनुन्मीलितलोचनस्य, रात्रावप्यनुपजातनिद्रस्य, सुहृज्जनमप्यसंभाषयतः, कार्योपगतानप्यजानतः, गुरुजनमप्यनमस्यतः, धर्मक्रियामप्यकुर्वाणस्य, सुखादप्यनर्थिनः,

---

निमित्तं कृत्वा। कुसुमधन्वना-कामदेवेन। आयास्यमानस्य-खेदं प्राप्यमाणस्य (तस्य शूद्रकस्य) तदवयवरूपशोभाविनिर्जितानि-तत्तदङ्गसौन्दर्यपराजितानि (तानि तानि वस्तूनि-कमलकिसलयकुवलयदलस्रङ्मणिदर्पणमृणालशशाङ्करश्मिघनसारधूलिमुक्तादामामृतकरबिम्बज्योत्स्नामणिवेदिकाकुट्टिमरूपाणि तापापहरणसाधनतया प्रथितान्यपि तदवयवरूपशोभापराजितत्वेन तस्य कृते) तापापहरणक्षमाणि-तापापनोदनसमर्थानि सन्त्यपि। अकिञ्चित्कराणि-व्यर्थानि। तदवयवरूपशोभापराजितानि तानि तानि वस्तूनि तस्य तापमपनेतुमक्षमाण्यजायन्तेत्युक्तं तत्र केनाङ्गेन स्वरूपशोभया किं वस्तु जितमिति प्रपञ्चयति-कमलकिसलयानि पाणिपादेनेत्यादिना-कमलकिसलयानि-कमलदलानि। पाणिपादेन-हस्तपादाभ्याम्। पाणी च पादौ च इति द्वन्द्वे-'द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम्' इत्येकवद्भावः। कुवलयदलस्रजः-नीलकमलदलमालाः। मृणालानि-बिसदण्डाः। शशाङ्करश्मयः-चन्द्रकराः। घनसारधूलयः-कर्पूरपरागाः। स्मितप्रभया-हासकान्त्या। मुक्तादामानि-मौक्तिकमाल्यानि। दशनकिरणैः-दन्तकान्तिभिः। अमृतकरबिम्बम्-चन्द्रबिम्बम्। ज्योत्स्ना-कौमुदी। मणिवेदिकाकुट्टिमानि-मणिनिर्मिता भूमयः। एवं च-पूर्वोक्तानां शैत्योपचारसाधनवस्तूनामकिञ्चित्करतायां जातायाम्। विहतसर्वबाह्यप्रक्रियस्य-बाह्यक्रियाविरहितस्य। असुखायमानान्यसकलविनोदस्य-अन्यं सकलमपि विनोदमसुखं मन्यमानस्य। ताम्-कादम्बरीम्। अभिध्यायतः-चिन्तयतः। उत्प्रेक्षमाणस्य-ध्याने पश्यतः। प्रकोपयतः-केनापि तत्प्रतिकूलाचरणेन क्रोधं प्रापयतः। अनुनयतः-कोपापनयाय प्रसादयतः। मुक्तसर्वान्यक्रियस्य-त्यक्तसकलेतरव्यापारस्य। अनुन्मीलितलोचनस्य-मुद्रितनेत्रस्य। अनुपजातनिद्रस्य-अस्वपतः। असंभाषयतः-अनालपतः। कार्योपगतान्-किमपि कार्यमुद्दिश्यागतान्। अजानतः-अमनस्कतयाऽपरिचिन्वतः। अनमस्यतः-अप्रणमतः। अनर्थिनः-विरक्तस्य। अपेतलज्जस्य-निर्लज्जस्य। विगलितस्नेहस्य-

---

हो। गीले काठ के रस की तरह जलते हुए अङ्गों से पसीना बह चला। मदनबाण से कीलित उसके अङ्ग उतनी ही देर में परवश हो गये। कादम्बरी को आगे करके कन्दर्प द्वारा कष्ट में डाले गये राजा के अवयवों की शोभा से पराजित होने के कारण तापहरणोपयोगी वस्तुएँ भी राजा के लिए किसी काम की नहीं थीं। कमल के पत्तों को हाथ-पैर से, नीलकमल को दृष्टि से, मणिदर्पण को कपोल से, मृणाल को बाहुदण्ड से, चन्द्रकिरणों को नखकान्ति से, कर्पूरधूलि को मुस्कुराहट की कान्ति से, मुक्तापंक्ति को चन्द्रप्रभा से, चन्द्रबिम्ब को मुख से, चन्द्रिका को लावण्य से तथा मणिवेदिकाकुट्टिम को नितम्ब से पराजित किया था। सारी बाह्यक्रिया समाप्त हो गई, हृदय में अन्य प्रकार के विनोद भले नहीं लगने लगे उसीका ध्यान करते, उसी को देखते, उसी को चाहते, उसीको निहारते, उसी से बातें करते, उसी का आलिङ्गन करते, उसी के साथ रहते, उसी को रुठाते, उसी को मनाते, उसी के पैरों पड़ते, उसी के साथ क्रीड़ा करते, उसी से खेलते हुए राजा ने सारी दूसरी क्रिया छोड़ दी थी, दिन में उनकी आँखें नहीं मुंदती थीं, रात में भी उन्हें नींद नहीं आती थी, वह मित्रों से भी बातें नहीं करते थे, कार्यवश आने वालों को भी नहीं पहचानते थे, गुरुओं को भी नमस्कार नहीं करते थे, धर्म कार्य भी नहीं करते थे, सुख भी नहीं

दुःखादप्यनुद्विजमानस्य, मरणादप्यबिभ्यतः गुरुभ्योऽप्यपेतलज्जस्य, आत्मन्यपि विगलितस्नेहस्य, किं बहुना, कादम्बरीसमागमेऽप्यनुद्यमस्य केवलमस्य मुहुर्मुहुर्मूर्च्छोपगमच्छलेन जीवितोत्सर्गयोग्यामिव कुर्वतो विहस्तेनापि प्रतिपन्नविविधोपकरणेन गलितनयनपयसाप्युच्छुष्काननेन मुषितवचनावकाशेनापि वैशम्पायनाक्रोशनपरेणानवरतमाचरणाद्विकीर्णचन्दनचर्चेन चरणतलनिवेशिताद्रारविन्दिनीदलेन करार्पितकर्पूरक्षोददन्तुरतुषारखण्डेन हृदयविनिहितहिमार्द्रहारदण्डेन कपोलतलस्थापितस्फटिकमणिदर्पणेन ललाटतटघटितचन्द्रमणिनांसदेशावस्थापितमृणालनालेन कदलीदलव्यजनवाहिनानर्तिततालवृन्तेन जलार्द्रानिलसंचारिणा कुसुमतल्पकल्पनाकुलेन धारागृहजलयन्त्रप्रवर्तनाहृतार्तिना मणिकुट्टिमक्षालनाग्रहस्तेन च सजलकिञ्जल्कजलजोपचारप्रकरसंभ्रान्तेन च शिशिर-

---

प्रीतिवर्जितस्य। मुहुर्मुहुर्मूर्च्छोपगमच्छलेन–बारं-बारं मूर्च्छाप्राप्तिव्याजेन। जीवितोत्सर्गयोग्याम्–प्राणत्यागाभ्यासम्। योग्याशब्दस्याभ्यासार्थे प्रयोगो यथा–रघुवंशे :—'अपरः प्रणिधानयोग्यया मरुतः पञ्च शरीरगोचरान्' नैषधीयचरिते च—'पुनःपुनस्तद्युवयुग्विधाता योग्यामुपास्ते न युवां युयुक्षुः'। विहस्तेन–आकुलेन (कररहितेन) आकुलार्थे विहस्तशब्दप्रयोगो यथा—'रामापरित्राणविहस्तयोधं सेनानिवेशं तुमुलं चकार' इति रघुवंशे। प्रतिपन्नविविधोपकरणेन–गृहीतनानासाधनेन। (विहस्तः साधनं गृह्णातीति विरोधः, विहस्तशब्दस्याकुलार्थकत्वेन तत्परिहारश्च बोध्यः) गलितनयनपयसा–स्रवदश्रुणा। उच्छुष्काननेन–शुष्कमुखेन। मुषितवचनावकाशेन–लुप्तवागवसरेण। वैशम्पायनाक्रोशनपरेण–वैशम्पायननिन्दापरायणेन। आचरणात्–पाददेशमारभ्य। विकीर्णचन्दनचर्चेन–दत्तचन्दनलेपेन। चरणतलनिवेशिताद्रारविन्दिनीदलेन–पादतलस्थापितरसवत्कमलिनीपत्रेण। करयोः अर्पितः स्थापितः कर्पूरक्षोददन्तुरः कर्पूरचूर्णपूर्णः तुषारखण्डः हिमशकलं येन तादृशेन। हृदये वक्षसि विनिहितः स्थापितः हिमार्द्रः प्रालेयशीतलः हारदण्डो मुक्तामाल्यं येन तथोक्तेन। कपोलयोः गण्डयोः तले स्थापितौ रक्षितौ स्फटिकमणिदर्पणौ येन तथोक्तेन। ललाटतटे कपालभागे–घटितः सन्निधापितः चन्द्रमणिः चन्द्रकान्तमणिर्येन तादृशेन। अंसदेशे स्कन्धभागेऽवस्थापितम् मृणालनालं बिसदण्डो येन तथोक्तेन। कदलीदलव्यजनवाहिना–कदलीपत्रेण वीजयता। आनर्त्तिततालवृन्तेन–तालीदलव्यजनं सञ्चारयता। जलार्द्रानिलसंचारिणा–तालवृन्तकृतव्यजनचालनपरेण। कुसुमतल्पकल्पनया पुष्पशय्यारचनया व्यग्रेण। धारागृहयन्त्रप्रवर्त्तनेन–धारागृहस्थितजलयन्त्रसञ्चालनद्वारा हृतार्त्तिना पीडाहरणपरायणेन। मणिकुट्टिमक्षालने अग्रहस्तो हस्ताग्रभागो यस्य तादृशेन। सजलकिञ्जल्कम् जलपूर्णकिञ्जल्कोपेतं यज्जलजं कमलं तेन य उपचारप्रकारः तत्र संभ्रान्तेन वेगं प्रवृत्तेन। शिशिरं शीतलं यद् भूगृहम् भुवोऽभ्यन्तरे निर्मितं गृहं तदभ्यन्तरस्य

चाहते थे, दुःख से भी नहीं घबराते थे, मरण से भी नहीं डरते थे, गुरुओं से भी नहीं लज्जित होते थे, आत्मा से भी स्नेह नहीं करते थे। अधिक क्या कहा जाय, वह कादम्बरी से मिलने का भी उद्योग नहीं करते थे, केवल बार-बार मूर्च्छा के द्वारा वह प्राण-त्याग करने का अभ्यास कर रहे थे। उनके परिजन व्याकुल होकर भी नाना प्रकार के उपकरण इकट्ठा कर रहे थे, आँखों से पानी के बहते रहने पर भी उनके मुख शुष्क थे। बोलने का समय नहीं था फिर भी वह वैशम्पायन को कोसा करते थे, सर्वदा राजा की देह पर चरण से सिर तक वह चन्दन लेप किया करते थे, चरणों के नीचे गीले कमलपत्र रखा करते थे, कर्पूरलिप्त तुषार का टुकड़ा हाथ पर रखते थे, हृदय पर पाले के जैसा शीतल हार पहनाते थे, कपोल पर मणिदर्पण स्थापित करते थे, ललाट पर चन्द्रकान्तमणि तथा कन्धे पर मृणालदण्ड रखते थे, कदलीदल तथा तालवृन्त से हवा किया करते थे, ठण्डी हवा किया करते थे, फूल की शय्या करने में व्यग्र, धारागृह में जलयन्त्र प्रवृत्त कर वह राजा की आर्तिहरण करना चाहते थे, मणिकुट्टिम को धोते थे, गीले किञ्जल्कों वाले कमल से उपचार करने में व्यस्त थे, भूगर्भगृह की देखभाल किया करते थे, उद्यानवापी के पास बने लतामण्डप को सींचकर सन्तापहारी बनाते तथा चन्दनरस और कर्पूर से शीतल जल का आश्रय देने में उद्यत रहा करते थे। इस प्रकार परिजनों द्वारा उपचारों के किए जाने पर भी राजा की

भूगृहाभ्यन्तरप्रत्यवेक्षणदक्षेण चोद्यानदीर्घिकातटलतागहनमण्डपसेकसंतापहारिणा च मलयजरसचन्द्रार्द्रजलचन्द्राश्रयावधानदानोद्यतेन चाप्तपरिजनेनोपचर्यमाणस्यापि काष्ठीभूतदेहस्य दाहक्षमो झटित्येवारुरोह परां कोटिं कामानलो राज्ञ एव तुल्यावस्थस्य महाश्वेतोत्कण्ठया पुण्डरीकात्मनो वैशम्पायनस्य च।

तस्मिन्नेव चान्तरे तत्संधुक्षणायेव प्रवर्तयन्सरसकिसलयलतालास्योपदेशदक्षं दक्षिणानिलम्, आलोलरक्तपल्लवप्रालम्बान् कम्पयन्नशोकशाखिनः, वाञ्छितमुकुलमञ्जरीभरेणानमयन् बालसहकारान्, उत्कोरकयन्कुरवकैः सह बकुलतिलकचम्पकनीपान्, आपीतयन्किंकिरातैः ककुभो, विकिरन्नतिमुक्तकामोदम्, उद्दामयन्किंशुकवनानि, निरङ्कुशयन् कामिजनमनांसि, निर्मूलयन्मानम्, अपमार्जयंल्लज्जाम्, अपाकुर्वन्कोपम्, अपनयन्ननुनयव्यवस्थाम्, आस्थापयन्हठचुम्बनालिङ्गनरतस्थितिम्, समुल्लासयन्मकरध्वजरक्तध्वजा-

---

अभ्यन्तरभागस्य प्रत्यवेक्षणे सततावेक्षणे दक्षेण निपुणेन। उद्यानदीर्घिकातटे-पुष्पवाटिकावस्थितवापीतीरे यल्लतागहनं घनीभूता लता तेन यो मण्डपस्तस्य सेकेन जलाभ्युक्षणेन संतापहारिणा सन्तापशमनपरेण। मलयजरसे चन्दने, चन्द्रे चन्द्रकिरणे, आर्द्रे शीतले वस्तुनि, जले पानीये, चन्द्राश्रये चन्द्रमसोऽव्यवधायके स्थाने च यदवधानं ध्यानं तस्य दाने उद्यतेन-पूर्वोक्तवस्तुभिः राज्ञः संबन्धं सम्पादयितुं सततं सावधानेन। आप्तपरिजनेन-विश्वस्तभृत्यगणेन। उपचर्यमाणस्य-सेव्यमानस्य। काष्ठीभूतदेहस्य शुष्यच्छरीरस्य दाहक्षमः दाहं कर्तुं शक्तः। कामानलः-कामवह्निः। परां कोटिं परां काष्ठाम्। आरुरोह-आससाद। तुल्यावस्थस्य-समस्थितिकस्य। पुण्डरीकात्मनः-पुण्डरीकावतारस्य।

अस्मिन्नेव चान्तरे-एतस्मिन्नेव समये। तत्संधुक्षणाय-राज्ञः परां कोटिमारूढस्य कामाग्नेः प्रज्वालनाय। सरसकिसलयलतालास्योपदेशदक्षम्-नवपल्लवयुक्तलतानृत्यशिक्षाप्रदानतत्परम्। (नूतनपल्लवपूर्णलतानर्त्तनप्रवीणम्) दक्षिणानिलम्-दक्षिणं वायुम्। प्रवर्त्तयन्-प्रेरयन्। आलोलाः चलाः रक्ताः रक्तवर्णाः पल्लवाः किसलयानि एव प्रालम्बः आवरणं येषां तादृशान्-(रक्तचपलकिसलयावृतान्) अशोकशाखिनः अशोकतरून्। कम्पयन्-चलयन्। वाञ्छितमुकुलमञ्जरीभरेण-चिराभिलषितमञ्जरीसमूहेन सहकारान्-आम्रतरून् आनमयन्-नमितान् कुर्वन्। कुरवकैः पुष्पभेदैः सह बकुलतिलकचम्पकनीपान् तत्तत्पुष्पभेदान् उत्कोरकयन्-उद्गतकोरकान् कुर्वन्। किंकिरातैः पुष्पभेदैः ककुभः-दिशः आपीतयन्-ईषत्पीतवर्णाः कुर्वन्। अतिमुक्तकस्य तिनिशापरपर्यायस्य पुष्पभेदस्य आमोदं सुगन्धं विकिरन्-विस्तारयन्। किंशुकवनानि पलाशकाननानि उद्दामयन् पुष्पसमृद्ध्या संयोजयन्। निरङ्कुशयन्-स्वतन्त्रतां प्रापयन्। निर्मूलयन्-कामिनीमनोभ्यः समुत्पाटयन्। अपमार्जयन्-दूरीकुर्वन्। अपाकुर्वन्-अपसारयन्। अनुनयव्यवस्थाम्-प्रसादनस्य व्यवस्थाम् (सर्वासामेव मानिनीनां वसन्ते कामोद्रेकातिशयेन स्वयमेवापगतमानतायां जातायाम्-इह अनुनयव्यवस्थैवापनीतेत्युक्तम्) आस्थापयन्-दृढीकुर्वन्। हठचुम्बनस्य बलाच्चुम्बनस्य हठालिङ्गनस्य बलपूर्वकमाश्लेषस्य हठरतस्य बलाद्रतिप्रवृत्तेश्च स्थितिम् सत्ताम्।

देह सूखकर लकड़ी हुई जा रही थी, उसे दग्ध करने वाला कामानल पराकाष्ठा को पहुँच रहा था, उसी तरह महाश्वेता के विरह में उत्कण्ठित पुण्डरीक की भी हालत थी।

इसी बीच राजा को प्रज्वलित करने के लिये लताओं को नृत्य की शिक्षा-प्रदान करने में दक्ष दक्षिणानिल को प्रवृत्त करने वाला, चञ्चल रक्तवर्ण पत्रों से आच्छादित अशोक वृक्षों को हिलाने वाला, अभिलषित मञ्जरीभार से छोटे-छोटे आम्रवृक्षों को झुकाने वाला, बकुल, तिलक, चम्पक वृक्षों के साथ-साथ नागकेसर वृक्ष को कोरकयुक्त करने वाला, किंकिरात वृक्षों से दिशाओं को पीताभ बनाने वाला, वञ्जुल वृक्ष की सुगन्ध को फैलाने वाला, किंशुक वन को बढ़ावा देने वाला, कामिजनों के हृदयों को निरङ्कुश, मान को निर्मूल, लज्जा को अपसारित, तथा कोप को दूर करने वाला, अनुनयव्यवस्था को दूर भगा कर हठ-चुम्बन-आलिङ्गन-सुरत आदि की मर्यादा का स्थापन करने वाला, कामदेव के रक्त ध्वज-सदृश प्रतीत होने वाले किंशुकों को विस्तारित करने वाला, समस्त

निव किंशुकानि, सकलमेव महारजतमयमिव रागमयमिव मदनमयमिवोन्मादमयमिव, प्रेममयमिवोत्सवमयमिवौत्सुक्यमयमिव जनयञ्जीवलोकम्, किसलयितसर्वकान्तारकाननोपवनतरुरुत्फुल्लचूतद्रुमामोदवासितदशाशान्तरो मधुमदमधुरकोकिलालापदुःखिताध्वगजनश्रुतिरनवरतमकरन्दसीकरासारदुर्दिनोन्मादितसकलजीवलोकहृदयो मदाकुलभ्रमद्भ्रमरझंकारकातरितविरहातुरमनोवृत्तिरात्मसंभवैकोल्लासकारी भरात्परावर्तत सुरभिमासः।

येन च कुसुमधन्वनः परमास्त्रेण मधुना पर्याकुलितहृदया कादम्बरी संप्राप्ते भगवतः कामदेवस्य महे महता प्रयत्नेन कथं कथमप्यतिवाहितदिवसा श्यामायमानदशदिशि सायाह्ने स्नात्वा निर्वर्तितकामदेवपूजा तस्य पुरश्चन्द्रापीडमतिसुरभिशीतलैः स्नापयित्वाम्भोभिरा चरणाद्विलिप्य मृगमदामोदिना हरिचन्दनेन सुरभिकुसुमस्रग्भिरुद्ग्रथितं कुन्तलकलापं कृत्वैककर्णार्पितसकिसलयाशोककुसुमस्तबककर्णपूरं कर्पूरकुसुमप्रायैः

(अत्र सर्वत्र हठपदं योजनीयं द्वन्द्वादौ श्रूयमाणत्वात्)। मकरध्वजरक्तध्वजान्–कामदेवस्य रक्तपताकाभिः सदृशान्। महारजतमयम्–पीताभतया स्वर्णमयम् (महारजतशब्दः स्वर्णार्थः, तथा शिशुपालवधे—'उच्चैर्महारजतराजिविराजितासौ दुर्वर्णभित्तिरिह सान्द्रसुधासवर्णा। अभ्येति भस्मपरिपाण्डुरितस्मरारेरुद्वह्निलोचनललाटललीलाम्'।) सकलमेव जीवलोकम्–रागमयम् प्रीतिमयम् जनयन्तं कुर्वन्तमिति वक्ष्यमाणेनान्वयः, एवमग्रेऽपि। किसलयिताः सञ्जातपत्राः सर्वे कान्तारस्य काननस्य उपवनस्य च तरवो यत्र तादृशः। उत्फुल्लस्य विकसितस्य चूतद्रुमस्य आम्रवृक्षस्य आमोदेन सुगन्धेन वासितं सुरभीकृतं दशाशान्तरं दशानामपि दिशानामभ्यन्तरभागो यत्र तादृशः। मधुनः पुष्परसस्य मदेन मादकतया मधुरेण माधुर्यपूर्णेन कोकिलालापेन कोकिलशब्देन दुःखिताः कष्टं गमिताः अध्वगानां वियोगिपान्थानां श्रुतयः कर्णा यत्र तादृशः। अनवरतं सततं मकरन्दसीकराणां पुष्परसबिन्दूनाम् आसारेण वर्षणेन यद्दुर्दिनं मेघाच्छन्नमहस्तेनोन्मादितानि विचारशून्यतां गमितानि सकलजीवलोकानां हृदयानि यत्र तथोक्तः। मदाकुलानां पुष्परसपानमत्तानां भ्रमताम् इतस्ततः सञ्चरताम् भ्रमराणां झङ्कारेण ध्वनिना कातरिता अधीरतां गमिता विरहातुराणां विरहपीडितानां जनानां मनोवृत्तिर्मानसी दशा यत्र तादृशः। आत्मसंभवैकोल्लासकारी–केवलस्य कामदेवस्य वृद्धिकरः। सुरभिमासः–वसन्तसमयः। भरात्–महता संरम्भेण। परावर्तत–समुपागतः।

कुसुमधन्वनः–कामदेवस्य। परमास्त्रेण–अमोघास्त्रस्वरूपेण। मधुना–वसन्तेन। पर्याकुलितहृदया–व्यग्रमानसा। भगवतः कामदेवस्य महे–कामोत्सवे चैत्रशुक्लत्रयोदश्यामनुष्ठीयमाने पर्वणि। संप्राप्ते–समागते सति। कथंकथमपि–केनापि प्रकारेण महता कष्टेन। अतिवाहितदिवसा–व्यतियापितदिनभागा। श्यामायमानदशदिशि–श्यामीभूतदशदिशे। सायाह्ने–सन्ध्याकाले। निर्वर्तितकामदेवपूजा–कृतकामार्चना। तस्य पुरः–सद्य आहूय पूजितस्य कामस्याग्रे। अतिसुरभिशीतलैः सुगन्धैः शीतस्पर्शैश्च। अम्भोभिः–जलैः। स्नपयित्वा–स्नानं कारयित्वा। मृगमदामोदिना–कस्तूरीसुगन्धयुक्तेन। हरिचन्दनेन–चन्दनरसेन। आचरणात्–पादपर्यन्तम्। विलिप्य–लेपयित्वा। (चन्द्रापीडस्य) कुन्तलकलापम्–केश-

---

जीवलोक को सुवर्णमय, रागमय, मदनमय, उन्मादमय, प्रेममय, उत्सवमय तथा औत्सुक्यमय बनाने वाला, सारे वन-उपवन को नवपल्लवपूर्ण बनानेवाला, विकसित आम्रवृक्ष की मञ्जरी की सुगन्ध से दशदिशावकाश को सुगन्धमय करता हुआ मतवाले कोयलों के आलाप से वियोगियों के कर्णविवर को कष्ट देनेवाला, सतत मकरन्दवृष्टि से समस्त जीवलोक के हृदयों को पागल बनानेवाला, मदमत्त भ्रमरों के झङ्कार से विरहातुरजनों की हृदयवृत्ति को कायर बनानेवाला स्वकृत उल्लासकारी वसन्त मास आ गया।

कन्दर्प के परमास्त्र उस वसन्त मास ने कादम्बरी के हृदय को व्याकुल कर दिया, कामदेव के उत्सव के दिन के आने पर कादम्बरी ने बड़े प्रयत्न से किसी तरह दिन बिताया, सायंकाल में दिशाओं के मलिन होने पर स्नान करके कादम्बरी ने कन्दर्प की पूजा की। उसके आगे शीतल सुगन्धित जल से चन्द्रापीड के शरीर को स्नान कराया, नख से शिखा तक चन्दन लेपा, उसके बालों में सुगन्धित फूल गूँथे, उसके एक कान में अच्छे पत्ते तथा

प्रसाध्याभरणविशेषैर्विस्मृतनिमेषापिबन्तीव भावार्द्रया दृशा सुचिरमालोक्योत्कण्ठानिर्भरा पुनः पुनर्निश्वस्योत्कम्पमाना साध्वसेन स्विन्नसर्वाङ्गी समुत्कण्टकिततनुरुच्छुष्यदधरवदना महाश्वेतावलोकनभयान्मुहुर्मुहुर्दिक्षु विक्षिप्तोच्चकितदृष्टिरतिचिरमिवोपसृत्य पुनः पुनः स्थित्वाविष्टेव परवती परित्याजिता बलाल्लज्जया सहाबलाजनसहजां भीतिं भगवता भुवनत्रयोन्मादकारिणा मन्मथेनात्मानमपारयन्ती संधारयितुमेकान्ते निःसहा सहसा तमभिपत्य मुकुलितनयनपङ्कजा जीवन्तमिव निर्भरं कण्ठे जग्राह।

चन्द्रापीडस्य तु तेनामृतसेकाह्लादिना कादम्बरीकण्ठग्रहेण सद्यः सुदूरगतमपि कण्ठस्थानं पुनर्जीवितं प्रत्यपद्यत। दिवसक्लमामीलितं कुमुदमिव शरज्ज्योत्स्नाभिपाता-दुच्छ्वसितमा बन्धनाद् हृदयम्। उषःपरामृष्टेन्दीवरमुकुललीलयोदमीलत्कर्णान्तायतं

भरम्। सुरभिकुसुमस्रग्भिः सुगन्धितपुष्पमाल्यैः उद्ग्रथितं-युक्तं कृत्वा। (तं चन्द्रापीडम्) एककर्णार्पितम् एकस्मिन् कर्णे स्थापितम् सकिसलयम् पत्रयुक्तम् यदशोककुसुमम् तस्य स्तवको गुच्छ एव कर्णपूरः कर्णाभरणं यस्य तं तथोक्तम्। कर्पूरकुसुमप्रायैः-कर्पूरपुष्पमयैः। आभरणविशेषैः-अलङ्कारभेदैः प्रसाध्य भूषयित्वा। विस्मृतनिमेषा-अपक्ष्मपाता सती। भावार्द्रया-स्नेहसिक्तया। आपिबन्तीव-सादरं पश्यन्तीव। सुचिरमालोक्य-चिरं दृष्ट्वा। उत्कम्पमाना-वेपमानशरीरा। साध्वसेन-लज्जया भयेन च। स्विन्नसर्वाङ्गी-सस्वेदसमस्तशरीरा। समुत्कण्टकिततनुः-सरोमाञ्चा। उच्छुष्यदधरवदना-शुष्कौष्ठमुखी। महाश्वेतावलोकनभयात्-कदाचिदिदं मम चौर्यं महाश्वेता पश्येदितिभयेन। दिक्षु विक्षिप्तोच्चकितचक्षुः-दिशासु चकितां दृशमुत्क्षिपन्ती। भुवनत्रयोन्मादकारिणा-त्रिभुवनं लुप्तधैर्यं कुर्वता। भगवता-सर्वसमर्थेन। मन्मथेन कामदेवेन। बलात्-स्वप्रभावातिशयं प्रकाश्य। लज्जया सह अबलासहजां स्त्रीस्वभावसिद्धां भीतिमपि त्याजिता त्यक्तुं प्रेरिता (कामेन लज्जां भीतिं च परित्यज्य, कादम्बरी) आत्मानं संधारयितुं प्रकृतौ स्थापयितुमपारयन्ती असमर्था सती। निस्सहा-विलम्बासहिष्णुः। एकान्ते-लोकान्तरशून्ये तत्र स्थाने सहसा-झटिति। तमभिपत्य-चन्द्रापीडाभिमुखं गत्वा। मुकुलितनयनपङ्कजा-मुद्रितनेत्रकमला। जीवन्तमिव-यथा सजीवः स्यात्तथा। निर्भरम्-गाढम्। कण्ठे जग्राह-कण्ठदेशे समालिङ्गितवती।

अमृतसेकाह्लादिना-अमृतसेचकवत्परमानन्दजनकेन। तेन-अनुभवैकवेद्येन। कादम्बरीकण्ठग्रहेण-कादम्बर्याः कृते कण्ठाश्लेषेण। सद्यः-तत्काले। सुदूरगतम्-अतिदूरगामि। जीवितम्-जीवनम्। प्रत्यपद्यत-परावृत्यागतम्। दिवसक्लमामीलितम्-दिनसन्तापमुद्रितम्। कुमुदम्-कैरवमिव। शरज्ज्योत्स्नाभिपातात्-शारदशशधरदीधितिसंपर्कात्। आबन्धनात्-नालपर्यन्तम्। उच्छ्वसितम्-विकसितम्। कर्णान्तायतम्-कर्णपर्यन्तविस्तृतम् चक्षुः नेत्रम् उषसा प्रातःप्रभया परामृष्टस्य स्पृष्टस्य इन्दीवरमुकुलस्य कमलकोरकस्य लीलया सादृश्येन उदमीलत्-विकसितम् (यथा प्रातःप्रभया स्पृश्यमानं कमलकोरकमुन्मीलति तथैव कादम्बरीकण्ठग्रहेण चन्द्रापीडस्य कर्णान्तायतं लोचनमुदमीलदिति भावः) अम्भो-

---

फूलों का कर्णपूर पहनाया, कर्पूर तथा फूलों से उसके अङ्गों को सजा कर निर्निमेष नयनों से उसे सादर देखती रही, भावार्द्र दृष्टि से उसे चिरकाल तक देखते रहने से वह उत्कण्ठित हो उठी, उसके सारे अङ्ग स्वेदपूर्ण तथा रोमाञ्चित हो गये, उसके ओठ सूखने लगे, कहीं महाश्वेता न देख ले इस भय से उसने चकित दृष्टि से चारो ओर देखा, वह चन्द्रापीड़ के समीप गई, कुछ देर खड़ी रही, फिर उसे भूतावेश सा हो आया, उसने लज्जा तथा स्त्री जनोचित भय का परित्याग कर दिया, भुवनत्रय को पागल कर देनेवाले कामदेव से वह अपने को नहीं रोक सकी, अधीर होकर चन्द्रापीड़ के ऊपर गिरकर नयनकमलों को मूँद कर जीवित की तरह चन्द्रापीड़ को जोरों से उसने गले लगा लिया।

अमृत सेक से आनन्दित करनेवाले कादम्बरी के उस कण्ठालिङ्गन से तत्काल चन्द्रापीड़ का जीवन दूर जाकर पुनः कण्ठदेश में लौट आया। दिन की गर्मी से मुद्रित कुमुद जैसे शरत्कालिक चन्द्रप्रभा से

चक्षुः। अम्भोरुहविभ्रमेण चाजृम्भत वदनम्। एवं च सुप्तप्रतिबुद्ध इव प्रत्यापन्नसर्वाङ्गचेष्टश्चन्द्रापीडस्तथा कण्ठलग्नां कादम्बरीं चिरविरहदुर्बलाभ्यां दोर्भ्यां गाढतरं कण्ठे गृहीत्वा वाताहतां बालकदलीमिव भयोत्कम्पमानाङ्गयष्टिमुद्गाढतरामीलिताक्षीं वक्षस्येव प्रवेष्टुमीहमानां न मोक्तुं न ग्रहीतुमात्मना पारयन्तीं श्रोत्रहृदयग्राहिणानुभूतपूर्वेण स्वरेणानन्दयन्नवादीत्।

'भीरु, परित्यज्यतां भयम्। प्रत्युज्जीवितोऽस्मि तवैवामुना कण्ठग्रहेण। त्वं खल्वमृतसंभवादप्सरसां कुलादुत्पन्ना। किं न स्मरसि तन्मे वचनमिदम्। तत्तेजोमयं वपुः स्वत एवाविनाशि विशेषतोऽमुना कादम्बरीकरस्पर्शेनाप्यायितमिति। तदेतावन्त्येव दिनानि पाणिना ते स्पृश्यमानोऽपि न यत्प्रत्युज्जीवितोऽस्मि तच्छापदोषात्। अद्य तु स मे द्वितीयवारं त्वदर्थमेवानुभूतदुर्विषहमदनज्वरदाहवेदनापरमदुःखस्य व्यपगतः शापः। परित्यक्ता सा मया त्वद्विरहदुःखदायिनी मानुषी शूद्रकाख्या तनुः। एषापि च तवास्यां रुचिरुत्पन्नेति

रुहविभ्रमेण-कमललीलया। वदनम्-मुखम्। अजृम्भत-विकसितं जातम्। सुप्तप्रतिबुद्धः-सुप्तोत्थितः। प्रत्यापन्नसर्वाङ्गचेष्टः-पुनरागतसकलावयवव्यापारः। कण्ठलग्नाम्-कृतकण्ठाश्लेषाम्। चिरविरहदुर्बलाभ्याम्-बहुकालिकविप्रलम्भकृशाभ्याम्। दोर्भ्याम्-बाहुभ्याम्। गाढतरम्-अतिगाढभावेन। वाताहताम्-वायुकम्पिताम्। बालकदलीम्-अप्रौढरम्भातरुम्। भयोत्कम्पमानाङ्गयष्टिम्-भीतिकम्पमानदेहलताम्। उद्गाढतरामीलिताक्षीम्-अतिप्रयत्नस्य मुद्रितनेत्राम्। आत्मना-स्वयम्। पारयन्तीम्-शक्नुवतीम्। श्रोत्रहृदयग्राहिणा-कर्णयोर्हृदयस्य चावर्जकेन।

भीरु-भयशीले। प्रत्युज्जीवितः-पुनर्जीवनं प्रापितः। कण्ठग्रहेण-कण्ठाश्लेषेण। अमृतसंभवात्-अमृतादुत्पन्नात्। मे-चन्द्रमसः। एतावन्ति दिनानि-एतावत्कालपर्यन्तम्। शापदोषात्-प्राक्तनशापप्रभावात्। द्वितीयवारम्-द्वितीयपर्याये। त्वदर्थमेव-तवैव कृते। अनुभूतं दुर्विषहस्य मदनज्वरदाहस्य कामसन्तापस्य वेदनया क्लेशेन परममुत्कटं दुःखं येन तादृशस्य। मे-चन्द्रमसः। व्यपगतः-समाप्तः। त्वद्विरहदुःखदायिनी-त्वद्वियोगकष्टदा। मानुषी-मनुष्ययोनिभवा। एषा-चन्द्रापीडसंज्ञा तनुः। अस्याम्-तनौ। रुचिः-प्रीतिः। त्वत्प्रीत्या-त्वत्स्नेहपारवश्येन। प्रतिपन्ना-पुनः स्वीकृता। तत्-तस्मात्। अयं

उच्छ्वसित हो उठता है उसी तरह चन्द्रापीड़ का हृदय आमूल उच्छ्वसित हो उठा। उषा से छुए गये कमल की तरह उसके कान तक फैले नयन उन्मीलित हो पड़े। उसका मुख कमल की तरह खिल पड़ा। सोकर उठे हुए की तरह चन्द्रापीड़ के सारे अङ्ग सचेष्ट हो गए, उसने वातकम्पित कदली की तरह काँपती हुई कण्ठलग्ना कादम्बरी को गले लगा लिया, कादम्बरी की आंखें जोरों से मुँदी हुई थीं, वह चन्द्रापीड़ के हृदय में पैठ जाना चाहती थी, वह स्वयं न पकड़ सकती थी न छोड़ सकती थी, उसी स्थिति में चन्द्रापीड़ ने कान तथा हृदय को आनन्दित करनेवाले अनुभूतपूर्व स्वर से कादम्बरी को कहा—

भीरु, छोड़ो भय को। तुम्हारे इस आलिङ्गन ने मुझे जिला दिया है। तुम अमृत से उत्पन्न होने वाली अप्सराओं के वंश में पैदा हुई हो। क्या तुम्हें मेरी वह बात याद नहीं है कि चन्द्रतेजोमय यह शरीर स्वतः अविनाशी है विशेषतः कादम्बरी के स्पर्श से सुरक्षित है। इतने दिनों तक तुम्हारे स्पर्श से भी मैं नहीं जी उठा वह शाप का दोष था। तुम्हारे लिए मैंने असह्य कामवेदना का अनुभव किया है, आज दूसरी बार मेरा शाप दूर हुआ है। तुम्हारे विरह में दुःख देनेवाले शूद्रक-शरीर का मैंने परित्याग कर दिया है। इस शरीर को मैं इसीलिये नहीं छोड़ रहा हूँ तुम्हारा इस पर प्रेम उत्पन्न हो गया है और तुमने इसे पाला है। अब यह लोक तथा चन्द्रलोक दोनों तुम्हारे चरणों में है। तुम्हारी सखी महाश्वेता का प्रियतम पुण्डरीक भी मेरे ही साथ विगतशाप हो रहा है। चन्द्रापीड़शरीरधारी चन्द्रमा इस प्रकार से कह ही रहे थे कि कपिञ्जल का हाथ पकड़े हुए पुण्डरीक आकाश से उतरता हुआ दीख पड़ा, उसके अङ्गों पर चन्द्रलोक में रहने के कारण अमृत की बूँदें

त्वत्प्रीत्या प्रतिपन्ना पालिता च। तदयं लोकश्चन्द्रलोकश्च ते द्वावप्यधुना चरणतलप्रतिबद्धौ। अपि च प्रियसखा अपि ते महाश्वेतायाः प्रियतमो मयैव सह विगतशापः संजातः।' इत्यभिदधत्येव चन्द्रापीडशरीरान्तरितवपुषि चन्द्रमसि चन्द्रलोकावस्थानलग्नममृतपरिमलमेव केवलमधिकमुद्वहन्नङ्गैरन्यतमस्तादृशेनैव वेषेण यादृशेन महाश्वेतौत्कण्ठ्योपरतस्तथैव कण्ठेनैकावलीं धारयंस्तथैवाकल्पनिःसहैरङ्गैस्तथैवापाण्डुक्षामकपोलवाहिना मुखेनाम्बरतलादवतरन्नदृश्यत कपिञ्जलकरावलम्बी पुण्डरीकः।

दृष्ट्वा च तं दूरत एवोन्मुक्तचन्द्रापीडवक्षःस्थला कादम्बरी स्वयमेव धावित्वा दत्तकण्ठग्रहां महाश्वेतां पुण्डरीकागमनमहोत्सवेन यावन्न वर्धयत्येव तावदवतीर्य पुण्डरीकः परमोपकारिणे चन्द्रापीडवपुषे शशाङ्कायाढौकत। चन्द्रापीडस्तु तं कण्ठे गृहीत्वाब्रवीत्। 'सखे पुण्डरीक यद्यपि प्राग्जन्मसंबन्धाज्जामातासि तथाप्यनन्तरजन्माहितसुहृत्स्नेहसद्भावेनैव मया सह वर्तितव्यं भवता।' इत्येवं च वदत्येव चन्द्रापीडे चित्ररथहंसौ दिष्ट्या वर्धयितुं केयूरको हेमकूटमगमत्। मदलेखापि धावमाना निर्गत्य मृत्युंजयजपव्यग्रस्य तारापीडस्य

लोकः—मर्त्यलोकः। चरणतलप्रतिबद्धौ-पादलग्नौ (वशगौ)। महाश्वेतायाः प्रियतमः-पुण्डरीकः। विगतशापः-निवृत्तशापः। चन्द्रापीडशरीरान्तरितवपुषि-चन्द्रापीडस्य शरीरे देहे अन्तरितं प्रच्छन्नभावेन स्थितं वपुः शरीरं यस्य तादृशे-चन्द्रापीडवपुराश्रित्य स्थिते इत्यर्थः। चन्द्रमसि-चन्द्रे। इति-एवम् पुण्डरीको निवृत्तशापो जात इत्येवंरूपं वचनम्। अभिदधति-कथयति सति। चन्द्रलोकावस्थानलग्नम्—चन्द्रलोके स्थित्या संसक्तम्। अमृतपरिमलम्—सुधासुगन्धम्। अधिकम्—पूर्वापेक्षयाऽधिकम्। उद्वहन्—धारयन्। अनन्यतमः—पूर्वावस्थातोऽप्यर्थमभिन्नः। महाश्वेतौत्कण्ठ्योपरतः—महाश्वेताया मिलनस्योत्कण्ठया मृतः। एकावलीम्—एकसरां मालाम्। आकल्पनिःसहैः—प्रसाधनविमुखैः। आपाण्डुक्षामकपोलवाहिना-आपाण्डुरं कृशं च कपोलं बिभ्रता। अम्बरतलात्—आकाशात्। अवतरन्—अवरोहणं कुर्वन्। कपिञ्जलकरावलम्बी—स्वमित्रस्य कपिञ्जलस्य हस्तं धारयन् (पुण्डरीकः) अदृश्यत—दृष्टः।

तम्—आकाशादवतरन्तं पुण्डरीकम्। दृष्ट्वा—साक्षात्कृत्य। उन्मुक्तचन्द्रापीडवक्षःस्थला—चन्द्रापीडालिङ्गनं परित्यज्य। दत्तकण्ठग्रहाम्—कृतकण्ठाश्लेषाम्। वर्द्धयति—प्रसन्नां करोति। परमोपकारिणे—सततं कृतोपकाराय। चन्द्रापीडवपुषे—चन्द्रापीडशरीरधारिणे शशाङ्काय—चन्द्राय। अढौकत—समीपमागतः। तम्—पुण्डरीकम्। प्राग्जन्मसंबन्धात्—पूर्वजन्मसंबन्धानुसारेण। अनन्तरजन्माहितसुहृत्स्नेहसद्भावेन—पश्चाद्भवार्जितमित्रभावनया। वर्त्तितव्यम्—व्यवहर्त्तव्यम्। चित्ररथहंसौ—तन्नाम्नाख्यातौ कादम्बरीमहाश्वेतयोः पितरौ। दिष्ट्या वर्धयितुम्—भाग्योदयस्य—चन्द्रापीडपुनःपुनरुज्जीवनपुण्डरीकागमनरूपस्य सूचनया प्रसादयितुम्। हेमकूटम्—चित्ररथराजधानीम्। मृत्युञ्जयजपव्यग्रस्य—मृत्युञ्जयनामकमन्त्रस्य जपे व्यग्रभावेन लग्नस्य। दिष्ट्या वर्द्धसे—सौभाग्यं ते वर्द्धते। वैशम्पायनेन समं युवराजः प्रत्युज्जीवितः—

झलक रही थीं, यही अधिकता थी, नहीं तो जिसी वेश में महाश्वेता की उत्कण्ठा में वह मरा था वही वेश था, उसी तरह गले में एकावली थी, उसी तरह उसका शरीर अप्रसाधित था, उसी तरह उसका कपोल दुर्बल तथा पाण्डु था।

दूर से ही पुण्डरीक को देखकर कादम्बरी ने चन्द्रापीड़ की छाती से अलग होकर स्वयं दौड़ी जाकर महाश्वेता को गले से लगाकर जबतक पुण्डरीक के आगमन-वृत्तान्त से उसे आनन्दित कर रही थी तब तक पुण्डरीक पृथ्वी पर उतरा, और परमोपकारी चन्द्रापीड़-मूर्तिधारी चन्द्रमा के पास आया। चन्द्रापीड़ ने उसे गले लगाकर कहा—'सखे पुण्डरीक, यद्यपि पूर्वजन्म-सम्बन्ध से तुम हमारे जामाता होते हो तथापि बाद के जन्मों में सञ्चित मित्र-स्नेह के अनुसार ही मेरे साथ व्यवहार करना' इस प्रकार चन्द्रापीड़ कह ही रहे थे तब तक चित्ररथ तथा हंस को इस सौभाग्य की सूचना देने के लिए केयूरक हेमकूट चला गया। मदलेखा ने दौड़कर जाकर मृत्युञ्जय मन्त्र का जप करने लगे हुए तारापीड तथा विलासवती के चरणों में गिरकर आनन्दविभोर स्वर में कहा—महा-

विलासवत्याश्च पादयोः पतित्वा 'देव देव्या सह दिष्ट्या वर्धसे, प्रत्युज्जीवितो युवराजः समं वैशम्पायनेन' इत्यानन्दनिर्भरमुच्चैर्जगाद। राजा तच्छ्रुत्वा तु शरीरसंस्कारविरहोद्गताविरलदीर्घपरुषपलितलोमशप्रकोष्ठाभ्यां दोर्भ्यां परिष्वज्य तां हर्षपरवशो विलासवतीं कण्ठेवलम्ब्य जराभङ्गवलिपरिशिथिलितमूलेन बाहुनोत्क्षिप्तोत्तरीयांशुकाञ्चलः स्वयमेवाशिक्षितलयविसंष्ठुलैः पदैर्नृत्यन्निवोत्फुल्लवदननरपतिसहस्रपरिवृताम्भोजाकर इव मलयमारुतप्रेङ्खोलनाविवर्तितो मदलेखां कासौ कासाविति पुनः पुनः पृच्छन्पुनःपुनर्निर्विशेषहर्षवृत्ति शुकनासं कण्ठे सम्भावयंस्तत्रैवागच्छत्। दृष्ट्वा च तथा पुण्डरीककण्ठे लग्नं चन्द्रापीडमानन्दनिर्भरः शुकनासमवादीत्। 'दिष्ट्या मया नैकाकिना तनयप्रत्युज्जीवनोत्सवसुखमनुभूतम्' इति। चन्द्रापीडस्तु तथा हर्षपरवशं पितरमालोक्य ससंभ्रमोन्मुक्तपुण्डरीकः पुरेव पृथ्वीतलनिवेशितशिराश्चरणयोरपतत्। अथ सत्वरोपसृतस्तं तथा प्रणतमुन्नमय्य तारापीडोऽभ्यधात्। 'पुत्र यद्यपि पिताहं तव शापदोषात्स्वपुण्यैर्वा सञ्जातस्तथापि जगद्वन्द-

---

युवराजवैशम्पायनौ पुनर्जीवनं प्राप्तौ। आनन्दनिर्भरम्–सानन्दम्। तत्–युवराजवैशम्पायनयोः पुनर्जीवनवृत्तम्। शरीरसंस्कारस्य केशनखकर्त्तनप्रसाधनादेर्विरहेण अभावेन उद्गतैः वृद्धिं गतैः अविरलैः घनैः दीर्घैः लम्बमानैः परुषैः रूक्षैः पलितैः श्वेतवर्णतां गतैः (लोमभिः) लोमशप्रकोष्ठाभ्याम् लोमयुक्ताग्रभागाभ्याम् दोर्भ्याम् बाहुभ्याम् तां मदलेखां परिष्वज्य आलिङ्ग्य। तदनु–मदलेखापरिष्वङ्गानन्तरं हर्षपरवशः–आनन्दमग्नः सन्। विलासवतीं कण्ठेऽवलम्ब्य–कण्ठेनाश्लिष्य। जरसा वार्द्धकेन भङ्गः शैथिल्यम् वलिः अशक्तिश्च ताभ्यां परिशिथिलं मूलं यस्य तेन तथोक्तेन। उत्क्षिप्तम् उपरिक्षिप्तम् उत्तरीयांशुकाञ्चलम् उत्तरीयवस्त्रप्रान्तं येन तथोक्तः सन्। अशिक्षितेन अनभ्यस्तेन लयेन समगतेन विसंष्ठुलैः अयथापातिभिः। पदैः–चरणन्यासैः। नृत्यन्–नृत्यं कुर्वन्। उत्फुल्लवदनानां विकसितमुखानां नृपतीनां राज्ञां सहस्रेण परिवृतः युक्तः मलयमारुतस्य दक्षिणदिगायातस्य वायोः प्रेङ्खोलनया सञ्चलनक्रियया विवर्तितः भिन्नमुखीकृतः अम्भोजाकरः कमलाकर इव। निर्विशेषहर्षवृत्तिम्–समानभावेन प्रसीदन्तम्। कण्ठे सम्भावयन्–कण्ठाश्लेषेण समादरं प्रापयन् तत्रैव–चन्द्रापीडाधिष्ठिते स्थान एव। तथा–तेन प्रकारेण (आनन्दनिर्भरभावेन) पुण्डरीककण्ठे लग्नम्–कण्ठे पुण्डरीकमालिङ्गन्तम्। आनन्दनिर्भरः–अतिप्रसन्नः। दिष्ट्या–भाग्येन। तनयप्रत्युज्जीवनोत्सवसुखम्–पुत्रपुनर्जीवनजन्यमहोत्सवानन्दः (प्रत्युत त्वयापि तल्लब्धमिति महन्मम भाग्यमिति भावः) हर्षपरवशम्–आनन्दपराधीनम्। ससम्भ्रमोन्मुक्तपुंडरीकः–वेगेन पुण्डरीकालिङ्गनं परिहृत्य पुरेव–पूर्ववत्। पृथ्वीतलनिवेशितशिराः–शिरसा भुवं स्पृशन्। सत्वरोपसृतः–शीघ्रतया चन्द्रापीडसमीपं गतः। उन्नमय्य–उत्थाप्य। जगद्वन्दितः–संसारनमस्यः। लोक-

---

राज, देवी के साथ आपका सौभाग्य है कि वैशम्पायन तथा युवराज पुनर्जीवित हो गये हैं। राजा ने यह सुनते ही बहुत दिनों से शरीर के असंस्कृत रहने के कारण घने पके वालों वाले बाहुओं से मदलेखा को गले लगाया, पश्चात् विलासवती को कण्ठ से लगाकर बुढ़ापे के कारण शिथिलमूल बाहुओं द्वारा चादर को ऊपर फेंककर बिना नृत्य-शिक्षा के बेजगह गिरने वाले चरणों से नाचते हुए शुकनास को गले लगाने के लिए चल पड़े, उस समय वह विकसित मुख कमल नरपतियों से परिवृत होने से उस कमलाकर की तरह लग रहे थे जो कमलाकर मलयमारुत के झोंके से झूल रहा हो। पुण्डरीक से लिपटे हुए चन्द्रापीड़ को देखकर तारापीड़ ने आनन्दविभोर स्वर में शुकनास से कहा—भाग्यवश मैं अकेला ही पुत्र के प्रत्युजीवित होने का सुख नहीं भोगा। चन्द्रापीड़ ने पिता को उस तरह आनन्दित देखकर शीघ्रतया पुण्डरीक का परित्याग करके पूर्व की भांति पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम किया। चन्द्रापीड़ को उस प्रकार प्रणाम करते देखकर दौड़कर आये हुये तारापीड़ ने उठाकर कहा—पुत्र, यद्यपि तुम्हारे शापदोष से या अपने पुण्यों से मैं तुम्हारा पिता हो गया हूँ, तथापि तुम संसार के वन्दनीय लोकपाल हो।

---

१. 'जराभङ्ग''''''तारापीडोऽभ्यधात्' इत्येतन्नास्ति।

नीयो लोकपालस्त्वम्। अपि च मय्यपि नमस्यो योंशः सोपि मया त्वय्येव संक्रामितः। तदुभयथापि त्वमेव नमस्कार्यः।' इत्यभिदधदेव समं राजपुत्रलोकसहस्रैः प्रतीपमस्य पादयोरपतत्। विलासवती तु तथा पित्रा प्रणते तस्मिन्परितोषेण वाङ्गेष्विवासम्मान्ती तं पुनः शिरसि पुनर्ललाटे पुनश्च कपोलयोश्चुम्बित्वा गाढतरं सुचिरमालिलिङ्ग। उन्मुक्तश्च मात्रोपसृत्य पुनः पुनः कृतनमस्कारः शुकनासं प्रणनाम। आशीःसहस्राभिवर्धितश्च तेनात्मनोपसृत्य यथानुक्रमं पित्रोः शुकनासस्य मनोरमायाश्च 'एष वो वैशम्पायनः' इति पुण्डरीकं विनयविलक्षावनम्रवदनमदर्शयत्।

तस्मिन्नेव च प्रस्तावे समुपसृत्य कपिञ्जलः शुकनासमवादीत्। 'एवं सन्दिष्टमार्यस्य भगवता श्वेतकेतुना। अयं खलु पुण्डरीकः संवर्धित एव केवलं मया। आत्मजः पुनस्तव। अस्यापि भवत्स्वेव लग्नः स्नेहः। तद्वैशम्पायन एवायमित्येवमवगत्याविनयेभ्यो निवारणीयः। परोयमिति कृत्वा नोपेक्षणीयः। यच्चापगतशापोप्यात्मसमीपं नानीतः तत्तवैवायमिति। अन्यच्चात्मानमस्मिन्नाचन्द्रकालीनायुषि स्थापयित्वा कृतार्थः सम्प्रत्यस्माद्दिव्यलोकादप्युपरिष्टाद्गन्तुमुद्यतं मे सत्त्वाख्यं ज्योतिः' इति। शुकनासस्तु विनयावनतं पुण्डरीकं पाणिनांसेऽवलम्ब्य कपिञ्जलं प्रत्यवादीत्। 'कपिञ्जल सकलजगदाशयज्ञेन सता-

पालः-अन्यतमो लोकपालश्चन्द्रः। नमस्यः-प्रणामयोग्यः। अंशः-राजभावः। संक्रामितः-राज्यप्रदानविधया गमितः। प्रतीपम्-विरोधिना प्रकारेण (पिता पुत्रं प्रणमतीति विरोधी प्रकारो बोध्यः) प्रणते-कृतनमस्कारे चन्द्रापीडे। परितोषेण-प्रसन्नतया असम्मान्ती-मातुमशक्नुवती। यथानुक्रमम्-क्रमशः। विनयविलक्षावनम्रवदनम्-नम्रतया लज्जया च नतमुखम्।

प्रस्तावे-प्रकरणे। सन्दिष्टम्-वाचिकमुक्तम्। आर्यस्य-भवतः शुकनासस्य। संवर्धितः-पोषितः। भवत्सु-युष्मासु। लग्नः-दृढः। वैशम्पायन एवायम्-न त्वन्यः। अविनयेभ्यः-कुकृत्येभ्यः उपेक्षणीयः-तिरस्करणीयः-अपगतशापः-निवृत्तशापः। तवैवायमितिबुद्ध्यैव मया शापावसाने जातेऽपि पुण्डरीकः स्वपार्श्वं न नीत इति भावः। आचन्द्रकालीनायुषि-चन्द्रपर्यन्तजीविनि। अस्मिन्-पुण्डरीके। आत्मानं स्थापयित्वा-आत्मनोंऽशं निधाय। मे-मम श्वेतकेतोः सत्त्वाख्यं ज्योतिः-आत्मांशभूतं ब्रह्मतत्त्वम्। दिव्यलोकात्-स्वर्गात्। उपरिष्टात्-उपरि। अंसे-स्कन्धदेशे। सकलजगदाशयज्ञेन-संसारवासिनां सर्वेषां मनोभावं जानता। (विनाऽप्यादेशमहं पुण्डरीकं स्वं पुत्रमेव मंस्ये इति ज्ञात्वापि श्वेतकेतुना यत्तथाकरणायाहमादिष्टोऽस्मि तत्तदीयस्य प्रेम्ण एव विलसितम्, अतिस्नेहस्य पापशङ्कित्वध्रौव्यादिति भावः)

मुझमें भी जो प्रणम्य अंश है वह तुम में ही चला गया है, दोनों प्रकार से तुम ही प्रणाम के योग्य हो। इस प्रकार कहकर तारापीड़ समस्त राजपुत्रों के साथ उसके चरणों में गिर पड़े। विलासवती ने जब उस तरह से पिता को प्रणाम करते देखा तब उसका आनन्द अङ्गों में नहीं समाने लगा, उसने बार-बार चन्द्रापीड़ को माथे पर, ललाट पर तथा कपोलों पर चूमकर गले से लगा लिया। माँ से छुटकारा पाने पर चन्द्रापीड़ शुकनास के पास गये और उन्हें बार-बार झुककर प्रणाम किया। हजार बार आशीर्वाद प्राप्त करके चन्द्रापीड़ ने क्रमशः मां-बाप, शुकनास तथा मनोरमा से—'यही है आपका वैशम्पायन' इस प्रकार कहकर नम्रवदन पुण्डरीक को दिखलाया।

इसी अवसर पर कपिञ्जल ने आकर शुकनास से कहा—'आपसे भगवान् श्वेतकेतु ने यह संवाद कहा है कि इस पुण्डरीक का मैंने केवल पालन पोषण किया है, पुत्र वह आपका ही है। वह भी आपको ही पिता समझता है। इसलिये वैशम्पायन ही मानकर अविनयों से बचाना। दूसरा समझकर उपेक्षा मत कर देना अपने को मैं चन्द्रकाल तक आयु वाले में निहित करके विश्वस्तभाव से मुझमें वर्त्तमान सत्त्वाख्य ज्योति दिव्यलोक से भी ऊपर जाना चाह रहा है'। शुकनास ने विनयावनत कपिञ्जल का कन्धा पकड़कर कहा—'समस्त जगत् के मनोभावों के ज्ञाता भगवान् श्वेतकेतु ने ऐसा क्यों कहा? यह सारा स्नेहकृत असन्तोष है'। इस तरह के पूर्वजन्म वृत्तान्तों के स्मरण तथा तत्संबद्ध वार्त्तालापों में वह रात बिना जाने ही बीत गई। प्रातःकाल सकल गन्धर्व-

भगवता किमित्यादिष्टम् । सर्वथा स्नेहस्यायमसन्तोषः ।' इत्येवंविधैश्च पूर्वजन्मवृत्तान्तानुस्मरणालापैः परम्परालोकनसुखोत्फुल्ललोचनानां सर्वेषामेव तेषामचेतितैव सा क्षणदा प्रभाता । प्रातरेव च सकलगन्धर्वलोकानुगतौ समं मदिरागौरीभ्यां चित्ररथहंसौ गन्धर्वराजावपि तत्रैवाजग्मतुः । आगतयोश्च तयोर्लज्जितात्मजोपगममुदितहृदययोर्जामातृदर्शनसमुत्फुल्लवदनयोस्तारापीडशुकनासाभ्यां सहानुभूतसम्बन्धकोचितसंवादकथयोः सहस्रगुण इव महोत्सवः प्रावर्तत ।

अथ प्रवर्तमान एव तस्मिंश्चित्ररथस्तारापीडमवादीत् । 'विद्यमाने स्वभवने किमर्थमयमरण्ये महोत्सवः क्रियते । अपि च यद्यप्यस्माकमयमेव परस्पराभिरुचिनिष्पन्नो धर्म्यो विवाहस्तथापि लोकसंव्यवहारोऽनुवर्तनीय एव । तद्गम्यतां तावदस्मदीयमवस्थानम् । ततः स्वभूमिं चन्द्रलोकं वा गमिष्यथ ।' तारापीडस्तु तं प्रत्यवादीत् । 'गन्धर्वराज यत्रैव निरतिशयं सम्पत्सुखं तदेव वनमपि भवनम् । तदीदृशं क्वापरत्र मया सम्पत्सुखं प्राप्तम् । अन्यच्च सम्प्रति सर्वगृहाण्येव मया जामातरि ते संक्रामितानि । तद्वयस्य वधूसमेतं तमेवादाय गम्यतां गृहसुखानुभवनाय' इति । चित्ररथस्तु तथाभिहितो "राजर्षे यथा ते रोचते" इत्युक्त्वा चन्द्रापीडमादाय हेमकूटमगात् । गत्वा च चित्ररथः कादम्बर्या सह समग्रमेव

पूर्ववृत्तान्तानुस्मरणालापैः-प्राक्तनवृत्तस्मरणैस्तदालापैश्च । परस्परालोकनसुखोत्फुल्ललोचनानाम्-परस्परदर्शनजनितानन्दविकसिताक्षाणाम् । अचेतिता-अज्ञातावसाना क्षणदा-रात्रिः । सकलगन्धर्वानुगतौ-सर्वैर्गन्धर्वैरनुगम्यमानौ । तत्रैव-महाश्वेताश्रमे । तयोः-चित्ररथहंसयोः । लज्जितयोः-सद्यःपरिणयाहितत्रपयोः आत्मजयोः कन्ययोः महाश्वेताकादम्बर्योरुपगमेन समीपप्राप्त्या मुदितहृदययोः प्रसन्नमनसोः । जामात्रोः पुण्डरीकचन्द्रापीडयोर्दर्शनेन समुत्फुल्ले विकसिते वदने मुखे ययोस्तथोक्तयोः । अनुभूतसम्बन्धकोचितसंवादकथयोः-सम्बन्धिजनयोग्यकथावसरं प्राप्तवतोः । प्रावर्त्तत-अभवत् ॥

तस्मिन्-महोत्सवे । प्रवर्त्तमाने-जायमाने एव । विद्यमाने स्वभवने-सति स्वगृहे । अरण्ये-वने । अयम्-गान्धर्वः । परस्पराभिरुचिनिष्पन्नः-अन्योन्यप्रीतिकृतः । विवाहः-परिणयः । धर्म्यः-धर्मादनपेतः । लोकसंव्यवहारः-लोकाचारः । अनुवर्त्तनीयः-पालनीयः । गम्यताम्-चल्यताम् । तावत्-प्रथमम् । अस्मदीयमवस्थानम्-अस्माकं भवनम् । ततः-अस्मद्भवनात् । स्वभूमिम्-स्वां राजधानीम् । ते जामातरि-चन्द्रापीडे । संक्रामितानि-समर्पितानि । वयस्य-मित्र । हंसः-न्यवेदयदिति शेषः । तौ-चन्द्रापीडपुण्डरीकौ । हृदयरुचितायाः वध्वाः लाभमात्रेण प्राप्तया केवलया । कृतार्थौ-सन्तुष्टौ । अपरम्-वधूभिन्नं राज्यादि । न प्रत्यपद्येताम्-न स्वीकृतवन्तौ ।

लोक के साथ मदिरा और गौरी को लिये गन्धर्वराज चित्ररथ तथा हंस वहाँ आ गये । वहाँ आने पर चित्ररथ तथा हंस ने लज्जित कन्याओं का मुख देखकर अपने हृदय को आनन्दित करके जामाताओं के दर्शन से अपने मुखों को प्रसन्न किया और तारापीड़ तथा शुकनास के साथ सम्बन्धी जन के योग्य बातें करके उत्सव को हजार गुना गौरवशाली माना ।

इसी उत्सव के बीच चित्ररथ ने तारापीड़ से कहा—जब अपना घर विद्यमान है तब यह उत्सव जंगल में क्यों मनाया जाय ? यद्यपि हम लोग में इसी तरह का परस्परानुराग से होने वाला धर्म्य विवाह प्रचलित है तथापि लौकिक व्यवहार का भी पालन करना ही होता है । इसलिये हमारे घर चलिये, वहाँ से अपने घर अथवा चन्द्रलोक चले जाइयेगा । तारापीड़ ने उत्तर दिया—गन्धर्वराज, जहाँ पर निरतिशय सुख प्राप्त हो वह वन भी भवन ही है । मैंने इस तरह का सुख दूसरी जगह कहाँ प्राप्त किया ? और मैंने अपने सारे गृह तुम्हारे दामाद को दे दिया है । इसलिये हे मित्र, बहू के साथ अपने दामाद को ले जाकर गृहसुख का अनुभव कीजिये । चित्ररथ ने कहा—राजर्षे, आपकी जैसा रुचि, इस प्रकार कहकर चन्द्रापीड़ को लेकर वह हेमकूट चले गये । वहाँ जाकर चित्ररथ ने कादम्बरी के साथ अपना समस्त राज्य चन्द्रापीड़ को समर्पित कर दिया । हंस ने भी

स्वं राज्यं चन्द्रापीडाय न्यवेदयत्। पुण्डरीकायापि समं महाश्वेता निजपदं हंसः। तौ तु हृदयरुचितवधूलम्भमात्रकेणैव कृतार्थौ न किंचिदप्यपरं प्रत्यपद्येताम्।

अन्यदा जन्माभिवाञ्छितहृदयवल्लभलाभमुदिता सर्वस्वजनमध्योपगमननिर्वृतापि कादम्बरी बाष्पोत्तरललोचना विषण्णमुखी वासभवनगतं चन्द्रापीडमूर्तिं चन्द्रमसमप्राक्षीत्। "आर्यपुत्र, सर्वे खलु वयं मृताः सन्तः प्रत्युज्जीविताः परस्परं संघटिताश्च। सा पुनर्वराकी पत्रलेखास्माकं मध्ये न दृश्यते। न विद्मः किं तस्याः केवलाया वृत्तम्", इति। चन्द्रापीडमूर्तिश्चन्द्रमाः तच्छ्रुत्वा प्रीतान्तरात्मा तां प्रत्यवादीत्। "प्रिये, कुतोत्र सा। सा हि खलु मद्दुःखदुःखिनी रोहिणी शप्तं मामुपश्रुत्य 'कथं त्वमेकाकी मर्त्यलोकनिवासदुःखमनुभवसि' इत्यभिधाय निवार्यमाणापि मया प्रथमतरमेव मच्चरणपरिचर्यार्थं मर्त्यलोके जन्माग्रहीत्। इतश्च जन्मान्तरं गच्छता मया तदुपरमसमसमुन्मुक्तशरीरा पुनरपि मर्त्यलोकमवतरन्ती बलादावर्ज्यात्मलोकं विसर्जिता। तत्र पुनस्तां द्रक्ष्यसि" इति। कादम्बरी तु तच्छ्रुत्वा रोहिण्यास्तयोदारतया स्नेहलतया महानुभावतया पतिव्रततया पेशलतया च विस्मितहृदया परं लज्जिता न किंचिदपि वक्तुं शशाक।

अन्यदा–एकदा कदाचित्। जन्माभिवाञ्छितस्य–जन्मत एव कामितस्य हृदयवल्लभस्य प्राणप्रियस्य चन्द्रापीडस्य पत्युः लाभेन प्राप्तया मुदिता प्रसन्ना। सर्वेषां स्वजनानां मध्ये उपगमनेन अवस्थानेन निर्वृता सुखिताऽपि बाष्पोत्तरललोचना साश्रुनेत्रा। विषण्णमुखी–दीनवदना कादम्बरी वासभवनगतं विश्रामागारे वर्त्तमानम्। चन्द्रापीडमूर्तिं चन्द्रापीडशरीरधारिणं चन्द्रमसं वस्तुतश्चन्द्रम्। अप्राक्षीत्–पृष्टवती। प्रत्युज्जीविताः–पुनर्जीवनं प्राप्तवन्तः। सङ्घटिताः मिलिताश्च। वराकी–दीना। केवलायाः–एकस्याः। वृत्तम्–जातम्। तत्–कादम्बर्या उच्यमानम्। प्रीतान्तरात्मा–प्रसन्नहृदयः। प्रत्यवादीत्–उत्तरं दत्तवान्। सा–पत्रलेखा। मद्दुःखदुःखिनी–मदीयेन दुःखेन दुःखिता। रोहिणी नाम चन्द्रस्त्री। शप्तम्–दत्तशापम्। निवार्यमाणा–निषिध्यमाना। प्रथमतरम्–मम मर्त्यलोकप्राप्तेः पूर्वम्। मच्चरणपरिचर्यार्थं–चन्द्रापीडवपुषा स्थितस्य मम पादौ सेवितुम्। जन्मान्तरम्–शूद्रकवपुः। तदुपरमसमसमुन्मुक्तशरीरा–मम मृत्यौ जाते विसर्जितस्वदेहा। आवर्ज्य–पुनर्जन्मान्तरग्रहणान्निवर्त्य। आत्मलोकं विसर्जिता–चन्द्रलोकं प्रेषिता। स्नेहलतया–प्रीतिपरायणतया। पतिव्रततया–पातिव्रत्येन। पेशलतया–कोमलहृदयतया। विस्मितहृदया–आश्चर्यितचित्ता।

महाश्वेता के साथ समस्त राज्य पुण्डरीक को सौंप दिया। चन्द्रापीड़ तथा पुण्डरीक ने मनमानी स्त्री को प्राप्त कर अपने को कृतार्थ मानकर स्त्री के अतिरिक्त कुछ भी नहीं लिया।

दूसरे समय जन्माभिलषित प्रियतम की प्राप्ति से हृष्ट तथा समस्त स्वजन के बीच में निवास से प्रसन्न कादम्बरी ने उदास मुख से आँखों में आँसू भर कर वासभवन में वर्त्तमान चन्द्रापीड़मूर्त्ति चन्द्रमा से पूछा—आर्यपुत्र, हम सभी मरकर पुनः जी उठे, परस्पर मिले, वह बेचारी पत्रलेखा हमारे बीच नहीं दीख रही है, मैं नहीं जानती हूँ कि उसका क्या हुआ। इस प्रश्न से प्रसन्न होकर चन्द्रापीड़ ने कहा—प्रिये, वह यहाँ कहां? मेरे दुःख से दुःखित होकर रोहिणी ने मुझे शापग्रस्त सुनकर कहा—किस प्रकार तुम अकेले मर्त्यलोक निवास का कष्ट सहोगे? इस प्रकार कहकर मेरे रोकने पर भी रोहिणी मेरी सेवा करने के लिये मुझसे पहले ही मर्त्यलोक में पैदा हुई। पुनः जन्मान्तर होने पर मेरे साथ ही उसका भी शरीर छूटा, वह फिर मर्त्यलोक में पैदा हो रही थी, मैंने जबर्दस्ती उसे रोककर चन्द्रलोक भेज दिया। वहां तुम उसे देखोगी। कादम्बरी रोहिणी की कथा सुनकर उसके पातिव्रत्य, प्रेमप्रवणता, महानुभावता तथा स्नेह से आश्चर्यित होकर लज्जित हुई, कुछ कह नहीं सकी।

अत्रान्तरे जन्मद्वयाकाङ्क्षितं कालप्रभोश्चन्द्रमसः कादम्बरीसम्भोगसुखमिवोपपादयितु-मपससार वासरः। अनुरागपताकेवोल्लसदपरसंध्यावधूत्रपावरणायेव वितस्तार वासतेयी। चन्द्रोदयाभिरामं च सम्भ्रममेव जगदभवत्। एवं च भरेणावतीर्णायां रजन्यां चन्द्रापीडश्चि-राभिलषितमुन्मीलितनयनकुवलयमुत्त्रस्तनीवीप्रसृतकरनिवारणानुबन्धमनुभूतप्रत्यालिङ्गन-सुखमभिप्रार्थितसुरतपरिसमाप्तित्रपासुभगं कादम्बरीप्रथमसुरतसुखमनुभूयैकदिवसमिव दश-रात्रं स्थित्वा परितुष्टहृदयाभ्यां श्वशुराभ्यां विसर्जितः पितुः पादमूलमाजगाम।

आगत्य च समकालमेवानुभूतक्लेशं राजलोकमात्मसमं कृत्वा समारोपितराज्यभारः पुण्डरीके परित्यक्तसर्वस्वकार्ययोः पित्रोः पादावनुचरन् कदाचिदत्यद्भुतोत्फुल्लनयनैर्नैगमज-नावलोकितो जन्मभूमिस्नेहादुज्जयिन्याम्, कदाचिद्गन्धर्वराजगौरवेणानुपमरमणीयतममहिम्नि हेमकूटे, कदाचिदमृतपरिमलाधिवाससुरभिशिशिरसर्वप्रदेशहारिणि रोहिणीबहुमानेन चन्द्र-

---

जन्मद्वयाकांक्षितम्–द्वाभ्यां जन्मभ्यां काम्यमानम्। कालप्रभोः–कालनियन्तुः। उपपादयितुम्–उपस्थापयितुम्। अपससार–अपसृत्यगतः। अनुरागपताका–प्रीतिध्वजः। उल्लसन्त्याः प्रसीदन्त्याः अपर-सन्ध्यावध्वाः पश्चिमसन्ध्यारूपायाः स्त्रियः त्रपावरणाय लज्जाच्छादनाय वासतेयी रात्रिः वितस्तार वि-स्तृता जाता। भरेण–पूर्णमात्रया। रजन्याम्–रात्रौ। अवतीर्णायाम्–उपस्थितायाम्। चिराभिलषितम्–बहोः कारणात् काम्यमानम्। उन्मीलिते विकसिते नयने एव कुवलये नेत्ररूपे नीलकमले यत्र तादृशम्। उत्त्रस्तायां स्वयं शिथिलतां गतायां नीव्यां वस्त्रग्रन्थौ प्रसृतः व्याप्तः करेण निवारणस्य शैथिल्यप्रति-बन्धस्य अनुबन्धः सम्प्राप्तिर्यत्र तादृशम्। अनुभूतं प्राप्तं प्रत्यालिङ्गनस्य आलिङ्गनस्योत्तररूपेण कृतस्या-लिङ्गनस्य सुखं यत्र तादृशम्। अभिप्रार्थितस्य इष्टस्य सुरतस्य सम्भोगस्य परिसमाप्तौ अवसाने या त्रपा लज्जा तया सुभगम् सुन्दरम्, कादम्बरीप्रथमसुरतसुखम्–कादम्बर्याः प्रथमसम्भोगे जायमानं प्रमोदम् अनुभूय–प्राप्य। परितुष्टहृदयाभ्याम्–मनसा प्रसन्नाभ्याम्। विसर्जितः–स्वं राज्यं गन्तुमादिष्टः पितुः पादमूलम्–तारापीडस्य चरणप्रान्तम् समीपम्।

आगत्य–स्वां राजधानीं प्राप्य। समकालम्–एकदैव। अनुभूतक्लेशम्–चन्द्रापीडस्य कृते क्लेशं प्राप्तम्। राजलोकम्–समस्तं राजन्यवर्गम्। आत्मसमम्–स्वमिव प्रसन्नम्। पुण्डरीके समारोपितराज्य-भारः–राज्यकार्याणि पुण्डरीकाय समर्प्य। परित्यक्तसर्वस्वकार्ययोः–त्यक्तराज्यकार्ययोः। पित्रोः–जननी-जनकयोः। पादावनुचरन्–चरणौ सेवमानः। अत्यद्भुतोत्फुल्लनयनैः–आश्चर्यविकसितनेत्रैः वणिग्जनैः अवलोकितः दृश्यमानः। 'नैगमा वणिजा' इति 'एवं दशरथः प्रीतो नैगमा ब्राह्मणास्तथा' इतिवाल्मीकि-रामायणस्थश्लोकटीकायां रामानुजः। अनुपमः इतरासाधारणः रमणीयतमः नितान्तरम्यश्च महिमा महत्त्वातिशयो यस्य तादृशे हेमकूटे नाम कादम्बरीपितुर्भवने। रोहिणीबहुमानेन–रोहिणीं प्रति वर्तमाने-

---

इसी समय काल के स्वामी चन्द्रमा को जन्मद्वयाकाङ्क्षित कादम्बरी समागम सुख प्रदान करने के लिए दिन खिसक गया। सन्ध्यारूप स्त्री की लाज ढँकने के लिए अनुरागपताका-सी रात विस्तृत होने लगी। समस्त जगत् चन्द्रोदय से सुहावना हो उठा। इस प्रकार रात के प्रौढ़ होने पर चन्द्रापीड़ ने चिराभिलषित, आँखस्वरूप कुमुद को बिना बन्द किए, खुली नीवी को पकड़ने के लिए चलते हाथ को रोककर, प्रत्यालिङ्गन सुख के साथ, सुरतावसान में उदित लज्जा से रमणीय, कादम्बरी-प्रथम सुरतसुख का उपभोग करके एक दिन की तरह दश रातें बिताकर परितुष्ट हृदय सास-ससुर से विदा लेकर पिता के पास यात्रा की।

चन्द्रापीड ने अपनी राजधानी में आकर साथ-साथ दुःख सहने वाले राजलोक को अपनी तरह सुखी बनाकर पुण्डरीक के ऊपर राज्य का भार सौंप, समस्त कार्य से विरत पिता-माता के चरणों की सेवा करते हुए-कदाचित् आश्चर्य विकसित नयनशाली पौरजन को दर्शन देते हुए जन्मभूमि स्नेहवश उज्जयिनी में, कदाचित् रोहिणी के आदरवश अमृत की सुगन्ध से सुरभित तथा शीतल चन्द्रलोक में, कदाचित् पुण्डरीक के प्रेम से अहर्निश

---

१. न-कालं प्रभोः; क-'कालप्रभोश्चन्द्रमसः' इति नास्ति।

लोके, कदाचिदहर्निशोत्फुल्लसहस्रपत्रनिवहोदकवाहिनि पुण्डरीकप्रीत्या लक्ष्मीनिवाससरसि, कादम्बरीरुच्या च सर्वत्रैवापरेष्वपि रम्यतरेषु तेषु तेषु स्थानेषु तया सह जन्मद्वयाकाङ्क्षयैवापरिसमाप्तान्यपुनरुक्तानि च तानि तानि न केवलं चन्द्रमाः कादम्बर्या सह कादम्बरी महाश्वेतया सह महाश्वेता तु पुण्डरीकेण सह पुण्डरीकोपि चन्द्रमसा सह परस्परावियोगेन सर्वे एव सर्वकालं सुखान्यनुभवन्तः परां कोटिमानन्दस्याध्यगच्छन् ।

नादरेण हेतुतां गतेन। अमृतपरिमलाधिवासेन सुधासुगन्धाधिवासिततया सुरभयः सुगन्धपूर्णाः शिशिराः शीतलाश्च सर्वे प्रदेशास्तेन हारिणि हृदयाकर्षके। अहर्निशोत्फुल्लाः रात्रिंदिवविकसिताः सहस्रपत्रनिवहाः कमलसमूहा यत्र तादृशं यदुदकं जलं तद्वाहिनि तत्प्रवाहयुते लक्ष्मीनिवाससरसि श्रीसरोवरे। कादम्बरीरुच्या–कादम्बर्या इच्छामनुसृत्य। तया–कादम्बर्या। जन्मद्वयाकांक्षया–जन्मद्वयसञ्चितयेच्छया। अपुनरुक्तानि–नित्यनूतनानि। परां कोटिम्–परमं प्रकर्षम्। अध्यगच्छन्–प्राप्तवन्तः॥ शमिति॥

विकसित कमल से युक्त जल वाले लक्ष्मीनिवास सरोवर पर, तथा कादम्बरी की रुचि से सभी रमणीय स्थानों में कादम्बरी के साथ जन्मद्वयाभिलाष के कारण असमाप्त और अपुनरुक्त सुखों का भोग किया। उसमें चन्द्रमा कादम्बरी के साथ, कादम्बरी महाश्वेता के साथ, महाश्वेता पुण्डरीक के साथ, पुण्डरीक चन्द्रमा के साथ परस्पर अवियुक्त रहकर सदा सुख का अनुभव करते हुए आनन्द की पराकाष्ठा को प्राप्त किया।

यो जातो धरणीसुरान्वयसरोहंसात्प्रसर्पद्यशो–
ज्योत्स्नाद्योतितदिङ्मुखान्मधुरिपुध्यानैकबद्धाशयात् ।
मिश्राख्या'न्मधुसूदना' 'ज्जयमणौ' सीमन्तिनीनां मणौ
तस्य श्रीयुत'रामचन्द्र'सुधियो व्याख्या प्रसिद्ध्यादियम् ॥

अङ्कक्षोणिखबाहुबाहुसम्मितशरद्याशातिथौ माघगे
चन्द्रे पुष्यति भास्करस्य दिवसे श्रीशारदानुग्रहात् ।
रम्ये पाटलिपुत्रसंस्कृतमहाविद्यालये पूर्णता–
मानीतेयमुमामहेश्वरपदाम्भोजेषु विश्राम्यतु ॥

'विद्वांसो वसुधातले परगुणश्लाघासु वाचंयमाः
उक्त्वैतद्विमुखीभवामि न मनागालोचनावर्त्मनः ।
ते हि स्वर्णपरीक्षणैकनिकषा निष्पक्षपातां दृशं
प्रक्षिप्यास्मगुणोचितादरभुवं कुर्युर्ममेमां कृतिम् ॥

छिद्रान्वेषणमात्रसज्जधिषणानप्यत्र दोषान् बहून्
ग्रन्थे दर्शयतो न मत्सरितया निन्दामि किन्त्वर्थये ।
निर्दोषेण पथा प्रशस्तरचनां निर्माय काञ्चित्कृतिं
लोकेभ्यः समुपाहरन्तु भविता भूयो यशोऽनेन वः ॥

मान्यान्यानहमाद्रिये नतशिरास्ते ते सखायश्च मे
येषामाग्रहतो विदन्नपि निजां शक्तिं प्रवृत्तोऽभवम् ।
व्याख्यानेऽत्र न तैरियं मम कृतिः कार्यान्यथा स्वपदं
सर्वानिन्दितकीर्त्तिलाभसुभगं भाग्यं कुतोऽस्मादृशाम् ॥

इति मुजफ्फरपुरमण्डलान्तःपाति-पकडीग्राम-वासिना-पाटलिपुत्रस्थ-राजकीयसंस्कृत-महाविद्यालय-प्राध्यापकेन श्रीरामचन्द्रमिश्रशर्मणा प्रणीता कादम्बर्या उत्तरभागस्य संस्कृत-हिन्दीव्याख्या समाप्ता॥

॥ श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ॥



परिशिष्टम्

विशेषविवरणानि

(Notes)

१. नखक्षतम्

सुरतक्रीडा में नखाघात का शास्त्रीय विधान है, उसके स्थान निर्दिष्ट हैं। यथा—

नखाघातः प्रदातव्यो यथास्थानानि कर्मसु। पार्श्वयोः स्तनयोश्चैव ऊरौ चैव नितम्बके॥
कक्षस्थले च कर्णान्ते कपाले बाहुमूलके। ग्रीवायां कण्ठदेशे च नखाघातं समाचरेत्॥
तथा सर्वशरीरेषु नखं दद्याच्छनैः शनैः॥ इति कामशास्त्रम्।

२. दन्तक्षतम्

सुरतक्रीडा में दन्ताघात के स्थान भी निर्दिष्ट हैं। यथा—

'स्तनयोर्गण्डयोश्चैव ओष्ठे चैव तथाधरे।
दन्ताघातः प्रकर्त्तव्यः कामिनीनां सुखावहः॥' इति कामशास्त्रम्।

३. द्रुघणः

द्रुर्वृक्षः हन्यतेऽनेनेति द्रुघणः कुठारः। 'करणेऽयोविद्रुषु' इत्यप्प्रत्ययः घनादेशश्च। 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' इति णत्वम्। यथोक्तम्—

'द्रुघणस्त्वायसाङ्गः स्याद् वक्रग्रीवो बृहच्छिराः। पञ्चाशदङ्गुलोत्सेधो मुष्टिसम्मितमण्डलः॥'
अस्य चतस्रः क्रियाः—उन्नामनं प्रपातञ्च स्फोटनं दारणं तथा।
चत्वार्येतानि द्रुघणे वल्गितानि श्रितानि वै॥'

४. अग्निशौचमंशुकम्

अग्निना शौचं शुद्धिर्यस्य तदग्निशौचम्। साधारणं वस्त्रं मलिनं सजले प्रक्षालितं शुद्धयति इदं वस्त्रं वह्नौ क्षिप्तं सदेव दीप्तवर्णं निष्क्रामति। अस्य वस्त्रस्य चर्चा दुर्गासप्तशत्याम्—

"वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी।"

५. रणरणकः

रणरणकः-उत्कण्ठा। यथा उत्तररामचरिते भवभूतिः—"सैवेयं रणरणकदायिनी चित्रदर्शनाद्विरहभावना देव्याः स्वप्नोद्देशं करोति।"

६. प्रधानस्य परिणामात्

सांख्यदर्शन के अनुसार सत्त्व-रज-तम नाम तीन गुणों को साम्यावस्था प्रकृति या प्रधान कहलाती है। पुरुष कुछ कर्त्ता-धर्त्ता नहीं है। प्रधान के गुणों में एक प्रकार की जब न्यूनाधिकता होती है तभी उससे सृष्टि होती है। वह न्यूनाधिकता प्राणि-कर्मानुसार होती है, उसी न्यूनाधिकता को यहाँ परिणाम कहा है।

७. महेन्द्रपदवर्त्तिनो नहुषस्य राजर्षेरगस्त्यशापादजगरता नहुषशापवृत्तान्तो महाभारते—३।१८

'अहं हि दिवि दिव्येन विमानेन चरन् पुरा। अभिमानेन मत्तः सन् किञ्चिन्नान्यदचिन्तयम् ॥
ब्रह्मर्षि-देव-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-पन्नगाः। करान्मम प्रयच्छन्ति सर्वे त्रैलोक्यवासिनः ॥
चक्षुषा यं प्रपश्यामि प्राणिनं पृथिवीश्वर। तस्य तेजो हराम्याशु तद्धि दृष्टेर्बलं मम ॥
ब्रह्मर्षीणां सहस्रं हि उवाह शिविकां मम। स मामपनयो राजन् भ्रंशयामास वै श्रियः ॥
तत्र ह्यगस्त्यः पादेन वहन् स्पृष्टो मया मुनिः। अगस्त्येन ततोऽस्म्युक्तो ध्वंस सर्पेति वै रुषा ॥
ततस्तस्माद्विमानाग्रात्प्रच्युतश्च्युतभूषणः। प्रपतन् बुबुधे स्मानं व्यालीभूतमधोमुखम् ॥

८. सौदासस्य च वशिष्ठसुतशापान्मानुषादत्वम्

सौदासः इक्ष्वाकुवंशीयोऽयोध्याधिपतिः। स पुरा मृगयां चरन् एकं राक्षसमवधीत्। अस्य राक्षसस्य भ्राता वैरशोधनं चिकीर्षुः सूदरूपधरोऽस्य राज्ञो गृहं प्रत्युवास। एकदा त्वसौ राक्षसो भोक्तुकामाय नृपतेः सौदासस्य गुरुपुत्राय नरामिषं पक्त्वा ददौ। वशिष्ठपुत्रस्तु तद्दृष्ट्वाऽभोज्यमतिक्रुद्धः सन् राक्षसो भवेति राजानमशपत्। इयं कथा महाभारते १।१७७

९. त्रिशङ्कोश्च शापवशाच्चाण्डालभावः

त्रिशङ्कुः सूर्यवंशीयराजविशेषः। एष वशिष्ठमाह अहं शरीरेणानेन स्वर्गं गन्तुं यजेयम्, वशिष्ठ एतदशक्यमित्युवाच। ततो राजा तस्य पुत्रानुवाच, सशरीरो यज्ञेन स्वर्गं यथाप्नुयां तथा कुरुत, यद्यहं भवद्भिः परित्यक्तस्तथा त्वन्यं गुरुमुपासिष्ये, वशिष्ठपुत्रास्तच्छ्रुत्वा राजानमूचुर्भगवान् वशिष्ठो यदशक्यमाह तदस्माभिः कथं शक्यम्। राजोवाच—यष्टुमन्यां गतिं गमिष्यामि तच्छ्रुत्वा ऋषिपुत्रा राजानं शेपुः—श्वचाण्डालो भविष्यसि। ततस्तस्यां रात्र्यामतीतायां स चाण्डालदर्शनो भूत्वा विश्वामित्रं शरणमाययौ। (इयं कथा रामायणे प्राप्यते)

१०. शापदोषादष्टानामपि वसूनामुत्पत्तिः

देवीभागवते—२।३ इयं कथा लिखिता—

'एतस्मिन् समये चाष्टौ वसवः स्त्रीसमन्विताः। वशिष्ठस्याश्रमं प्राप्ता रममाणा यदृच्छया ॥
पृथ्वादीनां वसूनाञ्च मध्ये कोपि वसूत्तमः। द्यौर्नाम्ना तस्य भार्याथ नन्दिनी तां ददर्श ह ॥
दृष्ट्वा पतिं सा पप्रच्छ कस्येयं धेनुरुत्तमा। द्यौस्तामाह वशिष्ठस्य गौरियं शृणु सुन्दरि ॥
दुग्धमस्याः पिबेद्यस्तु नारी वा पुरुषोऽथवा। अयुतायुर्भवेन्नूनं सदैवागतयौवनः ॥
तच्छ्रुत्वा सुन्दरी प्राह मर्त्यलोकेऽस्ति मे सखी। उशीनरस्य राजर्षेः पुत्री परमशोभना ॥
तस्या हेतोर्महाभागः सवत्सां गां पयस्विनीम्। आनयस्वाश्रमश्रेष्ठं नन्दिनीं कामदां शुभाम् ॥
यावदस्याः पयः पीत्वा सखी मम सदैव हि। मानुषेषु भवेदेका जरारोग-विवर्जिता ॥
तत्तस्या वचनं श्रुत्वा द्यौर्जहार च नन्दिनीम्। अवमत्य मुनिं दान्तं पृथ्वाद्यैः सहितोऽनघः ॥
हृतायामथ नन्दिन्यां वशिष्ठस्तु महातपाः। आजगामाश्रमपदं फलान्यादाय सत्वरः ॥
नापश्यत्स यदा धेनुं सवत्सां स्वाश्रमे मुनिः। वारुणिश्चापि विज्ञाय ध्यानेन वसुभिर्हृताम् ॥

वसुभिर्मे हृता धेनुर्यस्मान्मामवमत्य वै । तस्मात्सर्वे भविष्यन्ति मानुषेषु न संशयः ॥
एवं शशाप धर्मात्मा वसूंस्तान् वारुणिः स्वयम् । श्रुत्वा विमनसः सर्वे बभूवुर्दुःखिताश्च ते ॥
शप्ताः स्म इति जानन्त ऋषिं तमुपचक्रमुः । प्रसादयन्तस्तमृषिं वसवः शरणं गताः ॥
मुनिस्तानाह धर्मात्मा वसून्दीनान्पुरःस्थितान् । अनुसंवत्सरं सर्वे शापमोक्षमवाप्स्यथ ॥
येनेयं विहृता धेनुर्नन्दिनी मम वत्सला । तस्माद् द्यौर्मानुषे लोके दीर्घकालं वसिष्यति ॥
ते शप्ताः पथि गच्छन्तीं गङ्गां दृष्ट्वा सरिद्वराम् । ऊचुस्तां प्रणताः सर्वे शप्तां चिन्तातुरां नदीम् ॥
भविष्यामो वयं देवि कथं देवाः सुधाशनाः । मानुषाणाञ्च जठरे चिन्तेयं महती हि नः ॥
तस्मात्त्वं मानुषी भूत्वा जनयास्मान्सरिद्वरे । शन्तनुर्नाम राजर्षिस्तस्य भार्या भवानघे ॥
जातान् जातान् जले चास्मान् विनिक्षिप सुरापगे । एवं शापविनिर्मोक्षो भविता नात्र संशयः ॥
तथेत्युक्ताश्च ते सर्वे जग्मुर्लोकं स्वकं पुनः । गङ्गापि निर्गता देवी चिन्त्यमाना पुनः पुनः ॥

११. किङ्किरातः

किङ्किरं रक्तवर्णत्वमतति पुष्पकाले इति किङ्किरातोऽशोकवृक्षः ।

किङ्किरातो हिमस्तिक्तः कषायश्च हरेदसौ ।
कफपित्तपिपासास्रदाहशोषवमिक्रिमीन् ॥

(भावप्रकाशे)

१२. सत्त्वाख्यं ज्योतिः

सत्त्वगुणस्वरूपं ब्रह्मभूयम् । यथाह भगवद् गीता—
'ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः' इति ।

